

नमोऽनेकार्थाय ।

श्रीश्रीधरसेनाचार्यविरचित

# विश्वलोचनकोश

अपरनाम

## ( मुक्तावलीकोश )

भाषाटीकासमेत ।

जिसे

आकलूजनिवासी नाथारंगजी गांधीने

मुहम्मदपुर–माजरा जिला रोहतक

निवासी पंडित नन्दलाल–शर्मासे भाषाटीका कराकर

बम्बई निर्णयसागर प्रेसमें बालकृष्ण रामचन्द्र घाणेकरके
प्रबंधसे छपाकर प्रकाशित किया ।

श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३८

जून १९१२ ईस्वी

प्रथमावृत्तिः ] [ मूल्य एक रु० सात आना.

Published by Gandhi Natha Rangaji,
Dabaragalli, Bombay

Printed by B R Ghanekar at the "Nirnaya-Sagar"
Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

# विश्वलोचनकोश.

अपरनाम

# मुक्तावलीकोश.

पुस्तक मिलनेका पता—

श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो० गिरगांव–बंबई।

# प्रस्तावना ।



पाठक महाशय, एक विद्वान्ने कहा है कि–

> कोशश्चैव महीपानां कोशश्च विदुषामपि ।
> उपयोगो महानेष क्लेशस्तेन विना भवेत् ॥

अर्थात् जिस प्रकार राजाओंके लिये कोश (खजाना) आवश्यक है, उसके विना उनका काम नहीं चल सकता है–उन्हें क्लेश होता है, उसी प्रकारसे विद्वानोंके लिये कोश (शब्दभाण्डार) आवश्यक है । कोशके विना विद्वानोंका काम नहीं चल सकता है वे अपने हृदयके भाव दूसरोंपर सुचारुरूपसे प्रगट नहीं कर सकते हैं । इससे आप समझ सकते हैं कि, कोशकी कितनी उपयोगता है ।

संस्कृतका शब्दभाण्डार यद्यपि अब भी कम नहीं है, तो भी पुरातत्त्वज्ञ विद्वानोंका अनुमान है कि, वह पूर्व समयमें इससे भी बहुत था–अपार था । संस्कृतका प्रचार धीरे २ कम हो जानेसे और विविध विषयके सैकडों ग्रन्थोंके लुप्त हो जानेसे वह बहुत मामूली रह गया है ।

इस समय संस्कृतभाषामें जो शब्दसमूह पाया जाता है, उसके रक्षण और पोषणमें कोश ग्रन्थकारोंने प्रधान सहायता पहुचाई है और आज जब कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं है, इन्हीं कोशकारोंकी कृपासे हम संस्कृत ग्रन्थोंका अध्ययन तथा परिशीलन कर सकते हैं ।

संस्कृतमें काव्यसाहित्य अलंकारादि ग्रन्थोंके समान कोश ग्रन्थ भी बहुत हैं । डा० भांडारकर महाशयने अमरकोषकी भूमिकामें कोश ग्रन्थोंकी एक विस्तृत सूची प्रकाशित की है । परन्तु खेद है कि, अभी तक उनमेंसे बहुत ही थोड़े ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं । कई वर्ष पहिले बम्बईके निर्णयसागर प्रेससे एक अभिधानसंग्रह नामका सेरीज छपना प्रारंभ हुआ था और उससे आशा हुई थी कि, संस्कृतका कोशसमूह धीरे २ प्रकाशित हो जायगा, परन्तु दुर्भाग्यसे दो ही भाग प्रकाशित हुए, और कोई भाग

प्रकाशित नहीं हुआ और तबसे अब तक इस विषयमें कहींसे कोई प्रयत्न हुआ सुनाई नहीं पडा। हमारी समझमें संस्कृत साहित्यको सुपुष्ट सुस्पष्ट और विभवशाली बनानेके लिये कोशग्रन्थोंके प्रकाशित होनेकी बहुत बडी आवश्यकता है, इसलिये संस्कृत साहित्यके उपासकोंको इस विषयमें फिर प्रयत्न करना चाहिये।

यह विश्वलोचन वा मुक्तावली कोश उक्त आवश्यकताकी ही यत्किञ्चित् पूर्ति करनेके लिये प्रकाश किया जाता है। इसकी एक प्रति ईडर (महीकांठा) के सुप्रसिद्ध सरस्वती भवनसे प्राप्त हुई थी। इसकी उत्तमता और अन्य कोशग्रन्थोंसे जो इसमें विलक्षणता है, उसे देखकर प्रसिद्ध विद्याप्रचारक **सेठ रामचन्द नाथाजी** (नाथारंगजीवाले) ने इसके प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रगट की और साथ ही श्रीयुक्त **पं० धन्नालालजी काशलीवाल, पं० पन्नालालजी बाकलीवाल और नाथूराम प्रेमी** आदिकी सम्मतिसे आपने यह भी चाहा कि, इसकी भाषाटीका भी हो जाय, तो भाषा जाननेवालोंको भी इससे लाभ पहुचे। तदनुसार सेठजीने इस ग्रन्थके संशोधनका तथा भाषाटीकाका कार्य मुझे सौंपा और मैंने अपनी शक्तिके अनुसार इसे सम्पादन करके आपके सम्मुख उपस्थित किया है। जब ईडरकी एक प्रतिसे इसके संशोधनका कार्य न चल सका, नानाप्रकारकी कठिनाइयां उपस्थित होने लगीं, तब एक प्रति सरस्वतीभवन आरासे, और दो प्रतियां **पं० जवाहिरलालजी शास्त्रीके** द्वारा जयपुरके किन्हीं दो भंडारोंसे मगाई गईं। इस तरह इन चार प्रतियोंसे इस ग्रन्थका सम्पादन किया गया है। इनमें जयपुरकी एक प्रति औरोंकी अपेक्षा विशेष शुद्ध थी। इसके संशोधन कार्यमें मुझे जो परिश्रम पडा है, उसका अनुभव वे पाठक अच्छी तरहसे कर सकेंगे, जो इसको ध्यानपूर्वक देखेंगे और इस बातसे परिचित होंगे कि, एक अप्रकाशित अपरिचित ग्रन्थका सम्पादन करना और ऐसे प्रतियोंपरसे जो कि बहुत ही अशुद्ध हों, कितना कठिन कार्य है। मैं यह स्वीकार करता हू कि, मेरी बुद्धिके प्रमादसे अब भी इसमें बहुतसी अशुद्धियां रह गई होंगी और

उनके लिये मैं पाठकोंसे क्षमा भी चाहता हूं, तो भी इतना कहे विना नहीं रहूंगा कि, मैंने इसमें परिश्रम करनेमें कमी नहीं की है।

इस ग्रन्थके रचयिता श्रीधरसेन नामके जैन विद्वान हैं। इनके गुरुका नाम श्रीमुनिसेन था, जो कि सेनसंघके आचार्य थे और बड़े भारी कवि तथा नैयायिक थे। दिगम्बर सम्प्रदायके मुनियोंके जो चार संघ हैं, सेन उनमेंसे एक है। श्रीधरसेन नानाशास्त्रोंके पारगामी विद्वान् थे और बड़े २ राजा लोग उनपर श्रद्धा रखते थे। वे काव्यशास्त्रके मर्मज्ञ तथा कवि भी थे। उन्होंने नाना कवियोंके रचे हुए कोशोंसे तथा ग्रन्थोंसे संग्रह करके इस यथार्थतया विश्वलोचन कोशकी रचना की है। इन सब बातोंका परिचय इस कोशकी प्रशस्तिके निम्न लिखित श्लोकोंसे मिलता है:—

सेनान्वये सकलसत्त्वसमर्पितश्रीः
श्रीमानजायत कविर्मुनिसेननामा।
आन्वीक्षिकी सकलशास्त्रमयी च विद्या
यस्यास वादपदवी न दवीयसी स्यात् ॥ १ ॥
तस्मादभूदखिलवाङ्मयपारदृश्वा
विश्वासपात्रमवनीतलनायकानाम्।
श्रीश्रीधरः सकलसत्कविगुम्फितत्त्व-
पीयूषपानकृतनिर्जरभारतीकः ॥ २ ॥
तस्यातिशायिनि कवेः पथि जागरूक-
धीलोचनस्य गुरुशासनलोचनस्य।
नानाकवीन्द्ररचितानभिधानकोशा-
नाकृष्य लोचनमिवायमदीपि कोशः ॥ ३ ॥
साहित्यकर्मकवितागमजागरूकै-
रालोकितः पदविदां च पुरे निवासी।

वर्त्मन्यधीत्य मिलितः प्रतिभान्वितानां
चेदस्ति दुर्जनवचो रहितं तदानीम् ॥ ४ ॥

यत्नो मयायमनपायमशेषविद्या
विद्याधरीपरिवृढस्य मतौ नियोक्तुम् ।
त्यक्त्वा पुनर्विमलकौस्तुभरत्नमन्यो
लक्ष्मीविनोदरसिको रसिकोस्ति धन्यः ॥ ५ ॥

नागेन्द्रसंग्रथितकोशसमुद्रमध्ये
नानाकवीन्द्रमुखशुक्तिसमुद्भवेयम् ।
विद्वद्ग्रहादमरनिर्मितपट्टसूत्रे
मुक्तावली विरचिता हृदि संनिधातुम् ॥ ६ ॥

वीतरागस्य सुरभेर्यशःकुसुमशालिनः ।
श्रितोस्मि चरणस्थानं यः पुंनागत्वमागतः ॥ ७ ॥

श्रीधरसेनाचार्य किस समयमें हुए हैं, इस बातका पता न तो इस प्रशस्तिसे लगता है और न किसी अन्य ग्रन्थसे । हमने इस विषयमें जो सामान्य प्रयत्न किया था, उसमें हमें सफलता प्राप्त नहीं हुई । परन्तु यदि कोई ऐतिहासिक पंडित इन महानुभाव कोशकारका समयनिर्णय करनेका तथा इनके अन्यान्य ग्रन्थोंके पता लगानेका परिश्रम उठावेंगे, तो उन्हें अवश्य सफलता होगी ।

'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' नामक पुस्तकसे मालूम होता है कि, जैनियोंमें श्रीधर, श्रीधरसेन आदि नामके कई विद्वान् हो गये हैं और उनके बनाये हुए श्रुतावतार, भविष्यदत्तचरित्र, नागकुमार कथा आदि कई ग्रन्थ हैं, परन्तु उक्त ग्रन्थोंके देखे विना यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि, वे इन श्रीधरसेनसे पृथक् हैं अथवा यही हैं ।

यह नानार्थकोश है। संस्कृतमें कई नानार्थकोश हैं, परन्तु जहां तक हम जानते हैं, कोई भी इतना बडा और इतने अधिक अर्थोंको बतलानेवाला नहीं है। इसमें एक २ शब्दको जितने अर्थोंका वाचक बतलाया है, दूसरोंमें इससे प्रायः कम ही बतलाया है। उदाहरणके लिये एक 'रुचक' शब्दको ही लीजिये। जहां अमरमें चार, मेदिनीमें दश इसके अर्थ बतलाये हैं, तहां इसमें १२ अर्थ बतलाये हैं। यही इस कोशमें विशेषता है।

यथा—

एरण्ड उरुबूकश्च रुचकश्चित्रकश्च सः।

अमरकोश द्वितीयकाण्ड वनौषधिवर्ग श्लोकांक ५१.

फलपूरो बीजपूरो रुचको मातुलुङ्गके।

अमरकोश द्वितीयकाण्ड वनौषधिवर्ग श्लोकांक ७८.

सौवर्चलेऽक्षरुचके। अमरकोश द्वितीयकाण्ड वैश्यवर्ग श्लोकाक ४३.

सौवर्चलं स्याद्रुचकम्। अमरकोश द्वितीयकाण्ड वैश्यवर्ग श्लोकाक १०९.

रुचको बीजपूरे च निष्के दन्तकपोतयोः।
न द्वयोः सर्जिकाक्षारे पश्वाभरणमाल्ययोः।
सौवर्चलेऽपि माङ्गल्यद्रव्ये चाप्युत्कटेपि च।

मेदिनीकोश कत्रिक श्लोकांक १४६–१४७.

रुचकं मातुलद्रव्ये दन्ते सौवर्चले स्रजि।
उत्कटे चाश्वभूषायां विडङ्गे कण्ठभूषणे॥
बीजपूरेऽपि दीनारे रोचनादेववृक्षयोः।

विश्वलोचनकोश कतृतीय श्लोकांक १४६–४७.

आशा है कि, विद्वज्जन निष्पक्षदृष्टिसे इस ग्रन्थके महत्त्वको समझकर लाभ उठावेंगे और इसके प्रचार करनेका प्रयत्न कर मेरे और प्रकाशक-महाशयके परिश्रम तथा अर्थव्ययको सफल करेंगे। अलमतिविस्तरेण प्राज्ञेषु।

बम्बई
ता० १५ मई १९१२.

नन्दलाल शर्मा।



श्रीपरमात्मने नमः ।

कविपण्डित-श्रीश्रीधरसेन-विरचितः

# विश्वलोचनकोशः ।

## ( मुक्तावली )



मंगलाचरणम् ।

जयति भगवानास्तां धर्मः प्रसीदतु भारती
वहतु जगती प्रेमोद्गारं तरन्त्वशुभं जनाः ।
अयमपि मम श्रेयान्गुम्फस्तनोतु मनोमुदं
किमधिकमितस्त्यक्तावेगा भवन्तु विपश्चितः ॥ १ ॥

परिभाषा ।

स्वरकादिक्रमादादिर्निर्णीतोऽन्तश्च कादिभिः ।
द्वितीयेऽप्यत्र वर्णेऽपि नियमः काद्यनुक्रमात् ॥ २ ॥

---

ग्रन्थकर्ताका मंगलाचरण ।

भगवान जिनेन्द्रदेव जयवन्त वर्तते हैं, धर्म स्थित रहे, सरस्वती प्रसन्न हो, पृथ्वी प्रसन्नताको धारण करे, जन अशुभ ( पाप ) रहित हों, और यह मेरा ग्रंथ सबको आनंद देनेवाला हो, और यहा अधिक क्या कहूँ विद्वान वेगोंके त्यागनेवाले अर्थात् निराकुल हो ॥ १ ॥

## अथ कान्तवर्गः ।

### ककम् ।

को ब्रह्मानिलसूर्याग्नियमात्मद्योतबर्हिषु ।
कं सुखे वारि शीर्षे च कुः शब्दे ना भुवि स्त्रियाम् ॥ ३ ॥

### कद्वितीयम् ।

अकं दुःखाघयोरङ्को रेखायां चिह्नलक्ष्मणोः ।
नाटकादिपरिच्छेदोत्सङ्गयोरपि रूपके ॥ ४ ॥
चित्रयुद्धेऽन्तिके मन्तौ स्थानभूषणयोरपि ।
अर्कः सूर्येऽर्कपर्णेऽपि शक्रे स्फटिकताम्रयोः ॥ ५ ॥
एकस्तु स्यात्त्रिषु श्रेष्ठे केवलेतरयोरपि ।
कंकः खगे लोहपृष्ठे कृतान्ते कपटद्विजे ॥ ६ ॥

---

### परिभाषार्थ ।

इस ग्रन्थमें स्वर वर्ण और ककार आदि वर्णके क्रमसे आदि (शब्दोंकी आदि) निर्णय की गई है और अत भी ककार आदिसे निर्णय कियागया है जैसे कि–"को ब्रह्माऽनिलसूर्याऽग्नि–" और दूसरे वर्णविषे भी काकार आदिके क्रमका नियम कियागया है जैसे कि–"अकं दु खाऽघयोरङ्को रेखाया चिह्नलक्ष्मणो·"॥२॥

**कैक ।**

क–ब्रह्मा, वायु, सूर्य, अग्नि, धर्मराज, आत्मा, प्रकाश, मयूरपक्षी (पुलिंग)
क–सुख, जल, मस्तक, ( नपुंसक )
कु–शब्द, ( पुं० ) कु–पृथ्वी, ( स्त्रीलिंग ) ॥ ३ ॥

**कद्वितीय ।**

अक–दु ख, पाप, ( न० ) ॥ ४ ॥
अंक–रेखा, चिह्न, लक्षण, नाटक आदि ग्रंथका विश्रामस्थल, गोद, रूपक, सङ्ख्या, चित्रयुद्ध, समीप, अपराध, स्थान, भूषण, ( पुं० )
अर्क–सूर्य, आकका पत्ता, इंद्र, स्फटिकमणि, तावा, ( पुं० ) ॥ ५ ॥
एक–श्रेष्ठ, केवल ( अद्वितीय ), इतर ( दूसरा ), ( त्रिलिंगी )
कंक–काकविशेष, धर्मराज, कपटसे बना हुआ ब्राह्मण, (पु० )॥६॥

कर्कः कर्केतने वह्नौ श्वेताश्वे मुकुरे घटे ।
कल्कोऽस्त्री पापविट्किट्टदोषदम्भबिभीतके ॥ ७ ॥
पापाश्रयेऽपि काकस्तु वायसे पीठसर्पिणि ।
शिरोवक्षालने धृष्टे मानद्वीपद्रुमान्तरे ॥ ८ ॥
काका स्यात्काकजंघायां काकोलीकाकनासयोः ।
काकमाचीकाकतुण्डीमलपूरक्तिकासु च ॥ ९ ॥
काकं काकसमूहे स्यात्स्त्रीणां च रतबन्धने ।
किष्कुर्वितस्तौ हस्ते च प्रकोष्ठे कुत्सिते पुमान् ॥ १० ॥
कोकश्चक्रे वृके ज्येष्ठ्यां खर्जूरीभेकविष्णुषु ।
छेकस्तु गृहसंसक्तविश्वस्तमृगपक्षिणोः ॥ ११ ॥
नागरे त्रिषु वक्रे च टङ्कोऽस्त्री ग्रावदारणे ।
टङ्कणे ग्रावभित्तौ च मानभेदाऽभिधानयोः ॥ १२ ॥

---

कर्क–रत्नविशेष, अग्नि, श्वेतअश्व, दर्पण, घट, ( पुं० )

कल्क–पाप, विष्ठा, किट्ट (खलीआदि) दोष, दंभ, बहेडा ॥ ७ ॥ पापी, ( पुं० न० )

काक–काक, पीठसर्पिन् (खंजता लंगडा) शिरका धोना, धृष्टपुरुष, प्रमाण (तोल), द्वीप, वृक्षविशेष (पुं०)॥८॥

काका–गुंजावृक्ष, काकोली, विकंटकवृक्ष, मकोय, काकादनी, कठूमरवृक्ष गुजा, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

काक–काकसमूह, स्त्रियोंका रतबंधन, ( न० )

किष्कु–वालिस्तप्रमाण, हस्तप्रमाण, पहुँचा, निन्दित, (पुं०) ॥ १० ॥

कोक–चकवा, भेडिया, मुलहटी, खजूरवृक्ष, मेंडक, विष्णु, ( पुं० )

छेक–घरमें पालाहुआ मृग, और पक्षी, ( पुं० ) ॥ ११ ॥

नगरमे होनेवाला विदग्ध पुरुष, टेढा पुरुषआदि, ( त्रि० ) ।

टंक–पत्थरको फोडनेवाला औजार, सुहागा, पत्थरकी भीत, प्रमाण तोलविशेष, नाम ॥ १२ ॥

कपित्थान्तरजङ्घाऽसिकोपकोपखनित्रके ।
तर्कः काङ्क्षावितर्कोहे कर्मशास्त्रप्रभेदयोः ॥ १३ ॥
तोकं त्वपत्ये पुत्रे च तोका दुहितरि स्त्रियाम् ।
त्रिका कूपस्य नेमौ स्यात्रिकं पृष्ठधरे त्रये ॥ १४ ॥
द्विकः स्याच्चक्रवाकेऽपि नाके काकेऽपि संमतः ।
नाकुः पुंसि मुनेर्भेदे नाकुर्वल्मीकशैलयोः ॥ १५ ॥
नाकः स्वर्गेऽन्तरिक्षे च निष्कोऽस्त्री हेमकर्षयोः ।
अष्टाधिकस्वर्णशते वक्षोऽलङ्करणे पले ॥ १६ ॥
हेम्नः पलेऽपि दीनारे न्यङ्कुर्भेपे मुनौ मृगे ।
पङ्कोऽस्त्री कर्दमे पापे पाकस्तु पवने शिशौ ॥ १७ ॥
पाको जरापरीपाके स्थाल्यादौ क्लेदनिष्ठयो. ।
वकः कङ्के शिवमह्यां रक्षोभेदकुबेरयोः ॥ १८ ॥

---

नीला कैथवृक्ष, ( पु० न० ) पिंडुली, ( स्त्री० ) खड्ग, खजाना, खोदनेका औजार, ( पु० न० ) ।
तर्क-इच्छा, विशेषतर्ककरना, खंडनमंडन, कर्म, न्यायशास्त्र, (पुं०)॥१३
तोक-सतानमात्र, पुत्र, ( न० ) तोका पुत्री ( स्त्री० )
त्रिका-कूएका चाक, (स्त्री०) पीठमें नीचेका अस्थि, ३ सख्या (न०) १४
द्विक-चकवा, २संख्या, काकपक्षी, (पुं०)
नाकु-मुनिविशेष, सर्पकी बाँबी, पर्वत, ( पु० ) ॥ १५ ॥
नाक-स्वर्ग, आकाश, ( पु० )
निष्क-सुवर्ण, दोतोले परिमाण, एकसौ आठ स्वर्ण ( दोसौ सोलह तोलापरिमाण) सुवर्णका सिक्का, हृदयका आभूषण, चारतोलापरिमाण ( पु० न० ) ॥ १६ ॥
न्यंकु-मत्स्यविशेष, एकमुनि, मृग, ( पु० )
पंक-कीच, पाप, ( पु० न० )
पाक-वायु, शिशु ( बालक ) ॥१७॥ वृद्धपना, वरतनमें अन्नकी खुरचन, स्थिति, ( पु० ) ।
वक-काकविशेष पक्षी, गूमा-औषध, वकनामक राक्षस, कुबेर, ( पु० ) ॥ १८ ॥

वङ्कस्तु पुंसि नद्यादिभङ्गपर्याणभागयोः ।
भङ्गुरे वाच्यवद्वङ्को वल्कं वल्कलखण्डयोः ॥ १९ ॥
भूकश्छिद्रेऽवकाशे च भेको मण्डूकमेघयोः ।
मुष्कोऽण्डकोशे वृन्दे च मुष्को मोक्षकशाखिनि ॥ २० ॥
मूकस्त्ववाग्गतो दीने रङ्कः कृपणमन्दयोः ।
अथ राका दृष्टरजःकन्यायां सरिदन्तरे ॥ २१ ॥
पूर्णेन्दुपूर्णिमायां च कच्छूरोगेऽपि दृश्यते ।
रेको विरेके शङ्कायामधमे त्वभिधेयवत् ॥ २२ ॥
रोकं दत्त्वा क्रये रन्ध्रे नावि रोकस्तु रोचिषि ।
लङ्का रक्षःपुरे शाखाकुलटाशाकिनीष्वपि ॥ २३ ॥
लोको जनेऽपि भुवने स्यादवाप्तु विलोकने ।
शङ्कुः कीले शिवे सङ्ख्यायादोऽस्त्रभिदि किल्बिषे ॥ २४ ॥

---

वंक–नदीआदिका वाकापना, अश्वके जीनका भाग, ( पु० ) नष्टहोनेवालीवस्तु ( त्रि० )

वल्क–वृक्षका छिलका, टुकड़ा (न०) ॥ १९ ॥

भूक–छिद्र, पोल, ( पु० )

भेक–मेंडक, मेघ, ( पुं० )

मुष्क–अंडकोश, समूह, मोखा (कठपाडर)वृक्ष ( पुं० ) ॥ २० ॥

मूक–गूँगा, दीन, ( पु० )

रंक–कृपण, मन्द, ( पुं० )

राका–रजस्वला कन्या, नदीका मध्यभाग, ॥ २१ ॥

पूर्णचन्द्रमावाली पूर्णिमा, खर्जू रोग, ( स्त्री० )

रेक–दस्तलगना, शंका, ( पु० ) नीच ( त्रि० ) ॥ २२ ॥

रोक–द्रव्यदेकर खरीदना, छिद्र, नौका ( न० ) दीप्तिःप्रकाश ( पु० )

लंका–राक्षसपुरी, वृक्षशाखा, कुलटा स्त्री, शाकिनी, ( स्त्री० ) ॥ २३ ॥

लोक–जन, भुवन, अवलोकन-देखना ( पुं० ) ।

शंकु–काष्ठआदिका कीला, महादेव, एक गिन्ती, जलजन्तु, अस्त्रविशेष, पाप, ( पु० ) ॥ २४ ॥

शङ्का त्रासे वितर्के च शल्कं शकलवल्कयोः ।
चूर्णे शाकस्तु शक्तौ स्याद्वृक्षद्वीपनृपान्तरे ॥ २५ ॥
शाकं हरितके क्लीबे पत्रपुष्पफलादिके ।
शुकः कीरे व्यासपुत्रे रावणस्य च मन्त्रिणि ॥ २६ ॥
शुकं तु ग्रन्थिपर्णे स्याच्छिरीषे शोणकेऽपि च ।
शुल्कं घट्टादिदेयेऽस्त्री जामातुरपि बन्धके ॥ २७ ॥
शूकः स्यादनुकम्पायां शूकः शुङ्गेऽपि पुंस्ययम् ।
शोकः स्याच्छुभसङ्घाते स्त्रीणां च करणान्तरे ॥ २८ ॥
श्लोको यशसि पद्ये स्यादुपहास उपात्परः ।
सूको वातोत्पलशरे स्तोकः स्याच्चातकाल्पयो. ॥ २९ ॥

कतृतीयम् ।

अणुको निपुणेऽल्पेऽस्त्री त्वनीकं रणसैन्ययोः ।
अनूकं शीलकुलयोरनूकं गतजन्मनि ॥ ३० ॥

---

शंका—त्रास, विशेषतर्क, ( स्त्री० )
शल्क—टुकडा, वृक्षका छिलका, चूना, ( न० )
शाक—शक्ति, एकप्रकारका वृक्ष, एक द्वीप, एक राजा, ( पु० ) ॥२५॥
हरितशाक, पत्र, पुष्प, फल आदि (न०)
शुक—सूवा पक्षी, व्यासपुत्र, रावणका मन्त्री, ( पु० ) ॥ २६ ॥
शुक—गठिवन नामक वृक्ष, सिरस वृक्ष, सोनापाठा—वृक्ष ( न० )
शुल्क—घाटआदिपर देनेका कर, जामाताको देनेका दायजा (न०) ॥२७॥
शूक—दया, बडकावृक्ष, ( पु० ) ।
शोक किसीवस्तुकी हानिआदिसे दुःख, स्त्रियोंके चित्तका व्यापार विशेष २८
श्लोक—यश, छन्दोबद्धकविता, और उपउपसर्गसेपरे उपश्लोक—उपहास अर्थात् ठट्ठा ( पु० )
सूक—वायु, कमल, बाण, ( पुं० )
स्तोक—पपीहा—पक्षी, ( पुं० ) अल्प ( त्रि० ) ॥ २९ ॥

कतृतीय ।

अणुक—निपुण, अल्प, ( पु०न० )
अनीक—रण, सेना, ( न० )
अनूक—शील, कुल, वदीतहुवा जन्म ( न० ) ॥ ३० ॥

अन्तिकं निकटे चुल्ल्यामन्तिका शातलौषधौ ।
नाट्योक्तौ चांतिका ज्येष्ठभगिन्यां परिकीर्तिता ॥ ३१ ॥
अन्धिका कैतवे सिद्धे शर्वर्यामन्धयोषिति ।
अभीको निर्भयक्रूरकविकामिषु वाच्यवत् ॥ ३२ ॥
अम्बिका पार्वती पाण्डुजननीजननीष्वपि ।
तिन्तिडीकाचुक्रिकयोरम्लोद्गारेपि चाऽम्लिका ॥ ३३ ॥
अर्भकस्तु मतो डिम्भे मूर्खे भ्रूणे कृशेपि च ।
कुबेरस्यालका पुर्यामलकश्चूर्णकुन्तले ॥ ३४ ॥
अलर्को धवलार्के स्याद्योगोन्मत्तककुक्कुरे ।
अलीकं त्रिदिवे क्लीबं मिथ्यायामाप्रिये त्रिषु ॥ ३५ ॥
अशोको वञ्जुले माने द्रुमेऽशोकं तु पारदे ।
अशोका कटुरोहिण्यां शोकशून्ये तु वाच्यवत् ॥ ३६ ॥

---

अन्तिक (का)—समीप, चूल्हा, (न० ) थूहरवृक्षका भेद, नाट्यमें, बडी बहन ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥

अन्धिका—कपट, सिद्ध, रात्रि, अन्धी स्त्री, ( स्त्री० )

अभीक—भयरहित, क्रूर, कवि, कामी-पुरुष ( त्रि० ) ॥ ३२ ॥

अम्बिका—पार्वती, पांडुराजाकी माता, माता, ( स्त्री० )

अम्लिका—अमली, चूका शाक, खट्टी डकार, ( स्त्री० ) ॥ ३३ ॥

अर्भक—बालक, मूर्ख, गर्भ, दुबला, ( पुं० )

अलका—कुबेरकी पुरी, ( स्त्री० )

अलक—डेढे केश-जुल्फें ( पुं० ) ॥ ३४ ॥

अलर्क—सफेद आकका वृक्ष, प्रयोगसे किया बावला कुत्ता, ( पु० )

अलीक—स्वर्ग, ( न० ) असत्य, लंबाई, अप्रिय, ( त्रि० ) ॥ ३५ ॥

अशोक—अशोक-वृक्ष, परिमाणभेद, तिनिश ( तिवस ) वृक्ष, ( पु० ) पारा ( न० )

अशोका—कटुरोहिणी, ( स्त्री० ) शोकरहित ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥

आढको मानभेदेऽस्त्री तुवर्यामाढकी स्मृता ।
आतङ्को रोगसन्तापशङ्कासु मुरजध्वनौ ॥ ३७ ॥
आनकः पटहे भेर्यां मृदङ्गे ध्वनदम्बुदे ।
आलोको दर्शनेऽपि स्यादुद्योते वंदिभाषणे ॥ ३८ ॥
आह्निकं दिननिर्वर्त्त्ये भोजने नित्यकर्मणि ।
इक्ष्वाकुः कटुतुम्ब्यां स्त्री सूर्यान्वयनृपे पुमान् ॥ ३९ ॥
उदर्क एष्यत्कालीयफले मदनकण्टके ।
उलूकः पेचके शक्रे कुरुयोधेऽपि सम्मतः ॥ ४० ॥
उष्णकस्त्वातुरे तप्ते क्षिप्रकारिनिदाघयोः ।
उष्ट्रिका मृत्तिकाभाण्डभेदे करभयोषिति ॥ ४१ ॥
ऊर्मिका त्वङ्गुलीये स्यात्तरङ्गे मधुपध्वनौ ।
ऊर्मिका वस्त्रभङ्गेऽपि तथोद्बाहुलकेऽपि च ॥ ४२ ॥

---

आढक—२५६ तोलेका परिमाण,(पु०)
आढकी—अरहर ( स्त्री० ) ।
आतंक—रोग, सन्ताप, शंका, मृदंगका शब्द ( पु० ) ॥ ३७ ॥
आनक—ढोल, भेरी, मृदङ्ग, गर्जता-हुवा मेघ ( पु० )
आलोक—दर्शन, देखना, प्रकाश, वंदिजनोंकरके विरद कहना, (पु०) ॥ ३८ ॥
आह्निक—दिनभरका किया कर्म, भोजन, नित्यकर्म, ( न० )
इक्ष्वाकु—कडवी तूंबी, ( स्त्री ) सूर्य वंशमें होनेवाला एकराजा ( पुं० ) ॥ ३९ ॥
उदर्क—अगाडी होनेवाला फल, ओषधि विशेष, ( पुं० )
उलूक—उल्लू पक्षी, इन्द्र, कुरुदलमें होनेवाला एक योधा (पुं०) ॥ ४० ॥
उष्णक—आतुर, तप्तहुवा, शीघ्रता करनेवाला, ग्रीष्म ऋतु, ( पुं० )
उष्ट्रिका—मृत्तिकापात्रविशेष, ऊँटनी, ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥
ऊर्मिका—अगूठी,तरग,भौंरोंका शब्द, वस्त्रखंड, वस्त्ररचनाविशेष, भुजा उठानेवाला, ( स्त्री ) ॥ ४२ ॥

अंशुकं सूक्ष्मवसने वस्त्रमात्रोत्तरीययोः ।
कञ्चुकः कवचे वाणवारे निर्मोकचोलके ॥ ४३ ॥

हर्षादाप्ताङ्गवस्त्रे च कञ्चुकी त्वौपधान्तरे ।
कटकोऽस्त्री राजधान्यां सानौ सेनानितम्बयोः ॥ ४४ ॥

वलये सिन्धुलवणे दन्तिदन्तविभूषणे ।
कटुकं कटुरोहिण्यां व्योषेऽपि कटुमात्रके ॥ ४५ ॥

कटाकुस्तु दुराधर्षे दुःशीले ना विलेशये ।
गोधूमचूर्णे कणिकः स्त्रियां सूक्ष्माऽग्निमन्थयोः ॥ ४६ ॥

कण्टकोऽस्त्री द्रुमाङ्गेऽथ दूपके कर्णिदूषके ।
रोमाञ्चे क्षुद्रशत्रौ च मारौ मीनादिकीकसे ॥ ४७ ॥

कनकं हेम्नि धत्तूरे चम्पके नागकेसरे ।
किंशुके काञ्चनारे च कालीयेऽपि क्वचिन्मत ॥ ४८ ॥

---

अंशुक–वारीक वस्त्र, वस्त्रमात्र, दुपट्टा, (न०)

कंचुक–कवच, वाणोंको निवारणकरनेवाला द्रव्य, सर्पकी काचली, अगरखा (वस्त्र) की हर्षसे प्राप्तहुए वस्त्रवाला, (पुं०) ॥ ४३ ॥

कंचुकि–न् औषधिविशेष (पुं०) ४४

कटक–राजधानी, पर्वतशिखर, सेना, नितम्ब (चूँतड़), कंगन, समुद्रनमक, हाथीदाँतका आभूषण (पुं०)

कटुक–कटुरोहिणी, सूंठ–मिरच–पीपल, कडवी ओषधी मात्र (न०) ४५

कुटाकु–तेजस्वी, दुःशील, सर्प, (पुं०)

कणिक–गेहूँका आटा, (पुं०) सूक्ष्ममात्र, अरणी (अगेथू) वृक्ष, (पुं०) ॥ ४६ ॥

कण्टक–वृक्षका काटा, दूपक पुरुष, कर्णिदूषक रोग, रोमाच, तुच्छ शत्रु, मारीरोग, मच्छी आदिकी हड्डी, (न०) ॥ ४७ ॥

कनक–सुवर्ण, धतूरा, चम्पा, नागकेसर, केसू पुष्प, कचनार, और यकृत् रोग, यह कहीं कहीं, माना है (न०) ॥ ४८ ॥

करकोऽस्त्री करङ्के स्यात्कुण्ड्यां चाथ पुमान्खगे ।
कुसुम्भे दाडिमे हस्ते करका तु घनोपले ॥ ४९ ॥
करङ्कः सस्यसन्त्यक्तनालिकेरास्थिमस्तके ।
कर्णिका कर्णभूषायां गुवाकादिच्छटांशके ॥ ५० ॥
करिहस्ताग्रभागे च करमध्याङ्गुलावपि ।
नलिनीबीजकोशे च कुट्टिन्यामपि कुत्रचित् ॥ ५१ ॥
कलङ्कोऽङ्के कालायसमले दोषाऽपवादयोः ।
कावृकः कुकवाकौ स्यात्पीतमस्तककोकयोः ॥ ५२ ॥
कामुकः कामिनि ख्यातोऽशोकवृक्षाऽतिमुक्तयोः ।
कारकः कर्तरि ज्ञेयः कर्मादौ कारकं मतम् ॥ ५३ ॥
कारिका विवृतिश्लोके यातनायां कृतावपि ।
नटस्त्रियां नापितादिशिल्पे कर्त्र्यां च कारिका ॥ ५४ ॥

---

करक—माथेकी खोपरी, कूँडी या कमंडलु, ( पुं० न० ) पक्षिविशेष, कसुंभा अनार, हाथ, ( पु० )
करका—ओला ( स्त्री० ) ॥ ४९ ॥
करंक—कबन डाठला, नालीरकी डोहरी, मस्तककी खोपरी ( पुं० )
कर्णिका—कर्णका आभूषण, सुपारी आदिका टुकडा ॥ ५० ॥
हाथीकीसूँडका अग्रभाग, मध्यमा-अगुली, कुमोदनीका बीजकोश, कुट्टिनी स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ५१ ॥
कलङ्क—चिह्न, लोहेका मल, दोष, निन्दा, ( पुं० )
कावृक—मुरगा पक्षी, पीतमस्तक पक्षी (कावरी), चकवा पक्षी ( पुं० ) ॥ ५२ ॥
कामुक—कामी पुरुष, अशोक वृक्ष, माधवीलता, ( पुं० )
कारक—कुछभी करनेवाला पुरुष, (पुं०) कर्मआदि कारक ( न० )६ ॥५३॥
कारिका—व्याख्याकरनेवाला—श्लोक, पीडा, कृति, नटकी स्त्री, नाईआदिकी कारीगरी, कुछभी करनेवाली स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ५४ ॥

वंशे ना कार्मुकं चापे कर्मशक्ते तु कार्मुकं त्रिषु ।
कालिका चण्डिकायां स्याद्योगिनीभेदकाण्ययोः ॥
पश्चाद्दातव्यमूल्ये च पटोलकलतान्तरे ।
रोमालीधूमरीमांसीकाकीवृश्चिकपत्रके ॥ ५६ ॥
घनावलावलं धूमप्रभेदे नवनीरदे ।
किम्पाकस्तु महाकालफले मूर्खे च कीचकः ॥ ५७ ॥
दैत्येवातध्वनिध्वंसे शुष्कवंशे द्रुमान्तरे ।
कीटकः कृमिजातौ स्यान्निष्ठुरेऽपि च कीटकः ॥ ५८ ॥
कुलकस्तु कुलश्रेष्ठे वल्मीके काकतिन्दुके ।
कुलकं श्लोकसम्बद्धगुच्छकेऽपि पटोलके ॥ ५९ ॥
कुलिको नागभेदे स्यात्कुलश्रेष्ठे द्रुमान्तरे ।
कुशिकस्तु मुनौ तैलशेषे सर्जे कलिद्रुमे ॥ ६० ॥

---

कार्मुक–वाँसका वृक्ष, धनुष (पु०) कर्ममें समर्थ, (त्रि०)

कालिका–चंडिका देवी, योगिनी विशेष, कालापना ॥ ५५ ॥

पीछे दियाजानेवाला वस्तुका मूल्य, परवलकी वेल, रोमावली, एक किन्नरी, जटामांसी-औषधी, कागन मक्षी, वीछूका डंक, ॥ ५६ ॥ मेघावली, धूमविशेष, नवीनमेघ, (स्त्री०),

किम्पाक–बडेकालका फल, मूर्ख, । (पुं०) ॥ ५७ ॥

कीचक–दैत्यविशेष, वायुसे उखाडाहुवा और वाजताहुवा सूखा वास, वृक्षविशेष, (पुं०) ।

कीटक–कृमिजाति, कठोर, (पुं०)५८

कुलक–कुलमें श्रेष्ठ पुरुष, वॉवी, मकरतेंदुवानामक वृक्षविशेष, (पु०) श्लोकसंबद्धगुच्छा, परवल, (न०) ॥ ५९ ॥

कुलिक–नागविशेष, कुलमें श्रेष्ठ, वृक्षभेद (तालमखाना) (पुं)

कुशिक–मुनि, तेलकी वँची खलीआदि शालवृक्ष, वहेडावृक्ष, (पुं०) ॥६०॥

कृषाकु मर्कटे भानौ बृहद्भानौ पुमांस्त्रिषु ।
परोत्तापिन्यपि मतं कूर्चिका सूचिकान्तरे ॥ ६१ ॥
तूलिका क्षीरविकृतिकुञ्चिकाकुड्मलेषु च ।
कूपको गुणवृक्षे स्यात्तैलपात्रे कुकुन्दरे ॥ ६२ ॥
कूपे जलस्थग्रावादौ स्याच्च तुर्या तु कूपिका ।
कूलकः पुंसि वल्मीके स्तूपेऽस्त्री कूलकं तटे ॥ ६३ ॥
कृषकः कर्षके पुंसि फालेऽपि कृषके पुमान् ।
पारदारकरक्तेऽपि निःस्वेऽपि त्रिषु कञ्चुकः ॥ ६४ ॥
कोरकः कुड्मले न स्त्री कक्कोलकमृणालयोः ।
कोशाङ्कस्तु करीरे स्यादिक्षौ कीटान्तरेऽपि च ॥ ६५ ॥
कौतुकं त्वभिलाषेऽपि कुसुमे नर्महर्षयोः ।
परम्परासमायाते मङ्गले चातिशायिनि ॥ ६६ ॥

---

कृषाकु–बन्दर, सूर्य, अग्नि, (पुं०) दूसरोंको कष्टदेनेवाला (त्रि०)

कूर्चिका–सूईभेद ॥ ६१ ॥ चित्र-खेंचनेकी कलम,दुग्धविकार(मलाई), चाबी, कुड्मल (फूलकली)( स्त्री० )

कूपक–नावका खंभा, तेलका पात्र ( कूँपा ), नितंबों ( चूतडों ) में पडाहुवा खड्डा, कूवाँ, जलमें स्थित पत्थरआदि, ( पुं० )

कूपिका–कपडा बुननेका औजार ( स्त्री० ) ॥ ६२ ॥

कूलक–बँबी ( पुं० ) मिट्टीका समूह, ( पुं० न० ) नदीआदिका तट ( न० ) ॥ ६३ ॥

कृषक–खेंचनेवाला पुरुष, खेतीकर-नेवाला, हलकी फाल, परस्त्रीमें आसक्त ( पु० )

कञ्चुक–द्रव्यरहित ( त्रि० ) ॥ ६४ ॥

कोरक–बिनाखिली फूलकी कली, कंकोलवृक्ष, कमल ( पुं० न० )

कोशाङ्क–कैरका वृक्ष, ईख,कीटविशेष, ( पुं० ) ॥ ६५ ॥

कौतुक–अभिलाषा,पुष्प,ठट्ठाके वचन, आनंद, परपरासे प्राप्तहुवा मंगल, अतिशय ॥ ६६ ॥

विवाहसूत्रे विषयाभोगकाले समुत्सवे ।
कौशिको गुग्गुलूलूकनकुलेष्वहितुण्डिके ॥ ६७ ॥
इन्द्रे च विश्वामित्रे च कोशज्ञे चाथ कौशिकी ।
चण्डिकायां नदीभेदे क्रमुको भद्रमुस्तके ॥ ६८ ॥
गुवाकपट्टिकालोध्रकार्पासब्रह्मदारुषु ।
खट्टिकः सौनिकेऽपि स्यान्माहिषक्षीरफेनके ॥ ६९ ॥
खनकश्चित्ततत्त्वज्ञे सन्धिचौरेऽवदारके ।
मूषके खुल्लकस्तु स्यात्स्वल्पे नीचे कनीयसि ॥ ७० ॥
खोलकः पाकवल्मीकपूगकोशे शिरस्त्रके ।
गणिका यूथिकावेश्यातर्कारीकरिणीष्वपि ॥ ७१ ॥
अग्निमन्थेऽपि गणिका दैवज्ञे गणकः पुमान् ।
गण्डकः खड्गिनि ख्यातः सङ्ख्याविद्याप्रभेदयोः ॥ ७२ ॥

---

विवाहसूत्र, विषयोंके भोगनेका काल, उत्सव, ( न० )
कौशिक—गूगलवृक्ष, उल्लूपक्षी, नौला, सर्पपकड़नेवाला, ॥ ६७ ॥ इन्द्र, विश्वामित्रऋषि, कोश ( खजाना ) का जाननेवाला ( पुं० )
कौशिकी—चण्डिका ( देवी ), नदी-भेद, ( स्त्री० )
क्रमुक—भद्रमोथा—वृक्ष (पुं० ) ॥६८॥ सुपारी वृक्ष, लाललोध, साधारण-लोध, स्त्रियोंकी कञ्चुकी, तूलवृक्ष, (पुं०)
खट्टिक—कसाई, भैंसका दूधके झाग, ( पुं० ) ॥ ६९ ॥
खनक—चित्तके तत्त्वको जाननेवाला, सन्धि (सुरंग) लगानेवाला चोर, खोदनेका औजार, मूसा, ( पु० )
खुल्लक—स्वल्प, नीच, बहुतछोटा, ( पुं० ) ॥ ७० ॥
खोलक—पाक, बाँबी, सुपारीफल, शिरस्त्र, ( पुं० )
गणिका—जूही झाड़, वेश्या, खासन-टाहाकल वृक्ष, हथिनी, ॥ ७१ ॥ अरणीवृक्ष, ( स्त्री )
गणक—ज्योतिषी ( पुं० )
गण्डक—गैंडा, सङ्ख्याविशेष, विद्या-विशेष, ( पुं० ) ॥ ७२ ॥

गुह्यको गोपिते यक्षे गृह्यकश्छेकनिघ्नयोः ।
गैरिकं धातुभेदे स्याद्धातुमात्रे च काञ्चने ॥ ७३ ॥
गोरङ्कः पक्षिजातौ च नग्नके श्रुतिपाठके ।
गोलको मणिके जाराद्विधवातनये गुडे ॥ ७४ ॥
ग्रन्थिकस्तु करीरे स्याद्दैवज्ञे गुग्गुलुद्रुमे ।
माद्रेयेऽप्यद्वयोर्ग्रन्थिपर्णीपिप्पलिमूलयोः ॥ ७५ ॥
ग्राहको घातिविहगे ग्रहीतरि तु वाच्यवत् ।
चटकः कलविंकः स्यात्तत्पुत्रीयोषितोः स्त्रियाम् ॥ ७६ ॥
चतुष्की मशकहर्यौ यष्टिकावेश्मभेदयोः ।
चुलुकः प्रसृतौ च स्याच्चुलुका भाजनान्तरे ॥ ७७ ॥
चषकोऽस्त्री पानपात्रे मधुमद्यप्रभेदयोः ।
चारकः पालकेऽश्वादेः स्यात्सञ्चारकबन्धयोः ॥ ७८ ॥

---

गुह्यक—रक्षाकियाहुवा, यक्ष—देवयोनि, ( पुं० )

गृह्यक—पालाहुवा पक्षीआदि, अधीन पुरुषआदि ( पुं० )

गैरिक—धातुभेद ( गेरु ), धातुमात्र, सुवर्ण, ( न० ) ॥ ७३ ॥

गोरङ्क—पक्षिविशेष, नंगापुरुष, बंदीजनका पढना, ( पुं० )

गोलक—गोला, जारसे उत्पन्नहुवा विधवाका पुत्र, गुड, (पुं०)॥७४॥

ग्रन्थिक—कैरवृक्ष, ज्योतिषी, गूगलवृक्ष, माद्रीका पुत्र, ( पुं० )ग्रन्थिपर्णी ( गाडरदूब ), पीपलामूल, ( न० ) ॥ ७५ ॥

ग्राहक—पक्षी मारनेवाला पक्षी, (पुं०) सर्प आदिकोंका पकडनेवाला (त्रि०)

चटक—चिडापक्षी, ( पुं० )

चटिका चिडाकी पुत्री और स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ७६ ॥

चतुष्की—मसैरी—पलंगपरताननेकी, छडी, एकप्रकारका पत्थर (स्त्री०)

चुलुक—प्रसृति ( पस्सो ) ( पुं० )

चुलुका—पात्रविशेष (स्त्री०) ॥ ७७ ॥

चषक—जलआदिपीनेका पात्र(प्याला), शहद, मदिराभेद, ( पु० )

चारक—घोडा आदिका चरानेवाला, राजाका गुप्तदूत,—सचारकरनेवाला, बन्ध, ( पुं० ) ॥ ७८ ॥

चित्रकं तिलके क्लीबं वह्निसंज्ञेतु चित्रकः ।
एरण्डे चालवाले च चित्रकः श्वापदान्तरे ॥ ७९ ॥
चीरको विक्रियालेखे झिल्लिकायां तु चीरिका ।
चुम्बकः कामुके धूर्ते बहुविद्योपजीवने ॥ ८० ॥
मतः पुंस्येव चुलुकः प्रसृते भाजनान्तरे ।
चुलुकी शिशुमारे स्यात्कुण्डीभेदे कुलान्तरे ॥ ८१ ॥
चूतकोऽन्धौ रसाले च कपिपूर्वः कपीतने ।
चूलिका नाटकाङ्गे स्यात्कर्णमूले च हस्तिनाम् ॥ ८२ ॥
जतुकाऽजिनपत्रायां जतुकं हिङ्गुलाक्षयोः ।
जनकः ज्ञातराजर्षौ जनकः करणान्तरे ॥ ८३ ॥
जम्बुकः फेरवेऽपि स्यान्नीचे पश्चिमदिक्पतौ ।
जालकः कोरके दम्भप्रभेदे जालिनीफले ॥ ८४ ॥
गिरिसारे जलौकायां जालिका विधिवत्स्त्रियाम् ।
भटानामश्मरचिताङ्गरक्षिण्यां च जालिका ॥ ८५ ॥

---

चित्रक–तिलकविशेष, ( न० ) चीता ( ओषधि ), अरण्डवृक्ष, थाँवला, चीता ( सिंहभेद ) (पुं०) ॥ ७९ ॥
चीरक–विकारलेखन ( पुं० )
चीरिका–भंभीरी–प्राणी (स्त्री०)
चुम्बक–कामीपुरुष, धूर्त, बहुविद्योपजीवी, ( पु० ) ॥ ८० ॥
चुलुक–पस्सो, पात्रविशेष, ( पुं० )
चुलुकी–शिशुमार–जलजन्तु, कुंटीभेद, कुलविशेष ( स्त्री० )॥ ८१ ॥
चूतक–कूवां, आम कपि शब्दसे परे कपिचूतक–अँवाडा ( पु० )
चूलिका–नाटकका एक अंग, हस्तियोंका कर्णमूल (स्त्री०) ॥ ८२ ॥
जतुका–चमगीदड पक्षी ( वाघल ), ( स्त्री० )
जतुक–हींग, लाख, ( न० )
जनक–ज्ञानकियापुरुष, एकराजा, करण, ( पुं० ) ॥ ८३ ॥
जम्बुक–गीदड, नीचपुरुष, वरुण, ( पुं० )
जालक–पुष्पकी बिनाखिलीहुई कली, दम्भविशेष, छोटी तोरईके बीज, ॥८४॥ लोहा या राँग, जोक, (पुं)
जालिका–पत्थरकी बनाई हुई जोधाओंकी अंगरक्षिणी, (स्त्री०) ॥ ८५ ॥

जाहको घोङ्कमार्जारखजाकातुण्डिकासु च ।
जीवको वृक्षभेदे स्यात्प्राणकेऽप्यहितुण्डिके ॥ ८६ ॥

पीतशाले क्षपणके वृद्धिजीविनि सेवके ।
जीविकामाहुराजीवे जीवन्त्यामपि जीविका ॥ ८७ ॥

झिल्लीका झिल्लिकाऽप्येव विलेपनमले स्मृतः ।
चीरिकायामपि भवेदातपस्य च रोचिषि ॥ ८८ ॥

टुच्छको गन्धकुट्यां स्याद्व्यवहाराऽभ्यवकाशके ।
टुण्टुकः शोणकेऽल्पे च क्रूरके त्वभिधेयवत् ॥ ८९ ॥

डिण्डिको नम्रके दार्थे स्त्रीचोरे तु रतात्पर. ।
डिम्बिका जलविम्बे स्यात्कोणके कामुकस्त्रियाम् ॥ ९० ॥

तण्डकोऽस्त्री तरुस्कन्धे समासप्रायवाचिके ।
गृहदारौ पुमांस्तु स्या त्फेनखंजनमायिषु ॥ ९१ ॥

---

जाहक—घोंघ (जाहा), मार्जार, (पु०) कड़छी, कन्दूरी—औषधि, ( स्त्री )

जीवक—जीवक—वृक्ष, जिवानेवाला, सर्प पकड़नेवाला, (पु० ) ॥८६॥ पीला सालका वृक्ष, जैनमुनि, बडी आयुवाला, सेवक, ( पुं० )

जीविका—आजीवन, गिलोय-वेल, ( स्त्री० ) ॥ ८७ ॥

झिल्लि ( ल्ली ) का—भँभीरी-प्राणी-विशेष, विलेपनमल, धूपकी दीप्ति, (स्त्री०) ॥ ८८ ॥

टुच्छक—मुरानामक गंधद्रव्य, व्यवहार, अवकाश, ( पु० )

टुण्टुक—सोना—वृक्ष, अल्प, ( पु० ) क्रूर, ( त्रि० ) ॥ ८९ ॥

डिण्डिक—वदीजन, स्त्रीरत,
रतडिंडिक—स्त्रीचोर ( पु० )

डिम्बिका—जलविंब, वीणाआदिवाजा वजानेका गज, रति इच्छावाली स्त्री, (स्त्री० ) ॥ ९० ॥

तण्डक—वृक्षस्कन्ध, समासप्रायवाची, घरका वृक्ष, झाग, खजन-पक्षी, मायावी—पुरुष, ( पु० ) ॥ ९१ ॥

तर्ककः काङ्क्षिणि ख्यातस्तर्केऽर्के गृध्रपक्षिणि ।
तक्षको नागभेदे स्याद्वर्द्धकिद्रुमभेदयोः ॥ ९२ ॥
तारको दैत्यभित्कर्णधारयोर्दृशि तारकम् ।
ऋक्षे कनीनिकायां च तारकं तारिकाऽपि च ॥ ९३ ॥
तिलकं द्रुमभेदे च रोगे च तिलकालके ।
क्लीबं सौवर्चले क्लोम्नि ललामेऽस्त्री तु चित्रके ॥ ९४ ॥
तुलकः तुलकायां स्यात्तथा दधिकपक्षिणि ।
तुरुष्कः सिह्लके म्लेच्छभेदस्त्रीवासयोरपि ॥ ९५ ॥
तूलिका चित्रविन्यासलेखन्यां तूलतल्पयोः ।
त्रिशंकुर्नृपभेदेऽपि शलभे वृषदंशके ॥ ९६ ॥
दर्शकस्तु प्रतीहारे दर्शयितृप्रवीणयोः ।
दारको भेदकेऽपत्ये कूपके तु विपूर्वकः ॥ ९७ ॥

---

तर्कक–इच्छावाला, तर्क, सूर्य, गृध्र–पक्षी, ( पु० )
तक्षक–नागभेद, बढई, वृक्षभेद ( पु० ) ॥ ९२ ॥
ता ( रिका ) रक–एकदैत्य, नावको चलानेवाला(पु०) नेत्र,(न०)नक्षत्र, नेत्रतारा, ( न०स्त्री० ) ॥ ९३ ॥
तिलक–वृक्षभेद ( तिल ), रोग, शरीरपर तिलका श्यामचिह्न, (न०) कालानोंन, फुप्फुस, श्रेष्ठ, स्त्रियोंका तिलकविशेष ( पुं० न० ) ९४
तुलक–तुली, दधिक ( पक्षिविशेष ) ( पु० )
तुरुष्क–हींग, म्लेच्छजाति, स्त्रियोंका निवासस्थान,( पु० ) ॥ ९५ ॥
तूलिका–चित्रखेंचनेकी कलम, रूई, शय्या, ( स्त्री० )
त्रिशंकु–एकराजा, टीडी, बिलाव ( पु० ) ॥ ९६ ॥
दर्शक–पौलिया मनुष्य, कुछभी दिखानेवाला, चतुर, ( पुं० )
दारक–फाडनेवाला, सन्तान,
विदारक–नदीसूखनेपर जलकेलिये खोदाहुवा खड्डा, ( पु० ) ॥९७॥

दीपको वागलङ्कारे प्रदीपे दीप्तिकारके ।
दीप्यकं त्वजमोदे स्याद्यवानीवर्हिचूडयोः ॥ ९८ ॥
दूपिका लोचनमले तूलिकायां च दूपिका ।
द्रावकस्तु शिलाभेदे विदग्धे चोपकेऽपि च ॥ ९९ ॥
धनिकः साधुधान्याकधवेषु धनिका स्त्रियाम् ।
धावको जवके राजगतिकर्मणि योगिनि ॥ १०० ॥
धेनुका तु भवेद्धेनौ करिपत्नीप्रसूतयोः ।
धेनुकं करणे स्त्रीणां धेनुवृन्देऽपि धेनुकम् ॥ १०१ ॥
नग्नको वन्दिनि ग्रन्थे नग्ने गौर्यां तु नग्निका ।
नन्दको हरिखड्गेऽपि हर्षके कुलपालके ॥ १०२ ॥
नरको निरयेऽपि स्यान्नरको दानवान्तरे ।
नर्तकः पोटगलके चारणे केलके नटे ॥ १०३ ॥

---

दीपक—वाणीका अलकार ( दीपक नामक), दीपक, प्रकाश करनेवाला ( पुं० )

दीप्यक—अजमोद-औपधि, अजवायन, मोरकी चोटी (न०) ॥९८॥

दूपिका—नेत्रमल,शय्यासाधन, (स्त्री०)

द्रावक—शिलाभेद, चतुर, तोरई ( पुं० ) ॥ ९९ ॥

धनि ( का )क—साधुजन, धनिया, स्वामी, (पु०) धनिका स्त्री, (स्त्री०)

धावक—शीघ्रचलनेवाला, राजाकी गति कर्मवाला, योगी, ( पु० )१००

धेनुका—गौ, हथिनी, प्रसूतिका स्त्री, ( स्त्री० )

धेनुक—स्त्रियोंका उपस्करण, गौवोंका समूह, ( न० ) ॥ १०१ ॥

नग्नक—वंदीजन,ग्रन्थ,नगापुरुप,(पु०)

नग्निका—कन्या ( स्त्री० )

नन्दक—विष्णुका खड्ग, आनंददाता, कुलकी रक्षाकरनेवाला(पु०)॥१०२॥

नरक—नरक-लोक, नरकनामक दानव, ( पु० )

नर्तक—नड या देवनल, चारण-जाति, केला-वृक्ष, नट, (पु०) ॥ १०३ ॥

नर्तकी लासिकायां स्यात्करिण्यामपि नर्तकी ।
नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपि ॥ १०४ ॥

नालीकः पिण्डजेऽप्यज्ञे नालीकः शरशल्ययोः ।
नालीकं पद्मखण्डेऽपि नाडीकं सरसीरुहे ॥ १०५ ॥

निपाकः पवने स्वेदेऽप्यसत्कर्मफलेऽपि च ।
निर्मोको व्योम्नि सन्नाहे मोचने सर्पकञ्चुके ॥ १०६ ॥

वारकोऽश्वे महामात्ये हस्तिसङ्घट्टेऽपि नीटकः ।
नीलिका नीलिकीक्षुद्ररोगसेफालिकासु च ॥ १०७ ॥

पताका स्याद्वैजयन्त्यां सौभाग्येङ्कध्वजेऽपि च ।
पद्मकं पद्मकोशेऽपि करिबिन्दुषु पङ्कजे ॥ १०८ ॥

पराको व्रतमात्रेऽपि पराकः शयकेऽपि च ।
उभौ पर्यङ्कपल्यङ्कौ बृष्यां पर्यस्तिखण्डयोः ॥ १०९ ॥

---

नर्तकी–नृत्यकरनेवाली–स्त्री, हस्तिनी, ( स्त्री० )
नायक–प्रेरणाकरनेवाला–पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष, हारकेबीचकी मणि ( पुं० ) ॥ १०४ ॥
नालीक–पिंडसे उत्पन्न होनेवाला, मूर्ख,
नालीक–बाण, शल्य (भाला) (पु०)
नालीक–कमलसमूह, ( न० )
नाडीक–कमल, (न०) ॥ १०५ ॥
निपाक–वायु, पसीना, खोटाकर्मका फल ( पुं० )
निर्मोक–आकाश, कवच, छोडना, सर्पकी काँचुली ॥ १०६ ॥ रोकनेवाला अश्व, बडामंत्री, ( पु )
नीटक हस्तियुद्ध ( पु० )
नीलिका–नीलवडी–वृक्ष, क्षुद्ररोग, निर्गुण्डीवृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ १०७ ॥
पताका–इन्द्रकी ध्वजा, सौभाग्य, नाटकका अंग, ध्वजा–मात्र, ( स्त्री० )
पद्मक–कमलकोश, हस्तीका शरीरके बिन्दु, कमल, ( न० ) ॥१०८॥
पराक–व्रतमात्र, सोनेवाला ( पुं० )
पर्यंक–पल्यंक–शय्या, चटाई, बिछौना, टुकडा ( पुं० ) ॥१०९॥

पार्श्वद्वारि सपक्षे च पक्षे पार्श्वे च पक्षकः ।
पाटकस्तु महाकिष्कौ वाद्येऽपि कटकान्तरे ॥ ११० ॥
अक्षादिचालने मूलद्रव्यापचयकूलयो. ।
पातुकः पतयालौ स्यात्प्रपाते जलहस्तिनि ॥ १११ ॥
पालंकः शाकभेदेऽपि शल्लकीवाजिपक्षिणि ।
पावकोऽग्नौ सदाचारे भल्लातकवितङ्कयोः ॥ ११२ ॥
चित्रकेऽप्यग्निमन्थेऽपि त्रिषु पाचनकारिणि ।
पिण्याकः शिह्लके हिङ्गौ तिलकल्केऽपि कुङ्कुमे ॥ ११३ ॥
पिनाको हरकोदण्डे शूलेऽस्त्री पांसुवर्षणे ।
पिष्टको यवधान्यादिचमसे चक्षुषो रुजि ॥ ११४ ॥
पुत्रकः शरभे पुत्रे धूर्ते वृक्षनगान्तरे ।
पुत्रिका पुत्तलीपुत्र्योस्तथा यावकतूलिके ॥ ११५ ॥

---

पक्षक—पसवाडाका दरवाजा, पक्षवाला, पक्ष, पसवाडा, ( पुं० )

पाटक—हस्तप्रमाण, बाजा, कङ्कणभेद ॥ ११० ॥ पाशा आदिका डालना, मूलद्रव्यका खर्च, नदीके किनारे (पु०

पातुक—पडनेकेस्वभाववाला, पर्वतमें गिरनेका स्थान, जलहस्ती, ( पु० ) ॥ १११ ॥

पालंक—पालक नामका शाक, सेह-प्राणी, बाज पक्षी, ( पुं० )

पावक—अग्नि, सदाचार, भिलावा, वितङ्क वृक्ष, ॥ ११२ ॥ चीता औषधि, अरहू या अगेथु—वृक्ष, ( पु० ) पाचक औषधि ( त्रि० )

पिण्याक—गन्धद्रव्यविशेष (शिलारस), हींग, तिलोंकी खली, केसर, ( पु० ) ॥ ११३ ॥

पिनाक—महादेवका धनुष, त्रिशूल, (पुं० न० ) धूलिउडानेवाला (त्रि०)

पिष्टक—यवधान्यआदिका चमस ( अग्निमें होमनेका द्रव्य ), नेत्ररोग, ( पुं० ) ॥ ११४ ॥

पुत्रक—रोझ—पशु, पुत्र, धूर्त, वृक्षविशेष, पर्वतविशेष, ( पु० )

पुत्रिका—पूतली—काष्ठआदिकी, पुत्री, जौकी तुली ( नाली ), ( स्त्री० ) ॥ ११५ ॥

पुलकः कृमिभेदे स्यान्मणिदोषे शिलान्तरे ।
गजान्नपिण्डे रोमाञ्चे गल्वर्कहरितालयोः ॥ ११६ ॥
पुलाकस्तुच्छधान्ये स्यात्संक्षेपे भक्तशिक्थके ।
पुष्पकं तु कुवेरस्य विमाने रत्नकङ्कणे ॥ ११७ ॥
नेत्ररोगे च कासीसे चीरिकाया रसाञ्जने ।
मृदङ्गारशकट्या च लोहकास्ये च पुष्पकम् ॥ ११८ ॥
पूर्णकः स्वर्णचूडे स्यान्नासच्छित्त्या च पूर्णिका ।
पृथुकश्चिपिटे बाले पृदाकुस्तु सरीसृपे ॥ ११९ ॥
पृदाकुर्वृश्चिकेऽपि स्याद्व्याघ्रचित्रकयोरपि ।
उलूके गजलाङ्गूलमूलप्रान्तेऽपि पेचकः ॥ १२० ॥
पेटकोऽस्त्री पुस्तकादेर्मञ्जूषायां कदम्बके ।
प्रतीकः प्रतिकूले त्रिष्वेकदेशविलोमयोः ॥ १२१ ॥
प्रमादेऽवयवे चाथ प्रसेकः सेचने च्युतौ ।
प्राणकः सत्त्वजातीये वोलके जीवकद्रुमे ॥ १२२ ॥

---

पुलक–कृमिविशेष, मणिदोष, एकप्रकारका पत्थर, हस्तीके अन्नका पिंड, रोमाच, मद्यपानपात्र, हरिताल (पुं०) ॥ ११६ ॥
पुलाक–तुच्छधान्य, सक्षेप, भातका माँड, (पुं०)
पुष्पक कुवेरका विमान, रत्नजटितकङ्कण, (न०) ॥ ११७ ॥ नेत्ररोग, कासीस, भँभीरी–प्राणी, रसोत, मिट्टीकी सिगडी, लोहा, कांसी–धातु (न०) ॥ ११८ ॥
पूर्णक–कावरी–पक्षी, (पुं० )
पूर्णिका–नाकछिदावाली, ( स्त्री० )
पृथुक–चूडा–धानका, वालक, (पु०)
पृदाकु–सर्प, ॥ ११९ ॥ वीछू, वघेरा, चीता, (पु० )।
पेचक–उल्लू–पक्षी, हस्तीकी पूँछका मूलभाग, ( पुं० ) ॥१२० ॥
पेटक–पुस्तकआदिकोकी सन्दूक, समूह, (पु० न० )
प्रतीक–प्रतिकूल, एकदेश, विलोम (उलटा) ॥ १२१ ॥ प्रमाद, अवयव (अंग) (त्रि० )
प्रसेक–सेचन करना, गिरना, (पु०)
प्राणक–प्राणीमात्र, वोलनामक द्रव्य, जीयापोता–वृक्ष (पु० ) ॥ १२२ ॥

प्रियकस्तु कदम्बे स्यादलिचित्रकुरङ्गयोः ।
प्रियङ्गौ पीतशाले च कुङ्कुमप्रिययोरपि ॥ १२३ ॥
फलकं चित्रविन्यासे पट्टिकाव्रणभेदयोः ।
वराको वाच्यवच्छोच्येऽनुकम्प्ये सङ्गरे पुमान् ॥ १२४ ॥
वसुकः शिवमल्यां स्यादर्कपर्णेऽपि रौमके ।
वहुकोऽर्के कर्कटके दात्यूहे जलखादके ॥ १२५ ॥
वारकोऽश्वविशेषे च गतावपि निषेधके ।
वार्द्धकं वृद्धसंघाते वृद्धत्वे वृद्धकर्मणि ॥ १२६ ॥
वालकोऽग्नौ शिशौ केशे वाजिवारणवालधौ ।
स्याद्वालकं तु ह्रीवेरे पारिहार्याङ्गुलीयके ॥ १२७ ॥
वालिका वालुका वाला पिंछोलाकर्णभूषणे ।
वालुका सिकताऽपि स्याद्वालुकं त्वेलवालुके ॥ १२८ ॥

---

प्रियक—कदंब-वृक्ष भौंरा, चित्रमृग, कंगुनीधान, विजयसार वृक्ष, केसर, प्रियवस्तु ( स्त्री० ) ॥ १२३ ॥

फलक—मुखादिपर चित्रविन्यास, पट्टी-काष्ठआदिकी, व्रणभेद, ( न० )

वराक—शोचकरनेयोग्य ( त्रि० ) दयाकरनेयोग्य, युद्ध ( पुं० )॥१२४॥

वसुक—बडीमौलसिरी, आकके पत्ते, साँभरनमक, ( पुं० )

वहुक—आक, कर्कट-प्राणी, जलकाक, जलखादक-पक्षी ( पु० )॥ १२५॥,

वारक—अश्वविशेष, अश्वकी गतिविशेष, ( पुं० ) रोकनेवाला, ( त्रि० )

वार्द्धक—वृद्धसमूह, वृद्धपना, वृद्धका कर्म, ( न० ) ॥ १२६ ॥

वालक—भिलावाका वृक्ष, वालक, केश, अश्व हस्तीकी पूंछमें मोटाभाग, ( पुं० )

वालक—नेत्रवाला—औषध, पहुँचेका आभूषण, उँगलीका आभूषण, ( न० ) ॥ १२७ ॥

वालिका—वालुका, स्त्री १६ वर्षकी, कडा, कर्णभूषण, ( स्त्री० )

वालुका—वालू-मिट्टी, ( स्त्री० )

वालुक—एलवा—ओषधी, ( न० ) ॥ १२८ ॥

वृश्चिकः शूककीटेऽपि द्रुणे राश्योषधीभिदोः ।
भस्मकं भस्मरोगे स्याद्विडङ्गकलधौतयोः ॥ १२९ ॥

भालाङ्को रोहिते शाकप्रभेदे कच्छपे हरे ।
महालक्षणसम्पूर्णपुरुषे करपत्रके ॥ १३० ॥

स्याद्भूतीकं तु भूनिम्बमालातृणककत्तृणे ।
यवान्यामपि कर्पूरे भूतीकं कट्फलेऽद्वयोः ॥ १३१ ॥

भूमिका रचनायां स्यान्मूर्त्यन्तरपरिग्रहे ।
भ्रामकः फेरवे धूर्ते सूर्यावर्तशिलान्तरे ॥ १३२ ॥

मण्डूको दर्दुरे बन्धप्रभेदे शोणकेऽप्यथ ।
मण्डूकपर्ण्यां मण्डूकी मधुको यष्टिकाह्वये ॥ १३३ ॥

वन्दिपक्षिप्रभेदे च मधुपर्ण्यां स्त्रियामपि ।
मल्लिको मल्लिका चैव राजहंसान्तरे द्वयम् ॥ १३४ ॥

---

वृश्चिक–केचुवा ( कसर ), बीछू, वृश्चिकराशि, ओपधी विशेष,( पु० )

भस्मक–भस्मकरोग, वायविडग, सुवर्ण ( न० ) ॥ १२९ ॥

भालाङ्क–हरीडा–वृक्ष, शाकभेद, कछुवा, महादेव, बडेलक्षणोसे पूर्ण मनुष्य, करौंत (वढईका औजार ) ( पुं० ) ॥ १३० ॥

भूनिम्ब–चिरायता, वचकेसमान जलतृण, सुगन्ध–रौहिसतृण, अजवान, कपूर, कायफल, ( न० ) ॥ १३१ ॥

भूमिका रचना, स्वाँगवनाना,( स्त्री० )

भ्रामक–गीदड, धूर्त, सूर्यावर्त–मणि, शिलाभेद, ( पुं० ) ॥ १३२ ॥

मण्डूक–मेंडक, बन्धविशेष, सोनापाठा, ( पुं० )

मण्डूकी–मण्डूकपर्णी, मुलहटी, (स्त्री०)

मधु( का )क–मुलहटी, ॥ १३३ ॥ वंदीजन, पक्षिविशेष, गिलोय, ( पुं० स्त्री० )

मल्लि ( का ) क–राजहंस, ( पुं० स्त्री० ) ॥ १३४ ॥

मल्लिका तृणशून्येऽपि मीनमृत्पात्रभेदयोः ।
मशकः क्षुद्रजन्तूनां प्रभेदेऽपि गदान्तरे ॥ १३५ ॥
मातृका धात्रिकायां स्यात्करणे मातरि स्वरे ।
मामकं ममतायुक्तं मातृभ्रातरि मामकः ॥ १३६ ॥
मालिका पुष्पमालाया मालिका सरिदन्तरे ।
मालिको गरुडेऽपि स्यान्मालिका कण्ठभूषणे ॥ १३७ ॥
मेचकः श्यामले वर्हिचन्द्रे ध्वान्तेऽथ मेचकम् ।
वाच्यवत्कृष्णवर्णे स्यान्मोचकः कदलीतरौ ॥ १३८ ॥
तत्प्रसूनेऽपि शिग्रौ च निर्मोचकविरागिणोः ।
मोदको न स्त्रिया खाद्यप्रभेदे हर्षकेऽन्यवत् ॥ १३९ ॥
यमकं संयमे शब्दाऽलङ्कारे यमजे त्रिषु ।
याजको यागशीले स्यात्पूजके राजकुञ्जरे ॥ १४० ॥

---

मल्लिका–मल्लिका ( मोगरा ) पुष्प, मच्छी, मिट्टीका पात्रविशेष,( स्त्री० )

मशक–मच्छर, रोगविशेष ( पु० ) ॥ १३५ ॥

मातृका–धाय ( दूधप्यानेवाली ), करण (साधक), माता, वर्णमाला, ( स्त्री० )

मामक–ममतायुक्त द्रव्य, ( त्रि० ) माताका भाई ( मामा ) ( पु० ) ॥ १३६ ॥

मालिका–पुष्पमाला, नदीविशेष, ( स्त्री० )

मालिक–गरुड ( पुं० ) मालिका कंठभूषण (माला) (स्त्री०)॥१३७॥

मेचक–श्यामवर्ण, मोरका चन्दा, ( पुं० ) अन्धकार, ( न० ) कालारंगवाला द्रव्य, ( त्रि० )

मोचक–केला–वृक्ष, ॥ १३८ ॥ केलाका–पुष्प, सहँजना–वृक्ष, छुडानेवाला, विरागी–पुरुष ( पुं० )

मोदक–खाद्यविशेष (लड्डू) (पुं०न०) आनददेनेवाला (त्रि० ) ॥ १३९॥

यमक–शब्दालंकार, ( पुं० ) किसी-द्रव्यका जोडा ( त्रि० )

याजक–यागशील–पुरुष, पूजाकरने-वाला, राजाओंमें श्रेष्ठ, ( पुं० ) ॥ १४० ॥

याज्ञिको याजके दर्भे यज्ञकार्योपजीविनि ।
युतकं यौतके युग्मे चलनाग्रेऽपि संशये ॥ १४१ ॥
वस्त्रान्तरे वधूवस्त्राञ्चले युक्ते तु वाच्यवत् ।
यूथिका तु मता यूथ्यामम्लानकुसुमे क्वचित् ॥ १४२ ॥
रक्तकोऽम्लानबन्धूकरक्तवस्त्रे तु रागिणि ।
रजको धावके पुंसि कीरेऽपि रजकः पुमान् ॥ १४३ ॥
रसिका तु रसालायां काञ्चीरसनयोरपि ।
लेखाकेदारयो राजसर्षपेऽपि च राजिका ॥ १४४ ॥
रात्रकस्तत्र यो वेश्यागृहे गमितवत्सरः ।
रात्रकं पञ्चरात्रेऽथ रुचको मातुलुङ्गके ॥ १४५ ॥
रुचकं मातुलद्रव्ये दन्ते सौवर्चलस्रजि ।
उत्कटे चाश्वभूषायां विडङ्गकण्ठभूषणे ॥ १४६ ॥

---

याज्ञिक–यज्ञकरानेवाला, कुशा, यज्ञकार्यसे आजीवन करनेवाला,( पुं )
युतक–वरवधूके देनेको वस्त्रादि, दो वस्तु ( जोडा ),
स्त्रियोंके उत्तम जघावस्त्रका अग्रभाग सदेह, ॥ १४१ ॥
वस्त्रविशेष, वधूवस्त्रका अंचल, युक्त ( सयुक्त ) ( त्री० )
यूथिका–जूही–वृक्ष, अच्छाखिलाहुवा–पुष्प, ( स्त्री० ) ॥ १४२ ॥
रक्तक–काटेदारसेवती,दुपहरिया पुष्प, रक्तवस्त्र, स्नेहकरनेवाला, ( पुं० )
रजक–धोबी, सूवा– ( तोता ) पक्षी, ( पुं० ) ॥ १४३ ॥
रसिका–शिखरन, ऊस– ( गन्ना ), करधनी ( कटिभूषण ), जिह्वा, ( स्त्री० )
राजिका–रेखा ( लकीर ), श्वेत सरसौं, राई. ( स्त्री० ) ॥ १४४ ॥
रात्रक–जो वेश्याके घरमें एक वर्ष रहे वह पुरुष ( पुं० )
रात्रक–पंचरात्र ( ग्रंथविशेष ) (पु०)
रुचक–बिजोरा–वृक्ष ॥ १४५ ॥
धतूरा–झाड, दाँत, कालानमक, सज्जीखार, उत्कट, अश्वकाआभूषण, वायविडंग, कंठभूषण, ॥ १४६ ॥

बीजपूरेऽपि दीनारे रोचनादेववृक्षयोः ।
रुण्डिका रणभूद्वारपिण्डिकादूतिकार्थिका ॥ १४७ ॥
जमदग्निप्रियायां च हरेण्वामपि रेणुका ।
लम्पाकः पुंसि देशे स्याल्लम्पको लम्पटे त्रिषु ॥ १४८ ॥
लासको लसके लास्यकारकेऽपि मयूरके ।
लूनकः स्यात्पशौ भिन्ने लोचको नेत्रतारके ॥ १४९ ॥
मांसपिण्डे च पिण्डे च योषिद्भालविभूषणे ।
कज्जले नीलचोले च मौर्व्यां भ्रूश्लथचर्मणि ॥ १५० ॥
कदल्यां कर्णपूरे च निर्बुद्धिनृषु लोचकः ।
वञ्चकस्तु खले धूर्ते गृहवभ्रौ च फेरवे ॥ १५१ ॥
बन्धकः स्याद्विनिमये वसासत्योस्तु बन्धकी ।
बन्धूकं बन्धुजीवे स्याद्बन्धूकः पीतशालके ॥ १५२ ॥

---

सुवर्णसिक्का, कुंकुम–केसरआदि, देवदार–वृक्ष ( न० )
रुंडिका–रणभूमि, द्वारपिंडी(देहली), दूती, मागनेवाली, (स्त्री०)॥१४७॥
रेणुका–जमदग्निऋषिकी स्त्री, मटर–धान्य, ( स्त्री० )
लम्पाक–देशविशेष ( पु० ) लम्पट, ( त्रि० ) ॥ १४८ ॥
लासक–शोभावान, नृत्यकरनेवाला, मोर, ( पुं० )
लूनक–विदारणकिया पशु, ( पुं० )
लोचक–नेत्रका तारा ॥ १४९ ॥
मांसपिंड, पिंड, स्त्रीकेभालका आभूषण, कज्जल, नीला वस्त्र, धनुषकी प्रत्यंचा, भृकुटीकी ढीली चमडी, ॥ १५० ॥
केला, कर्णका आभूषण, निर्बुद्धि मनुष्य ( पुं० )
वञ्चक–खल ( खोटामनुष्य ), धूर्त मनुष्य, गृहमें पालाहुवा नौला ( प्राणी ), गीदड, ( पुं० ) ॥ १५१ ॥
बन्धक–दोवस्तुवोका बदलाकरना, ( गिरवी ) ( पु० )
बन्धकी–वसा, व्यभिचारिणी स्त्री, ( स्त्री० )
बन्धूक–दुपहरिया पुष्प, ( न० ) पीला सालका वृक्ष (पुं०) ॥१५२॥

वर्तको वर्तिका पक्षिप्रभेदेऽश्वखुरे पुमान् ।
वर्णको बन्दिनि कवौ चारणेऽस्त्री तु वर्णके ॥ १५३ ॥
विलेपनादौ चित्रादौ लिपिमस्यां च चन्दने ।
वर्णिका कठिनीमस्योर्लेखन्यामपि वर्णिका ॥ १५४ ॥
वल्मीको वामलूरे स्यान्मुनिरोगविशेषयोः ।
वार्षिकं त्रायमाणायां वर्षाकालभवेन्यवत् ॥ १५५ ॥
गोवाहके तु वाहीको वाहीको पृक्कदेशजे ।
वाह्लीको वाह्लिकोऽश्वे च देशभेदे हये पुमान् ॥ १५६ ॥
वाह्लीकं वाह्लिकं द्वे च न द्वयोर्हिङ्गुवीरयोः ।
वितर्कः संशयेऽप्यूहे विचारे च कश्चिन्मतः ॥ १५७ ॥
विपाकः परिणामेऽपि खेदे स्वादुनि दुर्गतौ ।
विवेकस्तु विचारे स्याज्जलद्रोण्यां रहस्यपि ॥ १५८ ॥

---

वर्त्तक–घोडेका सुम, ( पुं० )
वर्त्तिका–वत्तख पक्षी, ( स्त्री० )
वर्णक–बंदीजन, कवि, चारण, कालापीलारंग (पुं० न०)॥ १५३ ॥
विलेपनआदि, चित्रआदि, लिखनेकीस्याही, चंदन, ( पुं० न० )
वर्णिका–लिखनेकी खडिया मिट्टी, लिखनेकी स्याही, कलम ( स्त्री० ) ॥ १५४ ॥
वल्मीक–बॉवी, मुनि, रोगविशेष, (पुं० )
वार्षिक–त्रायमाण नामक–औषधि, (न०) वर्षाकालमें होनेवाला द्रव्य, (त्रि०) ॥ १५५ ॥
वाहीक–बैलआदि से बोझा वहनेवाला, पृक्कदेशमें होनेवाला (पुं०)
वाह्ली (ह्लि)क–अश्वभेद, देशभेद, अश्वमात्र, (पुं०) ॥ १५६ ॥
वाह्ली(ह्लि)क–हींग, कालीमिरच, ( न० )
वितर्क–संदेह, खंडनमंडन, विचार ( पुं० ) ॥ १५७ ॥
विपाक–परिणाम फल, खेद, स्वादिष्ठ वस्तु, दुर्गति, (पुं०)
विवेक–विचार, जलका बडा पात्र, एकात, (पुं०) ॥ १५८ ॥

वृषाङ्कः शङ्करे साधौ भल्लातकमहोक्षयोः ।
वैजिकं शिग्रुतैलेऽपि हेतौ सद्योऽङ्कुरेऽपि च ॥ १५९ ॥
व्यलीकं विप्रियाकार्यवैलक्ष्येष्वपि पीडने ।
क्लीबमेव व्यलीकस्तु नागरे वाच्यलिङ्गकः ॥ १६० ॥
शंखकं वलये कंबौ शिरोरोगे च शङ्खकः ।
शम्बुको गजकुम्भान्ते शम्बूकः शुक्तिकान्तरे ॥ १६१ ॥
दैत्यभेदेऽपि शम्बूकः शम्बूका जलशुक्तिषु ।
शलाका तु शरे शल्ये चातपत्राणपञ्जरे ॥ १६२ ॥
तर्कुकाष्ठ्यां च मदने शारिकाश्वाविदोरपि ।
शल्लकी श्वाविद्द्रुमयोः शायकः शरखड्गयोः ॥ १६३ ॥
शार्ककः शर्करापिण्डे दुग्धफेने च शार्ककः ।
शिशुकः शिशुमारे च शिशौ पश्चादुल्लपिनि ॥ १६४ ॥

---

वृषाङ्क—महादेव, साधु, भिलावा, बडाबैल ( साँडबैल ) ( पुं० )
वैजिक—सहँजनेका तैल, हेतु ( कारण ), तत्कालके वृक्षका अकुर ( न० ) ॥ १५९ ॥
व्यलीक—अप्रिय, अकार्य, विलक्षणता, पीडा, (न०) नागर (विदग्धजन ) ( त्रि० ) ॥ १६० ॥
शंखक—कंकण, शंख, (न०) शिरका रोग, (पुं०)
शंबूक—हस्तिकुंभका प्रान्त, शुक्तिका जीव ॥ १६१ ॥ दैत्यभेद, (पुं०)
शंबूका—जलशुक्ति (शंखला) (स्त्री०)
शलाका—बाण, शल्य ( भाला ), छत्र, पिंजरा, ॥ १६२ ॥ चरखा, मैनफल-वृक्ष, मैना-पक्षी, सेह-प्राणी, ( स्त्री० )
शल्लकी—सेह—जीव, वृक्षविशेष ( साल ) ( स्त्री० )
शायक—बाण, खड्ग ( पु० ) ॥१६३॥
शार्कक—शक्करका पीडा, दूधके झाग, ( पु० )
शिशुक—शिशुमार ( मच्छ ), बालक, शिशुमारके आकार मछली (पुं०) ॥ १६४ ॥

शीतकः सुस्थिते शीतकालेऽनागतदर्शिनि ।
शूककः प्रावटमहौ शूककः पारदेऽपि च ॥ १६५ ॥
कृतमालस्तु शम्याकः शम्याकस्तर्कुधृष्टयोः ।
सम्पर्कः स्यान्निधुवने संसर्गे स्पर्शनेऽपि च ॥ १६६ ॥
सरकः स्यादविच्छिन्नपान्थपङ्क्तौ शरे पुमान् ।
अस्त्रियां सीधुपाने च सीधुपात्रे च सीधुनि ॥ १६७ ॥
सस्यको नालिकेरादिसारे खड्गे मणावपि ।
सूचकः खलकाकौतुसूचीषु शुनि बोधके ॥ १६८ ॥
सूतकं जन्मनि क्लीबं सूतकः पारदेऽस्त्रियाम् ।
सृदाकुर्दावकुलिशाऽनिलेषु प्रतिसूर्यके ॥ १६९ ॥
सेचकः सेक्तरि भवे त्रिषु पुंसि तु वारिदे ।
सेवको वल्लकीमान्तवक्रकाष्ठेऽनुजीविनि ॥ १७० ॥

---

शीतक—सुस्थित, शीतकाल, आलसी, ( पुं० )
शूकक—गहरा कुंवाँ, पारा, ( पुं० ) ॥ १६५ ॥
शम्याक—अमलतास वृक्ष, ताकू, धृष्ट पुरुष ( पुं० )
सम्पर्क—मैथुन, ससर्ग, स्पर्श, (पुं०) ॥ १६६ ॥
सरक—चलनेवालोंकी अविच्छिन्न पंक्ति, शर, ( पुं० ) सीधु ( मदिरा या आसव ) का पीना, सीधुका पात्र, सीधु ( आसव ), ( पुं० न० ) ॥ १६७ ॥
सस्यक—नारियल आदिका सार, खड्ग, मणिविशेष ( हरीमणि ) (पुं०)
सूचक—खल ( चुगलखोर मनुष्य), काग, बिलाव, सूवा ( ई ), कुत्ता, सूचना करनेवाला, (पुं०) ॥१६८॥
सूतक—जन्म होना ( न० ) पारा ( पुं० न० )
सृदाकु वनअग्नि, वज्र, वायु, प्रतिसूर्य ( वर्षाकालमे सूर्यकेपास कदाचित् दीखनेवाला सूर्य प्रतिबिंबके सदृश) ( पुं० ) ॥ १६९ ॥
सेचक—सेचनकरनेवाला, भव,(त्रि०) मेघ, ( पु० )
सेवक—वीणाका डेढाकाष्ठ या तूंबा, नौकर, ( पुं० ) ॥ १७० ॥

स्यमीका नीलिकायां स्यात्स्यमीको नाकुवृक्षयोः ।
स्वस्तिको मङ्गलद्रव्ये चतुष्कगृहभेदयोः ॥ १७१ ॥
स्वस्तिकः पिष्टकस्याऽपि प्रभेदे रततालिके ।
स्थासको गन्धवज्ञायां जलादेरपि बुद्बुदे ॥ १७२ ॥
सेनायां समवेतेऽपि सेनारक्षेऽपि सैनिकः ।
हारकस्तु शठे चौरे गद्यविज्ञानभेदयोः ॥ १७३ ॥
हुडुको वाद्यभेदे स्याद्दात्यूहे च मदोत्कटे ।
हेरुको बुद्धभेदेऽपि महाकालगणे तथा ॥ १७४ ॥
क्षारको जालके पक्षिमत्स्यादिपिटकेऽपि च ।
क्षुरकः कोकिलाक्षे स्याद्गोक्षुरे तिलकद्रुमे ॥ १७५ ॥

कचतुर्थम् ।

अस्त्री त्वङ्गारकोऽङ्गारे पुंसि भौमे कुरण्टके ।
अङ्गारिका त्विक्षुकाण्डे तथा किंशुककोरके ॥ १७६ ॥

---

स्यमीका–नीलीका वृक्ष, ( स्त्री० ) वावीं, वृक्ष, ( पुं० )

स्वस्तिक–मंगलद्रव्य, चतुष्क ( आमन ), गृहभेद, ॥ १७१ ॥ पीठी विशेष, रततालिका, ( पु० )

स्थासक–एक प्रकारका आभूषण, जल आदिका बुदबुदा (पुं०) १७२

सैनिक–सेना, मिलाहुवा, सेनाकी रक्षाकरनेवाला, ( पुं० )

हारक–शठ, चोर, गद्य ( काव्य ) विशेष, विज्ञान विशेष, (पुं०)१७३

हुडुक–वाद्यविशेष, जलकाक, मदोन्मत्त, ( पुं० )

हेरुक–बुद्धभेद, महाकालका गण, ( पुं० ) ॥ १७४ ॥

क्षारक–पुष्पकी नवीनकली, पक्षी, मच्छी आदिके पकडनेकी पिटारी ( पुं० )

क्षुरक–तालमखानाके बीज, गोखरू, तिलक वृक्ष ( पु० ) ॥ १७५ ॥

कचतुर्थ ।

अंगारक–आधा जलाहुवाकाष्ठआदि, चिनगारी, ( पुं० न० ) भौमग्रह, कोरटा, ( पुं० )

अंगारिका–ऊस-गन्ना, केसूकी कली, ( स्त्री० ) ॥ १७६ ॥

पुमान(लि)लमको भेके मधुकेऽम्बुजके खरे ।
पिकेऽप्यलिपकस्तु स्यात्पिकालिरतहिण्डके ॥ १७७ ॥
अथाऽश्मन्तकमुद्धाने मल्लिकाच्छदनेऽपि च ।
आकालिकं क्षणध्वंस्यन्यकालकृतसम्भवे ॥ १७८ ॥
आकल्पकस्तमोमोहग्रन्थावुत्कलिकामुदोः ।
विशेप्याखनिकस्तु स्याच्चोरमूषकदंष्ट्रिषु ॥ १७९ ॥
आक्षेपकस्तु पवनव्याधौ व्याधे च निन्दके ।
भवेदुत्कलिका हेलोत्कण्ठासलिलवीचिषु ॥ १८० ॥
एडमूकस्त्रिषु स्यातः शठे वाक्श्रुतिवर्जिते ।
पुनर्नवाकारवेल्लपर्णासेषु कठिल्लकः ॥ १८१ ॥
कनिष्ठाऽङ्गुलिकानेत्रतारयोस्तु कनीनिका ।
कपर्दकस्तु भूतेश जटाजूटे वराटके ॥ १८२ ॥

---

अ(लि)लमक–मेंडक, महुवा-वृक्ष, कमल केसर, ( पुं० )
अलिपक–कोयल-पक्षी, भौंरा, स्त्री-चोर ( पुं० ) ॥ १७७ ॥
अश्मन्तक–चूल्हा, मल्लिकाका पत्ता, ( न० )
आकालिक–क्षणमात्रमे नष्ट होनेवाला, विनासमय होनेवाला ( पुं० ) ॥ १७८ ॥
आकल्पक–तमोगुण, मोह, ग्रन्थि, उत्कंठा (उसेर) (पुं०)
आखनिक–सिसा, खोदनेवाला मनुष्य, चोर, मूसा (चूहा), सूकर ( पुं० )
आक्षेपक–वायु, व्याधि, व्याधा (हिंसक), निंदाकरनेवाला ॥१७९॥
उत्कलिका–क्रीडा, उत्कण्ठा, जलके तरग, (स्त्री०) ॥ १८० ॥
एडमूक–शठ, वाणी और कर्णेन्द्रियसे रहित (गूँगा) (पुं०)
कठिल्लक–सोंठी, करेला, एकशाक या तुलसी (पुं०) ॥ १८१ ॥
कानीनिका–कनिष्ठा (सबसे छोटी) उँगली, नेत्रतारा, (स्त्री०)
कपर्दक–शिवका जटाजूट, कौडी, (पुं०) ॥ १८२ ॥

कर्कोटकः काद्रवेयप्रभेदे श्रीफलेऽपि च ।
कलविङ्को भवेद्ग्रामचटकेऽपि कलिङ्गके ॥ १८३ ॥
काकरूक उलूकेऽश्वे स्त्रीजि तेऽपि दिगम्बरे ।
दम्भेऽपि काकरूकस्तु त्रिषु भीरुदरिद्रयोः ॥ १८४ ॥
कार्पटिकोऽन्यमर्मज्ञे छात्रे स्यात्कालदेशिनि ।
कुरवकः पुंसि शोणझिण्टिकाऽम्लानभेदयोः ॥ १८५ ॥
कृकवाकुस्ताम्रचूडे कृकलासे च केकिनि ।
कोशातकः कचे ज्योत्स्नीपटोल्यां घोषकेऽस्त्रियाम् ॥ १८६ ॥
कौकुट्टिको दाम्भिके स्याददूरप्रेरितेक्षणे ।
कौलेयको भवेदिन्द्रे महाकामिकुलीनयोः ॥ १८७ ॥
ग्रामणीभण्डिनाराचोपधाने तु खरालिकः ।
भवेद्गुणनिकाऽभ्यासे शून्याङ्के पाठनिश्चये ॥ १८८ ॥

---

कर्कोटक—नागविशेष, बिल्वका वृक्ष, (पुं०)
कलविंक—घरमें रहनेवाला चिडा (चिडिया) इन्द्रजव,(पुं) ॥ १८३ ॥
काकरूक—उल्लू-पक्षी, अश्व, स्त्रीसे जीताहुवा मनुष्य,नग्न-मनुष्य, दर्भ, (पुं०) डरपोरजन,दरिद्र-जन (त्रि०) ॥ १८४ ॥
कार्पटिक—अन्यके मर्मको जानने-वाला, विद्यार्थी, समयको बताने-वाला, (पुं०)
कुरवक—भींडी, सोनापाठा,कटसरैया और सेवतीका भेद, (पुं०) ॥ १८५ ॥
कृकवाकु—मुर्गा, किरलकाट (गिर-घट), मोर, (पुं०)
कोशातक—केश, (पु०)कोशातकी परवल, क्षिमनीलता या तोरई, (स्त्री०) ॥ १८६ ॥
कौकुट्टिक—नजदीकसे देखनेवाला मनुष्य, दंभी-मनुष्य, (पुं)
कौलेयक—इन्द्र, महाकामी-पुरुष, उत्तम कुलमें होनेवाला,(पु) १८७
खरालिक—ग्राममें मुख्य-मनुष्य, सिरस-वृक्ष, वाण, तकिया, (पु०)
गुणनिका—अभ्यासकरना,शून्यअंक, पाठका निश्चय, नृत्यकरना, (स्त्री०) ॥ १८८ ॥

नृत्यान्तरे त्वप्यथो गोकण्टको गोक्षुरे पुमान् ।
गवां गमनसम्भूतशुष्कस्थपुटकेऽपि च ॥ १८९ ॥
गोकुणिकः केकरे स्यात्पङ्कस्थगव्युपक्षके ।
गोमेदकः पीतमणौ काकोले पत्रकेऽपि च ॥ १९० ॥
स्मृता घर्घरिका क्षुद्रघण्टिकावाद्यभेदयोः ।
भृष्टधान्ये सरिद्भेदे तथा वादित्रदण्डके ॥ १९१ ॥
चांडालिकौषधीभेदे गौरीकिंदिरयोरपि ॥
जटारुको जलानूके नागयष्टिपटीरयोः ॥ १९२ ॥
जटारुकस्तथाशाखाहरिणेऽपि तुलाधरे ।
जर्जरीकस्त्रिषु भवेद्बहुच्छिद्रे जरातुरे ॥ १९३ ॥
जीवन्तिका तु जीवाख्यशाकवन्दागुडूचिषु ।
जैवातृकः शशिन्यायुष्मति दिव्यौषधे कृशे ॥ १९४ ॥

---

**गोकंटक**–गोखरू औषधि, गौवोंके गमनसे उत्पन्न हुवा और सूखा ऊँचानीचा स्थल, (पुं०) ॥१८९॥

**गोकुणिक**–काणा-मनुष्य, गौके की चमें धसनेपर नहीं निकालनेवाला,

**गोमेदक**–पीलीमणि, या स्थावरकाला विष, काकोली, तेजपात, (पुं०) ॥ १९० ॥

**घर्घरिका**–छोटीघटा, वाद्यविशेष, भूनाहुवा धान्य, नदीविशेष (घाघर), वाद्यका दंड ( दॉडा ) ( स्त्री० ) ॥ १९१ ॥

**चंडालिका**–औषधिविशेष, गौरी, चंडाल वादित्र ( बाजा ) ( स्त्री० )

**जटारुक**–जलके स्वभाववाला, नागके आकार एक वेल, खैरका वृक्ष ॥ १९२ ॥ बन्दर, तराजू धारण करनेवाला, ( पु० )

**जर्जरिक**–बहुत छिद्रोंवाला, बुढापासे व्याकुल ( पुं० ) ॥ १९३ ॥

**जीवन्तिका**–जीयापोता-शाक, अमरवेल, गिलोय, ( स्त्री० )

**जैवातृक**–चंद्रमा, बडी आयुवाला मनुष्य, दिव्य औषध, दुवला-मनुष्य, ( पुं० ) ॥ १९४ ॥

तर्तरीकः पारगे स्यात्तर्तरीकं वहित्रके ।
तिक्तशाकस्तु वरुणे खदिरे पत्रसुंदरे ॥ १९५ ॥

त्रिवर्णकं त्रिकटुके त्रिफलायां च गोक्षुरे ।
दन्दशूकस्तु यक्षे स्याद्दन्दशूको भुजङ्गमे ॥ १९६ ॥

दलाढकः स्वयंजाततिले चाम्पेयकुन्दयोः ।
शिरीषपृश्निकावात्याखातकेषु महत्तरे ॥ १९७ ॥

गैरिके करिकर्णे च फेनेऽग्निकणसंहतौ ।
द्रोणे च कार्यकूटे च क्वचिद्दृष्टो दलाढकः ॥ १९८ ॥

दासेरकस्तु करभे दासीपुत्रेऽपि धीवरे ।
नियामकः पोतवाहे कर्णधारे नियन्तरि ॥ १९९ ॥

निर्ग्रन्थिकस्तु क्षपणे निष्फलेऽप्यपरिच्छदे ।
निश्चारकोऽनले स्वैरे पुरीषस्य क्षयेऽपि च ॥ २०० ॥

---

तर्तरीक-पारपहुंचनेवाला, (पुं०) जहाज आदि (न०)

तिक्तशाक-वरणा, खैर, पत्रसुंदर, (शिमा शाक) (पुं०) ॥ १९५ ॥

त्रिवर्णक-सूँठ-मिरच-पीपल, हरड-बहेडा-आवला, गोखरू, (न० )

दन्दशूक-यक्ष-जाति, सर्प, (पुं० ) ॥ १९६ ॥

दलाढक-स्वयं उत्पन्न हुये तिल, चंपा, कुन्द, सिरस-वृक्ष, पृष्टिपर्णी, वायुसमूह, खोदाहुवा, वहुत बडा, ॥ १९७ ॥ गेरू, हाथीका कान, झाग, अग्निकणोंका समूह, काग-पक्षी, कार्यमे झूट वोलनेवाला, (पुं० ) ॥ १९८ ॥

दासेरक-ऊँट, दासीपुत्र, झीमर-जाति, (पु० )

नियामक-नावसे दुष्टजन्तुओंको व-चानेवाला मल्लाह, नौका चलाने-वाला, प्रेरणाकरनेवाला, (पु० ) ॥ १९९ ॥

निर्ग्रन्थिक-क्षपणक-मुनिभेद, नि-ष्फल, वस्त्रादिसे रहित, (पुं० )

निश्चारक-वायु, यथेच्छ-मनुष्य, विष्ठा का नष्ट होना, (पुं० ) २००

पञ्चालिका भवेद्वस्त्रपुत्रिकागीतभेदयोः ।
पिण्डीतकस्तु तगरे मदनाख्ये फणिज्झके ॥ २०१ ॥
स्तनवृन्ते पिप्पलकः क्लीबं सीवनसूत्रके ।
पुण्डरीकोऽग्निदिङ्नागे व्याघ्रभेदेक्षुभेदयोः ॥ २०२ ॥
पुण्डरीकं सितच्छत्रे सिताम्भोजेऽपि भेषजे ।
पुष्कलको गन्धमृगे कीलके क्षपणेऽपि च ॥ २०३ ॥
क्लीबं पूर्णानकं पूर्णपात्रे पटहपात्रयोः ।
पोतक्यां विचलत्पोताधाने पोतीनकं मतम् ॥ २०४ ॥
प्रकीर्णकं ग्रन्थभेदे प्रशस्ते चामरे हये ।
प्रवर्तकः शराघाते बर्हे पुष्पभुजङ्गयोः ॥ २०५ ॥
फर्फरीकश्चर्पटे स्यात्फर्फरीकं तु मार्दवे ।
वकेरुका बकभिदे वातावर्जितपत्त्रे ॥ २०६ ॥

---

पंचालिका–वस्त्रकी पुतली, गीतभेद, (स्त्री०)
पिंडीतक–तगर-वृक्ष, मैन-वृक्ष, जंभीरीभेद, (पुं०) ॥ २०१ ॥
पिप्पलक–स्तनोंका अग्रभाग, (पु०) सीनेके लिये सूत्र, (न०)
पुंडरीक–अग्निके दिश अंगपाल, व्याघ्रभेद, इक्षु (गन्ना) भेद, (पुं०) ॥ २०२ ॥
पुण्डरीक–सफेदछत्र, सफेदकमल, औषधि, (न०)
पुष्कलक–गन्धमृग, कीला, क्षपण (मुनि) (पुं०) ॥ २०३ ॥
पूर्णानक–पूर्णपात्र, पटह (बाजा), पात्र, (न०)
पोतीनक–पोतकी (शकुनचिड़िया), छोटी मछलियोंवाला कुंड आदि, (न०) ॥ २०४ ॥
प्रकीर्णक–ग्रंथविशेष, श्रेष्ठ, चँवर, अश्व, (न०)
प्रवर्त्तक–बाणका घाव, मोरपंख, पुष्प, सर्प, (पुं०) ॥ २०५ ॥
फर्फरीक–चप्पट, (पुं०) कोमलता न०)
वकेरुका–बकभेद (बटेर-पक्षी), वायुसे हिलायेहुए पत्र (स्त्री०)॥२०६॥

कपर्दरज्जुराजीववीजकोशे वराटकः ।
वरण्डकस्तु मातङ्गवेद्यां यौवनकण्टके ॥ २०७ ॥
तथा संवर्त्तुले वर्त्तरूकस्तु सरिदन्तरे ।
जलावटे काकनीडे दण्डवासिन्यपीष्यते ॥ २०८ ॥
वर्वरीको महाकाले केशविन्यासशाकयोः ।
वलाहको वारिवाहे नागदैत्यान्तरे गिरौ ॥ २०९ ॥
वाणिजिको वणिज्यंके मृगाङ्के कामिनीरते ।
और्वेऽनुरागवाह्ये च मतो वाणिज्यकः पुमान् ॥ २१० ॥
वृन्दारकः सुरे श्रेष्ठे मनोज्ञे यूथघातिनि ।
अथो बृहतिका कण्टकारीवस्त्रान्तरोरुषु ॥ २११ ॥
भट्टारकः सुरे पुंसि क्ष्मापाले च तपोधने ।
भयानकस्तु शार्दूले सैंहिकेये विभीषणे ॥ २१२ ॥

---

वराटक—कौडी, रज्जु, कमलका वीज कोश, (पुं०)

वरण्डक—हस्तीकी वेदी ( वैठनेका ऊँचा स्थान ), जवानीसे मुखपर होनेवाला फोडाविशेष, ॥ २०७ ॥ गोल आकारवाला, (पुं० )

वर्त्तरूक—नदीविशेष, जलका खड्डा, कागका घूँसला, दंडवासी, (पुं०) ॥ २०८ ॥

वर्वरीक—वडा काल, केशरचना, शाकविशेष, (पु० )

वलाहक—मेघ, नागविशेष, दैत्य-विशेष, पर्वत, (पु० ) ॥ २०९ ॥

वाणिजिक—वणिक चिह्न, चन्द्रमा, स्त्रीमें आसक्त, जलका अग्नि, प्रीतिसे वहने योग्य (पुं० ) ॥ २१० ॥

वृन्दारक—देवता, श्रेष्ठ, सुंदर, समूहको मारनेवाला (पु० )

वृहतिका—कटेहली, वस्त्रभेद, ऊरु (जंघा) (स्त्री० ) ॥ २११ ॥

भट्टारक—देवता, राजा, मुनि, (पुं०)
भयानक—व्याघ्र, राहु, भयंकर, (पुं० ) ॥ २१२ ॥

भार्याटिको भवेद्भार्याजिते हरिणान्तरे ।
भ्रमरकोऽस्त्री मधुपे च भाले घूर्णकुन्तले ॥ २१३ ॥
मण्डोदकं चित्तरागे भवेदालिम्पनेऽपि च ।
मतं मण्डलकं बिम्बे कुष्ठभेदे च दर्पणे ॥ २१४ ॥
मयूरकोऽप्यपामार्गे तुत्थके तु मयूरकम् ।
कलनद्धौ मरुवकः पुष्पभेदे फणिज्झके ॥ २१५ ॥
माणवको हारभेदे बाले कुपुरुषे वटौ ।
मृष्टेरुको वदान्ये स्यान्मृष्टाशिन्यतिथिद्विषि ॥ २१६ ॥
रताङ्गिकं सुरताङ्गेऽप्यष्टमङ्गलके दिने ।
राधरङ्कुस्तु ना सीरे शीकरे जलदोपले ॥ २१७ ॥
लतालिकस्तु लाटाख्ये वनकुलौ च पुंस्ययम् ।
लालाटिकः स्यात्करणानेऽप्यालिङ्गनान्तरे ॥ २१८ ॥

---

भार्याटिक-भौंरे जनाहुआ पुरुष, मृगभेद, (पुं०)
भ्रमरक-भौंरा, भौंह, गेंद, घुंघरकेश, (पुं०) ॥ २१३ ॥
मण्डोदक-चित्तराग, लेपनेका द्रव्य (न०)
मण्डलक-प्रतिबिंब, कुष्ठभेद, दर्पण (शीशा) (न०) ॥ २१४ ॥
मयूरक-ओंगा वा चिरचटा, (पुं०) नीलाथोथा, (न०)
मरुवक-मैनफल, वा पतंग, मरुआ पुष्पभेद, वनतुलसी, (पुं०) ॥ २१५ ॥
माणवक-हारभेद, बालक, कुपुरुष, बटो (लौंडा) (पुं०)
मृष्टेरुक-अतिउदार, सौगन्ध अन्न आदि भोजन करनेवाला, अभ्यागतसे द्वेष करनेवाला, (पुं०) ॥ २१६ ॥
रताङ्गिक-सुरताङ्ग, अष्टमंगलक दिन (न०)
राधरङ्कु-सीरचलनेवाला, जलकी फुंवार, ओला, (पुं०) ॥ २१७ ॥
लतालिक-आम्रभेद, हीरा, नागरमोथा (पुं०)
लालाटिक-चित्रभेद, आलिंगनभेद, ॥ २१८ ॥

कार्याक्षमे प्रभोर्भावदर्शिन्यपि तु वाच्यवत् ।
त्रिषु लेखीलको लेखहारे यश्च विलेखयेत् ॥ २१९ ॥
स्वहस्तपरहस्तेन लेखे लेखीलकः स च ।
वितुन्नकं तु धान्याके मतं झाटामलेऽपि च ॥ २२० ॥
विदूषकश्चाटुवटौ परनिन्दाविधायिनि ।
विनायको जिने बुद्धे तार्क्ष्ये हेरम्बविघ्नयोः ॥ २२१ ॥
गुरौ विमानकं तु स्यान्माने शून्येऽभिधेयवत् ।
विमानकं देवयाने सप्तभूमगृहे स्त्रियाम् ॥ २२२ ॥
विशेषकोऽस्त्री तिलके विशेषावाहके द्रुमे ।
वैतालिको बोधकरे खेट्टताले च कीर्त्तितः ॥ २२३ ॥
वैदेहको वाणिजके शूद्राद्वैश्यासुतेऽपि च ।
वैनाशिकस्तु क्षणिके परतन्त्रोर्णनाभयोः ॥ २२४ ॥

---

कार्य करनेमें असमर्थ, ( पुं० ) स्वामीका भाव जाननेवाला (त्रि०)
लेखीलक—लेखको पहुँचानेवाला, ( त्रि० ) अपने तथा दूसरेके हाथसे लिखाहुवा लेखपर लिखनेवाला ( पुं० ) ॥ २१९ ॥
वितुन्नक—धनिया, भुँई आँवला ( न० ) ॥ २२० ॥
विदूषक—मीठा बोलनेवाला लडका, दूसरोंकी निंदा करनेवाला-मनुष्य, ( पुं० )
विनायक—जिन-भगवान्, बुद्ध-भगवान्, गरुड, गणेश, विघ्न, गुरु ( पुं० ) ॥ २२१ ॥
विमानक—देवयान ( विमान ), सात मंजलका मकान, ( पुं० न० ) ॥ २२२ ॥
विशेषक—तिलक, ( पुं० न० ) विशेषता करनेवाला, ( तिलक-वृक्ष ( पुं० )
वैतालिक—बोध करानेवाला, क्रीडाकरके तालदेना ( पुं० ) ॥२२३ ॥
वैदेहक—वाणिजक(वनजी करनेवाला) शूद्रसे उत्पन्न हुवा वैश्यापुत्र ( पुं० )
वैनाशिक—क्षणमें उत्पन्न और नष्ट होनेवाला, पराधीन, मकडी-जन्तु, ( पुं० ) २२४ ॥

शतानीको मुनेर्भेदे वृद्धे शालावृकः शुनि ।
शृगाले वानरे वाऽथ बिले चान्द्रे शिलाटकः ॥ २२५ ॥

शृङ्गाटको गवेह्लादिकण्टके न चतुष्पथे ।
सङ्घाटिका युगे नासाकुट्टिनीजलकण्टके ॥ २२६ ॥

सन्तानिका दधिक्षीरसारे मर्कटजालके ।
संदंशिका तु त्रुकुटीलोहयन्त्रप्रभेदयोः ॥ २२७ ॥

स्यात्सुप्रतीक ईशानदिग्गजे दिव्यविग्रहे ।
शृगालिका शिवायां स्याद्भयात्रासेऽपि पलायने ॥ २२८ ॥

क्लीवे सैकतिकं मातृयात्रामङ्गलसूत्रयोः ।
त्रिषु संन्यस्तसंदेहजीविदापणिकक्षपित्वद् ॥ २२९ ॥

पुमान् सैकतिको गन्धगुटयां सिन्धोश्च सैकते ।
सभार्यो परहस्तस्थां यो न साधयितुं क्षमः ॥ २३० ॥

---

शतानीक-एकमुनि, वृद्ध, (पुं॰)
शालावृक-कुत्ता,गीदड,बन्दर,(पुं॰)
शिलाटक-बिल, चन्द्रमानामक, वा चन्द्रशाला, (पुं॰ ॥ २२५ ॥
शृङ्गाटक-जलमें उत्पन्न काटा (सिंघाडा), चौराहा अर्थात् चार तरफका मार्ग, (पुं॰)
संघाटिका-जोडा, नासिका, कुटिनी स्त्री, सिंघाडा, (स्त्री॰) २२६ ॥
सन्तानिका-दधि दुग्धका सार, मकडेका जाल, (स्त्री॰)
संदंशिका-संडासी, लोहेका यन्त्र विशेष, (स्त्री॰)॥ २२७ ॥
सुप्रतीक-ईशानदिशामें होनेवाला हाथी, सुंदर अंगवाला मनुष्य (पुं॰)
शृगालिका-गीदडी, भयसे भागना, (स्त्री॰)॥ २२८ ॥
सैकतिक-मातृयात्रा, मंगलसूत्र, (न॰) संन्यासी, संदेहजीवी, मुनि, (त्रि॰) ॥२२९॥ गुटा नाम औषध, समुद्रका रेतीला स्थल (पुं॰) दूसरेके हाथमें गई हुई अपनी स्त्रीको छीननेमें जो समर्थ न हो वह, भोजनकेलिये वृथा संन्यासी ॥ २३० ॥

तत्र संन्यासमात्रेण क्षुधा च कृतभोजने ।
सोमवल्कः पुमान् श्वेतखदिरे कट्फलेऽपि च ॥ २३१ ॥
सौगन्धिकं तु कह्लारे पद्मरागे च कत्तृणे ।
गन्धके गान्धिके पुंसि त्रिषु सौगन्धिकं क्रमात् ॥ २३२ ॥

कपञ्चमम् ।

अनेडमूकः कितवे त्रिषु वाक्श्रुतिवर्जिते ।
स्यादाच्छुरितकं हासनखाघातविशेषयोः ॥ २३३ ॥
मातोपकारिका राजमन्दिरे पिष्टकान्तरे ।
उपकर्त्र्यामपीयं स्यादथ स्यात्कटखादकः ॥ २३४ ॥
खादके काचकलशे बलिपुष्टशृगालयोः ।
स्यात्कक्षावेक्षको धीरे शुद्धान्तोद्यानपालयोः ॥ २३५ ॥
अपि पिङ्गे कवौ रङ्गाजीविनि द्वारपालके ।
स्यात्कृमीकण्टकं चित्राविडङ्गोदुम्बरेष्वपि ॥ २३६ ॥

---

सोमवल्क–सफेद खैर, कायफल (पुं०) ॥ २३१ ॥

सौगन्धिक–सध्यासमय खिलनेवाला कमल, माणिक-रत्न, सौगन्धिक-तृण या गंजाण, (न०) गन्धक, गाधी, (पुं०) गधवाला द्रव्य (त्रि०) ॥ २३२ ॥

कपंचम ।

अनेडमूक–छलकरनेवाला, वाणी और कर्णेन्द्रियसे रहित, (त्रि०)

आच्छुरितक–हँसना, नखोंसे आघात विशेष, (न०) ॥ २३३ ॥

उपकारिका–माता, राजमन्दिर, पिष्टका भेद, उपकारकरनेवाली स्त्री, (स्त्री०)

कटखादक–खानेवाला काचकलश, काग, गीदड, (पु०) ॥ २३४ ॥

कक्षावेक्षक–वीर, रनवास और बगीचाकी रक्षा करनेवाला, ॥२३५॥ धूर्त, कवि, कपडा रगनेवाला (रगरेज), द्वारपाल (पुं०)

कृमि(मी)कंटक–चीता, वायविडंग, गूलर, (न०) ॥ २३६ ॥

गोजागरिकमित्याहुर्मङ्गले कन्दुकारके ।
कण्ठीविशेषखद्योतविद्युत्सु चिलिमीलिका ॥ २३७ ॥
शृङ्गाटके जलगुल्मे पृथ्व्यां च जलकण्टकः ।
जलतापिक इत्यन्ये ... मत्स्यभेदे मतः ॥ २३८ ॥
मर्कटाल्ककदल्यां तु नालिकेरफलेऽम्बुदे ।
फले जलतायां च भवेन्नवफलिका पुनः ॥ २३९ ॥
नव्ये गर्भे प्रसूताद्यौ नवजातरजस्त्रियाम् ।
नागवारिकमित्यन्ति हस्तिपे राजहस्तिनि ॥ २४० ॥
तार्क्ष्ये गणस्थानेऽपि चित्रमेखलके क्वचित् ।
श्रीघस्नानिर्गुडे क्रयाक्षायां व्यवहारिका ॥ २४१ ॥
स्याद्वाहिहिरालिकः पुंसि कामिनीचीनगव्ययोः ।
शतपर्विका च दूर्वायां वचायां शतपर्विका ॥ २४२ ॥

---

गोजागरिक–मंगल, कंदुकारक (गिन्दवनानेवाला), (न०)
चिलिमीलिका–कंठाभूषण, खद्योत (जुगनू), बिजली, (स्त्री०) ॥ २३७ ॥
जलकंटक–सिंघाड़ा, जलगुल्म, छोटे अगराला, (पुं०)
जलतापिक–मत्स्यभेद, मच्छ (पुं०) ॥ २३८ ॥
जलकरंक–नारियलकाफल, मेघ, कमल, जलतरंग, (पुं०) ॥२३९॥
नवफलिका–नवीन और सुंदर पुष्प-आदि, प्रथमऋतुमतीस्त्री (स्त्री०) ॥ २४० ॥
नागवारिक–हाथीवान, गजदन्ती, गरुड गजराज, चित्रमेखल (मोर-पक्षी) (पुं०)
व्यवहारिका–लोक-व्यवहार, गोंदनी, सोहागा, (स्त्री०) ॥२४१॥
वाहिहिरालिक–कामदेव, चीनापा-ला, (पुं०) ॥ २४२ ॥
शतपर्विका–दूब, बच–औषध (स्त्री०)

शीतचम्पकशब्दोऽयमातर्पणकदीपयोः ।
सुवसन्तकमिच्छन्ति वासन्त्यां मदनोत्सवे ॥ २४३ ॥

स्याद्धेमपुष्पिका यूथ्यां चम्पके हेमपुष्पकः ।

कपञ्चम् ।

ग्रामसद्गुरिका शृङ्ग्यां ग्रामयुद्धे च दृश्यते ॥ २४४ ॥

भवेन्मदनशलाका तु सार्यां कामोदयौषधौ ।
भवेन्मातुलजे धूर्तफले मातुलपुत्रकः ॥ २४५ ॥

लूतामर्कटिका पुत्र्यां नवमालप्लवङ्गयोः ।
श्लोकच्छायाहरे चौरे भवेद्वर्णविलोडकः ॥ २४६ ॥

सिन्दूरतिलको नागे सिन्दूरतिलकास्त्रियाम् ।
चतुर्मासोपवासी यः स स्यात्स्नानचिकित्सकः ॥ २४७ ॥

---

शीतचंपक—आतर्पण ( तृप्तिकरने-वाली ओषधी ), दीप (चंपा) (पु०)

सुवसन्तक—कस्तूरमोगरा, मदनउ-त्सव, ( पु० ) ॥ २४३ ॥

हेमपुष्पिका—जूही, ( स्त्री० )

हेमपुष्पक—चम्पा ( पु० )

कपञ्च ।

ग्राममद्गुरिका—शृंगी-मत्स्य, ग्राम-युद्ध, ( स्त्री० ) ॥ २४४ ॥

मदनशलाका—मैना—पक्षी, कामो-द्दीपकऔषधि, ( स्त्री० )

मातुलपुत्रक—मामाकापुत्र, धतूराका फल, ( पुं० ) ॥ २४५ ॥

लूतामर्कटिका—पुत्री, ( स्त्री० )

लूतामर्कटक—नवीनमालावाला, ब-न्दर, ( पुं० )

वर्णविलोडक—श्लोकछायाको हरने-वाला, चोर, ( पुं० ) ॥ २४६ ॥

सिन्दूरतिलक—हस्ती, (पुं०)

सिन्दूरतिलका—सिन्दूरतिलकवाली स्त्री, ( स्त्री० )

स्नानचिकित्सक—चातुर्मासका उप-वास करनेवाला, (पुं०) ॥ २४७ ॥

तपस्विपुष्पयोश्चैव मतं स्नानचिकित्सकम् ॥ २४८ ॥

इति कविपण्डितश्रीश्रीधरसेनविरचिते मुक्तावलीत्यपराभिधाने-
विश्वलोचने खरकाद्यादिकान्तवर्गः ।

---

## अथ खान्तवर्गः ।

### खैकम् ।

खमाकाशे दिवि सुखे बुद्धौ संवेदने पुरे ।
शून्यवदिन्द्रियक्षेत्रे कुशाहलफले कचित् ॥ १ ॥

### खद्वितीयम् ।

उखा निरुद्धभार्यायामुखा स्थाल्यामपि स्मृता ।
नखस्तु करजे शुक्तौ गन्धद्रव्ये नखी नखम् ॥ २ ॥
न्युङ्खः सम्यग्मनोज्ञे च साम्नः षट्प्रणवेष्वपि ।
प्रेङ्खाः पर्यटने नृत्ये दोलायां वाजिनां गतौ ॥ ३ ॥

---

स्नानचिकित्सक–तपस्वी, पुष्प, (पुं० न०) ( ॥ २४८ ॥

इस प्रकार कविपंडित श्रीश्रीधरसेन-
विरचित मुक्तावली ऐसा दूसरा-
नामवाला विश्वलोचनकी
भाषाटीकामें खरकाद्या-
दिकान्त कांतवर्ग
समाप्तहुवा ॥

---

अथ खान्तवर्गः ।

खैक ।

ख–आकाश, स्वर्ग, सुख, बुद्धि, पीडा, पुर, पोल ( शून्य ) वाला द्रव्य, इंद्रिय, क्षेत्र, कुश, हलकी फाल, (न०) ॥ १ ॥

खद्वितीय ।

उखा–अनिरुद्धकी स्त्री, स्थाली (तंदुल आदि पकानेका वर्तन ) (स्त्री० )

नख–नख ( नाखून ) सीपी, (पुं० ) गन्धद्रव्य, नख ( स्त्री० न०) ॥२॥

न्युङ्ख–बहुत सुन्दर, सामवेदके छः ओंकार, (पु० )

प्रेंखा–देशान्तरोंमें जाना, नृत्य, हिंडोला, अश्वोंकी गतिविशेष, (स्त्री०) ॥ ३ ॥

चिङ्खा गत्यन्तरे नृत्ये शूकशिम्ब्यां च दृश्यते ।
मुखं वक्त्रे निःसरणेऽप्युपायाऽऽरम्भयोरपि ॥ ४ ॥

लेखो लेख्ये सुरे लेखा रेखाराजीलिपिष्वपि ।
शङ्खः कम्बुललाटास्थिनखीनिधिषु न स्त्रियाम् ॥ ५ ॥

शाखा स्यात्पल्लवे वेदविभागेऽप्यन्तिके भुजे ।
शाखा पक्षान्तरे चाथ शिखा शाखाग्ररश्मिषु ॥ ६ ॥

शिखा शिखायां चूडायां चूडायां च शिखण्डिनः ।
ज्वालायां लाङ्गलिक्यां च सखा मित्रसहाययोः ॥ ७ ॥

सुखं शर्मण्यपि स्वर्गे सुखा पुर्या प्रचेतसः ।

खतृतीयम् ।

गोमुखं कुटिलागारे वाद्यभाण्डोपलेपयोः ॥ ८ ॥

---

चिङ्खा—गतिविशेष, नृत्य, कौंच, (स्त्री॰)

मुखं—मुख, गृहद्वार, उपाय, आरंभ, (न॰) ॥ ४ ॥

लेख—लिखने योग्य, देवता, (पु॰)

लेखा—रेखा, पंक्ति, लेख, (स्त्री॰)

शंख—शंख, ललाटका अस्थि, नखी (गंधद्रव्य), खजाना भेद (पु॰ न॰) ॥ ५ ॥

शाखा—टहनी या पल्लव, वेदविभाग, समीप, भुजा (बाहु), पक्षविशेष, (स्त्री॰)

शिखा—शाखा, अग्रभाग, किरण (स्त्री॰) ॥ ६ ॥

शिखा—वृक्षकी जड़, चोटी, मोरकी चोटी, अग्निकी ज्वाला, कलिहारी-वृक्ष, (स्त्री॰)

सखा—मित्र, सहायक, (पु॰) ॥७॥

सुख—कल्याण, स्वर्ग, (न॰)

सुखा वरुणकी पुरी (स्त्री॰)

खतृतीय ।

गोमुख—टेढाघर, बाजाका भाडा, लेपन, (न॰) ॥ ८ ॥

त्रिशिखो रक्षसो भेदे क्लीबं भूषात्रिशूलयोः।
दुर्मुखो मुखरे नागराजे शाखामृगाश्वयोः॥ ९॥
प्रमुखः प्रथमे श्रेष्ठे मयूखो ज्वालरुक्करे।
स्कन्दे तर्के विशाखः स्याद्विशाखा भे कठिल्लके॥ १०॥
विशिखस्तोमरे बाणे विशिखा खनिरथ्ययोः।
नलिकायां च विशिखा वैशाखो राधमन्थयोः॥ ११॥
सुमुखस्तार्क्ष्यतनये पण्डिते भुजगान्तरे॥ १२॥

खचतुर्थम्।

भवेदग्निमुखो देवे द्विजे पावकसम्भवे।
भल्लातके त्वग्निमुखी कचिदग्निमुखोऽपि च॥ १३॥
लाङ्गलिक्यां त्वग्निशिखा कुङ्कुमेऽग्निशिखं स्मृतम्।
इन्दुलेखा शशिकलाऽमृतासोमलतास्वपि॥ १४॥

---

त्रिशिख–एकराक्षस, (पु॰) आभूषण, त्रिशूल (॰न),
दुर्मुख–बहुत बोलनेवाला (त्रि॰) नागराज (नागभेद) या अनत, बन्दर, घोडा, (पुं॰)॥ ९॥
प्रमुख–पहला, श्रेष्ठ, (पु॰)
मयूख–ज्वाला, शोभा, किरण, (पु॰)
विशाख–स्वामिकार्त्तिक, तर्क, (पुं॰)
विशाखा विशाखा नामक नक्षत्र, करेला-शाक, (स्त्री॰)॥ १०॥
विशिखा–तोमर (गुर्ज), बाण, (पुं॰) खान–चादी आदिकी, गली, नाली, (स्त्री॰)
वैशाख–वैशाख मास, दधि मथनेका, दंडा (रई) (पुं॰)॥ ११॥
सुमुख–गरुडका पुत्र, पंडित, सर्पभेद (पुं॰)॥ १२॥

खचतुर्थ।

अग्निमुख–देवता, ब्राह्मण, कसूँभा, (पुं॰)
अग्निमुखी(ख)–भिलावा, (स्त्री॰ न॰)॥ १३॥
अग्निशिखा–कलिहारी, (स्त्री॰) केसर, (न॰)
इन्दुलेखा–चन्द्रकला, गिलोय, सोमलता, (स्त्री॰)॥ १४॥

पुंसि पञ्चनखः कूर्मे गजे गोधादिषु क्वचित् ।
बद्धशिखोच्चटायां स्याद्बाले बद्धशिखस्त्रिषु ॥ १५ ॥
महाशङ्खो नरास्थि स्यान्निधिसङ्ख्याप्रभेदयोः ।
शिलीमुखो भवेद्भृङ्गे मार्गणे च शिलीमुखः ॥ १६ ॥

खपंचमम् ।

स्यान्मलिनमुखः प्रेते गोलाङ्गूले खलेऽनले ।
मतः शीतमयूखोऽपि शशिकर्पूरयोरयम् ॥ १७ ॥
सर्वतोमुखमाख्यातं क्लीबमाकाशपाथसोः ।
क्षेत्रज्ञविधिरुद्रेषु स पुमान् सर्वतोमुखः ॥ १८ ॥

इति विश्वलोचने खान्तवर्गः ॥

---

## अथ गान्तवर्गः ।

गैकम् ।

गो गन्धर्वे गणेशेऽर्के गं गीते शास्त्रगातरि ।
गौः पुमान् वृषभे स्वर्गे खण्डवज्रहिमांशुषु ॥ १ ॥

---

पंचनख—कछवा, हस्ती, गोधा (गोह) आदि, (पुं॰ स्त्री॰)
बद्धशिखा—गुंजा (चिरमठी) (स्त्री॰) बालक, (त्रि॰) ॥ १५ ॥
महाशंख—मनुष्यका अस्थि, खजाना-भेद, सख्याभेद, (पुं॰)
शिलीमुख—भौंरा, बाण, (पुं॰)॥१६

खपंचम ।

मलिनमुख—प्रेत, गौकी पूंछ, खल—मनुष्य, अग्नि, (पु॰)
शीतमयूख—चंद्रमा, कपूर (पुं॰) ॥ १७ ॥
सर्वतोमुख—आकाश, जल, (न॰) आत्मा, ब्रह्मा, रुद्र, (पुं॰) ॥१८॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें खांतवर्ग समाप्त हुवा ।

---

अथ गान्तवर्गः ।

गैक ।

ग—गन्धर्व, गणेश, सूर्य, (पुं॰) गीत, शास्त्रका गानेवाला, (न॰)
गो—बैल, स्वर्ग, खंड (टुकडा), वज्र, चन्द्रमा, (पुं॰) ॥ १ ॥

स्त्री गवि भूमिदिङ्नेत्रवाग्बाणसलिले स्त्रियः ॥ २ ॥

गद्वितीयम् ।

अगः स्यान्नगवद्वृक्षे शैले भानुभुजङ्गयोः ।
अङ्गा नीवृत्प्रभेदे स्युरङ्गो देशेङ्गमन्तिके ॥ ३ ॥

गात्रोपायाप्रधानेषु प्रतीकेप्यङ्गवत्यपि ।
अङ्ग संबोधनेऽसङ्कृच्चं पुनरर्थप्रमोदयोः ॥ ४ ॥

इङ्गः स्यादिङ्गिते ज्ञाने जङ्गमाद्भुतयोरपि ।
खगो विहङ्गे विशिखे खगः सूर्ये सुरे ग्रहे ॥ ५ ॥

खड्गः खड्गिनि निस्त्रिंशे खड्गिशृङ्गे जिनान्तरे ।
गाङ्गः षडानने भीष्मे गङ्गाभूते तु वाच्यवत् ॥ ६ ॥

चङ्गस्तु शोभने दक्षे टङ्कोऽस्त्री स्यात्खनित्रके ।
तथैवास्त्रान्तरेऽप्यस्त्री जङ्घायां खड्गभेदके ॥ ७ ॥

---

गो–गौ, भूमि, दिशा, नेत्र, वाणी, (स्त्री०) जल, ( स्त्री० बहुवचनान्त ) ॥ २ ॥

गद्वितीय ।

अग–[ नगकेसमान ] वृक्ष, पर्वत, सूर्य सर्प, ( पुं० )

अंग–देशभेद ( पु० बहुवचनान्त ) देश ( पुं० ) समीप, (न०) ॥३॥ -शरीर, उपाय, अप्रधान, मूर्त्ति, अंगवाला, ( त्रि० )

अंग–संबोधन, 'पुन' अव्ययका अर्थ, आनंद, ( अव्यय ) ॥ ४ ॥

इंग–चेष्टित, ज्ञान, जंगम, अद्भुत(पुं०)

खग–पक्षी, बाण, सूर्य, देवता, ग्रह, ( पुं० ) ॥ ५ ॥

खड्ग–गैंडा, खड्ग ( तलवार), गैंडाका सींग, जिनभेद ( बुद्ध ) ( पुं० )

गांग–स्वामिकार्त्तिक, भीष्म, ( पुं० ) गंगासे उत्पन्नहुए ( त्रि० ) ॥ ६ ॥

चंग–सुन्दर, चतुर, ( पुं० )

टंग–खोदनेका औजार, अस्त्रभेद, पिंडुली, खड्गभेद, ( पुं० न० ) ॥ ७ ॥

उन्नते वाच्यवत्तुङ्गस्तुङ्गः पुन्नागशैलयोः ।
बर्वरानिशयोस्तुङ्गी त्यागो दाने च वर्जने ॥ ८ ॥

दुर्गः स्याद्दुर्गमे दुर्गा चण्डीनीलिकयोर्मता ।
नगस्तु पर्वते वृक्षे नगो भानुभुजङ्गयोः ॥ ९ ॥

नागः पन्नगपुन्नागनागकेसरदन्तिषु ।
नागदन्तकजीमूतमुस्तके क्रूरकर्मणि ॥ १० ॥

देहाऽनिलान्तरे श्रेष्ठे श्रेष्ठ एवोत्तरस्थितः ।
नागं तु सीसके रङ्गे स्त्रीबन्धकरणान्तरे ॥ ११ ॥

पिङ्गः पिशङ्गे पिङ्गी तु शम्यां पिङ्गं तु बालके ।
पिङ्गा रामठनील्यां स्यादुमारोचनयोरपि ॥ १२ ॥

पूगस्तु निकुरम्बे स्यात्पूगः क्रमुकपादपे
फल्गुर्मलप्वामाख्याता निष्फले फल्गु वाच्यवत् ॥ १३ ॥

---

तुङ्ग—ऊँचा, (त्रि०) चंपा, पर्वत, (पुं०)
तुंगी—वर्वरी ( तिलवणी ) शाक, हलदी, (स्त्री० )
त्याग—दान वर्जना, ( पुं० ) ॥ ८ ॥
दुर्ग—दुर्गमस्थान ( किला ) ( पुं० )
दुर्गा—चंडी ( देवी ), नीलीका वृक्ष, ( स्त्री० )

नग—पर्वत, वृक्ष, सूर्य, सर्प, (पुं०)॥९॥

नाग—सर्प चंपा, नागकेसर, हस्ती, हाथी दाँत, मेघ, नागरमोथा, क्रूर-कर्म करनेवाला, ॥ १० ॥ शरीरमें रहनेवाला एक वायु, श्रेष्ठ, किसी शब्दके आगे जुडा हुआ श्रेष्ठको ही कहनेवाला, ( पु० ) सीसा, रॉंग, स्त्रियोंके बाँधनेका उपकरण (न०) ॥ ११ ॥

पिंग—पिंगलवर्ण ( पु० ) पिंगी जाँट-वृक्ष, ( स्त्री० ) बालक, ( न० )

पिंगा—हींग, नीला-वृक्ष, उमा (देवी) गोरोचन, ( स्त्री०) ॥ १२ ॥

पूग—समूह, सुपारीका वृक्ष, ( पुं० )

फल्गु—कठूमर वृक्ष, ( स्त्री० ) निष्फल ( नि सार ) ( त्रि० ) ॥ १३ ॥

भगं तु ज्ञानयोनीच्छायशोमाहात्म्यमुक्तिषु ।
ऐश्वर्यवीर्यवैराग्यधर्मश्रीरत्नभानुषु ॥ १४ ॥
भङ्गस्तरङ्गरुग्भेदे दम्भे जयविपर्यये ।
भङ्गा शणाख्यसस्ये स्याद्भागो रूपार्धकांशयोः ॥ १५
एकदेशे च भाग्ये च विपूर्वस्तु विभञ्जने ।
भृगुः शुक्रे प्रपाते च जमदग्नौ पिनाकिनि ॥ १६ ॥
भृङ्गः पुष्पत्वपे खिङ्गे तथा धूम्याटपक्षिणि ।
नपुंसकं तु भृङ्गं स्यात्केशराजभृगूटयोः ॥ १७ ॥
पुंसि भोगः सुखेऽपि स्यादहेश्च फणकाययोः ।
निर्वेशे गणिकादीना भोजने पालने धने ॥ १८ ॥
मार्गोऽग्रहायणे वाटे कस्तूरीविषयोरपि ।
मृगः कुरङ्गेऽपि पशौ मृगयामृगशीर्षयोः ॥ १९ ॥

---

भग–ज्ञान, योनि, इच्छा, यश, माहात्म्य, मुक्ति, ऐश्वर्य, वीर्य, वैराग्य, धर्म, श्री ( सम्पत्ति ), रत्न, सूर्य, ( पुं० न० ) ॥ १४ ॥

भंग–तरंग, रोगभेद, दम्भ, हारना, ( पुं० ).

भङ्गा–भॉग, ( स्त्री० )

भाग–किसी वस्तुका आधाभाग, बॉटा ( हिस्सा ) ॥ १५ ॥ एकदेश, भाग्य, ( पु० ) और विपूर्वक अर्थात् 'विभाग' विभंजन (तोड़ना),

भृगु–शुक्र–ग्रह, पर्वतमें नही ठहरनेकी जगह, जमदग्नि–ऋषि, महादेव, ( पुं० ) ॥ १६ ॥

भृंग–भौंरा, कामीपुरुष ( धूर्त ), पपीहा–पक्षी, ( पु० ) भँगरा, दालचीनी ( न० ) ॥ १७ ॥

भोग–सुख, सर्पका फण और शरीर, वेश्या आदिका भोगना, भोजन, पालन, धन, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

मार्ग–मार्गशिर–मास, मार्ग, कस्तूरी, विष, ( पुं० )

मृग–हरिण, पशु, मृगया ( शिकार ), मृगशिर नक्षत्र ॥ १९ ॥

हस्तिभेदेऽपि याच्ञायां मृगी स्यान्नायिकान्तरे ।
प्रशस्तरथसाराङ्गं युग्मेऽपि स्यात्कृतादिषु ॥ २० ॥

युगं हस्तचतुष्केऽपि वृद्धिनामौषधेऽपि च ।
योगः संनाहसंधानसङ्गतिध्यानकर्मणि ॥ २१ ॥

विष्कम्भादिषु सूत्रे च द्रव्ये विश्वस्तघातिनि ।
चरे चापूर्वलाभेऽपि भेषजोपाययुक्तिषु ॥ २२ ॥

रागोऽनुरागमात्सर्ये क्लेशादौ लोहितादिषु ।
गान्धारादौ नृपे नागे रोगः कुष्ठौषधे गदे ॥ २३ ॥

लङ्गः खिङ्गेऽपि सङ्गेऽपि लिङ्गं चिह्नाऽनुमानयोः ।
मेहने शिवभेदे च साङ्ख्योक्तप्रकृतावपि ॥ २४ ॥

वङ्गो देशान्तरे भण्टाकीकार्पासयोः पुमान् ।
वङ्गं रङ्गे च नागे च वङ्गा पुंभूम्नि नीवृति ॥ २५ ॥

---

हस्तिभेद, याचना, ( पुं० ) मृगी–स्त्री–भेद, ( स्त्री० ) युग–श्रेष्ठ, रथ और हलका अंग (जूवा), दो सख्या तथा सख्येय, सत्ययुगादियुग, चारहाथके प्रमाणवाला, वृद्धि नामक औषध, (न०) ॥२०॥ योग–कवच आदिका बाँधना, शरआदिका संधान करना, संगति, ध्यानकर्म, ॥ २१ ॥ विष्कम आदिकयोग, सूत्र, द्रव्य, विश्वासघाती, फिरनेवाला, अपूर्व लाभ, औषध, उपाय, युक्ति, ( पुं० ) ॥ २२ ॥

राग–प्रीति, मत्सरता, क्लेशआदि, लोहितआदि रग, गान्धार आदि-गानेका राग, राजा, नाग, ( पु० ) रोग–कूट नाम औषध, व्याधि (रोग) ( पुं० ) ॥ २३ ॥ लङ्ग–धूर्त, सग, ( पुं० ) लिङ्ग–चिह्न, अनुमान, पुरुषकी विषय इन्द्रिय, शिवभेद, साख्यशास्त्रमें कही हुई प्रकृति ( माया ) (न०)॥२४॥ वङ्ग–देशान्तर, बैंगन, कपास ( पु० ) राग, शीशा, ( न० ) वङ्गदेश, ( पुं० बहुवचनान्त ) ॥ २५ ॥

वर्गोऽध्याये च वृन्दे च वर्गः पञ्चाक्षरीमिदि ।
वल्गुर्ना नकुले छागे मनोज्ञे वल्गु वाच्यवत् ॥ २६ ॥
वेगो जवे प्रवाहे च महाकालफलेऽपि च ।
व्यङ्गस्तु पुंसि मण्डूके हीनाङ्गे व्यङ्गमन्यवत् ॥ २७ ॥
क्लीबं शरासने शार्ङ्गं शार्ङ्गं विष्णुशरासने ।
शृङ्गं विषाणे शिखरे प्रभुत्वोत्कर्षसानुषु ॥ २८ ॥
चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रे च शृङ्गः स्यात्कूर्चशीर्षके ।
शृङ्गी विषाद्यामृषभे मीनस्वर्गविशेषयोः ॥ २९ ॥
सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयोत्साहसृष्टिषु ।
मोहेऽध्याये च शुङ्गी तु न्यग्रोधप्लक्षपीतने ॥ ३० ॥

गतृतीयम् ।

अनङ्गो मन्मथेऽनङ्गमाकाशमनसोर्मतम् ।
अङ्गहीनेऽप्यनङ्गः स्यादङ्गमूर्तविपर्यये ॥ ३१ ॥

---

वर्ग–अध्याय (प्रसंगसमाप्ति), समूह, पंचाक्षरीभेद, (पुं०)
वल्गु–नौला, बकरा, (पुं०) सुन्दर, (त्रि०) ॥ २६ ॥
वेग–जल्दीकरना, प्रवाह-नदी आदिका, महाकालका फल, (पुं०)
व्यङ्ग–मेंडक (पुं०) हीनअंगवाला (त्रि०) ॥ २७ ॥
शार्ङ्ग–धनुषमात्र, विष्णुका धनुष (न०)
शृङ्ग–सींग, शिखर, प्रभुता, उत्कर्ष (बडप्पन), पर्वतकी शिखर, चिह्न, क्रीडाकेलिये जलयंत्र, (न०) ॥ २८ ॥ जीवक-औषधि, (पुं०)
शृंगी–ऋषभ-औषध, (स्त्री०) मीन-भेद, स्वर्गभेद, (पुं०) ॥ २९ ॥
सर्ग–स्वभाव, सर्पकी कांचली, निश्चय, उत्साह, सृष्टि, मोह, अध्याय, (पुं०)
शुङ्गी–वड वृक्ष, पाखर–वृक्ष, अंबाडा, (स्त्री०) ॥ ३० ॥

गतृतीय ।

अनंग–कामदेव, (पुं०) आकाश, मन, (न०) अङ्गहीन, अंगोंकी विपरीतता (पुं०) ॥ ३१ ॥

अपाङ्गस्त्वङ्गविकले नेत्रान्ते तिलके पुमान् ।
अयोगो विधुरे कूटे विश्लेषे कठिनोद्यमे ॥ ३२ ॥
आभोगो वारुणच्छत्रे यत्नपूर्णत्वयोरपि ।
आयोगो गन्धमाल्यादिव्यसनेऽपि च ढौकने ॥ ३३ ॥
व्यापाररोधयोश्चाऽऽय आशुगो बाणवातयोः ।
उत्सर्गो वर्जने त्यागे सामान्ये न्यायदानयोः ॥ ३४ ॥
उद्वेग उद्वाहुलके पुमानुद्वेजनेऽपि च ।
भवेदुद्गमने चायमुद्वेगं क्रमुकीफले ॥ ३५ ॥
कलिङ्गः पूतिकरजे धूम्याटे विषयान्तरे ।
नीवृद्भेदे कलिङ्गस्तु त्रिषु दग्धविदग्धयोः ॥ ३६ ॥
कलिङ्गं कौटजफले कलिङ्गा योषिति स्त्रियाम् ।
कलिङ्गो भूमिकूष्माण्डे मतङ्गजभुजङ्गयोः ॥ ३७ ॥

---

अपांग—अंगविकल पुरुष, नेत्रोंका अंतभाग, तिलक, ( पुं० )

अयोग—वियोगवाला, नहीं हिलनेवाला, अलगपना, कठिन, उद्यम, ( पुं० ) ॥ ३२ ॥

आभोग—वरुणका छत्र, जतन, परिपूर्णपना, ( पु० )

आयोग—गंधमाला आदिका व्यसन, किसीको प्रेरणा, व्यापार, रोकना, लाभ, ( पु० ) ॥ ३३ ॥

आशुग—बाण, वायु, ( पुं० )

उत्सर्ग—वर्जना, त्यागकरना, सामान्यविधि, न्याय, दान, (पु०)॥३४॥

उद्वेग—उद्वाहुलक ( भुजाउठानेवाला, उद्वेजन ( डराना ), उद्गमन ( ऊपरको गमन ) ( पुं० ) सुपारी, ( न० ) ॥ ३५ ॥

कलिंग—करञ्जुवा-वृक्ष, पपीहा-पक्षी, देशमात्र, मनुष्योंका बसाया देश, ( पुं० ) दग्ध, चतुर, ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥

कलिंग—इंद्रजव, ( न० )

कलिंगा—कलिंगदेशमे होनेवाली स्त्री ( स्त्री० )

कलिङ्ग—भूमिकोहला, हस्ती, सर्प, ( पुं० ) ॥ ३७ ॥

कालिङ्गी राजकर्कट्यां कालिङ्गस्त्रिषु तद्भवे ।
चक्राङ्गी कटुरोहिण्यां चक्राङ्गश्चक्रपक्षिणि ॥ ३८ ॥
जिह्मगो भुजगे पुंसि मन्दगे त्रिषु जिह्मगः ।
तडागः सरसि स्यातस्तडागो यन्त्रकूटके ॥ ३९ ॥
तातगुः क्षुद्रताते स्याज्जने पितृहितेऽपि च ।
तुरगी त्वश्वगन्धायां तुरगो हयचित्तयोः ॥ ४० ॥
त्रिवर्गो धर्मकामार्थसंहतौ च कटुत्रिके ।
त्रिफलायां सत्त्वरजस्तमसामपि संहतौ ॥ ४१ ॥
वृद्धिस्थानक्षयैकोक्तौ धाराङ्गस्त्वसितीर्थयोः ।
नरङ्गं तु वरण्डे च वृत्तिकीलकशेफसो ॥ ४२ ॥
नागरङ्गेऽपि नारङ्गो नारङ्गो यमजेऽपि च ।
विटे जन्तौ च नारङ्गो नारङ्गं पिप्पलीरसे ॥ ४३ ॥

---

कालिङ्गी–बडी ककडी, ( स्त्री० ) ककडीमें होनेवाले बीजआदि, (त्रि०)
चक्रांगी–कुटकी, ( स्त्री० )
चक्रांग–चकवा पक्षी, ( पुं० ) ॥३८॥
जिह्मग–सर्प, ( पुं० ) मंदचलनेवाला, ( त्रि० )
तडाग–सरोवर, यंत्रोका समुदाय ( पुं० ) ॥ ३९ ॥
तातगु–चचा पिताका हितकारी जन, ( पु० )
तुरगी–आसगंध, ( स्त्री० )
तुरग–अश्व, चित्त, ( पुं० ) ॥ ४० ॥
त्रिवर्ग–धर्म अर्थ और काम, सूंठ मिरच और पीपल, हरड बहेडा और आवला, सत्त्व रजस् और तमस्, ॥ ४१ ॥ वृद्धि स्थान और क्षय, ( पुं० )
धाराङ्ग–तलवार, तीर्थ, ( पु० )
नरंग–मुखरोग, चारोंतरफका कीला, शिश्नइंद्रियचिह्न, (न०) ॥ ४२ ॥
नारंग–नारगी-वृक्ष, जोड्ला पुरुष, कामी पुरुष, प्राणी, पीपलका रस, ( पु० न० ) ॥ ४३ ॥

निषङ्गो वाणधौ सङ्गे निसर्गः शीलसर्गयोः ।
नीलङ्गुः कृमिकीटे स्याद् भंभराल्यामुशीरके ॥ ४४ ॥
पतङ्गः शलभे सूर्ये खगे शाल्यन्तरेऽपि च ।
रसे पतङ्गे पत्राङ्गं रक्तचन्दनभूर्जयोः ॥ ४५ ॥
पद्मके चाथ सर्पेऽपि पद्मकाष्ठेऽपि पन्नगः ।
परागः पुष्परजसि स्नानीयादौ रजस्यपि ॥ ४६ ॥
विख्यातावुपरागेऽपि चन्दने पर्वतान्तरे ।
पुन्नागः पुरुषश्रेष्ठे वृक्षभेदे सितोत्पले ॥ ४७ ॥
जातीफलेऽपि पुन्नागः पाण्डुनागे च दृश्यते ।
प्रयागस्तीर्थभेदे स्याद्यज्ञे वाहे विडौजसि ॥ ४८ ॥
प्रयोगः कार्मणे पुंसि प्रयुक्तौ च निदर्शने ।
प्रियङ्गुः फलिनीकङ्गूराजिकापिप्पलीष्वियम् ॥ ४९ ॥

---

निषग—तरकस, सग, (पु० )
निसर्ग—स्वभाव, सर्ग (रचना) (पु०)
नीलंगु—छोटाकीड़ा, मक्षिका, खस, (पु० ) ॥ ४४ ॥
पतङ्ग—शलभ-टीडी सूर्य, पक्षी, शालिभेद, रस, पतंग काष्ठ,
पत्रांग—रक्तचंदन, भोजपत्र, ( न० ) ॥ ४५ ॥
पन्नग—कूट औषधि, सर्प, पद्माख, (पु० )
पराग—पुष्पकी रज, स्नानमे लगानेकी रज, ॥ ४६ ॥ विख्याति, ग्रहण, चन्दन, पर्वतभेद, (पुं० )
पुन्नाग—पुरुषोमें श्रेष्ठ, वृक्षभेद, सफेद-कमल, ॥ ४७ ॥ जायफल, पुन्नागवृक्ष, सफेद हस्ती तथा सर्प (पुं० )
प्रयाग—प्रयाग नाम तीर्थ, यज्ञ, अश्व, इन्द्र, (पुं० ) ॥ ४८ ॥
प्रयोग—औषधियोंके योगसे उच्चाटन आदिकर्म, युक्त करना, दिखाना, (पु० )
प्रियंगु—प्रियगु—वृक्ष या बाघाटी, मालकागनी, राई, पीपल, ( पु० ) ॥ ४९ ॥

प्लवगो वानरे भेके तीक्ष्णदीधितिसारथौ ।
भुजङ्गो भुजगे षिङ्गे मातङ्गः श्वपचे गजे ॥ ५० ॥
मृदङ्गः पटहे घोषे रक्ताङ्गा जीविकौषधौ ।
रक्ताङ्गो मङ्गले क्लीवं धीरकाम्पिल्यविद्रुमे ॥ ५१ ॥
रथाङ्गमद्वयोश्चक्रे रथाङ्गश्चक्रपक्षिणि ।
वराङ्गं मस्तके योनौ गुडत्वचि गजे स्त्रियाम् ॥ ५२ ॥
वातिगस्तु दशापाके वार्ताकीधातुवादिनोः ।
विडङ्गोऽस्त्री कृमिघ्ने स्याद् विडङ्गो नागरेऽन्यवत् ॥ ५३ ॥
विहगस्तु विहङ्गे स्यादग्रगे विहगस्त्रिषु ।
विसर्गस्तु भवे दाने त्यागे च मलनिर्गमे ॥ ५४ ॥
विसर्जनीये मुक्तौ च भास्वतश्चायनान्तरे ।
रते भोगे च सम्भोगः सम्भोगो जिनशासने ॥ ५५ ॥

---

प्लवग–बन्दर, मेंडक, सूर्यका सारथि ( अरुण ), ( पुं० )
भुजंग–सर्प, धूर्त, ( पुं० )
मातंग–चाण्डाल, हस्ती, (पुं०)॥५०॥
मृदंग–पटह ( ढोल ), अहीरोंका ग्राम, ( पुं० )
रक्तांगा–जीवन्ती या डोडी औपधि ( स्त्री० )
रक्तांग–मंगल-ग्रह, ( केसर या जाफ-रान, ( न० ) कवीला–औपधि, मूँगा, ( न० ) ॥ ५१ ॥
रथांग–गाडी रथ आदिके पहिया, ( न० ) चकवा–पक्षी ( पुं० )
वरांग–मस्तक, भग ( स्त्रीकी योनि ) तेजपात या दालचीनी, हाथीसूँडा वृक्ष, ( न० ) ॥ ५२ ॥
वातिग–दशाफल, बैंगन, धातुवादी, ( पुं० )
विडङ्ग–वायविडङ्ग, (पुं०न०) चतुर, ( त्रि० ) ॥ ५३ ॥
विहग–पक्षी, ( पुं० ) शीघ्र चलने-वाला ( त्रि० )
विसर्ग–जन्महोना, दान, त्याग, मलका ( विष्ठाका ) त्यागना,॥५४॥
विसर्जनीय (वर्णके आगे दो बिंदु), मुक्ति, सूर्यका अयनभेद, ( पुं० )
सम्भोग–स्त्रीसंग, वस्तुओंका भोगना, जिनशिक्षा ( पुं० ) ॥ ५५ ॥

सर्वगं सलिले क्लीबं सर्वगः शङ्करे विभौ ।
सारङ्गो मृगमातङ्गचातकेषु खगान्तरे ॥ ५६ ॥
भृङ्गे त्रिषु तु किर्मीरे हेमाङ्गस्तार्क्ष्यवेधसोः ।

गचतुर्थम् ।

अनुषङ्गस्तु नाऽऽरब्धे कारुण्येऽपि कचिन्मतः ॥ ५७ ॥
त्यागे मोक्षेऽपवर्गः स्यात्साफल्ये कृतकृत्यतः ।
अभिषङ्गस्तु संसर्गशपथाक्रोशगञ्जने ॥ ५८ ॥
ईहामृगो वृके जन्तौ प्रभेदे चंपकस्य च ।
अथोपरागः स्वर्भानुग्रस्तयोः पुष्पवन्तयोः ॥ ५९ ॥
दुर्नयग्रहकल्लोले परीवापे तु पुंस्ययम् ।
उपसर्गः स्मृतो रोगभेदे चोपप्लवेपि च ॥ ६० ॥
कटभङ्गस्तु शस्यानां नखच्छेदे नृपात्यये ।
छत्रभङ्गस्तु वैधव्येऽस्वातन्त्र्यनृपनाशयोः ॥ ६१ ॥

---

सर्वग—जल ( न० ) महादेव, समर्थ, ( पुं० )

सारङ्ग—मृग, हस्ती, पपीहा-पक्षी, पक्षीभेद, ॥ ५६ ॥ भौंरा, ( पुं० ) चितकवरा ( त्रि० )

हेमाङ्ग—गरुड, ब्रह्मा ( पुं० )

गचतुर्थ ।

अनुषङ्ग—आरम्भ, 'एक जगहके पदको दूसरे स्थानमें अन्वयमें लेना', दयालुपना, ( पुं० ) ॥५७॥

अपवर्ग—त्याग, मोक्ष, करेहुए कृत्यकी सफलता, ( पुं० )

अभिषङ्ग—संसर्ग, शपथ ( सौगन ), गाली, तिरस्कार, ( पुं० ) ॥५८॥

ईहामृग—भेडिया, जन्तु, चपाका भेद, ( पु० )

उपराग—राहुसे चंद्रसूर्यका ग्रसना ( ग्रहण ) ॥ ५९ ॥ दुर्नय ( खोटीनीति ), ग्रहोका युद्ध, केशमूँडना, ( पुं० )

उपसर्ग—रोगभेद, उत्कापात आदि उपद्रव, ( पुं० ) ॥ ६० ॥

कटभंग—छोटे और हरित तृण आदिकोंका नखसे छेदन, राजाका नाश, ( पुं० )

छत्रभंग—विधवापना, पराधीनता, राजाका नाश, ( पुं० ) ॥ ६१ ॥

दीर्घाध्वगस्तु करभे लेखहारे तु वाच्यवत् ।
मल्लनागोऽभ्रमातङ्गे वात्स्यायनमुनावपि ॥ ६२ ॥
राजशृङ्गस्तु कनकदण्डमुद्गरयोः पुमान् ।
समायोगस्तु संयोगे समवाये प्रयोजने ॥ ६३ ॥
सम्प्रयोगस्तु सुरते कार्मणेप्यन्वयेऽपि च ॥ ६४ ॥

गपञ्चमम् ।

कथाप्रसङ्गो वातूले विषवैद्ये च वाच्यवत् ।
नाडीतरङ्गः काकोले हिंडके रतहिण्डके ॥ ६५ ॥

इति विश्वलोचने गान्तवर्गः ॥

---

## अथ घान्तवर्गः ।

घैकम् ।

घो घण्टायां च घा घाते किङ्किण्यां स्त्री ध्वनौ तु घः ।

---

दीर्घाध्वग–ऊँट, ( पुं० ) परवाना पहुँचानेवाला, ( त्रि० )

मल्लनाग–इंद्रका हस्ती, वात्स्यायन मुनि, ( पुं० ) ॥ ६२ ॥

राजशृंग–सुवर्णका दंड ( छडी ), मुद्गर, ( पुं० )

समायोग–संयोग, समवाय-संबंध, अभिप्राय, ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

सम्प्रयोग–स्त्रीसंग, औषधियोंके योगसे उच्चाटन आदि कर्म, अन्वय (श्लोकके पदोंका संबंध ) ( पुं० ) ॥ ६४ ॥

गपंचम ।

कथाप्रसङ्ग–वातूल या वायुको न सहनेवाला, विषका वैद्य, ( त्रि० );

नाडीतरङ्ग–कंकोल, लम्पटका आचार्य, स्त्रीचोर (पुं०) ॥ ६५ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें गान्तवर्ग समाप्त हुवा ।

---

अथ घान्तवर्गः ।

घैक ।

घ–घंटा, ( पुं० )

घा–घात, करधनी ( स्त्री० )

घ–शब्द ( पुं० )

घद्वितीयम् ।

पापेऽर्त्तौ व्यसने चाऽघं स्यादर्घोऽर्चनमूल्ययोः ॥ १ ॥
अङ्घ्रिः स्याज्जानुचरणे मूले चापि महीरुहाम् ।
उद्घो हस्तपुटे देहपवने पावके पुमान् ॥ २ ॥

ओघः परम्परायां स्याद्दुतनृत्योपदेशयोः ।
ओघः पाथःप्रवाहे च समूहे च पुमानयम् ॥ ३ ॥

मघा दशमनक्षत्रे मघा स्याद्दुतजान्तरे ।
वारिवाहेऽपि मेघः स्यान्मेघः स्यान्मुस्तकेऽपि च ॥ ४ ॥

मोघस्तु निष्फले दीने मोघा पाटलिपादपे ।
लघुर्मनोज्ञनिस्सारागुरुलघुषु वाच्यवत् ॥ ५ ॥

पृक्काया स्त्री लघु क्लीवं कृष्णागुरुणि सत्वरे ।
श्लाघा तु स्यात्प्रशंसाया परिचर्याऽभिलाषयोः ॥ ६ ॥

---

घद्वितीय ।

अघ–पाप, पीडा, व्यसन, ( न० )
अर्घ–पूजाविधि, मूल्य ( मोल ) ( पुं० ) ॥ १ ॥
अंघ्रि–घोंट ( गोडा ), चरण (पॉव), वृक्षोंकी जड ( पुं० )
उद्घ–हाथका पुट, शरीरका पवन, अग्नि, ( पुं० ) ॥ २ ॥
ओघ–परपरा, शीघ्र नृत्य, शीघ्र उपदेश, जलका प्रवाह, समूह, (पुं०) ॥३॥
मघा–दशवा नक्षत्र ( मघा ), शब्दसे उत्पन्न हुए ग्राम आदि ( स्त्री० )
मेघ–बद्दल, नागरमोथा औषधि, ( पुं० ) ॥ ४ ॥
मोघ–निष्फल, दीन, ( पुं० )
मोघा–मोखानाम–वृक्ष, (स्त्री०)
लघु–सुंदर, निस्सार, अगुरु (छोटा), हलका, ॥ ५ ॥ ( त्रि० ) असवरग–औषधि ( स्त्री० )
लघु–काला अगर, शीघ्रता ( न० )
श्लाघा–प्रशंसा ( बडाई ), शुश्रूषा, अभिलापा ( इच्छा ), (स्त्री०)॥६॥

घतृतीयम् ।

अमोघः सफलेऽमोघा ख्याता पथ्याविडङ्गयोः ।
उल्लाघो नीरुजे दक्षे शुचौ हर्षयुते त्रिषु ॥ ७ ॥
काञ्चिघः काञ्चने पुंसि मूषके स्वच्छमण्डपे ।
निदाघ उष्णकाले स्यात्तापेऽपि स्वेदवारिणि ॥ ८ ॥
परिघो मुद्गरे योगभेदे स्वकुलघातयोः ।
पलिघः काचकलशे घटप्राकारगोपुरे ॥ ९ ॥
प्रतिघस्तु भवेत्क्रोधे प्रतिघातेऽप्यथ त्रिषु ।
महार्घः स्यान्महामूल्याऽनर्घयोर्लावके पुमान् ।
सर्वौघो गुरुवेगार्थसर्वसन्नहनार्थयोः ॥ १० ॥

इति विश्वलोचने घान्तवर्गः ॥

---

घतृतीय ।

अमोघ–सफल, ( त्रि० )
अमोघा–हरड, वायविडंग, ( स्त्री० )
उल्लाघ–रोगसे छुटाहुवा, चतुर, पवित्र, आनंदवाला, ( त्रि० ) ॥ ७ ॥
काञ्चिघ–सुवर्ण, ( पुं० ) मूँसा (चूहा), स्वच्छमंडप ( पुं० )
निदाघ–ग्रीष्म ऋतु, ताप ( गरमी ), पसीनाका पानी, ( पुं० ) ॥ ८ ॥
परिघ–लोहेका मुद्गर, विष्कम आदि योगोंमें एक योग, अपना या कुलका नाश, ( पु० )
पलिघ–काचकलश, घट, किला, पुरका दरवाजा, ( पुं० ) ॥ ९ ॥
प्रतिघ–क्रोध, प्रतिघात ( बदलेसे-मारना ) ( पु० )
महार्घ–बहुतमोलवाली वस्तु, अमूल्य ( जिसकी कीमत न होसके ), ( त्रि० ) लवा-पक्षी, ( पु० )
सर्वौघ–बहुत वेग, सबतरफसे कवच धारण, ( पुं० ॥ १० ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें घान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ ङान्तवर्गः ।

ङैकम् ।

भैरवे विषये ङः स्यात् ॥

इति विश्वलोचने ङान्तवर्गः ॥

---

## अथ चान्तवर्गः ।

चैकम् ।

चस्तु तस्करचन्द्रयोः ॥

चद्वितीयम् ।

अर्चा पूजाप्रतिमयोरुच्चो महति चोन्नते ।
कचः केशेऽपि ह्रीबेरे कचो गीष्पतिनन्दने ॥ १ ॥
कचः शुष्कव्रणे बन्धे करिण्यां तु कचा स्त्रियाम् ।
काचस्तु स्यान्मणौ शिक्ये नेत्ररोगे मृदन्तरे ॥ २ ॥
काञ्ची तु मेखलादाम्नि नीवृदन्तरगुञ्जयोः ।
कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्ये शोथश्मश्रुविकत्थने ॥ ३ ॥

---

अथ ङान्तवर्ग ।

ङैक ।

ङ—भैरव, विषय, ( भोग ) ( पुं० )
इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें ङान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ चान्तवर्ग ।

चैक ।

च—चोर, चन्द्रमा, ( पुं० )

चद्वितीय ।

अर्चा—पूजा, प्रतिमा ( मूर्त्ति ) (स्त्री०)
उच्च—बडा, ऊँचा, ( पुं० )
कच—केश ( बाल ), नेत्रबाला-औषधि, बृहस्पतिका पुत्र, ॥ १ ॥
सूखा व्रण ( घाव ), बध, ( पुं० )
कचा—हथनी, ( स्त्री० )
काच—मणि, छीका, नेत्ररोग, मिट्टीका भेद, ( पुं० ) ॥ २ ॥
कांची—करधनीकी लडी, काची-पुरी, गुंजा ( चिरमठी ) ( स्त्री० )
कूर्च—भ्रुकुटियोंके बीचका भाग, सोजा, दाढी मूछ, बकवाद, ( न० ) ॥ ३ ॥

क्रौञ्चस्तु पक्षिभेदे स्यान्नगद्वीपप्रभेदयोः ।
चञ्चो नालादिनिर्माणे चञ्चा तु तृण पूरुषे ॥ ४ ॥
चञ्चुः पञ्चाङ्गुले त्रोट्यां गोनाडीचकलिञ्चयोः ।
चर्चा तु स्थासके तर्के चर्चिकाचिन्तयोस्तले ॥ ५ ॥
त्वक् स्त्रियां वल्कलेऽपि स्याच्चर्ममात्रे गुडत्वचि ।
नीचस्तु पामरे निम्ने वामनेऽप्यभिधेयवत् ॥ ६ ॥
न्यग् निम्ने पामरे कात्स्न्र्ये पिचुः स्यात्पुंसि तूलके ।
कुष्ठे दैत्यान्तरे कर्षे भैरवस्याननान्तरे ॥ ७ ॥
प्राक् प्राच्ये वाच्यवत् काले दिग्देशे त्वव्ययं मतम् ।
मोचः सौभाञ्जने पुंसि मोचा शाल्मलिरम्भयोः ॥ ८ ॥
रुचिरिच्छा रुचा रुक्ता शोभाभिष्वङ्गयोरपि ।
रुक् शोभायां च किरणे स्त्रियामपि मनोरथे ॥ ९ ॥

---

क्रौंच–कूँज–पक्षी, एकपर्वत, एक द्वीप, ( पुं० )

चंच–नालआदिका बनाना ( सांचामें ढालना ) ( पु० )

चंचा–तृणोंसे बनाया पुरुष (डरावा) ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥

चंचु–अरंड, छोटी इलायची, शाकभेद, सूक्ष्मकाष्ठ, ( पुं० )

चर्चा–शरीरके चंदन आदिका लपेटना, तर्क, देवीविशेष, चिन्ता, तलभाग, ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥

त्वक्( च् ) वृक्षका-वक्कल, चर्म, दालचीनी या जावित्री, ( स्त्री० )

नीच–पामर ( नीचपुरुष ), नीचास्थल, बौना, ( त्रि० ) ॥ ६ ॥

न्यक्( च् )–नीचा–स्थल, पामर-पुरुष, सम्पूर्णता ( त्रि० )

पिचु–भिगोया हुआ फोया, कालावर्णवाला, दैत्यभेद, सोलहमासाप्रमाण, भैरवका मुख, ( पुं० ) ॥ ७ ॥

प्राक्( च् ) पहले होनेवाला, (त्रि०) पूर्व काल, पूर्व देश, ( अ० )

मोच–सहँजना-वृक्ष, ( पुं० )

मोचा–शाल्मलि ( साल ) वृक्ष, केलावृक्ष, ( स्त्री० ॥ ८ ॥

रुचि–रुचा–इच्छा, दीप्ति, शोभा, मिलाप, ( स्त्री० )

रुक्–शोभा, किरण, मनोरथ,(स्त्री०) ॥ ९ ॥

वचः शुके वचा तूग्रगन्धासारिकयोः स्त्रियाम् ।
वाग्भारतीगिरोर्वीचिर्द्वयोः स्वल्पतरङ्गयोः ॥ १० ॥
अवकाशे सुखे चाथ शचीन्द्राणी शतावरी ।
शुचिः पुंस्युपधाशुद्धमन्त्रिण्याषाढवर्हिषोः ॥ ११ ॥
शृङ्गारग्रीष्मयोः श्वेतमेध्यानुपहते त्रिषु ।
सूची कराद्यभिनये वेधनीशिखयोरपि ॥ १२ ॥
सूची सीमन्तिनीनां च कथिता करणान्तरे ॥ १३ ॥

चतृतीयम् ।

अवीचिर्नरके घूर्मिविरहे घूर्मिवर्जिते ।
भवेदुदक् त्रिपूदीच्ये दिग्देशकालतोऽव्ययम् ॥ १४ ॥
कणीचिः पुष्पितलतागुञ्जयो. शकटेऽपि च ।
कवचो वारवाणे स्यात्पटहे गर्दगाण्डके ॥ १५ ॥

---

वच–सूवा (तोता) पक्षी, ( पुं० ) वचा वच-औषधि, मैना-पक्षी,(स्त्री०) वाक्(चा)–सरस्वती, वाणी (वचन) ( स्त्री० )
वीचि–स्वल्प ( थोड़ा) तरङ्ग, ॥१०॥ अवकाश, सुख, ( पु० स्त्री० )
शचि–इन्द्राणी, शतावरी, ( स्त्री० )
शुचि–मन्त्रियोंके शीलकी परीक्षा, शुद्धमंत्री, आषाढ-मास, कुशा, शृङ्गार, ग्रीष्म-ऋतु, श्वेत रंग, पवित्र, अच्छा, ( त्रि० ) ॥ ११ ॥
सूची–हाथ आदिसे भाव बताना,सुई, शिखा ( चोटी ) ॥ १२ ॥ स्त्रियोंका करण ( हावभेद ) (स्त्री०) ॥ १३ ॥

चतृतीय ।

अवीचि–नरक,तरंगोंका वियोग, तरंगवर्जित तडाग आदि, ( त्रि० )
उदक्–उत्तरमें होनेवाला ( त्रि० ) उत्तरदिशा, उत्तरदेश, उत्तरकाल ( अ० ) ॥ १४ ॥
कणीचि–फूलीहुई वेल, चिरमठी, गाडी, ( स्त्री० )
कवच–कवच, ढोल, बडीहरड, ( पु० ) ॥ १५ ॥

क्रकचः करपत्रेऽपि ग्रन्थिलाख्यमहीरुहे ।
नमुचिर्मदने दैत्ये नाराचो जलहस्तिनि ॥ १६ ॥
लोहबाणेऽपि नाराचो नाराची स्यात्तुलान्तरे ।
प्रत्यक् प्रतीच्ये दिग्देशकाले तु मतमव्ययम् ॥ १७ ॥
स्यात्प्रपञ्चस्तु विस्तारे सञ्चये च प्रतारणे ।
मरीचिर्नाचयोर्दीप्तौ मुनौ ना कृपणेऽपि च ॥ १८ ॥
मारीचो याजकद्विजे कक्कोले राक्षसान्तरे ।
मरीचो देवताभेदे प्रफुल्ले विकचस्त्रिषु ॥ १९ ॥
केशशून्ये च ह्रीके तु पुंसि केतुग्रहेऽपि च ।
विपञ्ची वल्लकीकेल्योः सङ्कोचं कुङ्कुमे मतम् ॥ २० ॥
सङ्कोचो मत्स्यभेदेऽपि सङ्कोचो बन्धनेऽपि च ।
सत्यवत्सत्ययोः सम्यक् सम्यक् सङ्गतहृद्ययो. ॥ २१ ॥

---

क्रकच–करौंत, कैर वृक्ष, (पु० )
नमुचि–कामदेव, एक दैत्य, (पुं० )
नाराच–जलहस्ती ( हाथीकेस्वरूपका जलचर जीव ) ॥ १६ ॥ लोहबाण, (पुं० ) तोलनेका छोटा काटा, (स्त्री० )
प्रत्यक्–पश्चिममें होनेवाला (त्रि० ) पश्चिमदिशा पश्चिमदेश, पश्चिमकाल, (अ० ) ॥ १७ ॥
प्रपंच–विस्तार, सञ्चय (संग्रह ), ठगना, (पुं )
मरीचि–दीप्ति किरण (पुं० स्त्री० ) मुनि, कृपण, (पुं० ) ॥ १८ ॥
मारीच–यज्ञकरानेवाला ब्राह्मण, कंकोल, एक राक्षस, (पुं० )
मरीच–देवताभेद, (पुं० ) ॥ १९॥
विकच–प्रफुल्लित, (त्रि० ) केशरहित, मुनि, ध्वजा, केतु ग्रह, (पुं०)
विपंची–वीणा, क्रीडा, (स्त्री० )
संकोच–केसर (न० ) ॥ २० ॥ मत्स्यभेद, बन्धन, (पुं० )
सम्यक्–सत्य बोलनेवाला, सत्य, सगत (यथार्थ ), सुंदर, (त्रि०) ॥ २१ ॥

चचतुर्थम् ।

काकचिञ्ची तुलाबीजे वारिक्रिमिदिलीरयोः ।
जलसूचिर्जलौकायां शृङ्गाटे शिशुमारके ॥ २२ ॥
कङ्कत्रोटौ झषे चाथ चोरे वह्नौ मलिम्लुचः ।
अमावास्याद्वयं यत्र सोऽपि मासो मलिम्लुचः ॥ २३ ॥

चपंचमम् ।

रतनारीच-शब्दोऽयं कुक्कुरे रतिवल्लभे ।
परीरम्भे समुद्भूतशीत्कारे च वरस्त्रियाः ॥ २४ ॥

इति विश्वलोचने चान्तवर्गः ॥

---

## अथ छान्तवर्गः ।

छैकम् ।

छश्छेदकार्कयोश्छा च च्छिदि छं लाञ्छनाऽच्छयोः ।

---

चचतुर्थ ।
काकचिंची—धुंघुची, जलकी क्रिमि, मुंडफोड, ( स्त्री० )
जलसूचि—जोक, सिंघाडा, मच्छभेद ( शिशुमार ) ॥ २२ ॥ सफेदचीलकी चोंच, मत्स्य-मात्र, ( पुं० स्त्री० )
मलिम्लुच—चोर, अग्नि, जिसमासमें दो अमावास्या हों वह मास, ( पुं० ) ॥ २३ ॥

चपंचम ।
रतनारीच—कुत्ता, कामी पुरुष, शीत्कार शब्दवाला श्रेष्ठस्त्रीका सम्भोग ( पु ) ॥ २४ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें चान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ छान्तवर्गः ।
छैक ।
छ—छेदनकरनेवाला, सूर्य, ( पुं० )
छा—छेदनकरना, ( स्त्री० )
छ—कलंक, स्वच्छ, ( न० ) ।

छद्वितीयम् ।

अच्छाव्ययमाभिमुख्ये अच्छस्फटिकयोः पुमान् ।
अच्छः स्वच्छेऽन्यलिङ्गः स्यात्कच्छः शैलादिसीमनि ॥ १ ॥
नौकाङ्गे तुन्नकेऽनूपे परिधानाञ्चलान्तरे ।
कच्छा तु चीरिकायां स्याद् वाराह्यामपि दृश्यते ॥ २ ॥
गुच्छः स्तबके हारभेदे गुच्छः स्तम्बकलापयोः ।
स्यात्पिच्छमस्त्रियां पुच्छे पिच्छा शाल्मलिवेष्टके ॥ ३ ॥
पङ्क्तौ पूगच्छटाकोशेमण्डेष्वश्वपदामये ।
विज्जुलेऽप्यथ पुच्छः स्यात्पिच्छपश्चात्प्रदेशयोः ॥ ४ ॥
म्लेच्छोऽपभाषणे जातिभेदे पापरतेऽपि च ।

छचतुर्थम् ।

अथ पुंसि महाकच्छः सरिन्नाथप्रचेतसि ॥ ५ ॥

इति विश्वलोचने छान्तवर्गः ॥

---

छद्वितीय ।

अच्छा(च्छ)–सम्मुख करना, (अ०) रीछ (भालू), स्फटिक मणि,(पु०) स्वच्छपदार्थमें उसके लिंगवाला, (त्रि०)

कच्छ–पर्वत आदिकी सीमा, ॥ १ ॥ नौकाका भाग, तून वृक्ष, बहुतजलवाला देश, धोती आदि वस्त्रका एक भाग, (पु०)

कच्छा–चीरिका (ची ची शब्दकरनेवाला कीट), वाराहीकद (स्त्री०) ॥ २ ॥

गुच्छ–पुष्पआदिकोंका गुच्छा, हारभेद, झाड, मोरकी पूंछ आदि (पुं०)

पिच्छ–बैल आदिकी पूछ, (पुं० न०)

पिच्छा–शालका गोद ॥ ३ ॥ पंक्ति, सुपारी, छवि, कोश, माड, घोडेके पैरका रोग, दालचीनी, (स्त्री०)

पुच्छ–मोरकी पुच्छ, पिछलाभाग, (पु०) ॥ ४ ॥

म्लेच्छ–बुरा बोलना, जातिभेद, पापी मनुष्य (पुं०)

छचतुर्थ ।

महाकच्छ–समुद्र, वरुण, (पु०)॥५॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें छातवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ जान्तवर्गः ।

### जैकम् ।

जः स्याज्जविनि जोद्भूतौ जयने जिः प्रकीर्तितः ।
जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जविने त्रिषु ॥ १ ॥

### जद्वितीयम् ।

अजः कृष्णे सरहरे विधौ छागे रघोः सुते ।
अब्जो धन्वन्तरौ चन्द्रे निचुले क्लीवमम्बुजे ॥ २ ॥
अब्जी कम्बुन्यथाऽऽजिः स्यात्सङ्ग्रामेऽपि समक्षितौ ।
उत्साहे कार्त्तिकेप्यूर्जस्तूर्जा वीर्ये बले द्वयो. ॥ ३ ॥
कञ्जः केशे विरिञ्चेऽपि कञ्जं पीयूषपद्मयोः ।
कुजस्तु नरकेऽङ्गारे द्रुमे कुञ्जं तु न स्त्रियाम् ॥ ४ ॥

---

**अथ जान्तवर्गः ।**

**जैक ।**

ज–वेगवाला, ( पुं० )
जा–उत्पत्ति, ( स्त्री० )
जि–जीतना ( स्त्री० )
जू–आकाश, सरस्वती, पिशाची, वेगवाला, ( त्रि० ) ॥ १ ॥

**जद्वितीय ।**

अज–कृष्ण, महादेव, ब्रह्मा, बकरा, रघुराजाका पुत्र, ( पु० )
अब्ज–धन्वंतरि, चन्द्रमा, वेतस-वृक्ष, ( पुं० ) कमल, ( न० ) शंख, ( पुं० न० ) ॥ २ ॥
आजि–संग्राम, सम ( बराबर ) पृथ्वी, ( स्त्री० )
ऊर्ज(र्जा)–उत्साह ( हर्ष ), कार्त्तिकमास, ( पु० ) वीर्य, बल, ( पुं० स्त्री० ) ॥ ३ ॥
कंज–केश, ब्रह्मा, ( पुं० )
कञ्ज–अमृत, कमल, ( न० )
कुज–भौमासुर, मगल-ग्रह, वृक्षमात्र, ( पुं० ) ॥ ४ ॥
कुंज–ठोडी, वत्स ( छाती ), कुंज ( लता आदिका घर ) ( पुं० न० )

हनौ वत्से निकुञ्जेऽपि कुब्जो न्युब्जे द्रुमान्तरे ।
स्त्रियां तु खर्जूः खर्जूरवृक्षे कण्डूतिकीटयोः ॥ ५ ॥
खनौ सुरागृहे गञ्जा भाण्डागारे तु न स्त्रियाम् ।
गञ्जने पुंसि खजा तु मन्थे दर्वीप्रहस्तयोः ॥ ६ ॥
गुञ्जा तु काकचिञ्च्यां स्यात्पटहे च कलध्वनौ ।
द्विजो विप्रेऽण्डजे दन्ते भार्ङ्गीरेणुकयोर्द्विजा ॥ ७ ॥
ध्वजोऽस्त्री लिङ्गखट्वाङ्गपताकाचिह्नशौण्डिके ।
निजस्त्रिषु स्वके नित्ये न्युब्जो दर्भस्रुचि स्मृतः ॥ ८ ॥
न्युब्जं तु कर्मरङ्गे स्यात् कुब्जाधोमुखयोस्त्रिषु ।
पिञ्जो वधे वले पिञ्जं पिञ्जा तूलहरिद्रयोः ॥ ९ ॥
व्याकुले वाच्यवत्पिञ्जः प्रजा सन्तानलोकयोः ।
भुजो भुजा च बाहौ स्यात् पाणिमात्रेऽपि तावुभौ ॥ १० ॥

---

कुब्ज–कूबडा, वृक्षभेद, (पुं० )
खर्जू–खजूर-वृक्ष, खुजली, कीटविशेप, (स्त्री० ) ॥ ५ ॥
गंजा–खान–चादी आदिकी, मदिराका घर, (स्त्री० ) भाडागार (पु० न० ) तिरस्कार, (पु० )
खजा–दधिआदि मथनेका डॉडा, कड्छी, चपेटा (स्त्री० ) ॥ ६ ॥
गुंजा–घुँघुची, ढोल, सूक्ष्मध्वनि(स्त्री०)
द्विज–ब्राह्मणआदिवर्ण, पक्षी, दाँत, (पु० )
द्विजा–भारगी–औषधि,
मटर–अन्न (स्त्री० ) ॥ ७ ॥
ध्वज–लिंग, शिवका अस्त्र, पताका (ध्वजाभेद), चिह्न, मदिरा वेचनेवाला, (पुं० न० )
निज–अपना, नित्य, (त्रि० )
न्युब्ज–दर्भका (कुशाका) स्रुक् (यज्ञपात्र, (पुं०) ॥ ८ ॥ कमरख वृक्ष या फल, (पुं० न० ) कूबड़ा, नीचेको मुखवाला, (त्रि० )
पिंज–मारना (पु० ) वल, (न० )
पिंजा–रुई, हलदी, (स्त्री०) ॥ ९ ॥
पिंज–व्याकुल, (त्रि० )
प्रजा–संतान, स्त्रीपुरुषमात्र जन, (स्त्री० )
भुज–भुजा—बाहु, हस्तमात्र, (पुं० स्त्री० ) ॥ १० ॥

मर्जुस्तु रजके पुंसि मर्जूः शुद्धावपि स्त्रियाम् ।
रज्जुर्वेण्यां गुणेऽपि स्याद् राजिः स्त्री पङ्क्तिरेखयोः ॥ ११ ॥
रुजा रोगेऽपि भङ्गेऽपि लञ्जः स्यात्पट्टकच्छयोः ।
लाजाः स्युर्भृष्टधान्येषु लाजः स्यादार्द्रतण्डुले ॥ १२ ॥
उशीरे लाजमुद्दिष्टं वाजः पक्षे स्वदेऽपि च ।
मुनिभेदे स्वने वाजं त्वाज्ये यज्ञान्नपाथसोः ॥ १३ ॥
वीजं हेतावुपादानेप्यङ्कुरेऽपि च रेतसि ।
वीजमल्पेऽपि तत्त्वेऽपि व्याजः साध्याऽपदेशयोः ॥ १४ ॥
सर्जूर्वणिजि पुंसि स्यात्सर्जूः स्याद्विद्युति स्त्रियाम् ।
सन्नद्धे संभृते सज्जः सञ्जः शम्भुविरिञ्चयोः ॥ १५ ॥
स्वजः स्वेदे स्वजं रक्तेऽपत्ये च स्वजमन्यवत् ।

जतृतीयम् ।

अङ्गजः केशकन्दर्पे पदे पुत्रे गदे स्वजे ॥ १६ ॥

---

मर्जु—धोबी, ( पुं० )
मर्जू—शुद्धि, ( स्त्री० )
रज्जु—वेणी ( गुथी हुई बालोंकी लटी ), रस्सी, ( स्त्री० )
राजि—पंक्ति, रेखा, ( स्त्री० ) ॥११॥
रुजा—रोग, टूटना, ( स्त्री० )
लञ्ज—पट्टा, धोती टाकनेका भाग, ( पुं० )
लाज—भूना हुवा धान, ( पुं० बहुवचनान्त ) गीले तण्डुल ( पुं० एकवचनात ) ॥ १२ ॥
लाज—खस, ( न० )
वाज—पक्ष, वेग, मुनिभेद, शब्द, ( पु० ) घृत, यज्ञका अन्न, जल, ( न० ) ॥ १३ ॥
वीज—हेतु, उपादानकारण, आधान, अकुर, वीर्य, अल्प, तत्त्व, ( न० )
व्याज—निशाना, अपदेश, ( बहाना ) ( पुं० ) ॥ १४ ॥
सर्जू—वणिक, ( पुं० )
सर्जू—विजली ( स्त्री० )
सज्ज—कवचधारी पुरुष, भराहुवा, ( पुं० )
सञ्ज—महादेव, ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥१५॥
स्वज—पसीना ( पुं० ) रक्त, ( न० ) अपत्य ( सतान ) ( त्रि० )

जतृतीय ।

अंगज—केश, कामदेव, चिह्न, पुत्र, रोग, पसीना, ( पु० ) ॥ १६ ॥

अङ्कजं रुधिरेऽथ स्यादण्डजः पक्षिमीनयोः ।
कृकलासे भुजङ्गे च कस्तूर्यामण्डजाऽपि च ॥ १७ ॥
अम्बुजो निचुले पुंसि क्लीवं तु सरसीरुहे ।
कम्बोजो देशमातङ्गशंखभेदेषु देशितः ॥ १८ ॥
करजस्तु करञ्जे स्यादपि व्याघ्रनखे नखे ।
काम्बोजः सोमवल्के स्याच्छङ्खपुन्नागवाजिषु ॥ १९ ॥
माषपर्णीहिङ्गुपर्ण्योः काम्बोजी तद्भवे त्रिषु ।
कारुजः शिल्पिनां चित्रे स्वयञ्जाततिलेऽपि च ॥ २० ॥
वल्मीके गैरिके फेने कलभे नागकेशरे ।
कुटजः शाखिनाम्भेदे स्याद्द्रोणे कुम्भसम्भवे ॥ २१ ॥
गिरिजा शैलतनयामातुलिङ्ग्योरुदाहृता ।
गिरिजं त्वभ्रके लौहे शिलाजतुसुगन्धयोः ॥ २२ ॥

---

रुधिर, ( न० )
अंडज–पक्षी, मच्छी, गिरगट, सर्प, ( पुं० )
अंडजा–कस्तूरी, ( स्त्री० ) ॥ १७ ॥
अंबुज–वेतसवृक्ष, ( पुं० ) कमल ( न० )
कंबोज–देशभेद, हस्तीभेद, शंखभेद, ( पुं० ) ॥ १८ ॥
करज–करञ्जुवा वृक्ष, वघेराका नख, नख, ( पुं० )
कांबोज–कायफल, शंख, चंपा, अश्व, ( पुं० ) ॥ १९ ॥
कांबोजी–वनमाष या मशवन, हींग-पत्री, या वंशपत्री ( स्त्री० ) इनसे उत्पन्न होनेवाला ( त्रि० )
कारुज–शिल्पियोंका चित्र, स्वयं उत्पन्नहुवा तिल ॥ २० ॥ बावी, गेरू, झाग, हाथीका बच्चा, नाग-केसर, ( पुं० )
कुटज–कूडा-वृक्ष, वनकाक, अगस्त्य-मुनि, ( पुं० ) ॥ २१ ॥
गिरिजा–पार्वती, वनबीजपूर या वि-जोरनींबू, ( स्त्री० )
गिरिज–भोडल, लोहा, शिलाजीत, गन्धक, ( न० ) ॥ २२ ॥

जलजं पङ्कजे शङ्खे नीरजं पद्मकुष्ठयोः ।
परञ्जस्तैलयन्त्रासिफेनेषु छुरिकाफले ॥ २३ ॥
वणिक् पुंस्येव वाणिज्यजीवके करणान्तरे ।
वाणिज्ये तु वणिक् स्त्रीत्वे वलजा वल्गयोषिति ॥ २४ ॥
क्षितौ तु वलजं तु स्यात्क्षेत्रसस्यादिगोपुरे ।
स्याद्भूमिजा तु जानक्या भूमिजो नरके कुजे ॥ २५ ॥
वनजा मुद्गपर्ण्यां स्याद् वनजो गजमुस्तयोः ।
वनजं पद्मजे क्लीबं वाच्यवद्वनसम्भवे ॥ २६ ॥
बाहुजः क्षत्रिये स्यात् स्वयञ्जाततिले शुके ।
सहजस्तु निसर्गे स्यात्सहजातेऽन्यलिङ्गकः ॥ २७ ॥
सामजः सामसम्भूते वाच्यलिङ्गः पुमान् गजे ।
हिमजा पार्वतीशच्योर्मैनाके हिमजः पुमान् ॥ २८ ॥

---

जलज—कमल, शख, ( न० )
नीरज—कमल, कूट-औषधि, ( न० )
परंज—तेलनिकालनेका यत्र, तलवार, झाग, छुरीका अग्रभाग, ( पु० ) ॥ २३ ॥
वणिज्(क्)—वाणिज्यसे जीनेवाला, करणभेद, ( पुं० )
वणिज्(क्)—वाणिज्य, (स्त्री०)
वलजा—श्रेष्ठस्त्री, पृथ्वी, (स्त्री०) ॥२४॥
वलजा-क्षेत्र, सस्य (खेती) आदि, पुरदरवाजा, ( न० )
भूमिजा—सीता, ( स्त्री० )
भूमिज—भौमासुर-दैत्य, मंगलग्रह ( पुं० ) ॥ २५ ॥
वनजा—वनमुद्ग, ( स्त्री० )
वनज—हस्ती नागरमोथा, ( पुं० ) कमल ( न० ) वनमें होनेवाला द्रव्य (त्रि० ) ॥ २६ ॥
बाहुज—क्षत्रिय, स्वय उत्पन्न हुवा-तिल, सूवा ( तोता ) पक्षी, (पुं०)
सहज—स्वभाव, ( पु० ) साथ उत्पन्नहुवा, ( त्रि० ) ॥ २७ ॥
सामज—सामसे उत्पन्नहुवा, ( त्रि० ) हस्ती, ( पुं० )
हिमजा—पार्वती, इन्द्राणी, ( स्त्री० )
हिमज—मैनाक नाम पर्वत, ( पु० ) ॥ २८ ॥

जचतुर्थम् ।

अहिभुग् विनतापुत्रे मेघनादानुलासिनि ।
काश्मीरजा चाऽतिविषाकुष्ठकुङ्कुमपुष्करे ॥ २९ ॥
ग्रहराजः शशिन्यर्केऽनुजे शूद्रे जघन्यजः ।
द्विजराजो निशानाथे विनतात्मजशेषयोः ॥ ३० ॥
धर्म्मराड्यमराजौ द्वौ यमे बुद्धे युधिष्ठिरे ।
भरद्वाजो गुरुसुते व्याघ्राटाभिख्यपक्षिणि ॥ ३१ ॥
भारद्वाजो मुनौ चोग्रे स्त्रिया कार्प्पासिकान्तरे ।
भृङ्गराजस्तु मधुपे मार्कवे विहगान्तरे ॥ ३२ ॥
यक्षराट् त्र्यंबकसखे मल्लानां रङ्गचत्वरे ।
राजराजस्तु धनदे सार्वभौममृगाङ्कयोः ॥ ३३ ॥
क्षीराब्धिजः शशधरे श्रिया क्षीराब्धिजा स्त्रियाम् ।
क्षीराब्धिजं तु सामुद्रलवणे मौक्तिकेऽपि च ॥ ३४ ॥

जचतुर्थ ।

अहिभुज् (क्) गरुड, मोर (पु० )
काश्मीरजा–अतीस, ( स्त्री० )
काश्मीरज–कूट, केसर, कमल, ( न० ) ॥ २९ ॥
ग्रहराज–चंद्रमा, सूर्य, ( पुं० )
जघन्यज–छोटाभ्राता, शूद्र, ( पुं० )
द्विजराज–चंद्रमा, गरुड, शेप नामसर्प ( पुं० ) ॥ ३० ॥
धर्मराज् (द्)–यमराज–धर्मराज, बुद्ध, युधिष्ठिर, ( पुं० )
भरद्वाज–बृहस्पतिका पुत्र, व्याघ्रट ( कुकडकोंवा ) पक्षी ( पु० )॥३१॥
भारद्वाज–मुनि, उग्र, ( पुं )
भारद्वाजी–वनकपास ( स्त्री० )
भृंगराज–भौंरा, भँगरा-औषधि, पक्षीविशेष, ( पुं० ) ॥ ३२ ॥
यक्षराट् (ज्) कुवेर, मल्लोंका अखाडा, ( पुं० )
राजराज–कुवेर, चक्रवर्ती राजा, चंद्रमा, ( पुं० ) ॥ ३३ ॥
क्षीराब्धिज–चंद्रमा, ( पु० )
क्षीराब्धिजा–लक्ष्मी ( स्त्री० )
क्षीराब्धिज–समुद्रनमक, मोती, ( न० ) ॥ ३४ ॥

जपञ्चमम् ।

ऋषभध्वजशब्दोऽसौ शङ्करेप्यर्हदन्तरे ।
अगस्तौ च हरीतक्यां लङ्घने मुनिभेषजम् ॥ ३५ ॥

इति विश्वलोचने जान्तवर्ग ॥

---

## अथ झान्तवर्गः ।

झैकम् ।

झकारस्त्वारवायौ स्यान्नष्टेऽपि कचिदिष्यते ।

झद्वितीयम ।

झञ्झा ध्वनिविशेषे स्याज्झञ्झाणुजलवर्षणे ॥ १ ॥

इति विश्वलोचने झान्तवर्ग ।

---

## अथ ञान्तवर्गः ।

ञैकम् ।

ञकारस्तु कचित्ख्यातो गायने घर्घरध्वनौ ।
ज्ञः पण्डिते बुधे वेधस्यज्ञो मूढे जडे त्रिषु ॥ १ ॥

---

जपञ्चम ।

ऋषभध्वज—महादेव, प्रथमजिनेन्द्र (पुं०)

मुनिभेषज—हथिया वृक्ष, हरड, लंघन, (न०) ॥ ३५ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें जान्तवर्ग समाप्त हुवा ।

---

अथ झान्तवर्गः ।

झैक ।

झ—तीव्रवायु, नष्ट, (पुं०)

झद्वितीय ।

झञ्झा—ध्वनिविशेष, अल्प जलकी वर्षा, (स्त्री०) ॥ १ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें झान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ ञान्तवर्गम् ।

ञैक ।

ञ—गाना, घर्घर ध्वनि, (पुं०)

ज्ञ—पण्डित, बुध ग्रह, ब्रह्मा, (पु०)

ञद्वितीय ।

अज्ञ—मूढ, जड, (त्रि०) ॥ १ ॥

ञद्वितीयम् ।

प्रज्ञा तु बुद्धौ प्राज्ञस्तु पण्डिते वाच्यलिङ्गकः ।
प्रज्ञुश्चप्रज्ञश्च तथा ख्यातः प्रगतजानुके ॥ २ ॥
सञ्ज्ञा नामनि गायत्र्यां चेतनारवियोषितोः ।
अर्थस्य सूचनायां च हस्तमस्तकलोचनैः ॥ ३ ॥

ञतृतीयम् ।

कृतज्ञः सारमेयेपि वाच्यवत्कृतवेदिनि ।
स्त्रियामीक्षणिकायां स्याद्दैवज्ञो गणके पुमान् ॥ ४ ॥
सर्वज्ञः सुगते शम्भौ क्षेत्रज्ञो नागरात्मनोः ।

इति विश्वलोचने ञान्तवर्गः ।

---

## अथ टान्तवर्गः ।

टैकम् ।

टा पृथिव्यां ध्वनौ टः स्यात्करङ्के टं नपुंसकम् ॥ १ ॥

---

प्रज्ञा–बुद्धि ( स्त्री० )
प्राज्ञ–पण्डित,( त्रि० )
प्रज्ञु-प्रज्ञ–जिसके घोंटुवोंमें बहुत फासला हो वह, ( पुं० ) ॥ २ ॥
संज्ञा–नाम, गायत्री, बुद्धि, सूर्यकी स्त्री, हाथ मस्तक नेत्र आदिकोंसे अभिप्रायका बताना, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

ञतृतीय ।

कृतज्ञ–कुत्ता, ( पु० ) कियेहुए उपकारको जाननेवाला, ( त्रि० )
दैवज्ञा–शुभाशुभलक्षण बतानेवाली ( स्त्री० )
दैवज्ञ–ज्योतिषिक, (पु) ॥ ४ ॥
सर्वज्ञ–बुद्ध, महादेव, ( पु० )
क्षेत्रज्ञ–चतुर, आत्मा, ( पुं० )

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें ञान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ टान्तवर्ग ।

टैक ।

टा–पृथ्वी, ( स्त्री० ) ट ध्वनि, (पु)
टं–करक ( अस्थिपजर ) (न०) ॥१॥

टद्वितीयम्

अट्टं गृहान्तरे क्षौमे शुष्के चात्यल्पभक्तयोः ।
इष्टो ना यागसंस्कारयोगयोः क्रतुकर्मणि ॥ २ ॥
क्लीव त्रिषु प्रियतमे पूज्येप्याशंसितेपि च ।
इष्टिर्यागार्च्चनेच्छासु संग्रहश्लोकसूर्ययोः ॥ ३ ॥
कटुः पुंसि रसे क्लीवं कटु कार्येपि दूषणे ।
प्रियङ्गुराजिकाऽशोकरोहिणीकटुकासु च ॥ ४ ॥
स्त्रिया कटु त्रिष्वप्रिये ना सुगन्धौ मत्सरेऽपि च ।
कटः श्रोणौ शवेत्यल्पे किलिञ्जगजगण्डयोः ॥ ५ ॥
श्मशानेऽपि क्रियाकारेऽप्यद्भुतेपि कटाऽव्ययम् ।
कटी स्यात्कटिभागध्योः कष्टं गहनकृच्छ्रयो. ॥ ६ ॥
कुटो घटे शिलाकुट्टे कुटी वेश्मनि तु द्वयोः ।
कुटी तु स्यात्पयोदास्या सुराया चित्रगुच्छके ॥ ७ ॥

---

टद्वितीय ।

अट्ट—अटारी, रेसमी वस्त्र, सूखाहुवा द्रव्य, अत्यल्प, भात, ( त्रि० )

इष्ट—यज्ञसस्कार, योग, ( पु० ) यज्ञ-कर्म, ( न० ) ॥ २ ॥ अति प्रिय, पूज्य, वाञ्छित, ( त्रि० )

इष्टि—यज्ञ, पूजन, इच्छा, सग्रहश्लोक, सूर्य, ( स्त्री० पु० ) ॥ ३ ॥

कटु—कटु-रस, ( पुं० ) दूषित—कार्य, कगनी धान्य, राई, अशोकवृक्ष, एकप्रकारकी हरड,कुटकी(स्त्री०)॥४ अप्रिय ( त्रि० ) सुगन्धवाला द्रव्य, मत्सरीपुरुष ( पुं० )

कट—कटि-भाग, मुर्दा, अति अल्प, बासका बोराट, हस्तीका गंडस्थल, ॥ ५ ॥ श्मशान ( जहा मुर्दे फूकते हैं ) क्रियाकरानेवाला, ( पु० )

कटा—अद्भुत ( अ० )

कटी—कटि-भाग, छोटीपीपल, (स्त्री०)

कष्ट—वन, कष्ट ( दुःख ) ( न० ) ॥ ६ ॥

कुट—घडा-मिट्टीका, हथौडा, ( पुं० )

कुटी—घर ( मकान ) ( पुं० स्त्री० ) जललानेवाली दासी, मदिरा, चित्रगुच्छा, ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥

कूटोऽस्त्री राशिपूर्द्वारदम्भमायाऽनृतेष्वपि ।
तुच्छेऽद्रिशृङ्गेसीराङ्गे यन्त्रायोघननिश्चले ॥ ८ ॥
कृष्टिर्बुधे ना कर्षेऽस्त्री कोटिः संङ्ख्यान्तराग्रयोः ।
अत्युत्कर्षप्रकर्षाश्रिकार्मुकाग्रेषु च स्त्रियाम् ॥ ९ ॥
क्रुष्टं तु रोदने रावे कृष्टिः स्यात्कृशसेवयोः ।
खटोऽन्धकूपे टङ्के च खटः श्लेष्मचपेटयोः ॥ १० ॥
खाटिः स्त्रियां शवरथे खाटिरेकग्रहे किणे ।
खेटस्तु निन्दिते ग्रामभेदेऽपि वसुनन्दके ॥ ११ ॥
गृष्टिरेकप्रसवगोवराहक्रान्तयोः स्त्रियाम् ।
विष्णुक्रान्तौपधौ घृष्टिर्घोण्टा वदरपूगयोः ॥ १२ ॥
चटुश्चाटौ पिचिण्डे च व्रतिनामासने चटुः ।
चाटश्चाटे च धूर्ते च मूलमांसिकयोर्जटा ॥ १३ ॥

---

कूट–राशि (ढेर), पुरदरवाजा, दंभ (पाखंड), माया, असत्य, तुच्छ, पर्वतशिखर, हलका एक अंग, यंत्र, लोहमुद्गर, निश्चल, (पुं० ) ॥ ८ ॥

कृष्टि–पण्डित, (पुं० ) आकर्ष (खैंचना) (पुं० न० )

कोटि–कोटि-संख्या, अग्र-भाग, अति उत्कर्ष, प्रकर्ष (उन्नति), कोण, धनुषका अग्रभाग (स्त्री० ) ॥ ९ ॥

क्रुष्ट–रोना, शब्द, (न० )

कृष्टि–दुबला, सेवा, (स्त्री० )

खट–अन्धाकूवा, पत्थरफोडनेकी टाकी, कफ, चपेटा (थप्पड) लगाना, (पु० ) ॥ १० ॥

खाटि–मुर्देकी तखती, एकग्रह, आटन (जोकसी आदिके डाडेके रगडनेसे हाथमे होजाताहैं) (स्त्री०)

खेट–निंदित, ग्रामभेद, वसुभेद, विष्णुखड्ग (पुं० ) ॥ ११ ॥

गृष्टि–एकवार व्याईहुई गौ, वराह क्रान्ता नाम औषधि, (स्त्री० )

घृष्टि–विष्णुक्रान्ता औषधि, (स्त्री० )

घोण्टा–बेर–झाडीफल, सुपारी, (स्त्री० ) ॥ १२ ॥

चटु–प्रियवाक्य, पेट, (उदर), व्रतियोंका आसन, (पु० )

चाट–चाट (विश्वासदेकर धनठगनेवाला), धूर्त, (पुं० )

जटा–मूल (जड), जटामासी, (स्त्री०) ॥ १३ ॥

झाटो निकुञ्जे कान्तारे व्रणसंमार्जने वने ।
त्रुटिस्त्वपचये लेशे सूक्ष्मैलायां च संशये ॥ १४ ॥
कालमानेऽप्यथ त्रोटिः स्त्री चञ्चुमीनकट्फले ।
त्वष्टा वर्द्धकिगीर्वाणशिल्पिनोस्तिग्मधामनि ॥ १५ ॥
दिष्टिर्मुदि परीमाणे दिष्टः कालोपदिष्टयोः ।
दिष्टं भाग्येथ दृष्टिः स्यान्नेत्रदर्शनबुद्धिषु ॥ १६ ॥
धटः शुद्धितुलाया स्याद् धटी खण्डे च वाससः ।
नटी हट्टविलासिन्यां नटः शैलूषशोणयोः ॥ १७ ॥
पटः शोभनचेले स्यात्पुरस्कारपियालयोः ।
पटुर्वाग्मिनि नीरोगे तीक्ष्णे दक्षे स्फुटे त्रिषु ॥ १८ ॥
पटुः पुंसि पटोले स्त्री छत्रायां लवणे पटु ।
पट्टः पेषणपाषाणे फलकेऽपि चतुष्पथे ॥ १९ ॥

---

झाट—कुंज (लता आदिकोंकी (कुटी), दुर्गमस्थान, व्रण (घाव)का झारना, वन, (पुं० )
त्रुटि—अपचय ( घटना ), स्वल्प, छोटी इलायची, संदेह, ॥ १४ ॥ कालप्रमाण, ( स्त्री० )
त्रोटि—पक्षीकी चोंच, मच्छी,कायफल-औषधि, ( स्त्री० )
त्वष्टा-बढई, देवताओंका कारीगर, सूर्य ( पुं० ) ॥ १५ ॥
दिष्टि—आनंद, परिमाण, ( स्त्री० )
दिष्ट—काल, उपदेशकियाहुआ, ( पुं० )
दिष्ट—भाग्य, ( न० )
दृष्टि—नेत्र, दर्शन, बुद्धि (स्त्री०) १६
धट—शुद्धि ( सौगन आदिसे ) विश्वास, तराजू, ( पुं० )
धटी—वस्त्रका टांज, ( स्त्री० )
नटी—नटी-गंधद्रव्य, या हलदी,(स्त्री०)
नट—नाटककरनेवाला, अशोक वृक्ष ( पुं० ) ॥ १७ ॥
पट—सुंदरवस्त्र, पुरस्कार ( सँवारना ), चिरोंजी-वृक्ष, ( पुं० )
पटु—बहुतबोलनेवाला, नीरोग, तीक्ष्ण, चतुर, स्पष्ट, ( त्रि० ) ॥ १८ ॥
पटु—परवल शाक ( पुं० ) सोआ-शाक या गोंफ,(स्त्री०) नमक (न०)
पट्ट—पीसनेका पत्थर, ढाल, चौराहा, ॥ १९ ॥

व्रणादिबन्धराजादिशासनासनभेदयोः ।
पट्टी भालविभूषायां पट्टी लाक्षाप्रसादने ॥ २० ॥
पट्टिः पटविभेदे स्याद् वल्गुलौ कुम्भिकाद्रुमे ।
पुष्टिः स्यात्पोषणे वृद्धौ फटा तु फणदम्भयोः ॥ २१ ॥
तटेऽश्रमकृते फाण्टं वटस्तु स्याद्गुणे त्रिषु ।
वटो वराटन्यग्रोधे वर्त्तिकायां वटी मता ॥ २२ ॥
वीरे पामरभेदे ना भटः स्त्री प्रगमे भटिः ।
भृष्टिस्तु भर्जने शून्यवाटिकायामपि स्त्रियाम् ॥ २३ ॥
मुष्टिर्वद्धकरे पुंसि स्त्रियामपि तथा पले ।
म्लिष्टं स्याद्वाच्यवन्म्लाने म्लिष्टमव्यक्तभाषणे ॥ २४ ॥
यष्टिः शस्त्रान्तरे हारे हारे हारात्परेऽपि च ।
भार्ङ्ग्यां च मधुपर्ण्यां च ध्वजदण्डे तु पुंस्ययम् ॥ २५ ॥

---

घावके बांधनेका वस्त्र, राजा आदिका हुकुम (पट्टा), आसनभेद (तखत या सिंहासन), (पु०)

पट्टी-मस्तकका भूषण, लोध-वृक्ष, (स्त्री०) ॥ २० ॥

पट्टि-वस्त्रभेद, वाघुल-पक्षी, पाडर-वृक्ष, (स्त्री०)

पुष्टि-पोषण, वृद्धि, (स्त्री०)

फटा-सर्पका फण, दम्भ (पाखंड) (स्त्री०) ॥ २१ ॥

फांट-तट, विनापरिश्रमकियाहुवा, (न०)

वट-रस्सी आदि, (त्रि०) कौडी, वड-वृक्ष, (पुं०)

वटी-वत्ती दीपककी (स्त्री०) ॥२२॥

भट-वीर-नीचभेद (पुं०)

भटि-वेगसे गमन करना (स्त्री०)

भृष्टि-धानआदिका भूनना, सूनी वाडी, (स्त्री०) ॥ २३ ॥

मुष्टि-हाथकी मुट्ठी, (पुं०) चारतोला प्रमाण, (स्त्री०)

म्लिष्ट-मलिन, (त्रि०)

म्लिष्ट-अप्रकट वाणी, (न०) ॥२४॥

यष्टि-शस्त्रभेद, हार, 'हारयष्टि' हार, भारंगी, (ब्रह्मनेटि), मुलहटी, (स्त्री०) ध्वजाका डंडा, (पुं०) ॥ २५ ॥

रिष्टं क्षेमे मृत्युचिह्ने विनाशे ना तु सायके ।
रिष्टस्तु रिष्टिवत्खड्गे समृद्धौ पुंस्त्रियोः क्रमात् ॥ २६ ॥
लटो दोषेपि वाग्दोषे लाटस्त्वंशुकदेशयोः ।
वाटस्तु वर्त्मनि वृतौ वाटी स्याद्गृहनिष्कुटे ॥ २७ ॥
विटस्तु खिड्गलवणशङ्खाखुखदिराद्रिषु ।
विष्टिः कर्म्मकरे भद्रे वेतने प्रेषणे स्त्रियाम् ॥ २८ ॥
व्युष्टं दिने प्रभाते च फले पर्युषिते त्रिषु ।
व्युष्टिः समृद्धौ विहिता नियमादिफलेऽपि च ॥ २९ ॥
सटा जटाकेसरयोः सृष्टिर्निर्म्माणसर्गयोः ।
सृष्टं तु निर्मिते त्यक्ते त्रिषु प्राज्येऽपि निश्चिते ॥ ३० ॥
स्फुटो व्यक्ते प्रफुल्ले च व्याप्तवत्रिष्वपि त्रिषु ।
स्फुटिः स्फुटिककर्कट्यां पादस्फोटेऽपि च स्फुटिः ॥ ३१ ॥

---

रिष्ट–कल्याण, मृत्युचिह्न, विनाश, ( न० ) बाण, ( पुं० )
रिष्ट(ष्टि)–खड्ग, ( पुं० ) समृद्धि, ( स्त्री० ) ॥ २६ ॥
लट–दोष, वाणी दोष, ( पुं० )
लाट–वस्त्र, देशभेद, ( पुं० )
वाट–मार्ग, वृति ( काटोंवाली लकडियोंसे बाडा ( घेर ) करना ) (पु०)
वाटी–घरकेपासका बगीचा, (स्त्री०) ॥ २७ ॥
विट–धूर्त, लवण, शंख, मूसा, खदिर ( खैर ) वृक्ष, पर्वत, ( पुं० )
विष्टि–नौकरीलेकर कामकरनेवाला, भद्रा, नौकरी, प्रेरणाकरना (स्त्री०) ॥ २८ ॥
व्युष्ट–दिन, प्रभात, फल, वासी भोजन आदि, ( त्रि० )
व्युष्टि–समृद्धि, नियमआदिकोंका फल, ( स्त्री० ) ॥ २९ ॥
सटा–जटा-तपस्वीकी, केसर, (स्त्री०)
सृष्टि–रचना-साधारण, रचना-जगत्की, ( स्त्री० )
सृष्ट–रचाहुवा, दानकिया हुवा, प्राज्य (बहुत), निश्चित, (त्रि०) ॥३०॥
स्फुट–प्रकट, फूलाहुवा, व्याप्त, (त्रि०)
स्फुटि–खिलीहुई ककड़ी, पादफोट ( बिवाई ) ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥

हृष्टो रोमाञ्चिते जातहर्षे प्रहसिते स्मृते ।

टत्तृतीयम् ।

अवटः कुहके कूपे खिले गर्त्तेऽप्यथाऽवटुः ॥ ३२ ॥
गर्त्ते कूपे च घाटायामगंटोंतर्गले गले ।
अरिष्टः फेनिले निम्बे लशुने काककङ्कयोः ॥ ३३ ॥
अरिष्टं सूतिकागारे तक्रे चिह्ने शुभेऽशुभे ।
उत्कटस्तीव्रे मत्ते च करटो निन्द्यजीविते ॥ ३४ ॥
एकादशाहश्राद्धे च काकवाद्यान्तरेऽपि च ।
कुब्राह्मणे कुसुम्भेऽपि दुर्दान्तगजगण्डयोः ॥ ३५ ॥
कर्कटः करणे स्त्रीणां राशिभेदकुलीरयोः ।
खगे तु कर्कटी तु स्याद्वालुक्या शाल्मलीफले ॥ ३६ ॥

---

हृष्ट–रोमाचवाला, आनंदवाला, हंसाहुवा, स्मरण कियाहुवा ।

टत्तृतीय ।

अवट–कपटी, कूवा, अधूरा, खड्डा, ( पुं० )

अवटु–खड्डा, कूवा, ग्रीवा और शिरकी सधिका पिछला भाग, (पु०)

अगंट–गलका अतर्भाग, गल, (पु०) ॥ ३२ ॥

अरिष्ट–रीठा, नीव-वृक्ष, ल्हस्सन, काग-पक्षी, श्वेत चील पक्षी, (पुं०) ॥ ३३ ॥

अरिष्ट–प्रसूतिका ( जच्चाका ) स्थान, छाछ चिह्न–शुभ अशुभ, ( न० )

उत्कट–तीव्र, मदोन्मत्त, ( पुं० )

करट–निंद्य आजीविका करनेवाला ॥ ३४ ॥ मरनेसे ग्यारहवे दिनका श्राद्ध, काग-पक्षी, वाजाका भेद, निंदितब्राह्मण, कसूंभा, कठिनतासे दमनकियाहुवा, हस्तीका गंडस्थल, ( पुं० ) ॥ ३५ ॥

कर्कट–स्त्रियोंका करण ( हावभेद ), राशिभेद, कुलीर-जन्तु, पक्षी, ( पुं० )

कर्कटी–ककड़ी, सेमलका फल, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥

कर्द्दटः पङ्कपङ्कारकरहाटेषु कीर्त्तितः ।
कर्यटस्त्रिपु कार्यज्ञे पुमाञ्जतुनि कर्यटः ॥ ३७ ॥
कीकटो मगधेऽपि स्यान्निःस्वे चाश्वे मितंपचे ।
कुक्कुटस्ताम्रचूडे स्यात्कुकुभे वाग्निकुक्कुटे ॥ ३८ ॥
निषादशूद्रयोश्चैव तनये त्रिपु कुक्कुटः ।
रसोनभेदोच्चटयोस्तालमध्येपि कुकुटी ॥ ३९ ॥
कुक्कुटी ताम्रचूडाख्ययोपिन्मिथ्योपचर्ययोः ।
कुरुण्टी शालभंज्या स्यात्कुरुण्टो झिण्टिकान्तरे ॥ ४० ॥
कूपीटमुदरे नीरे केशटस्तु कणे हरौ ।
चक्राटः पुंसि दीनारे धूर्त्ते जाङ्गुलिके त्रिपु ॥ ४१ ॥
चर्प्पटः स्फारविपुले चपेटे चैव चर्प्पटः ।
चर्प्पटः पर्पटेऽपि स्यात्पिष्टभेदे तु चर्प्पटी ॥ ४२ ॥

---

कर्द्दट–कीच, सिवाल ( जलकाई ), कमलकी जड, ( पुं० )
कर्यट–कार्यको जाननेवाला, (त्रि०) लाख, ( पुं० ) ॥ ३७ ॥
कीकट–मगध-देश, दरिद्री, अश्व ( घोडा), कजूस, ( पु० )
कुकुट–मुर्गा, वनमुर्ग, ॥ ३८ ॥ अग्निकुक्कुट, निषाद ( भील ) जाति, शूद्र-जाति, पुत्र, ( त्रि० )
कुकुटी–लहसुनभेद, भूई आवला, तालवृक्ष ॥ ३९ ॥ मुर्गी, मिथ्यासत्कार, (स्त्री०)
कुरुंटी–शालभंजी ( कठपूतली ), ( स्त्री० )
कुरुंट–कटसरैया-झाड, (पुं०) ॥४०॥
कूपीट–उदर ( पेट ), जल, ( न० )
केशट–कण ( अल्प ), हरि ( पुं० )
चक्राट–अशरफी, धूर्त, ( पुं० ) विपवैद्य ( गारुडी ) ( त्रि० ) ४१
चर्पट–बहुतजियादह, चपेट (थप्पड), पापड, ( पुं० )
चर्पटी–पिष्टभेद, ( स्त्री० ) ॥ ४२ ॥

चिपिटश्चिपिटे पुंसि पिच्चिते विस्तृतेऽन्यवत् ।
चिरण्टी तु सुवासिन्यां स्याद्द्वितीयवयःस्त्रियाम् ॥ ४३ ॥
वार्त्ताकु पुष्पे जकुटं जकुटो मलये शुनि ।
त्रिकूटं सिन्धुलवणे त्रिकूटः स्यात्सुवेलके ॥ ४४ ॥
त्रिपुटस्तु भवेत्तीरे पुमानपि सतीनके ।
त्रिपुटा मल्लिकाभेदे सूक्ष्मैलात्रिवृतोरपि ॥ ४५ ॥
त्र्यङ्कटं शिक्यभेदे स्याद्धौताञ्जन्यामपीष्यते ।
द्रोहाटस्तु मतो गाथाभेदे मृगलुब्धके ॥ ४६ ॥
वैडालव्रतिकेऽपि स्याद्धाराटश्चातकाश्वयोः ।
निर्दटो निर्दये न्यायवादरक्ते च निष्फले ॥ ४७ ॥
निष्कुटस्तु गृहोद्याने स्यात्केदारकपाटयोः ।
पर्पटस्तु द्वयोः पिष्टविकृतौ भेषजान्तरे ॥ ४८ ॥

---

चिपिट–भिगोयकर भूना हुवा धान्य, ( पु० ) नेत्ररोगी, विस्तारवाला, ( त्रि० )
चिरंटी–सुहागिनस्त्री, दूसरी अवस्थावाली स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ४३ ॥
जकुट–बैंगनका पुष्प,( न० )
जकुट–मलय-पर्वत, कुत्ता, ( पु० )
त्रिकूट–समुद्रनमक, ( न० )
त्रिकूट–सुवेल नामका पर्वत,(पुं०)४४
त्रिपुट–तीर, मटर-धान्य, ( पुं० )
त्रिपुटा–मल्लिका ( मोतिया ) भेद, छोटीइलायची, निसोथ, ( स्त्री० ) ॥ ४५ ॥
त्र्यंगट–शिक्य ( छींका ) भेद, औषधीभेद ( न० )
द्रोहाट–गाथाभेद, मृगका शिकारी, ॥ ४६ ॥ वैडालव्रती ( व्रतीभेद ) ( पुं० )
धाराट–पपीहा-पक्षी, अश्व, ( पु० )
निर्दट–निर्दय-पुरुष, न्यायवादमें अनुरक्त, निष्फल, ( पु० ) ॥ ४७ ॥
निष्कुट–घरका बगीचा, खेत, किवाड़ ( पुं० )
पर्पट–पापड़, औषधिभेद ( पित्तपापड़ा ) ( पुं० न० ) ॥ ४८ ॥

परीष्टिः परिचर्यायां प्राकाम्येऽपि गवेषणे ।
पर्कटी प्लक्षकर्कट्योः पावटः कूपे कूटे ॥ ४९ ॥
पिच्चटो नेत्ररोगेऽपि पिच्चटं सीसके त्रपौ ।
वरटा हंसयोषायां गन्धोल्यां वरटो द्रुणः ॥ ५० ॥
वर्वटी गणिकायां स्याद् व्रीहिभेदेऽपि वर्वटी ।
वर्वटो नक्रे पोते बालेऽपि च वर्वटः ॥ ५१ ॥
स्त्रियां पुंस्यपि माकूटा माकूटो मानवैश्ययोः ।
मार्याटः पट्टहार्णीव लोमालूकोलवनके ॥ ५२ ॥
मावाटः कण्टके धातुविशेषे नालिके नटे ।
मर्कटः कपिलूतार्णाकरदेविहगे मर्कटी ॥ ५३ ॥
वानर्यां शूकशिम्ब्यां स्याद् करञ्ज्यां अजान्तरे ।
कीटे तु रावकर्कटा. गर्भीनामलकस्य च ॥ ५४ ॥

---

परीष्टि—ढूढ़ना (खोज), [illegible] [illegible], सेवा, (स्त्री०)
पर्कटी—पिलखन वृक्ष, कर्कट, (स्त्री०)
पावट—[illegible], [illegible], (पुं०) ॥ ४९ ॥
पिच्चट—नेत्ररोग, (पुं०) सीसा, रांगा, (न०)
वरट—हंस, [illegible], (पुं० न०) वरटा हंसी, (स्त्री०) ॥ ५० ॥
वर्वटी—वेश्या, धान (चावल) भेद, (स्त्री०)
वर्वट—[illegible], [illegible], [illegible] (पुं०) ॥ ५१ ॥
माकूटा—[illegible] (स्त्री०)
माकूट—[illegible], [illegible], (पुं०)
मार्याट—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (पुं०) ५२
मावाट—[illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], (पुं०)
मर्कट—बन्दर, (पुं०)
मर्कटी—[illegible] ५३ ॥ [illegible] [illegible], [illegible] (हाथी [illegible]), [illegible], [illegible], [illegible], (स्त्री०) [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], ॥ ५४ ॥

गवेधुकाफले चैव मर्कटः पुंसि दृश्यते ।
मोचाटश्चन्दने कृष्णजीररम्भास्थ्युपस्करे ॥ ५५ ॥
मोरटं त्विक्षुमूले स्यादङ्कोटकुसुमेऽपि च ।
सप्तरात्रात्परक्षीरे मूर्तिकायां तु मोरटा ॥ ५६ ॥
रवटो दक्षिणावर्तशङ्खे जाङ्गुलिकेऽपि च ।
वराहे मोरटे रेणौ वातूलेऽपि च रेवटः ॥ ५७ ॥
वण्णाटो गायने कामिचित्रकृद्दारजीविनि ।
विकटो विकराले स्याद्विशाले सुंदरे वरे ॥ ५८ ॥
वेकटः स्याद्वैकटिके मीने च नवयौवने ।
वरटो मिश्रिते नीचे वेरटं बदरीफले ॥ ५९ ॥
शैलाटो देवले सिंहे सितकाचकिरातयोः ।
संसृष्टं त्रिषु वान्त्यादिसंशुद्धे सङ्गतेऽपि च ॥ ६० ॥
हम्र्मटस्तु पुमान्सूर्ये कच्छपेऽपि च हम्र्मटः ।

---

गगेरनका फल, ( पुं० )
मोचाट—चंदन, कालाजीरा, केलेका गर्भभाग, उपस्कर, ( पुं० ) ५५
मोरट—गन्नाकी-जड, ढेराबृक्षका पुष्प, सातरात्रिसे उपरातका दूध, (पुं०)
मोरटा—मोरवेल तथा मूर, (स्त्री०) ॥ ५६ ॥
रवट—दक्षिणावर्त्त शख, विषवैद्य (गारुडी ) ( पुं० )
रेवट—सूकर, क्षीरमोरट, पित्तपापड़ा, वायुको नहीं सहनेवाला ( पुं० ) ॥ ५७ ॥
वण्णाट—गाना, कामी-पुरुष, चित्रकार, स्त्रीकी कीहुई जीविकावाला (पुं०)
विकट—भयंकर, बडा, सुदर, श्रेष्ठ, (पुं०) ॥ ५८ ॥
वेकट—मच्छीभेद, मच्छीमात्र, नवीन-यौवन, ( पुं० )
वरट—मिलाहुवा, नीच, ( पुं० )
वेरट—झाडीका फल (बेर), (न०) ५९
शैलाट—देवल ( मंदिर ), सिंह, सफेद काच, किरात-जाति, ( पुं० )
संसृष्ट—वमन आदिसे शुद्धहुवा, संगत ( योग्य ) ( त्रि० ) ॥ ६० ॥
हर्मट—सूर्य, कछवा, ( पुं० ) ॥

टचतुर्थम् ।

पुगानुच्चिङ्कटे मीनभेदे कोपनपूरुषे ॥ ६१ ॥
करहाटोऽब्जकन्देऽपि शल्यद्रौ कुसुमान्तरे ।
कामकूटस्तु गणिकाविभ्रमे गणिकाप्रिये ॥ ६२ ॥
त्रिषु कार्यपुटो ह्रीके प्रमत्ताऽनर्थकारिणोः ।
कुटन्नटस्तु कैवर्तिमुस्तके शोणके पुमान् ॥ ६३ ॥
कुण्डकीटस्तु चार्वाकवाण्यभिज्ञेऽपि पुंश्चले ।
जारजे ब्राह्मणीपुत्रदासीकामुकयोरपि ॥ ६४ ॥
खड्गरीटस्तु फलकासिधाराव्रतचारिणोः ।
गाढमुष्टिस्तु कृपणे कृपाणछुरिकादिषु ॥ ६५ ॥
चक्रवाटः क्रियारोहे पर्यन्ते च शिखातरौ ।
चतुःषष्टिस्तु संख्यायां वह्वृचेऽपि कलास्वपि ॥ ६६ ॥
नारकीटोऽश्मकीटे स्यात्स्वदत्ताशाविहन्तरि ।
परपुष्टः परभृते परपुष्टाऽपणस्त्रियाम् ॥ ६७ ॥

---

टचतुर्थ ।

उच्चिंगट—मच्छीभेद, क्रोधी पुरुष, ( पुं० ) ॥ ६१ ॥

करहाट—कमलकन्द, मैनफलका वृक्ष, पुष्पभेद, ( पुं० )

कामकूट—वेश्याका हावभाव आदि, वेश्यागामी, ( पुं० ) ॥ ६२ ॥

कार्यपुट—लज्जावान, प्रमत्त, अनर्थकारी, (पु० )

कुटन्नट—कैवर्टीमोथा, सोनापाठा-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

कुण्डकीट—चार्वाकवाणीका जाननेवाला, जार-पुरुष, जारसे उत्पन्न-हुवा ब्राह्मणीका पुत्र, दासीके संग रमण करनेवाला ( पुं० ) ॥ ६४ ॥

खड्गरीट—ढाल और तलवारकी धारका व्रत धारण करनेवाला (पुं०)

गाढमुष्टि—कजूस, तलवार छुरी आदि ( पुं० ) ॥ ६५ ॥

चक्रवाट—क्रियाका प्रारंभ, गोरा, शिखावृक्ष, ( पुं० )

चतुःषष्टि—चौसठ-सख्या, (वह्वृच वेद-ऋचा), चौसठकला (स्त्री०) ॥६६॥

नारकीट—पत्थरका कीडा, अपनी दईहुई आशाको नष्ट करनेवाला, ( पु० )

परपुष्ट—कोयल पक्षी, (पुं०)

परपुष्टा—वेश्या (स्त्री०) ॥ ६७ ॥

प्रतिकृष्टं मतं गुह्ये द्विरावृत्त्यवकर्षिते ।
प्रतिशिष्टः प्रतिहते दन्ते ख्याते च वाच्यवत् ॥ ६८ ॥
प्रतिसृष्टं भवेत्प्रत्याख्यातप्रोषितयोस्त्रिषु ।
बर्कराटः कटाक्षेऽपि तरुणादित्यदीधितौ ॥ ६९ ॥
नारीपयोधरोत्सङ्गकान्तदन्तनखक्षते ।
शिपिविष्टस्तु खलतौ दुश्चर्मणि महेश्वरे ॥ ७० ॥
प्राञ्चलोहे श्रुतिकटः प्रायश्चित्ते भुजङ्गमे ।
सिंहच्छटा तु पुन्नागकेसरे नागकेसरे ॥ ७१ ॥

टपञ्चमम् ।

अथ स्याद्दशनोच्छिष्टश्चुंबे निःश्वासितेऽधरे ।
लोहे कांस्ये मृदङ्गारशकट्यां रत्नकङ्कणे ॥ ७२ ॥
पावके पटहस्यापि बदरे पात्रचर्घटः ॥ ७३ ॥

इति विश्वलोचने टान्तवर्गः ॥

---

प्रतिकृष्ट–गुह्य ( गुदआदि ), दूसरीवार वाहाहुवा क्षेत्र, (न०)
प्रतिशिष्ट–दियाहुवाका फिर लेना, विख्यात, ( त्रि० ) ॥ ६८ ॥
प्रतिसृष्ट–नटाहुवा, प्रोषित ( परदेश गयाहुवा ) ( त्रि० )
बर्कराट–कटाक्ष ( नेत्रकी कोरसे देखना ),मध्याह्नसूर्यकी किरण,॥६९॥ स्त्रीके कुच और पेट आदिपर पतिका कियाहुवा नखघाव ( पुं० )
शिपिविष्ट–गंजा ( जिसके केश उडगयेहों ), बुरी चर्मवाला, महादेव, ( पुं० ) ॥ ७० ॥
श्रुतिकट–धातुभेद, लगेहुए पापका दूर करना, सर्प, ( पुं० )
सिंहच्छटा–नागकेसरभेद, नागकेसर, ( स्त्री० ) ॥ ७१ ॥

टपंचम ।

दशनोच्छिष्ट–चुंबन करना, बाहरको श्वास छोडना, होंठ (पु०)
पात्रचर्घट–लोहा, कांसी, मिट्टीकी सिगडी, रत्नकंकण, ॥ ७२ ॥ अग्नि, ढोलका घेरा, (पुं० )॥७३॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें टान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ ठान्तवर्गः ।

ठैकम् ।

ठश्चन्द्रे मण्डले शून्ये स्यात् करेणूच्चशब्दिते ।

ठद्वितीयम् ।

कठो मुनावृचां भेदे तदध्येतरि नद्विदि ॥ १ ॥
स्वरेऽपि कण्ठस्तु गले पार्श्वे शल्यद्रुशब्दयोः ।
काष्ठोत्कर्षे दिशि स्थाने कालमाने च सीमनि ॥ २ ॥
काष्ठा दारुहरिद्रायां काष्ठं तु क्लीबमिन्धने ।
कुण्ठो मूर्खेऽप्यकर्मण्ये कुष्ठं भेषजरोगयोः ॥ ३ ॥
कोष्ठोऽन्तःकुक्षिगृहयोः कुसूलात्मीययोरपि ।
गोष्ठी सभायां संलापे गोष्ठं गोस्थानके मतम् ॥ ४ ॥
ज्येष्ठो मासेऽग्रजे श्रेष्ठे वृद्धे ज्येष्ठा तु तारके ।
मुसल्यामङ्गुलीभेदे दुष्ठः स्याद् दुर्बलेऽधमे ॥ ५ ॥

---

अथ ठान्तवर्ग ।

ठैक ।

ठ—चंद्रमा, मडल, शून्य ( पोल ), हथनियोंका ऊंचाशब्द, ( पु० )

ठद्वितीय ।

कठ—कठनामका मुनि, ऋचाओंका भेद, कठशाखाको पढनेवाला, कठशास्त्राको जाननेवाला, ॥१॥ स्वर, ( पु० )

कण्ठ—गल, समीपता, मैनफलका वृक्ष, ( पु० )

काष्ठा—बढप्पन, दिशा, स्थान, कालप्रमाण, सीम ( हद ) ॥ २ ॥ दारुहलदी, ( स्त्री० )

काष्ठ—ईंधन ( न० )

कुण्ठ—मूर्ख, अकर्मा, ( पुं० )

कुष्ठ—औषधि—कूट, कुष्ठ ( कोढ ) रोग ( न० ) ॥ ३ ॥

कोष्ठ—पेटका भीतरभाग, घर, कुठला, अपनी वस्तु, ( पुं० )

गोष्ठी सभा, वार्तालाप, ( स्त्री० )

गोष्ठ—गौवोंका ठान ( न० ) ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ—ज्येष्ठ—मास, बडा भाई, श्रेष्ठ, वृद्ध, ( पु० )

ज्येष्ठा—ज्येष्ठा—नक्षत्र, छपकली, अंगुलीभेद, ( स्त्री० )

दुष्ठ—दुर्बल, अधम, ( पुं० ) ॥ ५ ॥

निष्ठा निर्वहनिष्पत्तिनाशान्तोत्कर्षयाचने ।
क्लेशेऽथ पाठाम्बष्ठायां पाठस्तु पठने पुमान् ॥ ६ ॥

पृष्ठं शरीरावयवान्तरेऽपि चरमेऽपि च ।
प्रष्ठोऽग्रगामिनि श्रेष्ठे प्रष्ठा चाण्डालिकौषधौ ॥ ७ ॥

वण्ठः स्यादकृतोद्वाहे कुन्तधारकखर्वयोः ।
शठस्तु पुंसि धत्तूरे धूर्तमध्यस्थयोस्त्रिषु ॥ ८ ॥

शोठोऽलसे च मूर्खे च श्रेष्ठो वरकुबेरयोः ।
षष्ठी तु षण्णां पूरण्यां त्रिषु स्त्री हरयोषिति ॥ ९ ॥
हठस्तु स्याद्बलात्कारे वारिपर्ण्यां तु पुंस्ययम् ।

ठतृतीयम् ।

अपष्ठुः समये वामेऽम्बष्ठो वैश्यासुते द्विजात् ॥ १० ॥

---

निष्ठा—नाटकसंधि, सिद्धि, नाश, अन्त, बडप्पन, याचना, क्लेश(कष्ट) ( स्त्री० )
पाठा—पहाडमूल, ( स्त्री० )
पाठ—पढना ( पुं० ) ॥ ६ ॥
पृष्ठ—शरीरका पिछला भाग, पिछला ( न० )
प्रष्ठ—आगे चलनेवाला, श्रेष्ठ, ( पुं० )
प्रष्ठा—चाडाली औषधि, (स्त्री०) ॥७॥
वंठ—जिसका विवाह न हुवा वह, भाला ( हथियार ) धारनेवाला, ठिंगना—पुरुष (पुं०)
शठ—धतूरा, धूर्त, मध्यस्थ, ( त्रि० ) ॥ ८ ॥
शोठ—आलसी, मूर्ख, (पु०)
श्रेष्ठ—उत्तम, कुवेर, ( पुं० )
षष्ठी—छह संख्याओंको पूरी करनेवाली ( त्रि० ) देवी—भेद, (स्त्री०) ॥ ९ ॥
हठ—जबरदस्ती, जलकुंभी, ( पुं )

ठतृतीय ।

अपष्ठु—काल, (पुं०) वामभाग,(त्रि०)
अम्बष्ठ—ब्राह्मणसे उत्पन्नहुवा वनियानीका पुत्र, ॥ १० ॥

देशेऽम्बष्ठा तु चाङ्गेर्यां पाठयूथिकयोरपि ।
कनिष्ठोऽल्पेऽनुजे यूनि कनिष्ठा त्वन्तिमाङ्गुलौ ॥ ११ ॥
कमठः कच्छपे पुंसि कमठं भाजनान्तरे ।
जरठः कठिने पाण्डौ कर्कशेप्यभिधेयवत् ॥ १२ ॥
नर्मठश्चुबुके पुंसि नर्मठो नागरेऽन्यवत् ।
प्रकोष्ठो विस्तृतकरे कूर्परादधरेऽपि च ॥ १३ ॥
नृपकक्षान्तरे चाथ प्रतिष्ठा गौरवे मता ।
या(यो)गनिष्पादने स्थानचतुरक्षरपद्ययोः ॥ १४ ॥
वरिष्ठः प्रवरे चोरुतरे स्यादभिधेयवत् ।
वरिष्ठं मरिचे ताम्रे वरिष्ठः पुंसि तित्तिरौ ॥ १५ ॥
मकुष्ठो मन्थरेऽपि स्याद् व्रीहिभित्सवयोरपि ।
लघिष्ठो भेलकेऽत्यल्पे वैकुण्ठो विष्णुशक्रयोः ॥ १६ ॥

---

अम्बष्ठा—अम्ललोनिया औषधि, पाढ, जूही-पुष्पझाड़, ( स्त्री० )
कनिष्ठ—अल्प, छोटा भ्राता, जवान, (पुं०)
कनिष्ठा दुबला, पिछली अंगुली, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥
कमठ—कछुवा, ( पु० ) पात्रविशेष, ( न० )
जरठ—कठोर, पाण्डु ( पीला ), कर्कश ( दु:स्पर्श ) ( त्रि० ) ॥ १२ ॥
नर्मठ—कुचका अग्रभाग, धूर्त ( पुं० )
प्रकोष्ठ—फैलायाहुवा हाथ, कोंहनीसे नीचेका भाग, राजाकी ड्योढी, (पुं०) ॥ १३ ॥
प्रतिष्ठा—बडप्पन, योग या यज्ञकी सिद्धि, स्थान, चार अक्षरका छंद, ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥
वरिष्ठ—श्रेष्ठ, बहुत जियादह, (त्रि०) मिरच, ताँबा, ( न० ) तीतर-पक्षी, ( पुं० ) ॥ १५ ॥
मकुष्ठ—मंद चलनेवाला, मोठ धान्य, यज्ञभेद, ( पु० )
लघिष्ठ—नदी तरनेकी छोटी नौका, बहुत छोटा, ( पुं० )
वैकुंठ—विष्णु, इंद्र (पु० ) ॥ १६ ॥

श्रीकण्ठः पार्वतीनाथे कुरुजाङ्गलकेऽपि च ।
भवेदार्येऽपि साधिष्ठः साधिष्ठोऽपि दृढेऽन्नि च ॥ १७ ॥

ठचतुर्थम् ।

कलकण्ठः पिके पारावते हंसे कलध्वनौ ।
कण्ठे मृगान्तरे कालपृष्ठः क्लीवं तु कार्मुके ॥ १८ ॥
कर्णवाणेऽप्यथो दन्तशठो जम्भकपित्थयोः ।
कर्मरङ्गेऽपि नारङ्गे रुक्क्रियायां स्त्रियामियम् ॥ १९ ॥
नीलकण्ठस्तु दात्यूहे खञ्जने प्रबलाकिनि ।
कलविंके हरे पीतसारके कालकण्ठवत् ॥ २० ॥
पूतिकाष्ठं तु सरले देवदारुमहीरुहे ।
सूत्रकण्ठः कपोते स्यात्खञ्जरीटे द्विजन्मनि ॥ २१ ॥
हारिकण्ठः परभृते हारान्वितगले त्रिषु ॥ २२ ॥

इति विश्वलोचने ठान्तवर्गः ॥

---

श्रीकंठ–महादेव,कुरुजागलदेश,(पुं०)
साधिष्ठ–अतिश्रेष्ठ, अतिदृढ, (पुं०) ॥ १७ ॥

ठचतुर्थ ।

कलकंठ–कोयल-पक्षी, कबूतर, हंस, सूक्ष्मशब्द, कंठ, मृगभेद, (पुं०)
कालपृष्ठ–धनुष, कर्णका बाण,(पुं०) ॥ १८ ॥
दंतशठ–चांगेरी–औषधि, जंबीरी नींबू, कैथ–वृक्ष, कमरख, नारंगी, (पुं०)
दंतशठ–रोगकी क्रिया,(स्त्री०)॥१९॥
नीलकंठ–कालकंठ–जलकाक, खंजन–पक्षी, मयूर–पक्षी, चिडी–पक्षी, महादेव, टेरा–वृक्ष, (पुं०) ॥ २० ॥
पूतिकाष्ठ–सरल–वृक्ष, देवदारु–वृक्ष, (न०)
सूत्रकण्ठ–कबूतर-पक्षी, खंजन-पक्षी, ब्राह्मण आदि, (पुं० ) ॥ २१ ॥
हारिकंठ–कोयल-पक्षी, (पुं०) हारधारीगलवाला, (त्रि०) ॥ २२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें ठान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ डान्तवर्गः ।

डैकम् ।

डकारः पार्वतीनाथे चासे शब्देऽपि दृश्यते ।

डद्वितीयम् ।

अण्डं तु खगमीनादिकोशे स्यान्मुष्कवीर्ययोः ॥ १ ॥
इडा बुधवधूवाचोरिलावद्गवोरपि ।
काण्डोऽस्त्री वर्गबाणार्थनालावसरवारिषु ॥ २ ॥
दण्डे प्रकाण्डे रहसि स्तंबे कुत्सितकुत्सयोः ।
पतिवत्नीसुते जारात्कुण्डः कुण्डी कमण्डलौ ॥ ३ ॥
कुण्डं देवजलाधारे पिठरे तु मत न ना ।
क्रीडा केलाववज्ञायां खेलायामपि सम्मता ॥ ४ ॥
क्रोडः शनौ वराहे च क्रोडं क्रोडा च वक्षसि ।
खण्डोऽस्त्री पुमानिक्षुविकारे मणिदूषणे ॥ ५ ॥

---

अथ डान्तवर्ग ।

डैक ।

ड(कार)–महादेव, चास-पक्षी, शब्द ( आवाज ) ( पुं० )

डद्वितीय ।

अंड–पक्षी और मच्छीआदिकोंका कोश ( अंडा ), अंडकोश, वीर्य, ( न० ) ॥ १ ॥

इडा–इला–बुधग्रहकी स्त्री, वाणी, पृथ्वी, गौ, ( स्त्री० )

कांड–वर्ग (विषयसमाप्ति), बाण, अर्थ, नाल–डंडी, अवसर, जल, ॥ २ ॥ दण्ड ( डंडा ), वृक्षका–स्थूलभाग, एकांत, गुच्छ, निंदित, निंदा (पु० न० )

कुंड–पतिके जीतेहुए जारसे उत्पन्न हुवा, ( पु० )

कुंडी–कूंडी या कमंडलु( स्त्री० )॥३॥

कुंड–वर्षाके जलका रहनेका स्थान, पेट ( स्त्री० न० )

क्रीडा–क्रीडाप्रकार, तिरस्कार, खेलना, ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥

क्रोड–शनि–ग्रह, सूकर, (पुं०) क्रोड (न०) और क्रोडा (स्त्री०) छाती,

खंड–टुकडा (पुं० न० ) खॉड ( चीनी ), मणिदोष, (पुं० )॥५॥

गडो मीनेऽन्तराये च कुब्जे पृष्ठगुडे गडुः ।
गण्डस्तु पिटके योगभेदे खड्गिकपोलयोः ॥ ६ ॥

वरे प्रवीरे चिह्ने च वाजिभूषणबुद्बुदे ।
गुडः स्याद्गजसन्नाहे गोलकेक्षुविकारयोः ॥ ७ ॥

गुडा स्नुहीगुडिकयोः कंदुके चोडनात्परः ।
गौण्डः पामरभेदे स्याद् वृद्धनाभौ तु वाच्यवत् ॥ ८ ॥

चण्डस्तीव्रे दैत्यभेदे यमदासेऽतिकोपने ।
स्त्रिया चण्डा धनहरीशङ्खपुष्पिकयोर्म्मता ॥ ९ ॥

भवेच्चण्डी तु पार्वत्यां हिंस्रकोपनयोषितोः ।
चूडा वलयभेदे स्याच्छिखायां वड(ल)भावपि ॥ १० ॥

चोडो(लो) देशविशेषे स्याच्चोडः प्रावरणान्तरे ।
मूर्खे मूके हिमग्रस्ते जडा स्त्री कन्दरौषधौ ॥ ११ ॥

---

गड–मच्छी, विघ्न, ( पुं० )
गडु–कुबडा, पीठमें गूमडावाला (पुं०)
गंड–छोटी फुन्सी, योगभेद, गैंडा, गाल ( मुखका एक भाग ) ॥ ६ ॥
श्रेष्ठ, शूरवीर, चिह्न, अश्वका आभूषण, बुद्बुदा, ( पुं० )
गुड–हस्तीका कवच, गोला, गुड, ( पुं० ) ॥ ७ ॥
गुडा–थोहर, गोली, उडनगुडा–खिन्नू, ( स्त्री० )
गौंड–नीच जाति, (पुं०) बडी तूंडीवाला, ( त्रि० ) ॥ ८ ॥
चंड–तीक्ष्ण, दैत्यभेद, धर्मराजका किंकर, अति क्रोधी, ( पुं )
चंडा–चोरनामक गन्धद्रव्य, शंखाहुली, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥
चंडी–पार्वती, हिंसा करनेवाली स्त्री, अतिक्रोधवाली स्त्री ( स्त्री० )
चूडा–कंकणभेद, चोटी, घरका छज्जा ( अग्रभाग ) ( स्त्री० ) ॥ १० ॥
चोड(ल)–देशभेद, अगरखा, (पुं०)
जड–मूर्ख, गूँगा, ठंडका सताया, (पुं०)
जडा–कौंचकी फली (स्त्री०) ॥ ११ ॥

ताडो मुष्ट्यादिसंमेयतृणादौ ताडने रवे ।
ताडी ताडीतरौ दण्डश्चण्डांशोः पारिपार्श्विके ॥ १२ ॥
दण्डः सैन्यव्यूहभेदे मानभेदे दमे यमे ।
मंथानेऽश्वेऽभिमाने च कोणदण्डप्रकाण्डयोः ॥ १३ ॥
विग्रहे च ग्रहे यज्ञे लगुडेऽपि मतोऽस्त्रियाम् ।
नाडी नाल्यां शिरायां स्याद्वार्त्तायां कुहनस्य च ॥ १४ ॥
नीडं स्थाने कुलायेऽस्त्री समीपे तु सपूर्वकः ।
पण्डः षण्ढे धियां पण्डा पाण्डुः कुन्तीपतौ सिते ॥ १५ ॥
पिण्डो देहांसयोरस्त्री निवापे सिह्लके पुमान् ।
पिण्डो जपाप्रसूनेऽपि पिण्डः स्याद्भोजने त्रिषु ॥ १६ ॥
पिण्डं सांद्रे बले बोले गृहाङ्गे जीविकायसोः ।
पिण्डी तु पिण्डिकाऽलावूखर्जूरीतगरान्तरे ॥ १७ ॥

---

ताड–मुट्ठीभरा तृण, ताडन, शब्द (पुं० )
ताडी–ताडका वृक्ष, (स्त्री० )
दंड–सूर्यका अनुचर, ॥ १२ ॥ सेना, सेनारचनाभेद, मानभेद, दम (इंद्रियोंका रोकना), यम नियम, दधि मथनेकी रई, अश्व, अभिमान, वीणादंड, वृक्षका पेड, ॥ १३ ॥ विग्रह, ग्रह, यज्ञ, लाठी (पुं० न०)
नाडी–घटी, नस, पाखडसे ध्यान, (स्त्री० ) ॥ १४ ॥
नीड–स्थान, पक्षीका घूँसला, सनीड–समीप, ( पुं० न० )
पंड–हिजडा, ( पुं० )
पंडा–बुद्धि ( स्त्री० )
पांडु–कुंतीका पति–राजा, सफेदरंगवाला, ( पुं० ) ॥ १५ ॥
पिंड–शरीर, कंधा ( पुं० न० ) पितरोंको देनेका पिंड, हींग, जपापुष्प या जासंद ( पुं० ) भोजन (त्रि० ) ॥ १६ ॥ सघन, बल, खनामख्यात गंध द्रव्य (बोल ), घरका अंग, आजीविका, लोहा, ( न० )
पिंडी–घीया या कद्दू, पिंडखजूर, पिंडि–का, कोंकणदेशीय तगर, (स्त्री०) ॥ १७ ॥

पिण्डी स्याज्ज्ञानजिज्ञासे जिज्ञासेऽपि सतां मता ।
पीडाऽपमर्दकृपयोः सरलद्रुशिरोध्वजे ॥ १८ ॥
बण्डा तु कुलटायां स्याद् बण्डो हस्तादिवर्जिते ।
भाण्डं तु भाजने वणिग्मूलवित्ते विभूषणे ॥ १९ ॥
भूषणे च तुरङ्गाणां नदीपात्रे च कुत्रचित् ।
भवेन्मण्डस्तु कूष्माण्डे कर्कट्यामपि पुंस्ययम् ॥ २० ॥
सारे पिच्छेऽपि मण्डेऽस्त्री पुमानेरण्डभूषयोः ।
मण्डा धात्र्यामथो मण्डं शाकभेदे च मस्तुनि ॥ २१ ॥
मुण्डो राहुशिरोदैत्यभेदेषु त्रिषु मुण्डिनि ।
रण्डा मूषिकपर्ण्योख्यभेषजे विधवास्त्रियाम् ॥ २२ ॥
व्याडस्तु हिंस्रपश्वाद्ये श्वापदेऽपि सरीसृपे ।
शुण्डा सुरायां वेश्यायां नलिनीहस्तिहस्तयोः ॥ २३ ॥

---

पिंडी–ज्ञानजाननेकी इच्छा, श्रेष्ठपुरुषोंके जाननेकी इच्छा ( स्त्री० )
पीडा–मर्दनकरना, कृपा, सरल-वृक्ष, शिरपै धारण किया हुवा मुकुट आदि, ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥
बंडा–बदचलन स्त्री, ( स्त्री० ) हाथसे वर्जित किया हुवा, ( त्रि० )
भांड–पात्र, बनियाका मूलधन, आभूषण, अश्वोंका आभूषण, ॥ १९ ॥ नदीके दोनोतटोंके बीचका भाग, ( न० )
मंड–कोहला या पेठा-शाक, ककडी, ( पुं० ) ॥ २० ॥ द्रव्यका सार, मोरकी पंख, ( पुं० न० )
अरंड-वृक्ष, आभूषण, ( पुं० )
मंडा–आंवला ( स्त्री० )
मंड–शाकभेद, दधिसे उत्पन्न हुवा मांड, ( न० ) ॥ २१ ॥
मुंड–राहु-ग्रह, कटा हुवा शिर, दैत्यभेद, ( पुं० ) केशमुंडाया हुवा, ( त्रि० )
रंडा–मूसापर्णी-औषधि, विधवा स्त्री ( स्त्री० ) ॥ २२ ॥
व्याड–हिंसा करनेवाले पशु आदि, श्यावज ( वनके पशु ), सर्प ( पुं० )
शुंडा–मदिरा, वेश्या, कमोदिनी, हस्तीकी सूँड, ॥ २३ ॥ जल हस्तिनी ( जल जंतु, ) ( स्त्री० )

शुण्डा जलकरिण्यां च शुण्डस्तु मदनिर्भरे ।
शौण्डी कुशायां चविके शौण्डो मत्तेऽभिधेयवत् ॥ २४ ॥
षडः पेयान्तरे पुंसि षडो भिद्यपि विद्यते ।
पद्मादिवृन्दे षण्डोऽस्त्री षण्डः स्याद्गोपतौ चये ॥ २५ ॥
क्ष्वेडस्तु पुंसि गरले ध्वाने कर्णे महेश्वरे ।
क्ष्वेडस्त्रिषु स्यात्कुटिले क्ष्वेडा तु गजयोषिति ॥ २६ ॥
वीराणां सिंहनादेऽपि वंशशल्येऽपि च स्त्रियाम् ।
क्ष्वेडस्तु रक्तार्कफले घोषपुष्पे दुरासदे ॥ २७ ॥

डतृतीयम् ।

कारण्डो मधुकोषाऽसिकारण्डवदलाढके ।
कूष्माण्डो गणभेदे स्यात्कर्कोरुभ्रूणयोरपि ॥ २८ ॥
कूष्माण्डी चण्डिकायां स्यादपि स्यादौषधीभिदि ।
कोदण्डो देशभेदेऽपि कोदण्डः कार्मुके भ्रुवि ॥ २९ ॥

---

शुंड—मदोन्मत्त, ( पु० )
शौण्डी—कुशा, चव्य, ( स्त्री० )
शौण्ड—मदोन्मत्त, ( त्रि० ) ॥२४॥
षड—पीनेयोग्य पदार्थभेद, ( पु० )
षंड—कमल आदिकोंका समूह, ( पुं० न० ) इंद्र, साड आदि, समूह ( पुं० ) ॥ २५ ॥
क्ष्वेड—विष, शब्द, कर्ण, महादेव, ( पु० ) कुटिल ( त्रि० )
क्ष्वेडा—हस्तिनी; ॥ २६ ॥ शूरवीरोंकी गर्जना, वासका भाला, ( स्त्री० )
क्ष्वेड—लाल आक़का फल, घोष (तोरी) लताका पुष्प, तेजस्वी, ( पुं० ) ॥ २७ ॥

डतृतीय ।

कारंड—शहदका कोश, तलवार बनानेवाला, करड्डवा-पक्षी, स्वयं उपजा तिल ( पुं० )
कूष्मांड—महादेवके गणोंका भेद, कोहला, गर्भ, ( पुं० ) ॥ २८ ॥
कूष्मांडी—चंडिका(देवी),औषधीभेद, ( स्त्री० )
कोदंड—देशभेद, धनुष, भ्रुकुटी, ( पु० ) ॥ २९ ॥

गारुडं स्यान्मरकते विषशास्त्रेऽपि गारुडम् ।
गारुडं गारुडभवे तरण्डो भेलके पुमान् ॥ ३० ॥
वडिशीसूत्रसंबद्धतरद्वस्तुनि नावि च ।
तित्तिडो दैत्यभेदे स्यात् तित्तिडो यमचेटके ॥ ३१ ॥
वृक्षभेदेऽपि वृक्षाम्लर्विबयोरपि तिन्तिडी ।
द्राविडो वेधमुख्ये स्यान्नीवृदन्तरसङ्ख्ययोः ॥ ३२ ॥
निर्गुण्डीन्द्राणिकानीलशेफाल्योः करहाटके ।
पिचण्डः पुंसि जठरे पशोरवयवेपि च ॥ ३३ ॥
पूत्यण्डः श्वाविद्गन्धमृगयोर्गन्धकीटके ।
प्रकाण्डोस्त्री तरुस्कन्धे प्रशस्ते विटपेऽपि च ॥ ३४ ॥
प्रचण्डो दुर्वहे श्वेतकरवीरे प्रतापिनि ।
वरण्डो मुखरोगे स्यादंतरावेदिवृन्दयोः ॥ ३५ ॥

---

गारुड–मरकत (नीली) मणि, विषशास्त्र, विषशास्त्र विषै होनेवाला (न०)

तरंड–नदी आदिमें तरनेका पूला आदि ॥ ३० ॥ मच्छीपकडनेका काटाके सूत्रके संबंधसे तिरती हुई वस्तु, नौका, (पु०)

तित्तिड–दैत्यभेद, धर्मराजका किंकर (पुं०) ॥ ३१ ॥

तिन्तिडी–वृक्षभेद, चूका-शाक, इमली-वृक्ष,

द्राविड–वेधमुख्य, देशभेदमें उत्पन्न होनेवाला, संख्याभेद (पुं०) ॥३२॥

निर्गुंडी–पुष्पभेद, नीलासंभालू, कमलकंद, (स्त्री०)

पिचंड–उदर (पेट), पशुका एक अग, (पुं०) ॥ ३३ ॥

पूत्यंड–सेही, गन्धमृग, गन्धकीटक (गंधकीडा) (पुं०)

प्रकांड–वृक्षकी जडसे शाखाओंतकका भाग, श्रेष्ठ, वृक्ष, (पुं० न०) ॥ ३४ ॥

प्रचंड–जिसके साथ दुःखसे वर्ताव हो वह; सफेद कनेर, प्रतापी, (पुं०)

वरंड–मुखरोग, अन्तरावेदि (भीतरका चौंतरा) वृन्द (समूह) (पुं०) ॥३५॥

मतो दुश्चिणि वार्तण्डो वार्तण्डः स्याद्विहङ्गमे ।
वारुण्डी द्वारपिण्ड्यां स्याद् वारुण्डः कर्णदृग्मले ॥ ३६ ॥
फणिराजेऽथ वारुण्डः सेकपात्रेऽपि मुद्गरे ।
भेरुण्डा यक्षिणीदेवीभेदयोस्त्रिषु भीषणे ॥ ३७ ॥
मार्त्तण्डस्तु मतश्चण्डकिरणक्रोडयोरयम् ।
मारण्डस्तु भुजङ्गाण्डे पथि गोमयमण्डले ॥ ३८ ॥
वरण्डा सारिकाखड्गधेनुवर्त्तिषु वर्त्तते ।
वितण्डा वादभेदे स्यात् करवीर्यां शिलाह्वये ॥ ३९ ॥
कच्छीशाके च सा ज्ञेया शिखण्डो बर्हिचूडयोः ।
सपिण्डः पुंसि दायादे सपिण्डस्तनयेऽपि च ।
सरण्डः सरटे धूर्त्ते सरण्डो भूषणान्तरे ॥ ४० ॥

डचतुर्थं ।

आपोगण्डस्तु शिशुके विकलाङ्गेऽतिभीरुके ॥ ४१ ॥

---

वार्तंड—दुष्टी, पक्षी, ( पुं० )
वारुंडी—द्वारपिंडी ( देहली ) (स्त्री०)
वारुंड—कान और नेत्रका मल ॥३६॥ नागराज, सींचनेका पात्र, मुद्गर, ( पुं० )
भेरुंडा—यक्षिणीभेद, देवीभेद, (स्त्री०) भयंकर ( त्रि० ) ॥ ३७ ॥
मार्तंड—सूर्य, सूकर, ( पुं० )
मारंड—सर्पका अंडा, मार्ग, गोबरका मंडल, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥
वरंडा—मैना-पक्षी, खड्ग, गौ, बत्ती, ( स्त्री० )
वितंडा—वादभेद, कनेर, शिलाजीत ॥ ३९ ॥ कच्छी—शाक (शाकभेद) ( स्त्री० )
शिखंड—मोरपंख, मोरचोटी, (पुं०)
सपिंड—हिस्सेदार, पुत्र, ( पुं० )
सरंड—गिरगट, धूर्त, आभूषणभेद, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

डचतुर्थ ।

आपोगंड—बालक, विकल अंग, बहुत डरपोक, ( पुं० ) ॥ ४१ ॥

चक्रवाडोऽद्रिभेदे स्याच्चक्रवाडं तु मण्डले ।
जलरुण्डो जलावर्ते जलरेणुभुजङ्गयोः ॥ ४२ ॥
देवताडो बृहद्भानौ स्वर्भानौ घोषकेऽपि च ।
द्वयोर्वातगुडः ख्यातो वात्यायां वातशोणिते ॥ ४३ ॥
पिच्छिलास्फोटिकायां च धाममात्रेऽपि दृश्यते ।

इति विश्वलोचने डान्तवर्गः ॥

---

## अथ ढान्तवर्गः ।

ढैकम् ।

स्याद् ढकारस्तु ढक्कायां निर्गुणे विषमध्वनौ ॥ १ ॥

ढद्वितीयम् ।

गूढं रहसि गुह्ये च संवृते त्वभिधेयवत् ।
भवेद्दाढा तु दंष्ट्रायामिच्छायामप्यथ त्रिषु ॥ २ ॥
स्याद्दृढः स्थूलबलिनोर्दृढं वाढप्रगाढयोः ।
माढिः पत्रादिभङ्गौ स्याद् बलिनां दैन्यदीपने ॥ ३ ॥

---

चक्रवाड–पर्वतभेद, (पुं०) मंडल, (न०)
जलरुंड–जलका भंवर, जलकी रेती, सर्प, (पुं०) ॥ ४२ ॥
देवताड–अग्नि, राहु, तोरई, (पुं०)
वातगुड–वात (वायु) समूह, वातशोणित (वातरुधिर), ॥ ४३ ॥ जलझिरतीहुई गूमडी, स्थानमात्र, (पु० स्त्री०)
इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामे डांतवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ ढान्तवर्ग ।

ढैक ।

ढ(कार)–ढोल-बाजा, निर्गुण पुरुष, विषमशब्द, (पु०) ॥ १ ॥

ढद्वितीय ।

गूढ–एकात, गुप्त, ढकाहुवा, (त्रि०)
दाढा–डाढ, इच्छा (स्त्री०) ॥ २ ॥
दृढ–मोटा, बली, (त्रि०) निरतर, मजबूत (न०)
माढि–स्त्रियोके मुखआदिका चित्र, बलीके आगे दीनताका दिखाना (स्त्री०) ॥ ३ ॥

मूढस्तु तन्द्रिते मूर्खे राढा स्याद्गुप्तशोभयोः ।
वाढं भृशे प्रतिज्ञायां वोढा भारिकसूतयोः ॥ ४ ॥
व्यूढः पृथुलविन्यस्तसंहृतेषु हृते त्रिषु ।
षण्ढो वृषे वर्षवरे क्लीबे स्याद्वन्ध्यपूरुषे ॥ ५ ॥
वाच्यवन्मर्षणे सोढा सोढा शक्तेऽपि वाच्यवत् ।

ढतृतीयम् ।

अध्यूढ ईश्वरेऽध्यूढा कृतसापत्न्ययोषिति ॥ ६ ॥
आषाढो व्रतिनां दण्डे मासेऽपि मलयाचले ।
उदूढ ऊढे स्थूले स्यादुपोढो निकटोढयोः ॥ ७ ॥
प्रगाढस्तु दृढे कृच्छ्रे प्रमीढो मूत्रिते घने ।
प्ररूढो जाठरे बद्धमूले स्यादभिधेययोः ॥ ८ ॥

---

मूढ—तंद्रावाला, मूर्ख ( पुं० )
राढा—गुप्त, शोभा, ( स्त्री० )
वाढ—अत्यन्त, प्रतिज्ञा, ( न० )
वोढा—भारलेजानेवाला, सारथि, ( पुं० ) ॥ ४ ॥
व्यूढ—मोटा, स्थापनकियाहुवा, इकट्ठा कियाहुवा, नाशहुवा, ( त्रि० )
षंढ—साडबैल, हिजडा, ( पुं० ) संतानरहित पुरुष ( पुं० ) ॥ ५ ॥
सोढा—सहनेवाला-पुरुष,समर्थ,(त्रि०)

ढतृतीय ।

अध्यूढ—ईश्वर या समर्थ, ( पुं० )
अध्यूढा—जिसके कई विवाह हुए हों उसकी पहली स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥
आषाढ—व्रतियोंका दंड, आषाढमास, मलयाचल-पर्वत, ( पु० )
उदूढ—विवाहाहुवा, स्थूल ( मोटा ) ( पु० )
उपोढ—समीप होनेवाला, विवाहा हुवा, ( पु० ) ॥ ७ ॥
प्रगाढ—दृढ, कष्ट, ( पुं० )
प्रमीढ—पेशाव करना, मेघ ( पुं० )
प्ररूढ—पेट, जिसकी जड दृढ है वह, नाम ( पुं० ) ॥ ८ ॥

प्रारूढः सम्बले वह्नौ वस्त्राञ्चलकपाटयोः ।
पञ्जरेऽपि चिगूढस्तु गुप्तगर्हितयोस्त्रिषु ॥ ९ ॥
विगूढस्त्रिषु सञ्जाते वर्द्धिते छुरिते मतः ।
संमूढस्तु नवे भुग्ने पुंजितेऽप्यनुपप्लुते ॥ १० ॥
संरूढो वाच्यवत्प्रौढे तथैवाङ्कुरितेऽपि च ।

ढचतुर्थम् ।

अध्यारूढं समारूढोऽत्यधिकेऽपि त्रिलिङ्गकः ॥ ११ ॥

इति विश्वलोचने ढान्तवर्गः ॥

---

## अथ णान्तवर्गः ।

णकारो निर्णये ज्ञाने ।

णद्वितीयम् ।

सूक्ष्मे व्रीह्यन्तरेऽप्यणुः ॥
अणिराणिवदक्षाग्रकीलसीमास्त्रिषु द्वयोः ॥ १ ॥

---

प्रारूढ—खरची, अग्नि, वस्त्रखंड, किंवाड, पींजरा ( पुं० )
चिगूढ—गुप्त, निंदित, ( त्रि० ) ॥९॥
चिगूढ—उत्पन्नहुवा, बढाहुवा, अधिक हास, ( पुं० )
संमूढ—नवीन, मुडाहुवा, इकट्ठा किया हुवा, नहीं कष्टमें पडाहुवा, ( पुं० ) ॥ १० ॥
संरूढ—जवान, अंकुरवाला, ( त्रि० )

ढचतुर्थ ।

अध्यारूढ—अच्छीतरह चढाहुवा, अत्यंत अधिक ( जियादह ), ( त्रि० ) ॥ ११ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें ढान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ णान्तवर्ग ।

णैक ।

ण(कार)—निर्णय, ज्ञान, ( पुं० )

णद्वितीय ।

अणु—सूक्ष्म, व्रीहिभेद, ( पुं० )
अणि—आणि—धुराका अग्रभाग, कीला, सीम, कोण, (पु०स्त्री०)॥१॥

उष्णः स्यादातपे ग्रीष्मे वाच्यवत्तप्तदक्षयोः ।
ऊर्णा भ्रूमध्यजावर्त्ते भवेन्मेष्यादिलोम्नि च ॥ २ ॥
पिप्पलीजीरकुम्भीरमक्षिकासु कणा स्मृता ।
कणोऽतिसूक्ष्मे धान्यांशे कर्णः श्रोत्रे पृथासुते ॥ ३ ॥
सुवर्णालौ च काणस्तु मौद्गल्याधिकलोचने ।
किणस्तु व्रणे चिह्ने स्यादथ सूक्ष्मव्रणे गुणे ॥ ४ ॥
कीर्णं छन्ने परिक्षिप्ते हिंसितेऽप्यभिधेयवत् ।
कुणिस्तु कुकरे तुन्ने कृष्णो विष्णौ पिकेऽर्जुने ॥ ५ ॥
व्यासे कृष्णं तु मरिचे लोहे च त्रिषु तद्वति ।
कृष्णा तु द्रौपदीनीलीहारहूरासु पिप्पलौ ॥ ६ ॥
कोणोऽस्त्री लगुडे वाद्यप्रभेदे चार्कसम्भवे ।
वीणादिवादनोपायेऽप्येकदेशेऽपि वाच्यवत् ॥ ७ ॥

---

उष्ण—धूप, ग्रीष्म-ऋतु, ( पु० ) तपा हुवा, चतुर, ( त्रि० )
ऊर्णा—भ्रुकुटीके बीचका चक्र, भेडी आदिके केश, ( स्त्री० ) ॥ २ ॥
कणा—पीपल ओषधि, जीरा, जलजन्तु, सोनामक्खी, ( स्त्री० )
कण—अतिसूक्ष्म, धान्यका अंश ( कितनेकदाने ) ( पु० )
कर्ण—कान, कुंतीका पुत्र, सुवर्णालि ( सोनाली-वृक्ष ) ( पु० ) ॥ ३ ॥
काण—काग आदिक अर्थात् काणाने नेत्रवाला, ( पु० )
किण—व्रण ( घाव ), चिह्न, सूक्ष्मव्रण, गुण, ( पु० ) ॥ ४ ॥
कीर्ण—ढकाहुवा, तिरस्कार कियाहुवा, माराहुवा, ( त्रि० )
कुणि—रोगआदिसे दूषित हाथोंवाला ( टुंडा ), ( त्रि० ) तूनवृक्ष, ( पु० )
कृष्ण—विष्णु, कोयल, अर्जुन, ॥ ५ ॥ व्यास, ( पु० ) स्याहमिरच, लोहा ( न० ) स्याहरंगवाला ( त्रि० )
कृष्णा—द्रौपदी, नीली, दाख, पिप्पली, ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥
कोण—कूना, लाठी, बाजाभेद, शनैश्चर, वीणाबजानेका गज, ( पु० ) किसी द्रव्यका एकदेश ( त्रि० ) ॥ ७ ॥

गणः समूहे प्रमथे संख्यासैन्यप्रभेदयोः ।
गुणो रूपादिसत्त्वादिर्बिंवादिहरितादिषु ॥ ८ ॥
सूदेऽप्रधाने सन्ध्यादौ रज्जौ मौर्व्यां वृकोदरे ।
गेष्णुर्नटे गायने स्याद् घृणा कारुण्यनिन्दयो. ॥ ९ ॥
घ्राणं घ्राणेऽपि नासाया चूर्णी तु स्यात्कपर्दके ।
चूर्णः क्षोदे क्षारभेदे चूर्णानि गन्धशुक्तिषु ॥ १० ॥
जर्णः कलानिधौ वृक्षे जिष्णुः पार्थेन्द्रवह्निषु ।
जित्वरे त्रिषु जीर्णं तु पक्के वृद्धे जरान्तरे ॥ ११ ॥
झणिः पूगे दुष्टदैवश्रुतौ स्त्री कठिनेऽन्यवत् ॥
तीक्ष्णं क्षारेऽथ निशिततिग्मात्मत्यागिषु त्रिषु ॥ १२ ॥
निरालस्ये सुबुद्धौ च त्रिषु तीक्ष्णं च मुष्कके ।
तीक्ष्णं लोहे विषे तिग्मे यवाग्रे लवणे रणे ॥ १३ ॥

---

गण–समूह, महादेवकेगण, संख्या, सेनाभेद ( पुं० )
गुण–रूप रस आदि, सत्त्व रज आदि, बिंबआदि, ॥ ८ ॥ हरित पीत आदि ( रंग ), रसोइया, मंत्री, सन्ध्याआदि, रस्सी, धनुषकी ज्या, भीमसेन, ( त्रि० )
गेष्णु–नट, गानेवाला, ( पुं० )
घृणा–दया, निन्दा, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥
घ्राण–सूंघाहुवा, नासिका, ( न० )
चूर्णी–कौडी, ( स्त्री० )
चूर्ण–पीसाहुवा ( आटा आदि ), क्षारभेद, ( पुं० ) गंधवालीशुक्ति ( सीपी ) ( न० ) ॥ १० )
जर्ण–चंद्रमा, वृक्ष, ( पु० )
जिष्णु–अर्जुन, इन्द्र, अग्नि, ( पु० ) जीतनेके स्वभाववाला, ( त्रि० )
जीर्ण–पक्व, वृद्ध, अतिवृद्ध, ( त्रि० ) ॥ ११ ॥
झणि–सुपारी-वृक्ष, दुष्टभाग्यका सुनना, ( स्त्री ) कठिन ( करड़ा ) ( त्रि० )
तीक्ष्ण–क्षार, पैना, तीखा, आत्मत्यागी, ( त्रि० ) ॥ १२ ॥ आलस्यरहित, अच्छीबुद्धिवाला, ( त्रि० ) मोखा-वृक्ष, लोहा, विष, तिग्म ( तीक्ष्ण ), जवाखार, नमक, रण, ( न० ) ॥ १३ ॥

तूणी नील्यां निषङ्गे ना तृष्णा लिप्सापिपासयोः ।
त्राणं तु रक्षिते रक्ष्ये रक्षणत्रायमाणयोः ॥ १४ ॥
दीर्णं विदारिते भीते स्फुटितेऽप्यभिधेयवत् ।
देष्णुर्दातरि दुर्दान्ते द्रुणो वृश्चिकभृङ्गयोः ॥ १५ ॥
द्रुणी तु कच्छपीद्रोण्योर्द्रुणं चापकृपाणयोः ।
द्रोणस्तु द्रोणकाके स्यादपि द्रोणः कृपीपतौ ॥ १६ ॥
आढकानां चतुष्केपि द्रोणं स्यादाढकेऽस्त्रियाम् ।
द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिन्यां गवां घासभुजिस्थितौ ॥ १७ ॥
काष्ठागारे गिरेः सन्धौ नीवृद्भेदेऽपि दृश्यते ।
वर्णः स्वर्णेऽपि रूपेऽपि पणो मूल्ये भृतौ ग्लहे ॥ १८ ॥
पणोऽशीतिवराटेऽपि पणः कार्षापणे धने ।
द्यूते विक्रय्यशाकादेर्बद्धमुष्टावपि स्मृतः ॥ १९ ॥

---

तूणी—नीली औषधि ( स्त्री० ) बाणोंका भाथा, ( पु० )
तृष्णा—वाञ्छा, तृषा (प्यास) (स्त्री०)
त्राण—रक्षाकियाहुवा, रक्षाकरने योग्य, रक्षा, त्रायमान औषधि ( न० ) ॥ १४ ॥
दीर्ण—फाडाहुवा, डराहुवा, फूटाहुवा, ( त्रि० )
देष्णु—दाता ( देनेवाला ), दुःखसे रोकाहुवा ( पु० )
द्रुण—वीछू, भौंरा ( पुं० ) ॥ १५ ॥
द्रुणी—कछवी, छोटी नौका, ( स्त्री० )
द्रुण—धनुष, तरवार ( खड्ग ) (न०)
द्रोण—काकभेद, द्रोणाचार्य, ( पु० ) ॥ १६ ॥
द्रोण—चार आढक, ( पु० न० )
द्रोणी—डोंडी, गौवोंके घास चरनेकी जगह ॥ १७ ॥ काष्ठका स्थान, पर्वतकी संधि, देशभेद, ( स्त्री० )
वर्ण—सुवर्ण, रूप, ( पुं० )
पण—वस्तुका मोल, नौकरी, जूवामें लगानेका धन, ॥१८॥ ५० कौडी, पैसा, धन, जूवा, बेचनेके शाक आदिकी बांधीहुई मुट्ठी, ॥ १९ ॥

पणो द्यूतादिषूत्सृष्टे व्यवहारेऽप्ययं पणः।
पर्णं पत्रे पतत्रे च पर्णः स्यात्पुंसि किंशुके॥ २०॥
पार्ष्णिश्चरणमूले ना कुम्भीपाश्चात्त्यभागयोः।
सेनापृष्ठेऽपि पार्ष्णिः स्यात्पार्ष्णिः स्यादुन्मदस्त्रियाम्॥ २१॥
समग्रे पूरिते पूर्णस्त्रिषु शक्ते तु पुंस्ययम्।
प्राणा असुष्वथ प्राणे विड्वातेऽप्यनिले बले॥ २२॥
काव्यजीवे च बोले च प्राणं तु त्रिषु पूरिते।
फाणिर्गुडे करण्डे च वाणी द्यूतौ च वाचि च॥ २३॥
वाणिस्तु हारके मूल्ये भ्रूणः स्त्रीगर्भडिम्भयोः।
मणिर्द्वयोर्मेहनाग्रे रत्ने छागीगलस्तने॥ २४॥
अलिञ्जरेऽपि मुक्तादौ मोणस्तु पटमुत्सके।
मोणो वाणेपि कुम्भीरे मक्षिकाहिकरण्डयोः॥ २५॥

---

पणो–जूवा आदिमें लगायाहुवा, व्यवहार (पुं०)
पर्ण–पत्ता, पक्षीकी पर, (न०)
पर्ण–केसू (पलाशपुष्प) (पुं०) ॥ २०॥
पार्ष्णि– एडी–पॉवकी, (पु०) कायफल, पिछलाभाग, सेनाकी पीठ, मदोन्मत्त स्त्री, (स्त्री०)॥ २१॥
पूर्ण–संपूर्ण, पूराहुवा, (त्रि०) समर्थ, (पुं०)
प्राण–श्वास, (पुं० व०) हृदयमें रहनेवाला वायु, विट्वायु, वायु, बल, ॥ २२॥
काव्यजीव (रस), वोल (गंधद्रव्य) (न०) पूराहुवा, (त्रि०)
फाणि–गुड, पिटारा, (पुं०)
वाणी–जूवा, वाणी (वाक्) (स्त्री०) ॥ २३॥
वाणी–हार, मोल, (पुं०)
भ्रूण–स्त्रीका गर्भ, बालक, (पुं०)
मणि–लिंगका अग्रभाग, रत्न, बकरीके कंठके स्तन, ॥ २४॥ मटका, मोती आदि, (पुं० स्त्री०)
मोण–वाण, नाकू (जलजंतु), मक्खी, सर्पकी पिटारी, (पुं०) ॥ २५॥

रणः कोणे कणे युद्धे 'रेणुर्धूल्यणुपर्प्पटे ।
अथ पुंस्येव वर्णः स्यात्स्तुतौ रूपयशोगुणे ॥ २६ ॥

रागे द्विजादौ मुक्तादौ शोभाया चित्रकम्बले ।
व्रते गीतक्रमे देशेऽप्यस्त्री स्याद्वर्णकेऽक्षरे ॥ २७ ॥

वाणो वलिसुते काण्डे काण्डाशे केवले पुमान् ।
वाणो वाणा च झिंख्या स्याद् वाणको व्यन्तरे कचित् ॥२८॥

विष्णुः कृष्णे वसौ सूर्ये विष्णुर्नारायणार्कयोः ।
वसुर्दैवतभेदेऽपि वीणा वल्लकिविद्युतोः ॥ २९ ॥

वृष्णिः स्याद्यादवे मेषे वृष्णिः पाषण्डिचण्डयोः ।
वेणी नदीनां सङ्गे स्यात् केशबन्धान्तरेऽपि च ॥ ३० ॥

देवताडेऽपि वेणी स्त्री वेणुर्वंशे नृपान्तरे ।
शाणोर्द्धमाषके कर्षे कषणे करपत्रके ॥ ३१ ॥

---

रण—कोण, शब्द, युद्ध, ( पुं० )
रेणु—धूलि, बारीक पापड, ( पुं० )
वर्ण—स्तुति, रूप, यश, गुण, ॥ २६ ॥ रागभेद, ब्राह्मण आदि, मोती आदि, शोभा, विचित्र कंबल, व्रत, गीतक्रम, देशभेद, रंग, अक्षर, ( पुं० न० ) ॥ २७ ॥
वाण—वलिका पुत्र, बाण, बाणका मूल, केवल, ( पुं० )
वाणा—कटसरैया-औषधि, ( स्त्री० )
वाणक—व्यन्तरदेव ( पुं० ) ॥ २८ ॥
विष्णु—कृष्ण, वसु, सूर्य, नारायण, सूर्य, देवभेद, ( पुं० )
वीणा— वीणा-वाजा, बिजली, (स्त्री०) ॥ २९ ॥
वृष्णि—यादव, मेंढा, पाषडी, अति क्रोधी, ( पुं० )
वेणी—नदियोंका संग, केशबंधभेद, ॥ ३० ॥ देवताड वृक्ष, ( स्त्री० )
वेणु—बाँस-वृक्ष, वेणु-राजा, ( पु० )
शाण—आधामासा, सोलहमासा, कसोटी पत्थर, करौंत (आरा) ॥ ३१ ॥

शीतत्राणान्तरे शाणी शीर्णमल्पविशीर्णयोः ।
शोणो नदे कोकनदच्छवौ श्योनाकबर्हिषोः ॥ ३२ ॥
लोहिताश्वेऽप्यथ श्रोणिर्द्वयोः स्यात्कारुसंहतौ ।
केशपात्रान्तरे श्रोणिः श्रेणिः पङ्क्तावनिः स्त्रियाम् ॥ ३३ ॥
श्राणा यवाग्वां श्राणं तु पक्के स्यादभिधेयवत् ।
स्थाणुः कीले हरे पुंसि स्थाणुस्त्वस्त्री ध्रुवेपि च ॥ ३४ ॥
स्थूणा तु स्याद् गृहस्तम्भे लोहप्रतिकृतावपि ।
क्षणः स्यादुत्सवे कालभेदावसरपर्वसु ॥ ३५ ॥

णतृतीयम् ।

अभीक्ष्णं तु भृशे नित्येऽप्यरुणोऽनूरुसूर्ययोः ।
कुष्ठे चाव्यक्तरागे च सन्ध्यारागे च पुंस्ययम् ॥ ३६ ॥
नीरवाऽऽरक्तकपिलव्याकुलेषु च वाच्यवत् ।
अरुणा त्रिवृताश्यामामञ्जिष्ठाऽतिविषासु च ॥ ३७ ॥

---

शाणी–ठंढसे रक्षा करनेवाला पहनने-का वस्त्र ( स्त्री० )
शीर्ण–अल्प, गिराहुवा, ( न० )
शोण–नद, लालकमलकी छवि, सोना-पाठा, कुशा ॥ ३२ ॥ लालअश्व, (घोडा) ( पु० )
श्रोणि–कारीगरोंका समूह, (पुं०स्त्री०)
श्राणा–यवागू, ( स्त्री० )
श्राण–पकाहुवा ( त्रि० )
स्थाणु–कीला, महादेव, ( पु० )
स्थाणु–ध्रुव, द्रव्य, ( पुं० न० ) ॥ ३४ ॥

स्थूणा–घरका खंभ, लोहेकी मूर्ति, ( स्त्री० )
क्षण–उत्सव, कालभेद, अवकाश, पर्व, ( पुं० ) ॥ ३५ ॥

णतृतीय ।

अभीक्ष्ण–अत्यंत, नित्य, ( अ० )
अरुण–अनूरु ( सूर्यका सारथि ), सूर्य, कुष्ठभेद, थोडालाल रंग, सन्ध्यासमयमें आकाशकी लाली, ( पुं० ) ॥ ३६ ॥ शब्दरहित, थोडा लाल कपिल, व्याकुल, (त्रि०)
अरुणा–निसोथ, सारिवा, मजीठ, अतीस, ( स्त्री० ) ॥ ३७ ॥

अरणिस्तु भवेदग्निमन्थे मन्थानदण्डके ।
इन्द्राणी तु शचीसिन्दुवारयोः करणे स्त्रियाम् ॥ ३८ ॥
ईरिणं तूषरे शून्येऽपीक्षणं दर्शने दृशि ।
ऊषणा तु कणायां स्यादूषणं मरिचे मतम् ॥ ३९ ॥
एषणी व्रणमार्गोऽनुसारिण्यां तु तुलामिदि ।
एषणो लोहबाणे स्यादन्वेषे त्वनुपूर्वकम् ॥ ४० ॥
कङ्कणं करभूषायां हस्तसूत्रेऽपि शेखरे ।
कत्तृणं तृणभेदेऽपि वारिपर्ण्यां च कत्तृणम् ॥ ४१ ॥
करणस्तु भवेद्वैश्याच्छुद्रायास्तनुजे पुमान् ।
करणं साधकतमे कार्यकायस्थकर्मसु ॥ ४२ ॥
क्रियायामिन्द्रिये क्षेत्रे करणं बालवादिषु ।
गीताङ्गहारसंवेशक्रियाभेदेऽपि चेष्यते ॥ ४३ ॥

---

अरणि–अरहूवृक्ष, मथनेकी डंडा, ( स्त्री० )

इंद्राणी–इंद्राणी ( इंद्रकी स्त्री ), सिम्हालू-वृक्ष, स्त्रियोंका-करण हाव-आदि ( स्त्री० ) ॥ ३८ ॥

ईरिण–ऊषर (जहां बीज नहीं उपजे), शून्य ( सूना ) ( न० )

ईक्षण–दर्शन (देखना), नेत्र, (न०)

ऊषणा–पीपल, ( स्त्री० )

ऊषण–स्याहमिरच, ( न० ) ॥३९॥

एषणी–व्रणछिद्रमें देनेकी सलाई, काँटा तोलनेका ( स्त्री० )

एषण–लोहेका बाण,

अन्वेषण–ढूंढना, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

कंकण–हाथका आभूषण ( कंगन ), हाथका सूत्र ( रक्षासूत्र ), शिखामें धारणकीहुई माला, ( न० )

कत्तृण–तृणभेद, पिठवन, ( न० ) ॥ ४१ ॥

करण–वैश्यसे उत्पन्नहुवा शूद्रीका पुत्र, ( पुं० )

करण–क्रियाको सिद्धकरनेवाला (बाण आदि ), कार्य, कायस्थ ( शरीरमें स्थित ), कर्म ॥ ४२ ॥ क्रिया, इंद्रिय, क्षेत्र, बालव आदि-करण, गाना, भावबताना, सोना क्रियाका भेद ॥ ४३ ॥

करुणस्तु रसे वृक्षे कृपायां करुणा स्त्रियाम् ।
करेणुस्तु वसायां स्त्री कर्णिकारेभयोः पुमान् ॥ ४४ ॥
कल्याणमक्षयस्वर्गे मङ्गले तद्वति त्रिषु ।
स्यान्मानदण्डपणयोश्चतुर्थांशे हि काकिणी ॥ ४५ ॥
गुञ्जायां वाटमात्रेऽपि कुष्ठभेदेऽपि काकणे ।
कारणं हेतुवधयोः पीडायां करणेऽपि च ॥ ४६ ॥
कारणा यातनायां स्यात्कार्मणं स्यात्तु कर्मठे ।
परदेहप्रवेशे च योजने मंत्रतन्त्रयोः ॥ ४७ ॥
भृत्ये कर्तरि कुर्वाणः कृपणः कुत्सिते कृमौ ।
खड्गे कृपाणः शस्त्री तु कृपाणी कर्त्तरावपि ॥ ४८ ॥
कोङ्कणो देशभेदे स्यादस्त्रभेदे तु कोङ्कणम् ।
गोकर्णोऽश्वतरे सर्पमृगभेदे गणान्तरे ॥ ४९ ॥

---

करुण–रस, वृक्ष, ( पुं० )
करुणा–कृपा, ( स्त्री० )
करेणु–वसा (चर्मके नीचे श्वेतभाग), ( स्त्री० ) पुष्पकी कर्णिका, हस्ती, ( पुं० ) ॥४४ ॥
कल्याण–अक्षयस्वर्ग ( मोक्ष ), मंगल, ( न० ) मंगलवाली वस्तु ( त्रि० )
काकिणी–मान ( प्रमाण )के दंडका चौथा भाग, पैसाका चौथा भाग, रत्ती-प्रमाण, वाटमात्र, कुष्ठभेद, काकण, ( स्त्री० ) ॥ ४५ ॥
कारण–हेतु, वध (मारना,) पीडा, करण ॥ ४६ ॥
कारणा–तीव्रपीडा, ( स्त्री० )
कार्मण–कर्मकराने वाला, परशरीरमें प्रवेश, तंत्र मंत्र का योजन करना, ( न० ) ॥ ४७ ॥
कुर्वाण–भृत्य ( नौकर ), करनेवाला, ( पु० )
कृपण–निंदित, (कृमि–कीडा) (पुं०)
कृपाण–खड्ग, ( पुं० )
कृपाणी–छुरी, कतरनी ( कैंची ) ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥
कोंकण–देशभेद, ( पुं० ) अस्त्रभेद, ( न० )
गोकर्ण–खिच्चर, सर्पभेद, मृगभेद, गणभेद ॥ ४९ ॥

अङ्गुष्ठाऽनामिकोन्माने गोकर्णी मूर्विकौषधी ।
ग्रहणं तूपलब्धौ स्यात्स्वीकारादरयोः करे ॥ ५० ॥

ग्रहोपरागे वन्द्यां च प्रत्यये ग्रहणीरुजि ।
ग्रामणीर्नापिते पुंसि श्रेष्ठाऽधिपे च भोगिके ॥ ५१ ॥

त्रिषु स्त्रियां तु गणिका ग्रामिणी नीलिका स्त्रियाम् ।
चरणोऽस्त्री बह्वृचादौ मूलेऽपि पदगोत्रयोः ॥ ५२ ॥

चरणं भ्रमणेऽङ्घ्रौस्या च्चरणं भक्षणेऽपि च ।
जरणं जीरणोऽजाजीहिङ्गुसौवर्चले मतम् ॥ ५३ ॥

तरणिः सूर्येऽपि तरणे कुमारीनौकयो· स्त्रियाम् ।
तरुणो यूनि नवके कुब्जपुष्पोरुवूकयो· ॥ ५४ ॥

दक्षिणः सरलावामपरच्छन्दानुवर्त्तिषु ।
त्रिषु स्याद्वाच्यलिङ्गोऽयमवाची संभवे मत ॥ ५५ ॥

---

अंगूठा और अनामिका उंगलीके फैलानेसे उन्मान, ( पुं० )
गोकर्णी—मरोरफली, ( स्त्री० )
ग्रहण—प्राप्ति, अंगीकार, आदर, हाथ ॥ ५० ॥ ग्रहण सूर्यचन्द्रका, बंदी, प्रत्यय ( निश्चय कराना ) ( न० )
ग्रहणी—सग्रहणी-रोग ( स्त्री० )
ग्रामणी—नाई ( पुं० ) श्रेष्ठ, अधिप, भोगनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ५१ ॥
ग्रामिणी—गणिका, नीली-औषधि, ( स्त्री० )
चरण—बह्वृचआदि, मूल, पाँव, गोत्र, ( पु. न० ) ॥ ५२ ॥
चरण—भ्रमण करना, पाँव, भक्षण करना, ( न० )
जरण—( न० ) जीरण ( पु० ) जीरा, हींग, स्याहनमक, ॥ ५३ ॥
तरणि—सूर्य, जमीकन्द, ( पुं० ) घी-कुँवार-औषधि, नाव, ( स्त्री० )
तरुण—जवान पुरुष, नवीन, कुब्जावृक्षका पुष्प, अरंड-वृक्ष (पु०)॥५४॥
दक्षिण—सरल, दहना हाथ आदि, दूसरेकी इच्छाके अनुकूल, दक्षिण-दिशामें होनेवाला, ( त्रि० )॥५५॥

यज्ञदानप्रतिष्ठायामवाच्यामपि दक्षिणा ।
दुर्वर्णं वालुके रूप्ये द्रविणं स्यात्पराक्रमे ॥ ५६ ॥

धरणं धारणे मानभेदेऽपि धरणी क्षितौ ।
धरुणः सलिले स्वर्गे धरुणः परमेष्ठिनि ॥ ५७ ॥

धर्म्मणः सर्पभेदेपि धर्म्मणः पादपान्तरे ।
धर्षणी कुलटाया स्याद् धर्षणं गञ्जिते रते ॥ ५८ ॥

बुद्धोक्तमन्त्रभेदे च नाटिकायां च धारणी ।
धिषणस्तु सुराचार्ये धिषणा बुद्धिनिद्रयोः ॥ ५९ ॥

निर्माणो निर्मितौ सारे रचनायां समञ्जसे ।
निर्याणं निर्गमे मोक्षे गजापाङ्गे च तद्भुयो. ॥ ६० ॥

निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे स्तम्भने गजमज्जने ।
निश्रेणिरधिरोहिण्यां खर्जूरीपादपे स्त्रियाम् ॥ ६१ ॥

---

दक्षिणा–यज्ञदानकी प्रतिष्ठामें द्रव्य-देना, दक्षिण-दिशा, ( स्त्री० )
दुर्वेण–एलुवा-औषधि, चाँदी, (न०)
द्रविण–पराक्रम, ( न० ) ॥ ५६ ॥
धरण–धारण करना, मानभेद, (न०)
धरणी–पृथ्वी, ( स्त्री० )
धरुण–जल, स्वर्ग, ब्रह्मा, (पुं०)॥५७॥
धर्मण–सर्पभेद, वृक्षभेद, ( पुं० )
धर्षणी–कुलटा स्त्री, ( स्त्री० )
धर्षण–निरादर, मैथुन ( स्त्रीसग ) ( न० ) ॥ ५८ ॥
धारणी–बुद्धका कहाहुवा मंत्रभेद. एकप्रकारका नाटक, ( स्त्री० )
धिषण–बृहस्पति ( पुं० )
धिषणा–बुद्धि, निद्रा, (स्त्री०)॥५९॥
निर्माण–बनाना, सार, रचना, उचित (मुनासिव ) ( पु० )
निर्याण–निकसना, मोक्ष, हस्तीके-नेत्रका कोया, ( पुं०न० )॥ ६० ॥
निर्वाण–आनंद, मोक्ष, थाँभना, हस्तीका मजन ( स्नान ) ( न० )
निश्रेणि–सीढी, खजूरका वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ ६१ ॥

पत्रोर्णं धौतकौशेये पत्रोर्णः शोणकद्रुमे ।
पुराणं चिरकालीयद्रव्ये स्यादभिधेयवत् ॥ ६२ ॥
पूरणः पूरके पुंसि पूरणे पिष्टकान्तरे ।
पूरणी शाल्मलीवस्त्रारम्भसूत्रान्तरेऽपि च ॥ ६३ ॥
प्रघणस्ताम्रकुण्डे स्यादलिन्दे लोहमुद्गरे ।
प्रमाणमेकतेयत्ताहेतियन्तृप्रमातृषु ॥ ६४ ॥
सत्यवादिनि नित्ये च मर्यादाहन्तृशास्त्रयोः ।
प्रवणः प्रगुणे प्रह्वे क्रमनिम्नःक्षितौ कृशे । ॥ ६५ ॥
एतेषु त्रिषु पुंस्येव प्रवणः स्याच्चतुष्पथे ।
प्रवेणिः स्त्री कुथे वेण्या प्रोक्षणं वधसेकयोः ॥ ६६ ॥
वरणस्तिक्तशाकेऽपि प्राकारे वरणं वृतौ ।
वरुणस्तरुभेदे स्यात् प्रचेतःसूर्यवारिषु ॥ ६७ ॥

---

पत्रोर्ण–धोयाहुवा रेशमी वस्त्र, (न०)
पत्रोर्ण–सोनापाठा-वृक्ष ( पुं० )
पुराण–बहुतकालका द्रव्य,(त्रि०) ६२
पूरण–पूरण करनेवाला या प्राणायामभेद, पूरित करना, पीठीका भेद (पु०)
पूरणी–सालवृक्ष, वस्त्र बुननेकेलिये फैलायाहुवा सूत्र, (स्त्री०) ॥६३॥
प्रघण–तांबेका कुंड , द्वारकी चौखट, लोहेका मुद्गर ( पु० )
प्रमाण–एकता, इयत्ता ( प्रमाण ), शस्त्र या अग्निज्वाला, सारथि, प्रमाण करनेवाला ॥ ६४ ॥ सत्यवचनबोलनेवाला, नित्य, मर्यादाका नष्टकरनेवाला, शास्त्र, ॥
प्रवण–सीधा, नम्र, क्रमसेनीची पृथ्वी, दुबला, ( त्रि० ) ॥ ६५ ॥ चुरा हा( चौपटरास्ता ) ( पुं० )
प्रवेणि–हस्तीकी झूल या कुशा,वेणी ( गुंथेहुएकेश, ) ( स्त्री० )
प्रोक्षण–मारना, सींचना (न०)॥६६॥
वरण–पत्रसुंदरशाक, ( बंगभाषागिमा ), प्राकार, (किला) ( पुं० )
वरण–वरणकरना, ( न० )
वरुण–वृक्षभेद ( बरना ), वरुण-देव, सूर्य, जल, ( पु० ) ॥ ६७ ॥

वारणो दन्तिनि ख्यातः प्रतिषेधे तु वारणम् ।
अथ प्रतीचीमदिरागण्डदूर्वासु वारुणी ॥ ६८ ॥
ब्राह्मणी फञ्जिकासृक्काद्विजपत्नीष्वथ द्विजे ।
ब्राह्मणो ब्राह्मणं मन्त्रभेदेऽपि द्विजसंहतौ ॥ ६९ ॥
भरणी शोणके ऋक्षे भरणं वेतने भृतौ ।
भीषणे दारुणे गाढे भीषणं सल्लकीरसे ॥ ७० ॥
कारुण्व्यामीश्वरक्रीडाभ्रमणे भ्रमणी स्त्रीयाम् ।
मार्गणो याचके बाणे क्लीबमन्वेषयाच्ञयोः ॥ ७१ ॥
यन्त्रणं स्यान्नियमने बन्धने रक्षणेऽपि च ।
पटोलमूले रमणं रमणस्तु प्रिये स्मरे ॥ ७२ ॥
रवणो रासभे शब्दे रोषाणो रोषणे त्रिषु ।
पारदोषरयोः स्वर्णघर्षणेऽपि पुमानयम् ॥ ७३ ॥

---

वारण–हस्ती (पुं॰)
वारण–निषेध करना (वर्जना) (न॰)
वारुणी–पश्चिमदिशा, मदिरा, गाडर-दूब, (स्त्री॰) ॥ ६८ ॥
ब्राह्मणी–भारंगी या देवताड-वृक्ष, होठोंका जोड़ (गलाफू), ब्राह्मण-की स्त्री, (स्त्री॰)
ब्राह्मण–ब्राह्मण-जाति, (पु॰) मंत्र-भेद, ब्राह्मणोंका समूह, (न॰) ॥ ६९ ॥
भरणी–सोनापाठा-वृक्ष, भरणी-नक्षत्र, (स्त्री॰)
भरण–मजूरी, पोषणकरना, (न॰)
भीषण–भयंकर, कठोर, दृढ, (त्रि॰) सेह-प्राणी, सालवृक्षका रस, (पुं॰) ॥ ७० ॥
भ्रमणी–जलौका (जोक), ईश्वर-क्रीडा, भ्रमण, (स्त्री॰)
मार्गण–याचनाकरनेवाला, बाण, (पु॰) ढूँढना, याचना, (न॰) ॥ ७१ ॥
यंत्रण–वशमेंकरना, बाँधना, रक्षा-करना, (न॰)
रमण–परवलकी जड, (न॰)
रमण–प्रिय (पति), कामदेव, (पुं॰) ॥ ७२ ॥
रवण–गधा, शब्द, (पुं॰)
रोषाण–क्रोधी. (त्रि॰) पारा, ऊ-षर-भूमि, कसौटी, (पु॰) ॥ ७३ ॥

रोहिणी कटुरोहिण्या लोहितासोमवल्कयोः ।
गोनागकर्णरुग्भेदे लवणं तु द्विजान्तरे ॥ ७४ ॥
लवणो रसरक्षोब्धिभेदेषु लवणा द्युतौ ।
लक्षणं नाम्नि चिह्ने च रामभ्रातरि लक्षणः ॥ ७५ ॥
लक्ष्मणः पुंसि सौमित्रौ लक्ष्मणं नामलक्ष्मणोः ।
लक्ष्मणा सारसीज्योतिष्मत्योः श्रीमति वाच्यवत् ॥ ७६ ॥
विपणिस्तु स्त्रियां पण्यवीथ्यामापणपण्ययोः ।
विषाणं तु पशोः शृङ्गे विषाणं द्विरददन्तयोः ॥ ७७ ॥
त्रिषु त्रिषु विषाणी तु मेषशृङ्गाख्यभेषजे ।
शरणं गृहरक्षित्रो शरणं रक्षणे वधे ॥ ७८ ॥
सिङ्घाणं काचपात्रेऽपि नासिकालोहकिट्टयोः ।
श्रावणो मासि पाषण्डे दध्यान्या श्रावणा स्त्रियाम् ॥ ७९ ॥

---

रोहिणी–कुटकी, लालसाठी, करजुवा या रीठा, गौ, लालअरड, एक प्रकारका रोग, ( स्त्री० )
लवण–जलपृथ्वीके सयोगसे पैदा होनेवाला, ॥ ७४ ॥
लवण–रस-भेद, राक्षस भेद, समुद्र भेद, ( पुं० )
लवणा–कांति ( स्त्री० )
लक्षण–नाम, चिह्न, ( न० ) रामभ्राता ( लक्ष्मण ) ( पु० ) ॥७५॥
लक्ष्मण–सुमित्राका पुत्र ( लक्ष्मण ) ( पु० ) नाम, चिह्न, ( न० )
लक्ष्मणा–सारसी-पक्षी ( सारसकी स्त्री ), नालकागनी, ( स्त्री० ) सपत्तिवाला, ( त्रि० ) ॥ ७६ ॥
विपणि–बाजार, हाट, दूकान, (स्त्री०)
विषाण–पशुके सींग, हाथीके दांत, ( त्रि० ) ॥ ७७ ॥
विषाणी–मेढासींगी-औषधि ( स्त्री० )
शरण–घर, रक्षाकरनेवाला, रक्षा, मारना, ( न० ) ॥ ७८ ॥
सिङ्घाण–कांचका पात्र, नासिकाका मल, लोहेका मल, ( न० ॥
श्रावण–श्रावण-मास, पाषंड, ( पुं० )
श्रावणा–दधियू-वृक्ष, (स्त्री०) ॥७९॥

श्रीपर्णी कुम्भिगम्भार्यो क्लीबं पद्माग्निमन्थयोः ।
सङ्कीर्णं सङ्कटेऽशुद्धे सरणिः श्रेणिवर्त्मनोः ॥ ८० ॥
सारणो रावणाऽमात्येऽप्यतीसारेऽपि सारणः ।
सारणी स्वल्पसरिति प्रसारण्यां च सारणी ॥ ८१ ॥
सुपर्णः स्वर्णचूडेऽपि गरुडे कृतमालके ।
सुपर्णा कमलिन्यां च सुपर्णा तार्क्ष्यमातरि ॥ ८२ ॥
सुवर्णस्तु सुवर्णालौ कृष्णाऽगुरुमखान्तरे ।
सुवर्णं वर्णितं स्वर्णे सुवर्णं कर्षवित्तयोः ॥ ८३ ॥
सुषेणो हरिसुग्रीववैद्ययोः करमर्दके ।
हरणं यौतकद्रव्येऽप्यङ्गरागे भुजे हृतौ ॥ ८४ ॥
हरिणस्तु मृगे पुंसि हरिणः पाण्डुरेऽन्यवत् ।
हरिणी हरितामृग्योर्वृत्तस्त्रीभेदयोरपि ॥ ८५ ॥

---

श्रीपर्णी–गूगल-वृक्ष, कंभारी या कुंभेर-वृक्ष, ( स्त्री० )
श्रीपर्ण–कमल, अरणी-वृक्ष, ( न० )
संकीर्ण–सकट ( सकडा-भीडा ), अशुद्ध, ( न० ),
सरणि–पंक्ति, मार्ग ( स्त्री० ) ॥८०॥
सारण–रावणका मंत्री, अतीसार-रोग, ( पुं० )
सारणी–छोटी नदी, पसरन या छुइ मुइ, ( स्त्री० ) ॥ ८१ ॥
सुपर्ण–स्वर्णचूड-पक्षी, गरुड, अमलतास-वृक्ष, ( पुं० ॥
सुपर्णा–कमलिनी (कमोदनी), गरुडकी माता, ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥
सुवर्ण–हेमपुष्पी या सोनाली-स्याह अगर-वृक्ष, यज्ञभेद, ( पुं० )
सुवर्ण–सोना, कर्ष ( सोलहमासा ), द्रव्य, ( न० ) ॥ ८३ ॥
सुषेण–विष्णु, सुग्रीववैद्य, करोंदा-वृक्ष, ( पुं० )
हरण–वरवधूको देनेका द्रव्य, अयराग, भुज, हरना, ( न० ) ॥८४॥
हरिण–मृग, ( पु० ) पाण्डुर ( श्वेत रंग ) ( त्रि० )
हरिणी–हरितरंगवाली, मृगी, छदभेद, स्त्रीभेद, ॥ ८५ ॥

सुवर्णप्रतिमायां च हर्षणस्तु प्रमोदके ।
अक्षिरोगान्तरे योगान्तरेऽपि श्राद्धदैवते ॥ ८६ ॥
स्त्री कुलस्त्रीरेणुकयोः हरेणुर्ना सतीनके ।
हिरणं च हरिण्यं च वराटे स्वर्णरेतसो ॥ ८७ ॥
क्षेपणी च भवेन्नौकादण्डे जालान्तरेऽपि च ।

णचतुर्थम्

अङ्गारिणी हसन्त्यां स्याद् भास्करत्यक्तदिश्यपि ॥ ८८ ॥
आतर्पणं तु सौहित्ये मङ्गलालेपनेऽपि च ।
आथर्वणस्त्वथर्वज्ञद्विजन्मनि पुरोहिते ॥ ८९ ॥
आरोहणं तु सोपाने समारोहप्ररोहयो. ।
उत्क्षेपणं तु व्यजने धान्यमर्दनवस्तुनि ॥ ९० ॥
वान्तोन्मूलननिस्तारोन्नयेषूद्धरणं मतम् ।
अथ कामगुणो रागेऽप्याभोगे विषयेऽपि च ॥ ९१ ॥

---

सुवर्णकी मूर्ति,( स्त्री० )
हर्षण–आनन्द, नेत्ररोगविशेष, हर्षण-योग, श्राद्धदेवत ( धर्मराज ) ( पुं० ) ॥ ८६ ॥
हरेणु–कुलकी स्त्री, रेणुका औषधि, ( स्त्री० ) मटर-अन्न ( पुं० )
हिरण-हिरण्य–कौडी, सुवर्ण, वीर्य, ( न० ) ॥ ८७ ॥
क्षेपणी–नौकादंड, जालभेद, (स्त्री०)

णचतुर्थं ।

अंगारिणी–निगडी, सूर्यकी त्यागीहुई दिशा, ( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥
आतर्पण–तृप्ति, मंगलद्रव्यका लीपना ( न० )
आथर्वण–अथर्ववेदका जाननेवाला ब्राह्मण, पुरोहित, ( पु० ) ॥८९॥
आरोहण–सीढी, चढना, बीजआदिकी उत्पत्ति, ( न० )
उत्क्षेपण–पंखा, धान्यको मर्दनकरनेवाली वस्तु, ( न० ) ॥ ९० ॥
उद्धरण–छर्द, उखाडना, उद्धार, ऊपरप्राप्तकरना, ( न० )
कामगुण–राग ( रति ), आभोग ( परिपूर्णता ), विषय, (पुं) ॥९१॥

कार्षापणः पुराणे स्यादस्त्रियामपि कार्षिके ।
चीर्णपर्णस्तु खर्जूरीपादपे पिचुमर्दके ॥ ९२ ॥

चूडामणिः शिरोरत्ने काकचिञ्चाफलेऽपि च ।
जुहुराणोऽनलेऽध्वर्यौ तण्डुरीणस्तु कीटके ॥ ९३ ॥

स्यात्तन्दुलोदके चैव याम्यदेशीयबर्बरे ।
तैलपर्णी मलयजे सिह्लश्रीवासयोरपि ॥ ९४ ॥

दाक्षायणी च दुर्गायां रोहिण्यां तारकासु च ।
देवमणिः शिवे वाजिकण्ठावर्त्ते च कौस्तुभे ॥ ९५ ॥

नारायणोऽच्युतेऽभीरुगौर्योर्नारायणी स्त्रियाम् ।
गले निगरणः पुंसि भोजने तु नपुंसकम् ॥ ९६ ॥

निरूपणं विचारे स्यादालोकननिदर्शने ।
निस्तरणं स्यान्निस्तारेऽप्युपाये निर्गमेऽपि च ॥ ९७ ॥

---

कार्षापण–पुराना, रुपया, ( पुं० न० )
चीर्णपर्ण–खजूरका वृक्ष, नींवका वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ९२ )
चूडामणि–शिरपरधारनेका रत्न, गुञ्जा-फल, ( घुघुची ) ( पुं० )
जुहुराण–अग्नि, अध्वर्यु ( यज्ञकर्ममें वराहुवा एक ब्राह्मण ) ( पु० )
तण्डुरीण–कीटमात्र, ॥ ९३ ॥
चावलोंका जल, दक्षिण देशका वोल ( द्रव्य ) ( पु० )
तैलपर्णी–चंदन, हींग, देवदारकी धूप, ( स्त्री० ) ॥ ९४ ॥
दाक्षायणी–दुर्गा, रोहिणी, तारा, ( स्त्री० )
देवमणि–महादेव, घोडेके कंठकी भौंरी, कौस्तुभ-मणि, (पुं०)॥९५॥
नारायण–विष्णु, (पुं०)
नारायणी–सतावर-औषधि, पार्वती, ( स्त्री० )
निगरण–गल ( कठ ) (पुं०) भोजन, ( न० )॥ ९६ ॥
निरूपण–विचार, देखना, दिखाना, ( न० )
निस्तरण–उद्धार, उपाय, निकलना, ( न० ) ॥ ९७ ॥

निस्सरणं द्वारमुक्तिनिर्याणोपायमृत्युषु ।
परीरणः स्यात्कमठे दण्डे च पट्टशाटके ॥ ९८ ॥

पर्वरीणस्तु पर्णस्य शिरायां घूतकम्बले ।
पर्णवृन्तरसेऽपि स्यात् सितसौरभपर्वणोः ॥ ९९ ॥

परवाणिस्तु कथितो धर्माऽध्यक्षेऽपि वत्सरे ।
त्रिषु स्यात्तत्परेऽभीष्टेऽप्याश्रये तु परायणम् ॥ १०० ॥

पारायणं पारगतौ सम्यगासङ्गकार्त्स्न्ययोः ।
पीलुपर्णी तु मूर्वायां विम्बायामोषधीभिदि ॥ १०१ ॥

पुष्करिणी सरोजिन्या हस्तिन्या च जलाशये ।
स्यात्प्रतिपणः संस्कारेऽप्युपग्रहनिषङ्गयोः ॥ १०२ ॥

प्रवारणं निषेधे स्यात् काम्यदाने प्रवारणम् ।
वारवाणस्तु कवचे सर्वसन्नहनेऽपि च ॥ १०३ ॥

---

निस्सरण—दरवाजा, मुक्ति, निकलना, उपाय, मृत्यु, ( न० )

परीरण—कछुवा, छडी, पाटकी साडी या धोती ( पुं० ) ॥ ९८ ॥

पर्वरीण—पत्तेकी नसें, जूवाका कंबल, पत्तोंके नाकुवोंका रस, सफेद बोल औषधि, पर्व ( पोरी ) ( पु० ) ॥ ९९ ॥

परवाणि—धर्मका अध्यक्ष ( स्वामी ), संवत्सर ( पुं० )

परायण—तत्पर, वाछित, आश्रय, ( त्रि० ) ॥ १०० ॥

पारायण—पारगति ( पारगमन ), अच्छीतरह सग, संपूर्णता ( न० )

पीलुपर्णी—मूर या मोरवेल, चुरनहार, मरोरफली, औषधीभेद ( स्त्री० ) ॥ १०१ ॥

पुष्करिणी—कमलिनी ( कमोदनी ), हस्तिनी, सरोवर, ( स्त्री० )

प्रतिपण—संस्कार, उपग्रह, वाणोंका तरकस ( पु० ) ॥ १०२ ॥

प्रवारण—वर्जना, यथेच्छदान, (न०)

वारवाण—कवच, अँगरखा, ( पुं० ) ॥ १०३ ॥

मीनाम्रीणो मतः पुंसि दर्दराम्रेऽपि खञ्जने ।
रक्तरेणुस्तु सिन्दूरे पलाशकलिकोद्भवे ॥ १०४ ॥

रागचूर्णः स्मरे रक्तवालुके दन्तधावने ।
रेरिहाणः पशुपतौ रेरिहाणो विहायसि ॥ १०५ ॥

लम्बकर्णो मतश्छागे स्यादङ्कोरमहीरुहे ।
अस्त्री विदारणं युद्धे भेदने च विडम्बने ॥ १०६ ॥

भवेद्वैतरणी प्रेतनद्यां राक्षसमातरि ।
शरवाणिः शरमुखे पापिष्ठे शरजीविनि ॥ १०७ ॥

स्त्रियां शिखरिणी वृत्तभेदे तक्रप्रभेदयोः ।
स्त्रीरत्ने मल्लिकायां च रोमावल्यामपि स्मृता ॥ १०८ ॥

समीरणः स्यात्पवने प्रस्थपुष्पकपान्थयोः ।
संसरणं स्यात्संसारे पुरनिर्गमगोपुरे ॥ १०९ ॥

---

मीनाम्रीण–दर्दराम्र-वृक्ष, खंजन-पक्षी, ( पु० )

रक्तरेणु–सिंदूर, ढाकके फूलकी कली, ( पुं० ) ॥ १०४ ॥

रागचूर्ण–कामदेव, लालवालु, दांतोंका मंजन ( पुं० )

रेरिहाण–महादेव, आकाश ( पुं० ) ॥ १०५ ॥

लंबकर्ण–वकरा, पिस्ताका वृक्ष,(पुं०)

विदारण–युद्ध, फाडना, निरादरकरना ( न० ) ॥ १०६ ॥

वैतरणी–प्रेतनदी, राक्षसमाता, ( स्त्री० )

शरवाणि–शर वाणका मुख, पापी, वाणवनानेवाला, (पुं०) ॥ १०७ ॥

शिखरिणी–छदभेद, तक्रभेद, स्त्रीरत्न, मल्लिका ( कुडावृक्ष ), रोमावली, ( स्त्री० ) ॥ १०८ ॥

समीरण–वायु, मरुवा, पाथ (वटेऊ) ( पुं० )

संसरणं–संसारपुरसे निकलना, पुरदरवाजा, ॥ १०९ ॥

घण्टापथे रणारम्भेऽप्यसंवाधचमूगतौ ।
हस्तिकर्णोऽयमेरण्डे पलाशगणभेदयोः ॥ ११० ॥

णपंचमम् ।

अवग्रहणमाख्यातं प्रतिरोधेऽप्यनादरे ।
अथाऽवतारणं भूताद्यावेशेप्यम्बरेऽर्चने ॥ १११ ॥
आख्येयभागेऽध्याहारग्रन्थे स्यादवतारणा ।
निन्दोपालम्भनियमाऽऽलापेषु परिभाषणम् ॥ ११२ ॥
प्रविदारणमित्येतत्सम्मतं दारणे रणे ।
मण्डूकपर्णः स्योनाकेऽप्यलके च कपीतने ॥ ११३ ॥
मण्डूकपर्णी मञ्जिष्ठाब्राह्मीगोजिह्विकास्वपि ।
स्यान्मत्तवारणः पुंसि मददुर्दान्तवारणे ॥ ११४ ॥
क्लीबं प्रासादवीथीनां वरण्डे चाप्यपाश्रये ।
विभीतकतरौ पुंसि रोमाञ्चे रोमहर्षणम् ॥ ११५ ॥

---

राजमार्ग, रणका आरंभ, नहींरुकनेवाली सेनाकी गति, (न०)
हस्तिकर्ण–अरंड, ढाक, गणभेद, (पुं०) ॥ ११० ॥

णपंचम ।

अवग्रहण–रोकना, अनादर, (न०)
अवतारण–भूतआदिका प्रवेश, वस्त्र, पूजन, (न०) ॥ १११ ॥
अवतारणा–कहनेयोग्य भाग, अध्याहारकियाहुवा ग्रंथ, (स्त्री०)
परिभाषण–निंदासहित उलाहना, नियम, संभाषण, (न०) ॥११२॥
प्रविदारण–विदीर्णकरना, रण, (न०)
मण्डूकपर्ण–सोनापाठा, सफेदआक, पारिसपीपल, (पु०) ॥ ११३ ॥
मण्डूकपर्णी–मँजीठ, ब्राह्मी, गोभी (स्त्री०)
मत्तवारण–मदसे उन्मत्त हस्ती, (पुं०) ॥ ११४ ॥
मत्तवारण–महलकी गलियोंमें कुंदआदिफुलवादकी वाड, आश्रयरहित, (न०)
रोमहर्षण–बहेडाका वृक्ष, रोमपुलकावली, (न०) ॥ ११५ ॥

वातरायण उन्मत्ते मतः कूटे च मार्गणे ।
शरसंक्रमणे किञ्चित्करेऽपि करपत्रके ॥ ११६ ॥

णषष्ठम् ।

वयःसंधौ च गर्भे च भवेद्दोहदलक्षणम् ।
पयोधरे च लावण्ये मतं यौवनलक्षणम् ॥ ११७ ॥

इति विश्वलोचने णान्तवर्गः ॥

---

## अथ तान्तवर्गः ।

तैकम् ।

पालने पालके तः स्यात्तुश्चौरक्रोडपुच्छयोः ।

तद्द्वितीयम् ।

अन्तं विशुद्धे व्याप्ते स्यादन्तो नाशे मनोहरे ॥ १ ॥
स्वरूपेऽन्तं मतं क्लीबं न स्त्री प्रान्तेऽन्तिके त्रिषु ।
आर्त्तिः पीडाधनुष्कोट्योरस्तः प्रत्यङ्महीधरे ॥ २ ॥

---

वातरायण–उन्मत्त, मायावी आदि, वाण, वाणोंका छाना, निष्प्रयोजन-मनुष्य, करोंत, (पुं० ) ॥ ११६ ॥

णषष्ठम् ।

दोहदलक्षण–अवस्थाकी संधि, गर्भ, ( न० )

यौवनलक्षण–कुच ( दूधी ), सुदरता, ( न० ) ॥ ११७ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें णान्तवर्ग समाप्तहुवा ॥

---

अथ तान्तवर्ग ।

तैक ।

त( कार )–पालनकरना, पालनकरनेवाला, ( पुं )

तु–चोर, छाती, पूँछ, ( पुं० )

तद्द्वितीय ।

अन्त–विशुद्ध, व्याप्त, ( न० )

अन्त–नाश, सुंदर, ( पु० )॥ १ ॥

अन्त–स्वरूप, ( न० ) प्रान्त, (पुं०-न० ) समीप, ( त्रि० )

आर्त्ति–पीडा, धनुषकी ज्या, ( स्त्री०)

अस्त–प्रत्येकका पूजनकरनेवाला, पर्वत, ( पुं० ) ॥ २ ॥

त्रिपु क्षिप्ते गतेऽप्यस्तमाप्तः सत्यगृहीतयोः ।
आप्तिः संवरणे प्राप्तौ विज्ञातगतयोर्गतम् ॥ ३ ॥
ईतिः स्यादतिवृष्ट्यादिपट्के डिम्बप्रवासयोः ।
उक्तमेकाक्षरच्छन्दस्युक्तस्तु त्रिपु भाषिते ॥ ४ ॥
स्फूर्तिरक्षणयोरूतिर्ऋतमुञ्छशिले जले ।
मतं त्रिलिङ्गकं सत्ये गतौ दीप्तेऽभिपूजिते ॥ ५ ॥
ऋतिर्गतौ जुगुप्सायां स्पर्द्धायामप्यमङ्गले ।
ऋतुः स्यादार्त्तवे वीरे वसन्तादिषु मासि च ॥ ६ ॥
एतस्तु कर्बुरे वाच्यलिङ्ग. स्यादागतेऽपि च ।
शोभाऽभिलापयोः कान्तिः कान्तो रम्ये प्रिये त्रिपु ॥ ७ ॥
कान्तोऽश्मनि पुमान्कान्ता प्रियङ्गौ नायिकान्तरे ।
कीर्त्तिर्यशसि विस्तारे प्रसादेऽपि च कर्दमे ॥ ८ ॥

---

अस्त—फेंकाहुवा, गयाहुवा, ( त्रि० )
आप्त—सत्य, ग्रहणकियाहुवा, ( पुं० )
आप्ति—ढकना, प्राप्ति, ( स्त्री० )
गत—जानाहुआ, गयाहुवा, ( न० ) ॥ ३ ॥
ईति—अतिवृष्टि आदि छह, लड़ना आदिसे पीडा, मुसाफिरी, (स्त्री०)
उक्त—एकअक्षरका छद, ( न० )
उक्त—कहाहुवा ( त्रि० ) ॥ ४ ॥
ऊति—स्फूर्त्ति, रक्षा, ( स्त्री० )
ऋत—उछशिल ( स्वामीकाछोडाहुवा अन्नका लेना, ) जल, (न०) सत्य, गयाहुवा, दीप्त, अभिपूजित, ((त्रि० ) ॥ ५ ॥
ऋति—निंदा, वैर, अमंगल, ( स्त्री० )
ऋतु—स्त्रीका रज, वीर, वसन्तआदि-ऋतु, कान्ति, ( पुं० ) ॥ ६ ॥
एत—चित्रित, आयाहुवा ( त्रि० )
कान्ति—शोभा, अभिलाषा, (स्त्री०)
कान्त—सुंदर, प्रिय, ( त्रि० ) ॥७॥
कान्त—पत्थरभेद, कंगुनी धान्य, ( पुं० ) नायिका, ( स्त्री० )
कीर्त्ति—यश ( जग ), विस्तार, प्रसाद, कीच ( स्त्री० ) ॥ ८ ॥

कुन्तो गवेधुके प्रासे दण्डभावेऽल्पजन्तुषु ।
कुन्ती स्यात्पाण्डुकान्तायां शल्लक्यां गुग्गुलुद्रुमे ॥ ९ ॥
कृतिर्वधेऽपि करणे क्लीबं सत्ययुगे कृतम् ।
त्रिषु हिंसितपर्याप्तविहिते निष्फलेऽव्ययम् ॥ १० ॥
कृत्तं तु कथितं छिन्ने वेष्टितेऽप्यभिधेयवत् ।
कृत्तिस्त्वक्चर्म्मभूर्जेषु कृत्तिकायां च कीर्त्तिता ॥ ११ ॥
केतुर्ग्रहान्तरोत्पातद्युतिलक्ष्मध्वजादिषु ।
क्रतुर्यज्ञे मुनेर्भेदे गतं स्याज्जातयादसोः ॥ १२ ॥
गतिर्दशायां गमने ज्ञाने मर्म्मोऽभ्युपाययोः ।
नाडीव्रणे सरण्यां च गतिर्जन्मान्तरेऽपि च ॥ १३ ॥
गर्तस्त्रिगर्त्तदेशे स्याद् भूश्वभ्रेऽपि कुकुन्दरे ।
गातुर्गन्धर्वरोलम्बरोषणे कोकिलापतौ ॥ १४ ॥

---

कुन्त–गेरू, फरसा, दण्ड, भाव, अल्प जन्तु, ( पुं० ) ।
कुन्ती–पाडुराजाकी स्त्री, सलई वृक्ष, गूगल वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥
कृति–मारना, करण, ( स्त्री० )
कृत–सत्ययुग ( न० )
कृत्त–हिंसित, परिपूर्ण, विधानकिया-हुवा, ( त्रि० )
कृतं–निष्फल, ( अव्य० ) ॥ १० ॥
कृत्त–छिन्न, ( कटाहुवा ), लपेटाहुवा, ( त्रि० )
कृत्ति–त्वचा, वृक्षका वक्कल, भोजपत्र, कृत्तिका-नक्षत्र, (स्त्री) ॥ ११ ॥
केतु–केतुग्रह, उत्पात, कान्ति, चिह्न, ध्वजआदि, ( पुं० )
क्रतु–यज्ञ, एकमुनि, ( पुं० )
गत–उत्पन्नहुवा, जलजन्तु, ( न० ) ॥ १२ ॥
गति–दशा, गमन, ज्ञान, मर्म, उपाय, नाडीछिद्र, मार्ग, जन्मान्तर, ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥
गर्त–त्रिगर्तदेश, पृथ्वीका छिद्र ( गड्ढा ), नितम्ब ( चूँतड ) का गड्ढा, ( पु० )
गातु–गंधर्व, भ्रमर, क्रोधि, कोकिल, ( पुं० ) ॥ १४ ॥

गीतिश्छन्दोन्तरे ज्ञाने गीतं गाने च शब्दिते ।
गुप्तस्तु रक्षिते गूढे वृषले चन्द्रपूर्वकः ॥ १५ ॥
गुप्तिः कारागृहे गर्त्ते गोपाये रक्षणे युगे ।
ग्रस्तं ग्रासीकृतेऽपि स्याल्लुप्तवर्णपदोदिते ॥ १६ ॥
घातः प्रहारे काण्डे च घृतं दीप्ताज्यवारिषु ।
चितिः समूहे चित्यायामुपादुपचये चितिः ॥ १७ ॥
चितः कूटीकृतेऽपि स्याच्चिता सहतिचित्ययोः ।
चिता छन्ने चुल्लिकायां जातं जन्मौघजन्तुषु ॥ १८ ॥
जातिः सामान्यमालत्योश्छन्दोभिद्गोत्रजन्मसु ।
तातोऽनुकम्प्ये जनके तिक्तो रसमुगन्धयोः ॥ १९ ॥
तिक्ता तु कटुरोहिण्यां तिक्तं पर्पटके मतम् ।
त्रेता युगेऽग्नित्रितये दत्तं विश्राणितेऽविते ॥ २० ॥

---

गीति—छन्दका भेद, ज्ञान, ( स्त्री० )
गीत—गाना, शब्दित (शब्दयुक्त) (न०)
गुप्त—रक्षाकियाहुवा, गूढ ( पु० )
चंद्रगुप्त—शूद्र, ( पु० ) ॥ १५ ॥
गुप्ति—बंदीखाना, गड्ढा, गुप्तकरना, रक्षाकरना, युग, ( स्त्री० )
ग्रस्त—ग्रास कियाहुवा, लुप्तहैं वर्ण पद जिसमें ऐसा उच्चारण, (न०) ॥ १६ ॥
घात—प्रहार ( मारना ), दण्ड, (पु०)
घृत—दीप्त, घृत ( घी ), जल, (न०)
चिति—समूह, चिता,
उपचिति—वृद्धि, ( स्त्री० ) ॥१७॥
चित—ढेरकियाहुवा, ( पुं० )
चिता—समूह, चिता ( मुर्दाजलानेके लिये चिनाहुवा काष्ठढेर ), (स्त्री० )
चिता—आच्छादित, सिगडी, ( त्रि० )
जात—जन्म, समूह, जन्तु, ( न० ) ॥ १८ ॥
जाति—सामान्य, चमेली, छंदोभेद, गोत्र, जन्म, ( स्त्री० )
तात—जिसपर दयाकरीजातीहै वह, पिता, ( पुं० )
तिक्त—कसैलारस, सुगन्ध, (पु०) १९
तिक्ता—कुटकी, ( स्त्री० )
तिक्त—पित्तपापडा, ( न० )
त्रेता—त्रेता-युग, तीन अग्नि, ( स्त्री० )
दत्त—दानकियाहुवा, रक्षाकियाहुवा ( न० ) ॥ २० ॥

दन्तः कुञ्जे रदे सानौ दन्ती स्यादौषधीभिदि ।
दान्तस्त्रिषु तपःक्लेशसहेऽपि दमितेऽपि च ॥ २१ ॥
दितिर्दनौ खण्डने च दीप्तं ज्वलितदग्धयोः ।
त्रिषु निर्वासितेऽपि स्याद्दृतिश्चर्म्मपुटे कषे ॥ २२ ॥
दृप्तो निवारिते शक्ते द्युतिर्दीधितिशोभयोः ।
द्रुतं शीघ्रे च विद्राणे विलीने शीघ्रगे त्रिषु ॥ २३ ॥
धाता तु ब्रह्मणि रवौ त्रिषु स्यात्परिपालके ।
धातुः क्रियार्थे शुक्रेपि विषयेष्विन्द्रियेषु च ॥ २४ ॥
श्लेष्मादिरसरक्तादिभूतादिवसुधादिषु ।
मनःशिलादिके लोहे विशेषाद्गैरिकेस्थिनि ॥ २५ ॥
धुतं विधुते त्यक्ते च धूतः कम्पितभर्त्सिते ।
धूर्त्तं तु खण्डलवणे धत्तूरे नाविटे त्रिषु ॥ २६ ॥

---

दन्त–कुञ्ज ( लताआदिकीकुटी ), दाँत, पर्वतका निकलाहुवा भाग, ( पुं० )
दन्ती–जमालगोटाकी जड, (स्त्री०)
दान्त–तप क्लेशको सहनेवाला, दमनकियाहुवा, ( पुं० ) ॥ २१ ॥
दिति–दैत्योंकी माता, खंडनकरना, ( स्त्री० )
दीप्त–देदीप्यमान, दग्ध, निकासाहुवा, ( त्रि० )
दृति–चर्मकी डोली, कसौटी, (स्त्री०) ॥ २२ ॥
दृप्त–निवारणकियाहुवा, समर्थ, (पुं०)
द्युति–किरण-सूर्यआदिकी, शोभा, ( स्त्री० )
द्रुत–शीघ्र ( जल्दी ), पिघलना, ( न० ) विलीन ( मिलजाना ), शीघ्र गमन करनेवाला, ( त्रि० ) ॥ २३ ॥
धाता–ब्रह्मा, सूर्य, ( पु० ) पालना करनेवाला, ( त्रि० )
धातु–क्रियार्थ, शुक्र, विषय, इंद्रिय २४ कफ आदि, रसरक्तआदि, पंचमहाभूतआदि, पृथ्वीआदि, मनसिलआदि, लोह, गेरू (विशेपकरके), अस्थि (हड्डी) ( पुं० ) ॥ २५ ॥
धुत–कँपायाहुवा, त्यागाहुवा, (त्रि०)
धूत–कँपायाहुवा, झिडकाहुवा,(त्रि०)
धूर्त–विरियासचर-नोंन (न०), धतूरा, (पुं०) कामी, ( त्रि० ) ॥ २६ ॥

धृतिर्धारणसंतुष्टिधैर्ये योगान्तरेऽध्वरे ।
नतस्तगरवृक्षे स्यात् कुटिलानतयोस्त्रिपु ॥ २७ ॥
नीतिर्नये प्रापणे च नृत्तः स्यान्नर्तने क्रिमौ ।
पक्तिः स्त्री गौरवे पाके पङ्क्तिः श्रेणौ दशस्वपि ॥ २८ ॥
स्याद्दशाक्षरवृत्तेपि स्त्रिया मूल्ये गतौ पतिः ।
पत्तिः पदातौ वीरे ना गतौ सेनान्तरे स्त्रियाम् ॥ २९ ॥
पातस्तु पतने त्राते पीतमाचान्तगौरयोः ।
त्रिपु पीता तु पर्णिन्या पीतं पाने नपुंसकम् ॥ ३० ॥
पीतिः पाने सपूर्वा तु सहपाने हये पुमान् ।
पुस्तं तु पुस्तके क्लीव विज्ञाने लेप्यकर्म्मणि ॥ ३१ ॥
पूतं पवित्रे शब्दे च त्रिपु स्याद्बहुलीकृते ।
पूरितच्छन्नयो. पूर्त्तं पूर्त्तं खातादिकर्म्मणि ॥ ३२ ॥

---

धृति–धारणा, सतोप, धैर्य योगभेद, यज्ञ, ( स्त्री० )
नत–तगर-वृक्ष, ( पु० ) कुटिल, नम्र-पुरुप, ( त्रि० ) ॥ २७ ॥
नीति–न्याय, प्राप्तकरना, ( स्त्री० )
नृत्त–नृत्यभेद, क्रिमि, ( पुं० )
पक्ति–गौरव, पाक, ( स्त्री० )
पंक्ति–श्रेणि ( पक्ति ), दश–संख्या, ॥२८॥ दशअक्षरवाला छद,(स्त्री०)
पति–स्त्रीका मूल्य, गति, ( स्त्री० )
पत्ति–पयादा सिपाही, शूरवीर,(पुं०) गमन, सेनाभेद, (स्त्री०)॥ २९ ॥
पात–पडना, ( पु० ) रक्षाक्रियाहुवा, (त्रि०)
पीत–आचमन किया हुवा, गौर ( पीला ) ( त्रि० )
पीता–मखवन-औपधि, ( स्त्री० )
पीत–पीना, ( न० ) ॥ ३० ॥
पीति–पीना,
सपीति–सगमे पीना ( स्त्री० )अश्व, ( पुं० )
पुस्त–पुस्तक, शिल्प ( कारीगरी ), लेप्यकर्म, ( न० ) ॥ ३१ ॥
पूत–पवित्र, शब्दित, ( न० ) बढायाहुवा, ( त्रि० )
पूर्त–पूरित, आच्छादित, ( त्रि० ) खोदनाआदिकर्म, (न०) ॥ ३२ ॥

पोतो बाले बहित्रे च प्रातिः पूर्त्तिप्रदेशयोः ।
प्राप्तिर्महोदये लाभे प्राप्तं लब्धसमञ्जसे ॥ ३३ ॥
प्रीतिः स्मरसुतायोगभेदयोः प्रेममोदयोः ।
हर्षिते नर्म्मणि प्रीतं प्रेतो भूतान्तरे मृते ॥ ३४ ॥
प्रोतं तु ग्रथिते वस्त्रे प्लुतस्तु स्यात्त्रिमात्रके ।
प्लुतमश्वस्य गमने प्लुतं सप्लवने त्रिषु ॥ ३५ ॥
भक्तिर्विभागे सेवायां भर्तास्वामिनि धारके ।
भित्तिः कुड्ये च काशे च प्रदेशे भेदभागयोः ॥ ३६ ॥
भीतं भयेऽपि सभये भीतिः साध्वसकंपयोः ।
अथ भूतः पुमान्देवयोनिभेदेऽपि देवले ॥ ३७ ॥
त्रिषु प्राप्ते विवृत्तेच भूतं स्यान्न्याय्यसत्ययोः ।
उपमाने पृथिव्यादौ पिशाचादौ समे त्रिषु ॥ ३८ ॥

---

पोत–बालक, नौका या जिहाज,(पुं०)
प्राति–पूर्त्ति, प्रदेश, ( स्त्री० )
प्राप्ति–महान् उदय ( भाग्योदय ), लाभ, ( स्त्री० )
प्राप्त–लब्धहुवा, उचित (न०)॥३३॥
प्रीति–कामदेवकी पुत्री, योगभेद, प्रेम, आनद, ( स्त्री० )
प्रीत–आनदित, ठ्ठा, ( न० )
प्रेत–भूतान्तर, मृतक, (पुं०) ॥३४॥
प्रोत–गूँथाहुवा, वस्त्र, ( न० )
प्लुत–तीनमात्रावालावर्णोच्चारण, (पुं०) अश्वकी गति, सप्लवन ( त्रि० ) ॥ ३५ ॥

भक्ति–विभाग, सेवा, ( स्त्री० )
भर्ता–स्वामी, धारणकरनेवाला, (पुं०)
भित्ति–दीवार, काश, प्रदेश, भेद, भाग, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥
भीत–भय, (न०) डराहुवा, ( त्रि० )
भीति–भय, कंप, ( स्त्री० )
भूत–देवयोनिभेद, देवल ( देवसेवासे आजीवन करनेवाला ) ( पुं० ) ॥ ३७ ॥
भूत–प्राप्तहुवा, वदीतहुवा, न्याययुक्त, सत्य, उपमान, पृथिवीआदि, पिशाचआदि, सम ( तुल्य ) (त्रि०) ॥ ३८ ॥

भूतिर्म्मातङ्गशृङ्गारे भस्मसम्पत्तिजन्मसु ।
भृतिस्तु भरणे ख्याता तथा वेतनमूल्ययोः ॥ ३९ ॥
भ्रान्तिः स्याद्भ्रमणेऽपि स्यान्मतौ वाऽप्यनवस्थितौ ।
मतोऽर्चितेऽप्यनुमते मतिर्बुद्धौ स्मृतीच्छयोः ॥ ४० ॥
मन्तुः स्यादपराधेऽपि मानवे परमेष्ठिनि ।
माता ब्राह्म्यादिगोकादिप्रसूगौरीष्वपि क्षितौ ॥ ४१ ॥
त्रिषु स्यान्मापके माता गीताध्यक्षे प्रपूर्वकः ।
मितिर्मानेऽप्यवच्छेदे मुक्तिर्मोक्षेऽपि मोचने ॥ ४२ ॥
मुक्तो मोक्षगतेऽप्युक्तस्त्रिषु मुक्ता तु मौक्तिके ।
मूर्त्तं मूर्त्यन्विते मूर्च्छाऽन्विते काठिन्यवत्यपि ॥ ४३ ॥
मूर्त्तिः कायेऽपि काठिन्ये मृत्युयाचितयोर्म्मतम् ।
मृतं मृत्युपरिप्राप्ते विज्ञेयमभिधेयवत् ॥ ४४ ॥

---

भूति—हस्तीका शृङ्गार, भस्म, सम्पत्ति, जन्म, ( स्त्री० )

भृति—पोषण, नौकरी, मूल्य, (स्त्री०) ॥ ३९ ॥

भ्रान्ति—बुद्धिविषै भ्रम, एकजगह नहीं-ठहरना ( स्त्री० )

मत—पूजित, समत, ( पुं० )

मति—बुद्धि, स्मृति, इच्छा, (स्त्री०) ४०

मन्तु—अपराध, मनुष्य, ब्रह्मा, (पु०)

माता—ब्राह्मी माहेश्वरीआदि, गौआ-दि, जननी ( माता ), गौरी, पृथ्वी, ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥

प्रमाता—प्रमाणकरनेवाला, गीतआदि-का अध्यक्ष, ( त्रि० )

मिति—मान ( मापना ), अवच्छेद ( विश्राम ), ( स्त्री० )

मुक्ति—मोक्ष, छुटना, (स्त्री०) ॥४२॥

मुक्त—मोक्षको प्राप्तहुवा, छुटाहुवा, ( त्रि० )

मुक्ता—मोती ( स्त्री० )

मूर्त्त—मूर्त्तिमान, मूर्छित, काठिन्यवा-ला ( त्रि० ) ॥ ४३ ॥

मूर्त्ति—शरीर, काठिन्य, ( स्त्री० )

मृत—मृत्यु, याचित, ( न० ) मृत्युको प्राप्त, ( त्रि० ) ॥ ४४ ॥

यतिर्यतिनि पुंसि स्त्री पाठभेदनिकारयोः ।
यन्ता सादिनि सूते च निपूर्वोऽसौ नियामके ॥ ४५ ॥

युक्तं स्यादुचिते युक्तं संयुतेऽप्यभिधेयवत् ।
युक्तिर्न्नियोजने न्याये पृथक्संयुक्तयोर्मतम् ॥ ४६ ॥

युतं हस्तचतुष्केऽपि संख्याभेदे नपूर्वकम् ।
रक्तोनुरक्ते नील्यादिरञ्जिते लोहितेऽन्यवत् ॥ ४७ ॥

रिक्तं शून्ये वनेऽपि स्यादशरीतिर्गिरां पथि ।
रीतिः स्यन्दे प्रचारे च लोहकिट्टारकूटयोः ॥ ४८ ॥

लता तु माधवीवल्लीशाखास्पृक्काप्रियङ्गुषु ।
लता कस्तूरिकाज्योतिष्मतीदूर्वासु च स्मृता ॥ ४९ ॥

लिप्तं विलेपिते भुक्ते विषाक्तविशिषादिषु ।
लूता पिपीलिकायां स्यादूर्णनाभे गदान्तरे ॥ ५० ॥

---

यति–संन्यासी अथवा मुनि, ( पुं० ) पाठका विश्राम, अनादर, (स्त्री०)
यन्ता–सवार, सारथि,
नियन्ता–प्रेरणेवाला, ( पुं० )॥४५॥
युक्त–उचित, संयुक्त, ( त्रि० )
युक्ति–लगाना, न्याय, अलगकिया-हुवा, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥
युत–चारहाथप्रमाणवाला,
अयुत–सख्याभेद ( दशहजार ) ( न० )
रक्त–आसक्त, नीलीआदिसे रंगाहुवा, लालरंगवाला ( त्रि० ) ॥ ४७ ॥
रिक्त–शून्य, वन, ( न० )
रीति–झिरना, प्रचार, लोहेका मैल, पीतल ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥
लता–माधवीलता, वेल, शाखा-वृक्ष-की, असवरग, कंगुनीधान्य, कस्तूरी, मालकागनी, दूब, (स्त्री०) ॥४९॥
लिप्त–लेपकियाहुवा, भुक्त ( खाया-हुवा, विषसेलिप्तकिया बाणआदि, (त्रि०)
लूता–चीटी, मकड़ी, रोगविशेष, (स्त्री० ) ॥ ५० ॥

लोप्तं तु चोरिते वाप्ये वक्ता वाग्मिनि पण्डिते ।
वप्ता पितरि तन्तूनां वापके वीजवापके ॥ ५१ ॥
वर्त्तिर्गात्रानुलेपन्यां वर्त्तिर्दीपदशासु च ।
दीपे भेषजनिर्म्माणे लोचनाञ्जनलेखयोः ॥ ५२ ॥
नीरुग्वृत्तिमतोर्वार्तो वार्त्तमारोग्यफल्गुनो.
वार्त्ता कृष्यादिवृत्तान्तवार्त्ताकीवृत्तिषु स्थिता ॥ ५३ ॥
वित्तं तु विभवे ज्ञातख्यातलब्धविचारिते ।
वित्तिर्ज्ञानेपि लाभेऽपि विचारे सम्भवेऽपि च ॥ ५४ ॥
वीतं त्वसारहस्त्यश्वे त्यक्तेप्यङ्कुशकर्म्मणि ।
वीतिस्त्यागे गतौ दीप्तौ प्रजने धावनेऽशने ॥ ५५ ॥
वृत्तिः प्रवृत्तौ वृत्तौ च कौशिक्यादिप्रवर्त्तने ।
वृत्तस्तु वर्तुलेऽतीते मृते ख्याते दृढे वृते ॥ ५६ ॥

---

लोप्त–चोराहुवा, वाप्य ( वाँफ )(त्रि०)
वक्ता–बहुतवोलनेवाला, पंडित,(पु०)
वप्ता–पिता, कपड़ावुननेवाला, वीज-
बोनेवाला, (पुं०) ॥ ५१ ॥
वर्त्ति–शरीरपर कुछ लगाकर उतारा-
हुवा लेप, दीपककी बत्ती, दीपक,
औषधिकी वत्ती, नेत्र, अंजनकी
रेख, ( स्त्री० ) ॥ ५२ ॥
वार्त–रोगरहित, वृत्तिवाला, ( त्रि० )
आरोग्य, तुच्छ, ( न० )
वार्त्ता–कृषिआदि, वृत्तान्त, वड़ीकटे-
हली, वृत्ति ( वर्तना ) ( स्त्री० )
॥ ५३ ॥
वित्त–धन, जानाहुवा, विख्यात,
प्राप्तहुवा, विचाराहुवा ( त्रि० )
वित्ति–ज्ञान, लाभ, विचार, सम्भव,
( स्त्री० ) ॥ ५४ ॥
वीत–साररहित हस्ती व अश्व, त्यागा-
हुवा, अंकुशकर्म,
वीति–त्याग, गति, दीप्ति, गर्भग्रहण,
धोना, भोजन, ( स्त्री० )॥ ५५ ॥
वृत्ति–प्रवृत्ति, आजीविका, नाटककी
एकवृत्ति, ( स्त्री० )
वृत्त–गोलआकार, वदीतहुवा, मृत,
विख्यात, दृढ, वृत ( वरणकिया )
( त्रि० ) ॥ ५६ ॥

त्रिषु वृत्तं तु चरिते वृत्तं छन्दसि वर्त्तते ।
वृत्तिर्विवरणे वाटे वेष्टिते वरणे वृतम् ॥ ५७ ॥

वृन्तं प्रसवबन्धेऽपि कुचाग्रे घटधारयोः ।
शस्तं क्षेमे प्रशस्ते च शातः शकुनिशातयोः ॥ ५८ ॥

शातं शर्म्मणि शान्तस्तु रसे दान्तेऽपि मुक्तके ।
शान्तिः शमेऽपि कल्याणे शास्ता शासकबुद्धयोः ॥ ५९ ॥

शितः कृष्णे सिते भूर्जे शितं शकुनिशान्तयोः ।
वानीरबहुवारे च शीतः शीतं तु चन्दने ॥ ६० ॥

हिमसम्भूतजाड्येऽपि शीतलालसयोस्त्रिषु ।
शुक्तिः शङ्खनखे शङ्खे मुक्तास्फोटेऽपि कम्बुनि ॥ ६१ ॥

---

वृत्त–चरित, छंद, ( न० )

वृत्ति–विवरण (व्याख्या), वाट (वाड़) ( स्त्री० )

वृत–लपेटाहुवा, आच्छादित किया-हुवा, ( न० ) ॥ ५७ ॥

वृन्त–पुष्पआदिका नाकू, कुचाका अग्रभाग, घटकी धारा ( न० )

शस्त–कुशल, ( न० ) श्रेष्ठ, (त्रि०)

शात–पक्षी, शान्त-मनुष्य, ( पुं० ) ॥ ५८ ॥

शात–कल्याण, ( न० )

शान्त–शान्त-रस, इंद्रियोंका जीतने-वाला, मुक्त, ( पुं० )

शान्ति–मनका जीतना, कल्याण, ( स्त्री० )

शास्ता–शिक्षाकरनेवाला, बुद्ध-देव ( पुं० ) ॥ ५९ ॥

शित–काला, सफेद, ( त्रि० ) भो-जपत्र ( पुं० )

शित–पक्षी, दुर्बल, ( पुं० )

शीत–बेत, बहुतवार, ( पुं० )

शीत–चंदन, ( न० ) ॥ ६० ॥ बरफ ठंढा ( न० ) आलस्यवाला, ( त्रि० )

शुक्ति–सॅखला, शंख, ( पुं० ) कपालकी हड्डी, सीपी, शंख, ( स्त्री० ) ॥ ६१ ॥

दीर्घकोशीहयावर्त्ते कपालशकले स्त्रियाम् ।
शुक्तोऽम्ले कर्कशे पूते शास्त्रावधृतयोः श्रुतम् ॥ ६२ ॥
श्रुतिः श्रोत्रे च वेदे च वार्त्तायां श्रौतकर्म्मणि ।
श्वेतं रूप्यं त्रिषु सिते श्वेतो द्वीपाद्रिभेदयोः ॥ ६३ ॥
श्वेता वराटिकायां स्याच्छङ्खिन्यां काष्ठपाटलौ ।
सत्साधौ विद्यमानेऽपि प्रशस्ते पूजिते त्रिषु ॥ ६४ ॥
सती साध्वीचण्डिकयो सत्तु सत्येऽभिधेयवत् ।
सातिर्दानेवसानेऽपि सितं श्वेतसमाप्तयोः ॥ ६५ ॥
त्रिषु ज्ञातेऽपि बद्धेऽपि शर्कराया सिता मता ।
सीता तु जानकीव्योमगङ्गालाङ्गलवर्त्मसु ॥ ६६ ॥
सुतस्तु पार्थिवे पुत्रे सुप्तिर्विश्वासघातिनि ।
स्वापे स्पर्शाज्ञतायां च सुखस्वापे सुपूर्विका ॥ ६७ ॥

---

जलजन्तु, घोडेकी भौंरी, कपालका खंड, ( स्त्री० )
शुक्त–खट्टा, कठोर, पवित्र, ( पु० )
श्रुत–शास्त्र, श्रवणकियाहुवा, ( न० ) ॥ ६२ ॥
श्रुति–कान, वेद, वार्ता, श्रौतकर्म ( वेदविहित कर्म ), ( स्त्री० )
श्वेत–चांदी, ( न० ) सफैद (त्रि०)
श्वेत–श्वेतद्वीप, पर्वतभेद, ( पु० ) ॥ ६३ ॥
श्वेता–कौडी, चोरपुष्पी (चोरहूली), अगर, पाढर-पुष्पवृक्ष, ( स्त्री० )
सत्–साधु विद्यमान, श्रेष्ठ, पूजित (त्रि०) ॥ ६४ ॥
सती–श्रेष्ठ स्त्री, चण्डिका, ( स्त्री० )
सत्–सच्चा पुरुषआदि ( त्रि० )
साति–दान, अन्त, ( स्त्री० )॥६५॥
सित–सफैद, समाप्त, जानाहुवा, बँधाहुवा, ( त्रि० )
सिता–मिसरी ( स्त्री० )
सीता–जानकी, आकाशगंगा, हलसे कीहुई पृथ्वीमें लकीर,(स्त्री०)॥६६॥
सुत–राजा, पुत्र, ( पु० )
सुप्ति–विश्वासघाती, ( पुं० ) सोना, स्पर्शका अज्ञान, सुषुप्ति–सुखपूर्वक सोना ( स्त्री० ) ॥ ६७ ॥

सूतस्तु पारदे तक्ष्णि सूतः सारथिवन्दिनोः ।
प्रसूते प्रेरिते सूतः क्षत्रियाद् ब्राह्मणीसुते ॥ ६८ ॥

सृतिः स्त्री गमने मार्गे कुपूर्वा निकृतौ सृतिः ।
सेतुर्नाले च वरुणे स्थितमूर्द्ध्वेऽपि संस्थिते ॥ ६९ ॥

निश्चिते सप्रतिज्ञेऽपि गत्यभावे तु न द्वयोः ।
मर्यादायामवस्थाने स्थाने सीमनि च स्थितिः ॥ ७० ॥

स्मृतिस्तु धर्म्मशास्त्रे स्यात् स्मरणे धीच्छयोरपि ।
संततौ सीवने स्यूतिः स्यूतः क्षतप्रसेवयोः ॥ ७१ ॥

स्वान्तं नपुंसकं चित्ते स्वान्तं स्यादपि गह्वरे ।
द्वयोस्तु हस्तो नक्षत्रे हस्तः करिकरे करे ॥ ७२ ॥

सप्रकोष्ठाततकरे हस्तः केशात्परश्चये ।
हितं गते धृते पथ्ये हेतिर्ज्वालार्कतेजसोः ॥ ७३ ॥

---

सूत–पारा, बढई, सारथि, वन्दीजन, (पुं०) उत्पन्न (जन्मा) हुवा, प्रेराहुवा, (त्रि०) क्षत्रियसे ब्राह्मणीका पुत्र, (पु०) ॥ ६८ ॥

सृति–गमन, मार्ग कुसृति–कपट, (स्त्री०)

सेतु–पुल, वरुण, (पुं०) ॥ ६९ ॥

स्थित–ऊपर, स्थित, निश्चित, प्रतिज्ञावाला, (पुं०) गतिअभाव अर्थात् स्थिति (न०)

स्थिति–मर्यादा, अवस्थान (स्थिति), स्थान, सीमा, (स्त्री०) ॥ ७० ॥

स्मृति–धर्मशास्त्र, स्मरण, बुद्धि, इच्छा, (स्त्री०)

स्यूति–संतति निरतरता कपडाका-सीना, (स्त्री०)

स्यूत–घाव, थैली (पुं०) ॥ ७१ ॥

स्वान्त–चित्त, सघन, (न०)

हस्त–नक्षत्र, हाथीकी सूड, हाथ,(पु० न०) ॥ ७२ ॥ प्रकोष्ठसमेतविस्तारकिया हाथ (एकहाथप्रमाण), केशशब्दसेपरे हस्तशब्द केशसमूह, जैसे कुंतलहस्त (पुं०)

हित–गयाहुवा, धारणकियाहुवा, पथ्य (सुखदाता) (न०)

हेति–अग्निज्वाला, सूर्यतेज, ॥ ७३ ॥

स्त्रियां शस्त्रेप्यथ क्षत्ता सारथिद्वाःस्थधातृषु ।
भुजिष्यजे नियुक्ते च शूद्राच्च क्षत्रियासुते ॥ ७४ ॥
क्षमायां तु मता क्षान्तिः क्षान्तिः स्यान्नियमेऽपि च ।
क्षितिः पृथिव्यां वासे च स्थानमात्रे क्षये क्षितिः ॥ ७५ ॥

तत्तृतीयम् ।

अगस्तिर्वङ्गसेनद्रौ स्यादगस्त्येऽप्यथाङ्कृतिः ।
अग्निब्रह्माऽग्निहोत्रेषु स्थिरे दामोदरेऽच्युतः ॥ ७६ ॥
अजितोऽनिर्जिते विष्णावदितिर्देवसूभुवोः ।
अनृतं स्याद् मृषाकृष्योरनन्तो विष्णुशेषयोः ॥ ७७ ॥
अनन्तं गगनेऽनन्तं भवेदनवधौ त्रिषु ।
अनन्ता पृथिवीदूर्वापार्वतीलाङ्गलीष्वपि ॥ ७८ ॥
सारिवायां गुडूच्यां च समुद्रान्ताविशल्ययोः ।
अमृतं मोक्षपीयूषसलिले हृद्यवस्तुनि ॥ ७९ ॥

---

शस्त्र ( स्त्री० )
क्षत्ता-सारथि, द्वारपाल, ब्रह्मा, दासपुत्र, दियाहुवा, शूद्रसे क्षत्रियाका पुत्र, ( पुं० ) ॥ ७४ ॥
क्षान्ति-क्षमा, नियम, ( स्त्री० )
क्षिति-पृथ्वी, वास ( निवास ), स्थानमात्र, क्षय ( नाश ) ( स्त्री० ) ॥ ७५ ॥

तत्तृतीय ।

अगस्ति-चक ( हथिया ) वृक्ष, अगस्त्यमुनि ( पुं० )
अङ्कृति-अग्नि, ब्रह्मा, अग्निहोत्र, ( पु० )
अच्युत-स्थिर, दामोदर ( भगवान् ) ॥ ७६ ॥
अजित-नहीं जीताहुवा, विष्णु, ( पुं० )
अदिति-देवताओंकी माता, पृथ्वी, ( स्त्री० )
अनृत-अमल, कृषि, ( न० )
अनंत-विष्णु, शेष-नाग, (पुं०)॥७७॥ आकाश ( न० ) निस्सीम (त्रि०)
अनन्ता-पृथिवी, दूर्वा, सिंहलीपीपल, कलिहारी ॥७८॥ सरिवन, गिलोय, जवाँसा, अजमोद, ( स्त्री० )
अमृत-मोक्ष, पीयूष (अमृत), जल, मनोहर वस्तु, ॥ ७९ ॥

अयाचिते यज्ञशेषे घृते दुग्धेऽतिसुन्दरे ।
अमृतस्तु मतः पुंसि धन्वंतरिसुपर्वणोः ॥ ८० ॥
गुडूच्यामलकीपथ्यामागधीष्वमृता मता ।
अमतिर्भाविकाले स्यादर्हस्तु जिनपूज्ययोः ॥ ८१ ॥
अर्दितः पवनव्याधौ याचिताऽहतयोस्त्रिषु ।
अर्वती चेटिकावाम्योरश्वेऽर्वन् कुत्सितेऽन्यवत् ॥ ८२ ॥
अव्यक्तस्तु हरौ हीरे मूर्खे वाच्यवदस्फुटे ।
वाच्यवत्क्षतहीने स्यादाकृतिः कायरूपयोः ॥ ८३ ॥
सामान्येऽपि तथाख्यातमाख्यातं कथिते तिङि ।
अथ वाच्यवदाख्यातं घ्राणिते हिंसितेऽपि च ॥ ८४ ॥
आचितस्तु चिते छन्ने संगृहीते त्रिलिङ्गकः ।
आचितः शकटोन्मेये पलानामयुतद्वये ॥ ८५ ॥

---

अयाचित, यज्ञशेष, घृत, दुग्ध, अतिसुन्दर ( न० )

अमृत–धन्वंतरि, देवता, ( पुं० ) ॥ ८० ॥

अमृता–गिलोय, आवला, हरड़, पीपल, ( स्त्री० )

अमति–आनेवाला काल,

अर्हन्–(त्) जिनदेव, पूजा करनेयोग्य (पुं० ) ॥ ८१ ॥

अर्दित–वातरोग, ( पुं० ) याचनाकियाहुवा, माराहुवा, ( त्रि० )

अर्वती–दासी, घोडी ( स्त्री० )

अर्वत्–घोड़ा ( पुं० ) कुत्सित (निंदित ) ( त्रि० ) ॥ ८२ ॥

अव्यक्त–विष्णु, हीरा ( पुं० ) मूर्ख, अस्फुट, नाशहीन ( त्रि० )

आकृति–घावरहित, ( त्रि० ) शरीर, रूप, ( स्त्री० ) ॥ ८३ ॥

आख्यात–सामान्य, ( त्रि० ) कहाहुवा, तिङ् (तिङंतक्रिया) (न०)

आख्यात–सूँघा हुवा, माराहुवा, ( त्रि० ) ॥ ८४ ॥

आचित–चिनाहुवा, आच्छादनकियाहुवा, सग्रहकियाहुवा ( त्रि० )

आचित–गाडाभरा भार, ८००० तोला ( पुं० ) ॥ ८५ ॥

आहतः सादरेऽपि स्यात् पूजितेऽप्यभिधेयवत् ।
आध्मातः पवनव्याधौ दग्धशब्दितयोस्त्रिषु ॥ ८६ ॥
आनर्त्तो नर्त्तनस्थाने देशभेदे रणे जले ।
पाते तदात्वेऽप्यापात आपत्तिः प्राप्तिदोषयोः ॥ ८७ ॥
आप्लुतः स्नातके पुंसि स्नाते स्यादभिधेयवत् ।
आयत्तिः स्नेहमर्यादावशितावलवासरे ॥ ८८ ॥
आयतिस्तु यमे दैर्घ्ये प्रभावोत्तरकालयोः ।
आयस्तस्तेजिते क्षिप्ते कुपिते क्लेशिते हते ॥ ८९ ॥
आवर्त्तश्चिन्तने चाऽऽवर्तने वाप्यम्भसां भ्रमे ।
आस्फोतस्त्वर्कपर्णे स्यादास्फोतः कोविदारके ॥ ९० ॥
आस्फोता गिरिकर्ण्यां च वनमल्ल्यामपि स्त्रियाम् ।
आसत्तिः सङ्गमे लाभे आहतं तु मृषार्थके ॥ ९१ ॥

---

आहत—आदरकियाहुवा, पूजाकियाहुवा, ( त्रि० )
आध्मात—वातरोग, दग्ध, शब्दित, ( त्रि० ) ॥ ८६ ॥
आनर्त—नृत्यकरनेका स्थान, देशभेद, रण, जल, ( पुं० )
आपात—पड़ना, तत्काल, ( पुं० )
आपत्ति—प्राप्ति, दोष, ( स्त्री० ) ॥ ८७ ॥
आप्लुत—वेदव्रतवाला, (पुं०) स्नानकियाहुवा ( त्रि० )
आयत्ति—स्नेह, मर्यादा, वशित्व, बल, वासर (दिन) ( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥
आयति—यम, लंबापना, प्रभाव आगे आनेवाला काल, ( स्त्री० )
आयस्त—तीक्ष्णकियाहुवा, फेंकाहुवा, कुपित, क्लेशित, हत, ( पु० ) ॥ ८९ ॥
आवर्त—चिंतनकरना, आवर्तन (आवृत्ति) करना, जलोंका भँवर (पुं०)
आस्फोत—आकका पत्ता, कचनारवृक्ष, ( पुं० ) ॥ ९० ॥
आस्फोता—कोयल-औषधि, वनमल्लिका, ( स्त्री० )
आसत्ति—सगम, लाभ, ( स्त्री० )
आहत—असत्य अर्थवाला (न०)॥९१॥

स्यात्पुरातनवस्त्रेऽपि नववस्त्रेऽपि वाहतम् ।
आहतं चानकेऽपि स्यात्ताडिते असिते त्रिषु ॥ ९२ ॥
इङ्गितं चेष्टिते गत्यामुचितं तु समञ्जसे ।
अनुमत्यां मिताऽभ्यस्तज्ञातेषु त्रिषु च त्रिषु ॥ ९३ ॥
उच्छ्रितं तु प्रवृद्धे स्यात् सञ्जातेऽप्युन्नतेऽन्यवत् ।
उत्तप्तं शुष्केऽपिशिते संतप्ते च परिप्लुते ॥ ९४ ॥
वृद्धिमत्युन्मनस्केऽपि प्रोद्यते मतमुत्थितम् ।
उच्छ्रितं तु त्रिषूत्पन्ने प्रोद्यते वृद्धिमत्यपि ॥ ९५ ॥
उदितं सूदिते प्रासेऽप्युद्गतप्रोक्तयोस्त्रिषु ।
उद्घातो मुद्गरे वायुयोगार्थे कुम्भकादिषु ॥ ९६ ॥
उद्रङ्गे स्खलनेऽप्यर्थोऽऽघानेऽपि समुपक्रमे ।
स्यादुदन्तस्तु वार्तायामुदन्तः सज्जनेऽपि च ॥ ९७ ॥

---

पुराना वस्त्र, नवीन वस्त्र, ढोल, ताडनाकियाहुवा, ग्रसाहुवा ( त्रि० ) ॥ ९२ ॥

इंगित–चेष्टित, गमन, ( न० )

उचित–युक्त, अनुमति, ( न० ) प्रमित, अभ्यस्त, ज्ञात, ( त्रि० ) ॥ ९३ ॥

उच्छ्रित–प्रवृद्ध, संजात, उन्नत ( ऊंचा ) ( त्रि० )

उत्तप्त–सूखामास, (न०) संतप्त, परिप्लुत ( भिगोयाहुवा ) (त्रि०) ॥ ९४ ॥

उत्थित–वृद्धिवाला, उन्मना, अति उद्यमयुक्त, ( त्रि० )

उच्छ्रित–उत्पन्नहुवा, अतिउद्यमयुक्त, वृद्धिवाला, ( त्रि० ) ॥ ९५ ॥

उदित–उदयहुवा, प्राप्तहुवा, उगलाहुवा, कहाहुवा ( त्रि० )

उद्घात–मुद्गर, वायुके अभ्यासकेलिये कुंभकआदि तीन प्राणायाम ॥ ९६ ॥ लोटना, पावसे आखलना, धनइकट्ठाकरना, आरंभकरना,

उदन्त–वार्त्ता ( वृत्तान्त ), सज्जन, ( पुं० ) ॥ ९७ ॥

त्रिषूद्वान्तः समुद्गीर्णे पुमान्निर्मददन्तिषु ।
उदात्तः स्वरभेदे स्यात् काव्यालङ्करणेऽपि च ॥ ९८ ॥
उदात्तो दातृमहतोर्मतो हृद्येऽपि वाच्यवत् ।
उद्धृत्तं तु सिते भुक्तोज्झितेऽप्यातोलिते मृते ॥ ९९ ॥
उन्नतिस्तूदये वृद्धावुद्गतौ तार्क्ष्ययोषिति ।
उन्मत्त उन्मादवति धत्तूरमुचकुन्दयोः ॥ १०० ॥
उषितं व्युषिते दग्धेऽप्यूर्म्मितं क्षिप्तदग्धयोः ।
एधतुः पुरुषे वह्नावंहतिस्त्यागरोगयोः ॥ १०१ ॥
कपोतः स्यात्कलरवे कवकाख्ये विहङ्गमे ।
कलितं विदितेप्याप्ते स्वीकृतेऽप्यभिधेयवत् ॥ १०२ ॥
कापोतं तद्गुणे स्रोतोऽञ्जनखञ्जिकयोरपि ।
किरातः पुंसि भूनिम्बे म्लेच्छस्वल्पशरीरयोः ॥ १०३ ॥

---

उद्वान्त–उगलाहुवा, ( वमनकिया ) ( त्रि० ) मदरहित हस्ती, ( पुं० )
उदात्त–स्वरभेद, काव्यका अलंकार, ॥ ९८ ॥ दातार, बडा, मनोहर, ( त्रि० )
उद्धृत्त–बँधाहुवा, खायाहुवा, त्यागाहुवा, तोलाहुवा, मराहुवा, (त्रि०) ॥ ९९ ॥
उन्नति–उदय, वृद्धि, ऊपरको गमन, गरुडकी स्त्री ( त्रि० )
उन्मत्त–उन्मादवाला, धतूरा, पुष्पवृक्ष विशेष, ( पुं० ) ॥ १०० ॥
उषित–रातका रक्खाहुवा, दग्ध, ( त्रि० )
ऊर्मित–फेंकाहुवा, दग्धहुवा, (न०)
एधतु–पुरुष, अग्नि, ( पुं० )
अंहति–त्याग (दान), रोग ( स्त्री० ) ॥ १०१ ॥
कपोत–सूक्ष्मशब्द, कवक ( कबूतर ) नाम पक्षी, ( पु० )
कलित–जानाहुवा, प्राप्तहुवा, अंगीकारकियाहुवा, ( त्रि० ) ॥१०२॥
कापोत–कपोतों (कबूतरों)का समूह, कालासुरमा, करछी ( न० )
किरात–चिरायता, म्लेच्छ, छोटाशरीरवाला, ( पुं० )॥ १०३ ॥

वालव्यजनधारिण्यां कुट्टिनीसुरगङ्गयोः ।
स्यात्किरातीति कुर्वंस्तु भृत्ये कर्म्मकरे त्रिषु ॥ १०४ ॥
कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवेऽप्यशुभकर्म्मणि ।
क्रन्दितं रोदितेऽपि स्यादाह्वाने कृतरोदने ॥ १०५ ॥
गभस्तिः किरणे सूर्ये पुंसि स्त्री वह्नियोषिति ।
गर्मुत् कार्त्तस्वरे क्लीबं गर्मुच्छाखाभिधायिनि ॥ १०६ ॥
गर्जितो मत्तमातङ्गे गर्जितं जलदध्वनौ ।
गोदन्तो हरिताले स्याद्दंशिते वर्म्मिते त्रिषु ॥ १०७ ॥
गोपतिः पार्थिवे षण्ढे रविपण्डितशूलिषु ।
ग्रंथितं गुम्फिताक्रान्तहिंसितेषु त्रिषु स्मृतम् ॥ १०८ ॥
चिन्तातो मोचने गाङ्गचित्ते च चिरजीविनि ।
जगन्वाते पुमान्क्लीवं भुवने जङ्गमे त्रिषु ॥ १०९ ॥

---

किराती–चँवरढोरनेवाली, कुट्टिनी, आकाशगंगा, ( स्त्री० )

कुर्वत् (न्)–दास, नौकर ( त्रि० ) ॥ १०४ ॥

कृतांत–धर्मराज, सिद्धान्त, भाग्य, अशुभकर्म ( पु० )

क्रंदित–रोना, बुलाना, रुदनकरनेवाला, ( त्रि० ) ॥ १०५ ॥

गभस्ति–किरण, सूर्य, ( पुं० ) अग्निकी स्त्री ( स्त्री० )

गर्मुत्–सुवर्ण, ( न० ) शाखार्थोंका बखानकरनेवाला ( पुं० ) ॥ १०६ ॥

गर्जित–मदोन्मत्त हस्ती, ( पुं० ) मेघकी ध्वनि ( न० )

गोदन्त–हरताल, कंचुक आदिधारणकिये, कवच धारणकिये ( त्रि० ) ॥ १०७ ॥

गोपति–राजा, हीजडा, सूर्य, पण्डित, महादेव, ( पुं० )

ग्रंथित–गूँथाहुवा, दबायाहुवा, माराहुवा, ॥ १०८ ॥ चिंतासे छुडाना, गंगाको चिंतनकरनेवाला, चिरजीवी ( त्रि० )

जगत्(न्)–वायु, ( पुं० ) भुवन, जंगम ( चलनेवाला ) (त्रि० ) ॥ १०९ ॥

जगती जगति क्ष्मायां छन्दोभेदे जनेऽपि च ।
जयन्ती त्वथ गौरीन्द्रपुत्री जरा द्रुमान्तरे ॥ ११० ॥
वैजयन्त्यां जयन्तस्तु पाकशासनिहीरयोः ।
जामाता दयिते सूर्यावर्चे तु दुहितुः पतौ ॥ १११ ॥
जीमूतो जलदे शक्रे घोषेपि वृद्धिजीविनि ।
देवताडेऽपि जीमूतो जीमूतः पर्वतेऽपि च ॥ ११२ ॥
जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधौ ।
जीवन्ती जीवनीवृक्षे शमीवन्दाऽमृतासु च ॥ ११३ ॥
जृम्भितं करणे स्त्रीणां वेष्टिते स्फुटिते त्रिषु ।
ज्वलितो भास्करे दग्धे वानितं तनितांशुके ॥ ११४ ॥
वाद्यभाण्डे गुणे विस्तारे तेषु त्रिषु तानितम् ।
तृणता तु तृणत्वे स्यात् तृणता कार्मुकेऽपि च ॥ ११५ ॥

---

जगती—जगत् पृथ्वी, छन्दोभेद, जन ( मनुष्यआदि ) ( स्त्री० )

जयन्ती—गौरी ( पार्वती ), इन्द्रपुत्री, वृद्धाऽवस्था, वृक्षभेद ( स्त्री० ) ॥ ११० ॥ पताका, ( स्त्री० )

जयन्त—इन्द्रका पुत्र, हीरा-रत्न, (पुं०)

जामा(तृ)ता—प्रिय, सूर्यावर्तमणि, पुत्रीका पति, ( पुं० ) ॥ १११ ॥

जीमूत—मेघ, इंद्र, शब्द, वृद्धिजीवी ( व्याज लेनेवाला ), देवताड-वृक्ष, पर्वत, ( पु० ) ॥ ११२ ॥

जीवातु—भक्त, (भात), जीवित, जीनेकी औषधि, ( पुं० न० )

जीवन्ती—काकोली-वृक्ष, जाट वृक्ष, वृक्षमें उपजा वृक्ष, गिलोय (स्त्री०) ॥ ११३ ॥

जृंभित—स्त्रियोंका करण ( चेष्टा ), लपेटाहुवा, फूटाहुवा, ( त्रि० )

ज्वलित—सूर्य, दग्ध, ( पु० )

वानित—तनाहुवा वस्त्र, ( न० ) ॥ ११४ ॥

तानित—बाजाका पात्र, तार, विस्तार, ( त्रि० )

तृणता—तृणभाव, धनुप, ( स्त्री० ) ॥ ११५ ॥

त्रिगर्त्तः स्याज्जनपदे त्रिगर्त्तो गणितान्तरे ।
विषयेऽपि त्रिगर्त्ता तु घुर्घुरीकामुकस्त्रियोः ॥ ११६ ॥
त्वरितं प्रजवे शीघ्रे दुर्गतिर्निरये स्त्रियाम् ।
दारिद्र्येऽप्यथ दुर्ज्जातं कुजाते व्यसने तथा ॥ ११७ ॥
दृष्टान्तस्तु पुमाञ्शास्त्रे स्यादुदाहरणेपि च ।
दंशितं वर्म्मिते दष्टे द्रवन्ती सरिदन्तरे ॥ ११८ ॥
मयौ चैव द्विजातिस्तु द्विजन्मनि विहङ्गमे ।
धीमान्वाचस्पतौ पुंसि धीरे बुद्धिमति त्रिषु ॥ ११९ ॥
निकृतं विप्रलम्भेऽपि नीचे विप्रकृतेऽपि च ।
निकृतिर्भर्त्सने क्षेपे निकृतिः शठशाठ्ययोः ॥ १२० ॥
निमित्तं लक्षणे हेतौ निमित्तं पर्वणि स्मृतम् ।
आगन्तुर्देवादेशे च नियतिर्नियमे विधौ ॥ १२१ ॥

---

त्रिगर्त–त्रिगर्तदेश, मनुष्य, गणितभेद, देश, ( पुं० )

त्रिगर्ता–घुर्घुरिया-क्रीडा, संभोग इच्छावाली स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ११६ ॥

त्वरित–वेग, शीघ्रता, ( न० )

दुर्गति–नरक, दारिद्र्य, ( स्त्री० )

दुर्जात–कुत्सितजन्मवाला, व्यसन, ( न० ) ॥ ११७ ॥

दृष्टान्त–शास्त्र, उदाहरण, (पुं० )

दंशित–कवचधारणकियाहुवा, काटाहुवा ( त्रि० )

द्रवन्ती–नदी, ( स्त्री० ) ॥ ११८ ॥ मुलहटी-वेल, ( स्त्री० )

द्विजाति–ब्राह्मणआदि, पक्षी, (पु०)

धीमान्(त्)–बृहस्पति, ( पुं० ) धीर, बुद्धिमान्, ( त्रि० ) ॥ ११९ ॥

निकृत–ठगना, नीच, बिगाडाहुवा, ( न० )

निकृति–झिडकना, फेंकना, शठ, शठता, ( स्त्री० ) ॥ १२० ॥

निमित्त–लक्षण, हेतु, पर्व, ( न० )

आगन्तु–देवआज्ञा, ( पुं० )

नियति–नियम, भाग्य, ( स्त्री० ) ॥ १२१ ॥

निरस्तः प्रेषितशरे संत्यक्ते त्वरितोदिते ।
निष्ठ्यूतेऽपि प्रतिहते निर्म्मितस्त्वनुपद्रुते ॥ १२२ ॥

दिक्पालकालपर्णौ तु पुंस्त्रियोः स्यादनुक्रमात् ।
निर्वृत्तिः सुस्थितासौख्यनिर्वाणाऽस्तङ्गमाध्वसु ॥ १२३ ॥

निर्मुक्तस्त्यक्तसङ्गे स्यात् त्यक्तकञ्चुकपन्नगे ।
निर्वातो वातविगते व्याश्रये दृढवर्म्मणि ॥ १२४ ॥

निशान्तस्त्रिषु शान्ते स्यान्निशान्तो भवनोषसोः ।
पञ्चता मृत्युमात्रेऽपि पञ्चभावेऽपि पञ्चता ॥ १२५ ॥

पण्डितः सिह्के धीरे पतत्पातुकपक्षिणोः ।
पद्धतिः पथि पङ्क्तौ च परेतो वाच्यवन्मृते ॥ १२६ ॥

भूतभेदेऽप्यथ गिरौ सुरर्षावपि पर्वतः ।
पर्याप्तं वारणतुष्टियथेष्टेष्वाप्तशक्तयोः ॥ १२७ ॥

---

निरस्त–फेंकाहुवा बाण, त्यागाहुवा, शीघ्रकहाहुवा, थूकाहुवा, माराहुवा, ( पु० )

निर्मित–उपद्रवरहित, (पुं०)॥१२२॥ दिक्पाल, (पुं०) तगर-वृक्ष, (स्त्री०)

निर्वृति–सुस्थिता, सौख्य, मृत्यु होना, अस्त होना, मार्ग, (स्त्री०) ॥१२३॥

निर्मुक्त–त्यागा है सग जिसने वह, कॅचुलीसे मुक्तहुवा सर्प ( पुं० )

निर्वात–वायुरहित होना, आश्रय, दृढ कवच ( पु० ) ॥ १२४ ॥

निशान्त–शान्त, (त्रि०)निशान्त-घर, प्रभात-काल ( पुं० )

पंचता–मृत्यु, पॉचोंका भाव (पंचपना ) ( स्त्री० ) ॥ १२५ ॥

पंडित–हीग, विद्वान्, ( पुं० )

पतत्–पडनेवाला, पक्षी, ( त्रि० )

पद्धति–मार्ग, पंक्ति, ( स्त्री० )

परेत–मृतक ॥ १२६ ॥ भूतभेद, ( पुं० )

पर्वत–पहाड, एक सुरर्षि, ( पुं० )

पर्याप्त–मनह करना, तुष्टि, यथेष्ट (न०)मान्य, समर्थ, (पुं०)॥१२७॥

विनाशदोषकृच्छ्रेषु दण्डे तु मतमव्ययम् ।
पर्याप्तिस्तु प्रकामे स्यात्प्राप्तौ च परिरक्षणे ॥ १२८ ॥
पर्यस्तः पतितक्षिप्तनिहतेषु त्रिषु त्रिषु ।
पलितं केशपांडुत्वे पङ्के तापेऽपि शैलजे ॥ १२९ ॥
पक्षतिः पक्षमूले स्यात्प्रतिपद्यपि पक्षतिः ।
पार्वती द्रौपदी दुर्गा जीवन्ती शल्लकीद्रुमे ॥ १३० ॥
पिण्डितो गणिते सान्द्रे पित्सन् पातेऽपि पक्षिणि ।
पिशिता मांसिकायां स्यात्पिशितं पलले मतम् ॥ १३१ ॥
पीडितं करणे स्त्रीणां यन्त्रिते बाधितेऽपि च ।
पुटितं स्यात्करपुटे प्रसृतिस्स्यूतपोटिते ॥ १३२ ॥
पृषतोऽपि पृषद्बिन्दौ मृगे तु पृषतः पृषन् ।
स्याद्दुःस्वरेऽहितेऽप्येवं श्वेतबिन्दुयुतेऽन्यवत् ॥ १३३ ॥

---

पर्यासं–विनाश, दोष, कृच्छ्र, ( कष्ट ) दंड, ( अव्यय )
पर्याप्ति–प्रकाम (अति इच्छा), प्राप्ति, अच्छी रक्षा, ( स्त्री० ) ॥ १२८ ॥
पर्यस्त–पड़ाहुवा, फेंकाहुवा, माराहुवा, ( त्रि० )
पलित–केशोंकी सफेदी, कीच, ताप, शिलाजीत ( न० ) ॥ १२९ ॥
पक्षति–पक्षीकी मूल, प्रतिपदा-तिथि, ( स्त्री० )
पार्वती–द्रौपदी, दुर्गा, हरड-वृक्ष, शालई-वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ १३० ॥
पिंडित–गणित कियाहुवा, इकट्ठा कियाहुवा, ( पुं० )
पित्स(त्)न्–पड़ना, पक्षी, ( न० पुं० )
पिशिता–जटामांसी–औषधि,(स्त्री०)
पिशित–मांस, ( न० ) ॥ १३१ ॥
पीडित–स्त्रियोंका आभूषण, वशमें कियाहुवा, पीडा कियाहुवा (त्रि०)
पुटित–हाथका पुट, ( न० )
प्रसृति–आधी अजलि, थैली, पुटकियाहुवा, ( स्त्री० ) ॥ १३२ ॥
पृषत–( पुं० ) पृषत्–( न० ) जल आदिकी बूँद, पृषत–पृषत्, हिरण, ( पुं० ) बुरे शब्दवाला, शत्रु, सफेद बुँदकीवाला (त्रि०) ॥१३३॥

प्रकृतिस्तु सत्त्वरजस्तमसां साम्यमात्रके ।
स्वभावाऽमात्यपौरेषु लिङ्गे योनौ तथाऽऽत्मनि ॥ १३४ ॥
प्रकृतं प्रस्तुतेऽपि स्यात्प्रकृतः प्रकृतिस्थिते ।
प्रवितः शकटोन्मेये पलानामयुतद्वये ॥ १३५ ॥
प्रणीतः संस्कृताग्नौ स्याद्वाच्यलिङ्गः प्रवेशिते ।
संस्कृते चोपपन्ने निक्षिप्ते विहितेऽपि च ॥ १३६ ॥
प्रतीतः सादरे ख्याते हृष्टे दृष्टे विरक्षणे ।
प्रतीत एते ज्ञाते च प्रततिर्व्रततौ ततौ ॥ १३७ ॥
प्रपातो निर्झरे कृच्छ्रे पतनावटयोरपि ।
प्रभूतमुद्गते प्राज्ये प्रमीतः प्रोक्षिते मृते ॥ १३८ ॥
प्रवृत्तिर्वृत्तिवार्त्तान्तप्रवाहेषु प्रवर्त्तने ।
प्रसूतिः प्रसवोत्पत्तिपुत्रेषु दुहितर्यपि ॥ १३९ ॥

---

प्रकृति—सत्त्व, रजस्, तमस्, इनकी सम अवस्था, स्वभाव, मन्त्री, प्रजा, लिंग, योनि, आत्मा, ( स्त्री० ) ॥ १३४ ॥

प्रकृत—प्रस्तुत ( प्रसंग ) ( न० ) स्वभावमें स्थित, ( त्रि० )

प्रवित—गाडाभर, ८०००० तोला प्रमाण, ( पुं० ) ॥ १३५ ॥

प्रणीत—सस्कार कियाहुवा अग्नि, ( पुं० ) प्रवेश कियाहुवा, ( त्रि० ) सस्कार कियाहुवा, पास रक्खाहुवा, स्थापन कियाहुवा, रचाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १३६ ॥

प्रतीत—आदरयुक्त, विख्यात, प्रसन्नहुवा, देखाहुवा, रक्षाकियाहुवा, गयाहुवा, जानाहुवा ( त्रि० )

प्रतति—वेल, पंक्ति, ( स्त्री० ) ॥ १३७ ॥

प्रपात—झिरना, कष्ट, पडना, गड्ढा, ( पुं० )

प्रभूत—उद्गत, वहुत, ( न० )

प्रमीत—प्रोक्षित ( सेचन कियाहुवा ), मराहुवा, ( पुं० ) ॥ १३८ ॥

प्रवृत्ति—वृत्ति ( जीविका ), वृत्तान्त, प्रवाह, प्रवर्तन ( स्त्री० )

प्रसूति—जन्म, उत्पत्ति, पुत्र, पुत्री, ( स्त्री० ) ॥ १३९ ॥

प्रसूतं कुसुमे क्लीब वाच्यवल्लब्धजन्मनि ।
प्रसृता तु प्रजातायां जंघाया प्रसृता मता ॥ १४० ॥
प्रसृतोऽर्धाञ्जलौ सम्प्रसारे वेगिविनीतयोः ।
प्रवृतं वितते क्षुण्णे प्रोक्षितं सिक्त आहते ॥ १४१ ॥
प्रार्थितं याचिते शत्रुरुद्धेऽप्यभिहते त्रिषु ।
वार्द्धितं पूरिते छिन्ने वार्द्धितं वृद्धिशालिनि ॥ १४२ ॥
बृहती महतीकण्टकारिकाकलशीषु च ।
वाचि च क्षुद्रवार्त्ताक्यां छन्दोभेदोत्तरीययोः ॥ १४३ ॥
भरतस्तु नटे नाट्यशास्त्रे रामाऽनुजे पुमान् ।
दौष्यन्तौ शबरे तन्तुवायेऽपि भरतः स्मृतः ॥ १४४ ॥
भवती वाणभेदे स्यात्रिषु युष्मत्सदर्थयोः ।
व्यासर्षिभाषिते ग्रन्थे जम्बूद्वीपेऽपि भारतः ॥ १४५ ॥

---

प्रसूत–पुष्प, (न०) उत्पन्नहुवा (त्रि०)
प्रसृता–उत्पन्न हुई–कन्या (स्त्री०)
प्रसृता–जंघा (स्त्री०) ॥ १४० ॥
प्रसृत–आधी अजलि, अच्छी तरह फैलाहुवा, वेगवाला, नम्रतावाला, (त्रि०)
प्रवृत–विस्तारवाला, कटाहुवा, (त्रि०)
प्रोक्षित–सींचाहुवा, अच्छी तरह माराहुवा (त्रि०) ॥ १४१ ॥
प्रार्थित–याचना कियाहुवा, शत्रुका रोकाहुवा, माराहुवा (त्रि०)
वार्द्धित–पूराहुवा, छेदन कियाहुवा, वृद्धिवाला, (त्रि०) ॥ १४२ ॥
बृहती–वडी–स्त्रीआदि, कटेहली, कलशी, वाणी, छोटा वैंगन, छदोभेद, दुपट्टा, (स्त्री०) ॥ १४३ ॥
भरत–नट, नाट्यशास्त्र, रामका छोटा भ्राता, दुष्यन्तराजाका पुत्र, शवरजाति, जुलाहा, (पुं०) ॥ १४४ ॥
भवती–वाणभेद, युष्मद्–अर्थ, सत्–अर्थ, (त्रि०)
भारत–भारत–इतिहास, जंबूद्वीप, (पुं०) ॥ १४५ ॥

वाग्वाणीपक्षिणीभेदवृत्तिभेदेषु भारती ।
भावितं वासिते लब्धे ध्यातेऽप्युत्पादिते त्रिषु ॥ १४६ ॥

भासन्तो भासविहगे सुन्दरेऽप्यभिधेयवत् ।
भास्वानाभास्वरे सूर्ये भूभृद्भूपालशैलयोः ॥ १४७ ॥

मथितं निर्जलोदश्वित्यनववृष्टलोडिते ।
मरुत्पुंसि सुरे वाते महद्राज्ये नपुंसकम् ॥ १४८ ॥

नारदस्य तु वीणायां महती स्यात्पृथौ त्रिषु ।
मालती जातियुवतिज्योत्स्नानिक्षु सरिद्भिदि ॥ १४९ ॥

काकमाच्यग्निशिखयोर्मुषितं खण्डिते हृते ।
मूर्च्छितं मोहसम्प्राप्ते सोच्छ्रयेऽपि दृढेऽपि च ॥ १५० ॥

रजतं रूप्यहारेभदन्तेषु विशदे त्रिषु ।
रमतिर्नायके स्वर्गे रसितं स्वनिते रुते ॥ १५१ ॥

---

भारती–वचन, सरस्वती, पक्षि(णी) भेद, वृत्तिभेद, ( स्त्री० )
भावित–भिगोयाहुवा, लब्धहुवा, ध्यानकियाहुवा, उत्पादन कियाहुवा ( त्रि० ) ॥ १४६ ॥
भासन्त–भास-पक्षी, ( पु० ) सुन्दर, ( त्रि० )
भास्वान्–तेजस्वी, सूर्य, ( पुं० )
भूभृत्–राजा, पर्वत, ( पुं० )॥१४७॥
मथित–निर्जलछाछ, घोलाहुवा, मथाहुवा ( न० )
मरुत्–देवता, वायु, ( पु० )
महत्–राज्य, ( न० ) ॥ १४८ ॥
महती–नारदमुनिकी बीणा, ( स्त्री० ) पृथु ( स्थूल ) ( त्रि० )
मालती–चमेली, जवान स्त्री,सफेदफूलकी तोरई, रात्रि, एकनदी, मकोय, ॥ १४९ ॥ चौलाई शाक, (स्त्री०)
मुषित–खंडित, हृत ( हराहुवा ) ( त्रि० )
मूर्छित–मोहको प्राप्त, बढाहुवा, दृढ, ( त्रि० ) ॥ १५० ॥
रजत–चाँदी, हार, हस्तिदन्त, शुक्ल ( सफेद ) ( त्रि० )
रमति–स्वामी, स्वर्ग, ( पुं० )
रसित–शब्दयुक्त, शब्द, ॥ १५१ ॥

स्वर्णादिखचिते तु स्यात्रिष्वेव रसितं मतम् ।
रेवती हलिकान्तायां ताराभेदेऽपि मातृषु ॥ १५२ ॥

रैवतः शैलभेदे स्यात्सुवर्णालौ हरेश्वरे ।
सरलेऽन्द्रायुधे वीरे रुधिरेऽपि च रोहितम् ॥ १५३ ॥

रोहितो लोहिते मीने मृगभेदेऽपि रोहिणि ।
रोहिदर्के पुमानेव मता रोहिल्लतान्तरे ॥ १५४ ॥

ललितं हारभेदे स्यात्रिष्वेव ललितेष्टयोः ।
लोहितं कुङ्कुमे रक्ते गोशीर्षे रक्तचन्दने ॥ १५५ ॥

पुंस्येव मङ्गले रक्ते नदे नागे व लोहितः ।
वनिता जनिताऽत्यर्थरागयोषिति योषिति ॥ १५६ ॥

वनितं याचिते क्लीबं शोधिते वनितं त्रिषु ।
वसतिः स्यान्निशावेश्मावस्थानेष्वर्हदाश्रमे ॥ १५७ ॥

---

स्वर्णादिसे जडाहुवा, ( त्रि० )
रेवती–बलदेवजीकी स्त्री, रेवती-नक्षत्र, मातृभेद (स्त्री०) ॥१५२॥
रैवत–एकपर्वत, सोनाली-वृक्ष, शिव, ईश्वर, ( पु० )
रोहित–सीधा, इंद्रका धनुष, वीर, रुधिर, ( न० ) ॥ १५३ ॥
रोहित–लोहित ( लालवर्ण ), मच्छी, मृगभेद, रोहेडा-वृक्ष ( पुं० )
रोहित–सूर्य या आक ( पुं० ) लतामेद, ( स्त्री० ) ॥ १५४ ॥

ललित–हारभेद, सुंदर, प्रिय, (त्रि०)
लोहित–केसर, कसूँभाआदि, हरिचंदन-वृक्ष, रक्तचदन, ( न० ) ॥ १५५ ॥
लोहित–मंगल ग्रह, रक्त-वर्ण, एक-नद, हस्ती ( पुं० )
वनिता–जिसमें अतिप्रीति है वह स्त्री, स्त्रीमात्र, ( स्त्री० ॥ १५६ ॥
वनित–याचना कियाहुवा ( न० ) शोधाहुवा, ( त्रि० )
वसति–रात्रि, मकान, स्थिति, अर्हतदेवका आश्रम ( स्त्री० ) ॥१५७॥

वाग्वाणीपक्षिणीभेदवृत्तिभेदेषु भारती ।
भावितं वासिते लब्धे ध्यातेऽप्युत्पादिते त्रिषु ॥ १४६ ॥

भासन्तो भासविहगे सुन्दरेऽप्यभिधेयवत् ।
भास्वानाभास्वरे सूर्ये भूभृन्नृपालशैलयोः ॥ १४७ ॥

मथितं निर्जलोदश्वित्यनवघृष्टलोडिते ।
मरुत्पुंसि सुरे वाते महद्राज्ये नपुंसकम् ॥ १४८ ॥

नारदस्य तु वीणायां महती स्यात्पृथौ त्रिषु ।
मालती जातियुवतिज्योत्स्नानिक्षु सरिद्भिदि ॥ १४९ ॥

काकमाच्यग्निशिखयोर्मुषितं खण्डिते हृते ।
मूर्च्छितं मोहसंप्राप्ते सोच्छ्रयेऽपि दृढेऽपि च ॥ १५० ॥

रजतं रूप्यहारेभदन्तेषु विशदे त्रिषु ।
रमतिर्नायके स्वर्गे रसितं स्वनिते रुते ॥ १५१ ॥

---

भारती—वचन, सरस्वती, पक्षि(णी) भेद, वृत्तिभेद, ( स्त्री० )
भावित—भिगोयाहुवा, लब्धहुवा, ध्यानकियाहुवा, उत्पादन कियाहुवा ( त्रि० ) ॥ १४६ ॥
भासन्त—भास-पक्षी, ( पु० ) सुन्दर, ( त्रि० )
भास्वान्—तेजस्वी, सूर्य, ( पुं० )
भूभृत्—राजा, पर्वत, ( पु० )॥१४७॥
मथित—निर्जलछाछ, घोलाहुवा, मथाहुवा ( न० )
मरुत्—देवता, वायु, ( पु० )
महत्—राज्य, ( न० ) ॥ १४८ ॥
महती—नारदमुनिकी वीणा, ( स्त्री० ) पृथु ( स्थूल ) ( त्रि० )
मालती—चमेली, जवान स्त्री, सफेदफूलकी तोरई, रात्रि, एकनदी, मकोय, ॥ १४९ ॥ चौलाई शाक, (स्त्री०)
मुषित—खंडित, हृत ( हडाहुवा ) ( त्रि० )
मूर्छित—मोहको प्राप्त, बढाहुवा, दृढ, ( त्रि० ) ॥ १५० ॥
रजत—चाँदी, हार, हस्तिदन्त, शुद्ध ( सफेद ) ( त्रि० )
रमति—स्वामी, स्वर्ग, ( पुं० )
रसित—शब्दयुक्त, शब्द, ॥ १५१ ॥

स्वर्णादिखचिते तु स्यात्रिष्वेव रसितं मतम् ।
रेवती हलिकान्तायां तारामेदेऽपि मातृषु ॥ १५२ ॥

रैवतः शैलभेदे स्यात्सुवर्णालौ हरेश्वरे ।
सरलेऽन्द्रायुधे वीरे रुधिरेऽपि च रोहितम् ॥ १५३ ॥

रोहितो लोहिते मीने मृगभेदेऽपि रोहिणि ।
रोहिदर्के पुमानेव मता रोहिल्लतान्तरे ॥ १५४ ॥

ललितं हारभेदे स्यात्रिष्वेव ललितेष्टयोः ।
लोहितं कुङ्कुमे रक्ते गोशीर्षे रक्तचन्दने ॥ १५५ ॥

पुंस्येव मङ्गले रक्ते नदे नागे च लोहितः ।
वनिता जनिताऽत्यर्थरागयोषिति योषिति ॥ १५६ ॥

वनितं याचिते क्लीबं शोधिते वनितं त्रिषु ।
वसतिः स्यान्निशावेश्मावस्थानेष्वर्हदाश्रमे ॥ १५७ ॥

---

स्वर्णादिसे जडाहुवा, ( त्रि० )
रेवती–बलदेवजीकी स्त्री, रेवती-नक्षत्र, मातृभेद (स्त्री०) ॥१५२॥
रैवत–एकपर्वत, सोनाली-वृक्ष, शिव, ईश्वर, ( पु० )
रोहित–सीधा, इंद्रका धनुष, वीर, रुधिर, ( न० ) ॥ १५३ ॥
रोहित–लोहित ( लालवर्ण ), मच्छी, मृगभेद, रोहेडा-वृक्ष ( पुं० )
रोहित–सूर्य या आक ( पुं० ) लतामेद, ( स्त्री० ) ॥ १५४ ॥

ललित–हारभेद, सुंदर, प्रिय, (त्रि०)
लोहित–केसर, कसूँभाआदि, हरिचंदन-वृक्ष, रक्तचदन, ( न० ) ॥ १५५ ॥
लोहित–मंगल ग्रह, रक्त-वर्ण, एक-नद, हस्ती ( पुं० )
वनिता–जिसमें अतिप्रीति है वह स्त्री, स्त्रीमात्र, ( स्त्री० ॥ १५६ ॥
वनित–याचना कियाहुवा ( न० ) शोधाहुवा, ( त्रि० )
वसति–रात्रि, मकान, स्थिति, अर्हंतदेवका आश्रम ( स्त्री० ) ॥१५७॥

वहतुर्वृषभे पान्थे वहतिः सचिवे गवि ।
वापितं वाच्यवद्बीजाकृतमुण्डितयोर्मतम् ॥ १५८ ॥
वासन्तः कोकिले मुद्गे करभेऽवहिते विटे ।
वासन्ती माधवीयूथ्योर्वासन्ती पाटलावपि ॥ १५९ ॥
वासिता करिणीनार्योर्वासितं विहगारवे ।
ज्ञाने त्रिष्वेव वसनवेष्टिते सुरभीकृते ॥ १६० ॥
विकृतस्त्रिषु बीभत्से रोगिते स्यादसंस्कृते ।
डिम्बे रोगे च विकृतिर्विगतो निष्प्रभे गते ॥ १६१ ॥
विच्छित्तिरङ्गरागे स्यादपि विच्छेदहावयोः ।
विजाता तु प्रसूतायां विकृते जनिते त्रिषु ॥ १६२ ॥
विततं तु मत व्यासे विस्तृतेऽप्यभिधेयवत् ।
विद्युत्तडिति सन्ध्यायां स्त्रियां त्रिष्वेव निष्प्रभे ॥ १६३ ॥

---

वहतु–वृषभ, बटाऊ, ( पु० )
वहति–मन्त्री, गौ, ( पुं० स्त्री० )
वापित–बीजबोयाहुवा खेत, मुँडाहुवा ( त्रि० ॥ १५८ ॥
वासन्त–कोयल, मूँग, उष्ट्र, सावधान, कामी, ( पु० )
वासन्ती–माधवीलता, जूही, लाललोध ( स्त्री० ) ॥ १५९ ॥
वासिता–हथिनी, स्त्री, ( स्त्री० )
वासित–पक्षीका शब्द, ज्ञान, (न०) वस्त्रसे लपेटाहुवा, सुगंधितकियाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १६० ॥
विकृत–क्रूर, रोगी, नहीं सस्कारकियाहुवा, ( पुं० )
विकृति–लूटनाआदिपीडा, रोग, ( स्त्री० )
विगत–कातिहीन, गयाहुवा, ( पु० ) ॥ १६१ ॥
विच्छित्ति–अगराग, वियोग, हाव, ( स्त्रियोंकी चेष्टा ) ( स्त्री० )
विजाता–प्रसूतिका स्त्री, ( स्त्री० ) बिगड़ाहुवा, उत्पन्नहुवा, ( त्रि० ) ॥ १६२ ॥
वितत–व्याप्त, विस्तारवाला, (त्रि०)
विद्युत्–बिजली, सन्ध्या, ( स्त्री० ) प्रभारहित, (त्रि० ) ॥ १६३ ॥

विदितं स्वीकृते ज्ञाते विधाता वेधसि स्मरे ।
विनतः प्रणते भुग्ने शिक्षितेऽप्यभिधेयवत् ॥ १६४ ॥
विनता वैनतेयस्य जनन्यां पिडिकान्तरे ।
विनीतः सुवहाश्वे स्याद्विनयाढ्ये जितेन्द्रिये ॥ १६५ ॥
उपनीतेऽपनीतेऽपि निभृते वणिजि त्रिपु ।
विनेताऽऽदेशके राज्ञि विपत्तिर्याचनापदोः ॥ १६६ ॥
विवृता क्षुद्ररोगे स्याद्विवृतं तु त्रिपु त्रिपु ।
विवर्त्तः समुदाये स्यादप्रवर्त्तननृत्ययोः ॥ १६७ ॥
विविक्तं विजने पूतेऽप्यसंपृक्तविवेकिनि ।
विश्रुतं ज्ञातसंहृष्टप्रतीतेपु त्रिपु त्रिपु ॥ १६८ ॥
विश्वस्तस्त्रिपु विश्रब्धे विश्वस्ता विधवा स्त्रियाम् ।
विहस्तो हस्तरहिते विह्वले पण्ढकेऽपि च ॥ १६९ ॥

---

विदित—स्वीकारकियाहुवा, जानाहुवा, ( त्रि० )

विधातृ(ता)—ब्रह्मा, कामदेव, (पु०)

विनत—नम्र, झुकाहुवा, शिक्षाकिया-हुवा ( त्रि० ) ॥ १६४ ॥

विनता—गरुडकी माता, फुन्सीभेद, ( स्त्रि० )

विनीत—अच्छा चलनेवाला अश्व, वि-नयसे युक्त, जितेन्द्रिय, ॥ १६५ ॥ यज्ञोपवीतदियाहुवा, दूरकियाहुवा, नम्र, वणिक्, ( त्रि० )

विनेतृ(ता) आज्ञाकरनेवाला, राजा, ( पु० )

विपत्ति—याचना, आपत् ( विपत् ) ( स्त्री० ) ॥ १६६ ॥

विवृता—क्षुद्र—रोग, (स्त्री०) नहींढका-हुवा, ( त्रि० )

विवर्त—समूह, नहींटकना, नृत्य, ( न० ) ॥ १६७ ॥

विविक्त—विजन ( एकात ), पवित्र, नहीं मिलाहुवा, विवेकी, ( त्रि० )

विश्रुत—जानाहुवा, प्रसन्नहुवा, वि-ख्यातहुवा, ( त्रि० ) ॥ १६८ ॥

विश्वस्त—जिसका विश्वास हुवा वह, ( त्रि० )

विश्वस्ता—विधवा, ( स्त्री० )

विहस्त—हस्तरहित, विह्वल, नपुंसक, ( पुं० ) ॥ १६९ ॥

वृत्तान्तो भावकार्त्स्न्ये स्यादपि वार्ताप्रकारयोः ।
प्रक्रियायां प्रकरणेऽप्येकान्तेऽपि कचिन्मतः ॥ १७० ॥

वेल्लितं कम्पिते वक्रे प्लुते स्याद्वेल्लितं गतौ ।
वेष्टितं करणे स्त्रीणा लसके चावृते त्रिपु ॥ १७१ ॥

व्याघातस्त्वन्तराये स्याद्योगभेदप्रहारयोः ।
व्यायतं तु दृढे दीर्घे व्यापृतेऽतिशयेऽन्यवत् ॥ १७२ ॥

शकुन्तो विहगे पक्षिभेदे भासाख्यपक्षिणि ।
शुद्धान्तोन्तःपुरे कक्षान्तरे रहसि च स्मृतः ॥ १७३ ॥

राजयोपिति शुद्धान्ता श्रीपतिः नृपकृष्णयोः ।
श्रीमांस्तिलकवृक्षे स्यादीश्वरेऽपि मनोहरे ॥ १७४ ॥

सङ्घातः संहते पुंसि प्रहारे नरकान्तरे ।
सङ्गतिः सङ्गते ज्ञाने सन्नतिर्नुतिशब्दयोः ॥ १७५ ॥

---

वृत्तान्त—भावसपूर्णता, वार्ता, प्रकार, प्रक्रिया, प्रकरण, एकान्त, ( पुं० ) ॥ १७० ॥

वेल्लित—कँपाहुवा, टेढा, उछलाहुवा, ( त्रि० ) गमन ( न० )

वेष्टित—स्त्रियोंका करण ( हावादि ), शोभित, घिराहुवा, (त्रि०)॥१७१॥

व्याघात—विघ्न, विष्कंभआदिकोंमें एक योग, प्रहार ( चोट ) ( पुं० )

व्यायत—दृढ, लंबा, व्यापारयुक्त, अतिशय, ( त्रि० ) ॥ १७२ ॥

शकुन्त—पक्षिमात्र, पक्षिभेद, भासपक्षी ( पुं० )

शुद्धान्त—रनवास, ड्योढी, एकान्त ( पु० ) ॥ १७३ ॥

शुद्धान्ता—राज्ञी, ( रानी ) ( स्त्री० )

श्रीपति—राजा, श्रीकृष्ण ( पुं० )

श्रीमान्—तिलकपुष्प-वृक्ष, ईश्वर, सुंदर, ( पुं० ) ॥ १७४ )

संघात—समूह, प्रहार, नरकभेद, (पुं०)

संगति—सग, ज्ञान, ( स्त्री० )

सन्नति—नमस्कार, शब्द, ( स्त्री० ) ॥ १७५ ॥

सन्ततिस्तनयापुत्रगोत्रविस्तारपङ्क्तिषु ।
परम्पराभावेऽपि स्यात्समाप्तिस्तु समर्थने ॥ १७६ ॥
विनाशे संमतिस्तु स्यादनुमत्यभिलाषयोः ।
समितिः सङ्गरे साम्ये सभायां सङ्गमेऽपि च ॥ १७७ ॥
संविदाजौ प्रतिज्ञायामाचारज्ञानयोः स्त्रियाम् ।
संवित्तिः प्रतिपत्तौ स्यादविवादे जनस्य च ॥ १७८ ॥
संवर्त्तः पुंसि कल्पान्ते हायने च कलिद्रुमे ।
सिकता सिकतायुक्तदेशे स्यादामयान्तरे ॥ १७९ ॥
सिकता वालुकायां स्युः शर्करायामपीष्यते ।
सुकृतं तु शुभे पुण्ये क्लीबं सुविहिते त्रिषु ॥ १८० ॥
सुनीतिः शोभननये सुनीतिर्ध्रुवमातरि ।
सुव्रता सुखसन्दोह्यगवर्हत्सद्व्रतेषु च ॥ १८१ ॥

---

सन्तति–पुत्री, पुत्र, गोत्र, विस्तार, पङ्क्ति, पारम्पर्य ( परपरापना ) ( स्त्री० )

समाप्ति–समर्थन ॥ १७६ ॥ विनाश या अंत, ( स्त्री० )

संमति–अनुमति, अभिलाषा, (स्त्री०)

समिति–युद्ध, समता, सभा, संगम, ( स्त्री० ) ॥ १७७ ॥

संवित्–युद्धभूमि, प्रतिज्ञा, आचार, ज्ञान, ( स्त्री० )

संवित्ति–सिद्धि, जनका अविवाद, ( स्त्री० ) ॥ १७८ ॥

संवर्त–कल्पका अंत ( प्रलय ), वर्ष, वहेडा-वृक्ष, ( पुं० )

सिकता–सिकता ( वालू ) युक्त देश, रोगभेद, ॥ १७९ ॥ वालू (रेती), ( स्त्री० न० ) डली, ( स्त्री० )

सुकृत–शुभ, पुण्य, ( न० ) अच्छी-तरह विधानकियाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १८० ॥

सुनीति–अच्छीनीति, ध्रुवकी मात ( स्त्री० )

सुव्रता–जो सुखसे दोहीजाय वह गौ, ( स्त्री० )

सुव्रत–अर्हन्तदेव, श्रेष्ठव्रत, ( पुं० ) ॥ १८१ ॥

सुरतं स्यान्निधुवने सुरत्वे सुरता मता ।
सुहितस्त्रिषु तृप्ते स्यादुक्ते सुष्ठुहितेऽपि च ॥ १८२ ॥
सूनृतं मङ्गले सत्यप्रियवाचि न वाच्यवत् ।
संस्कृतं लक्षणोपेते कृत्रिमे त्रिषु संस्कृतः ॥ १८३ ॥
भूषितेऽपि प्रशस्तेऽपि संहतं सङ्गते दृढे ।
स्खलितं तूचिताद्भ्रंशे स्खलितं चलिते त्रिषु ॥ १८४ ॥
स्तमितं वीतचाञ्चल्येप्यार्द्रीभूतेऽपि वाच्यवत् ।
स्थपतिः शल्यभेदे स्यादपि कञ्चुकिसूतयोः ॥ १८५ ॥
जीवेष्टियाजके चाऽथ स्थापितं न्यस्तनिश्चिते ।
सुवर्णा तु मता नद्या सरिदौषधिभेदयोः ॥ १८६ ॥
हरिता मण्डलायां स्याद् हरिद्वर्णयुते त्रिषु ।
हरिद्वाहे च पुंस्येव हरितः ककुभि स्त्रियाम् ॥ १८७ ॥

---

सुरत-स्त्रीसंग, ( मैथुन ) ( न० )

सुरता-सुरभाव ( देवपना ) (स्त्री०)

सुहित-तृप्तहुवा, ( त्रि० ) कहाहुवा, अच्छा हित, ( न० ) ॥ १८२ ॥

सूनृत-मंगल, सत्य और प्रिय वचन ( न० )

संस्कृत-लक्षणसे युक्त, कृत्रिम (नक्ली ) ॥ १८३ ॥
भूषित, प्रशस्त ( श्रेष्ठ ) ( त्रि० )

संहत-संगत, दृढ, ( त्रि० )

स्खलित-उचितसे गिरना, (न०) चलित (त्रि० ) ॥ १८४ ॥

स्तमित-चंचलतारहित, गीलाहुवा, ( त्रि० )

स्थपति-शल्यभेद, चोल ( अगरखा) धारण किये, सारथि, ॥ १८५ ॥
जीवेष्टि यजनकरनेवाला, ( पुं० )

स्थापित-स्थापन कियाहुवा, निश्चित कियाहुवा, ( त्रि० )

सुवर्णा-नदी, नदीभेद, औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ १८६ ॥

हरिता-दूर्वा, ( स्त्री० ) हरितवर्णयुक्त, ( त्रि० )

हरित्-अश्व, ( पु० ) हरित्-दिशा, ( स्त्री० ) ॥ १८७ ॥
हरित्-तृण, ( न० )

क्लीबं तृणप्रभेदेऽथ हर्म्मितं क्षिप्तदग्धयोः ।
हसन्त्याङ्गारधान्यां स्यान्मल्लिकाशाकिनीभिदोः ॥ १८८ ॥
हारीतः कैतवेऽपि स्यान्मुनिपक्षिप्रभेदयोः ।
हृषितं विस्मृते प्रीते नते रोमाञ्चिते हृते ॥ १८९ ॥
क्षारितं स्राविते क्षारेऽभिशस्तेऽपि च वाच्यवत् ।

तचतुर्थम् ।

अङ्गारितं तु दग्धे स्यात्पलाशकलिकोद्गमे ॥ १९० ॥
अतिमुक्तस्तु वासन्त्यां तिनिशे निष्फले त्रिषु ।
अत्याहितं तु जीवनापेक्षकृत्ये महाभये ॥ १९१ ॥
अधिक्षिप्तः पराभूते त्रिषु प्रणिहितेऽपि च ।
स्यात्पुरातनवस्त्रेऽपि नववस्त्रेप्यनाहतम् ॥ १९२ ॥
अनुमतिस्त्वपूर्णे तु पूर्णिमानुज्ञयोः स्त्रियाम् ।
मतमन्तर्गतं मध्ये त्रिषु प्राप्ते च विस्मृते ॥ १९३ ॥

---

हर्म्मित–क्षिप्त (फेंकाहुवा), दग्ध, (त्रि०)
हसंती–अँगीठी, मल्लिका (मोतिया) भेद), शाकिनी–भेद, (स्त्री०) ॥ १८८ ॥
हारीत–कपट, मुनिभेद, पक्षिभेद, (पु०)
हृषित–भूलाहुवा, प्रसन्नहुवा, नम्रहुवा, रोमाचितहुवा, हराहुवा, (त्रि०) ॥ १८९ ॥
क्षारित–झिराहुवा, क्षार, श्रेष्ठ, (त्रि०)

तचतुर्थं ।

अङ्गारित–दग्ध, टेसूकी कलीका उत्पन्न होना, (न०) ॥ १९० ॥
अतिमुक्त–जूहीलता या वासन्ती, तिरिच्छ वृक्ष, सगरहित, (त्रि०)
अत्याहित–जीनेकी इच्छासे कर्म, महाभय, (न०) ॥ १९१ ॥
अधिक्षिप्त–तिरस्कार कियाहुवा, स्थापन कियाहुवा, (त्री०)
अनाहत–पुराना वस्त्र, नवीन वस्त्र, (न०) ॥ १९२ ॥
अनुमति–अपूर्ण, (त्रि०) कलाहीन चंद्रमावाली पूर्णिमा, समति, (सलाहमें सलाह मिलाना) (स्त्री०) ॥
अन्तर्गत–मध्य प्राप्तहुवा, विस्मृत (भूला) हुवा, (त्रि०) ॥ १९३ ॥

भवेदपचितो न्यूने पूजितेप्यभिधेयवत् ।
स्त्रियामपचितिः पूजानिष्कृतिक्षयहानिषु ॥ १९४ ॥
अपावृतस्तु पिहिते स्वतन्त्रे स्यादपावृतः ।
अभिजातस्त्रिषु न्याय्ये कुलीनप्राप्तरूपयोः ॥ १९५ ॥
अभियुक्तस्त्रिषु द्वेषिसंरुद्धेऽप्यतितत्परे ।
अभिनीतो भवेन्न्याय्यसंस्कृतामर्षिषु त्रिषु ॥ १९६ ॥
अभिशस्तिस्तु लोकापवादेयाच्ञाभिशापयोः ।
उदितेऽभ्युदितो यस्मिन्सुप्तेऽर्कः समुदेति च ॥ १९७ ॥
पुमानर्थपतिर्भूपे ईश्वरे किन्नरे त्रिषु ।
ज्ञाते मूढोऽप्यवसितं क्लीबं गत्यवसानयोः ॥ १९८ ॥
क्लीबमाच्छुरितं हास्ये शब्दान्वितनखार्पणे ।
आयुष्मान् योगभेदे ना चिरजीविनि वाच्यवत् ॥ १९९ ॥

---

अपचित–घटा हुआ वस्तु, पूजित, (पुं० )
अपचिति–पूजा, वदला, नाश, हानि, (स्त्री० ) ॥ १९४ ॥
अपावृत–ढकाहुवा, स्वतन्त्र ( थे अ-ख्तयार ) ( त्रि० )
अभिजात–न्याय्य ( योग्य ),कुलीन, रूपवान, ( त्रि० ) ॥ १९५ ॥
अभियुक्त–शत्रुसे रुकाहुवा, अतित-त्पर, ( पुं० )
अभिनीत–न्याय्य ( योग्य ), सस्कार कियाहुवा, क्रोधयुक्त, ( त्रि० ) ॥ १९६ ॥
अभिशस्ति–लोकापवाद, याचना, झूठा कलक, ( स्त्री० )
अभ्युदित–उदयहुवा, जिसके सोते-हुए सूर्य उदय होजाय वह मनुष्य, ( पुं० ) ॥ १९७ ॥
अर्थपति–राजा, ईश्वर, किन्नर, (पु०)
अवसित–जानाहुवा, मोहितहुवा, (त्रि०) गमन, अत, (न०) ॥१९८॥
आच्छुरित–हँसना, शब्दसेयुक्त नख डालना (खाज करना) (न०)
आयुष्मान्–विष्कम्भ आदिकोंमसे एक योग, ( पुं० ) वहुतकाल जी-नेवाला ( त्रि० ) ॥ १९९ ॥

उज्जृम्भितं तु चेष्टायामुत्फुल्ले त्वभिधेयवत् ।
उदास्थितश्चरेध्यक्षे प्रणिधौ द्वारपालके ॥ २०० ॥

उद्ग्राहितमुपन्यस्ते बद्धग्राहितयोरपि ।
उपाकृतो यज्ञहते पशावुपहते त्रिषु ॥ २०१ ॥

भवेदुपचितं दिग्धे समृद्धे च समाहिते ।
उपाहितोऽनलोत्पाते पुमानारोपिते त्रिषु ॥ २०२ ॥

राहौ सोपप्लवे चोपरक्तः स्याद्व्यसनान्तरे ।
उपसत्तिस्तु सेवायां सङ्गेऽपि प्रतिपादने ॥ २०३ ॥

मतमुल्लिखितं तु स्यान्निषूत्कीर्णे तनूकृते ।
ऋष्यप्रोक्ता शतावर्यां शूकशिंव्यां बलामिदि ॥ २०४ ॥

ऐरावतोऽभ्रमातङ्गे नारङ्गे लकुचद्रुमे ।
ऐरावतं मतं दीर्घसरलेन्द्रशरासने ॥ २०५ ॥

---

उज्जृम्भित–चेष्टा, (न०) फूलाहुवा, (त्रि०)

उदास्थित–चर (चचल), अध्यक्ष, गुसबात कहनेवाला, द्वारपाल (पुं०) ॥ २०० ॥

उद्ग्राहित–उपन्यास कियाहुवा, बँधाहुवा, ग्रहण करायाहुवा (त्रि०)

उपाकृत–यज्ञमें वध कियाहुवा पशु, माराहुवा (त्रि०) ॥ २०१ ॥

उपचित–लिपाहुवा, समृद्ध (बढ़ाहुवा), समाधान कियाहुवा, (त्री०)

उपाहित–अग्निसे उत्पात, (पुं०) आरोपण कियाहुवा, (त्रि०) २०२

उपरक्त–राहुसे, उपद्रव (ग्रहण) युक्त चद्रसूर्य, दु खभेद, (पु०)

उपसत्ति–सेवा, सङ्ग, प्रतिपादन, (स्त्री०) ॥ २०३ ॥

उल्लिखित–खोदाहुवा, सूक्ष्म कियाहुवा, (त्रि०)

ऋष्यप्रोक्ता–शतावरी, कौंच, बला (खरैंहटी) भेद, (स्त्री०) २०४

ऐरावत–इंद्र हस्ती, नारगी, बडहरवृक्ष, (पुं०)

ऐरावत–दीर्घ लंबा और सीधा इंद्रका धनुष (न०) ॥ २०५ ॥

स्त्रियामैरावती सौदामनीसौदामनीभिदोः ।
अंशुमान्भास्करे शालपर्ण्यामंशुमती स्त्रियाम् ॥ २०६ ॥
कलधौतं कलारावे क्लीबं कनकरूप्ययोः ।
कुमुद्वती कुमुदिन्यां कुशपत्न्यां कुमुद्वती ॥ २०७ ॥
कुमुद्वान्कुमुदप्रायदेशे स्यादभिधेयवत् ।
क्लीब कुहरितं ध्वाने पिकालापे रतस्वने ॥ २०८ ॥
कृष्णवृन्ता पाटलायां माषपर्ण्यामपि स्मृता ॥ २०९ ॥
मता गन्धवती मद्ये मेदिन्यां च पुरीभिदि ।
अपि योजनगन्धायां गरुत्मांस्तार्क्ष्यपक्षिणोः ॥ २१० ॥
गृहस्थसत्रिणोरर्थाऽऽधाने गृहपतिः पुमान् ।
चक्राहुतिर्दीर्घबाहुभ्रमे पूर्णाहुतावपि ॥ २११ ॥
चन्द्रकान्तो मणेर्भेदे चन्द्रकान्तं तु कैरवे ।
चर्मण्वती नदीभेदे कदलीचारवृक्षयोः ॥ २१२ ॥

---

ऐरावती–विजली, विजलीभेद, ( स्त्री० )
अंशुमान्–सूर्य, ( पु० ) अंशुमती-शालपर्णी ( स्त्री० ) ॥ २०६ ॥
कलधौत–सूक्ष्मशब्द, सुवर्ण, चॉंदी, ( न० )
कुमुद्वती–कमोदनी, औषधिभेद, या कुशराजाकी स्त्री, ( स्त्री० ) २०७
कुमुद्वान्–बहुतकमोदनीवाला स्थल, ( त्रि० )
कुहरित–शब्द, कोयलका बोलना, मैथुनसमयका शब्द, ( न० )२०८
कृष्णवृन्ता–पाडल, माषपर्णी-औषधि, ( स्त्री० ) ॥ २०९ ॥
गन्धवती–मदिरा, पृथ्वी, वरुणकी नगरी, व्यासकी माता, ( स्त्री० )
गरुत्मान्–गरुड, पक्षिमात्र, ( पुं० ) ॥ २१० ॥
गृहपति–गृहस्थ, यज्ञ, द्रव्यका रखना, ( पु० )
चक्राहुति–लंबी भुजाकरके भ्रमणा, पूर्णाहुति ( स्त्री० ) ॥ २११ ॥
चन्द्रकान्त–मणिभेद, ( पुं० )
चन्द्रकान्त–कैरव, ( कमल ) (न०)
चर्मण्वती–नदीभेद, केलावृक्ष, चारवृक्ष, ( चरोंजी ) ( स्त्री० ) ॥ २१२ ॥

आषाढपर्वतस्यान्तः कारुती नाम निम्नगा ।
तस्या मासोपवासिन्यामपि चारुव्रता स्मृता ॥ २१३ ॥
चित्रगुप्तो मतो दण्डधारे तस्य च लेखके ।
दिवाकीर्तिस्तु चाण्डाले नापिते काकवैरिणि ॥ २१४ ॥
दिवाभीत उलूके स्यात्कुत्सिते कुमुदाकरे ।
द्वीपवानब्धिनदयोर्द्वीपवत्यापगाभुवोः ॥ २१५ ॥
धूमकेतुर्बृहद्भानावुत्पातग्रहभेदयोः ।
नदीकान्तो जलनिधौ सिन्धुवारेऽपि हिज्जले ॥ २१६ ॥
नदीकान्ता लताजम्बूकाकजङ्घासु विश्रुता ।
नन्द्यावर्त्तः पुमान्वेश्मप्रभेदे तगरद्रुमे ॥ २१७ ॥
नागदन्तो गजरदे गृहान्निर्गतदारुणि ।
नागदन्ती तु कुम्भायां श्रीहस्तिन्यां च दृश्यते ॥ २१८ ॥

---

चारुव्रता–आषाढ पर्वतके भीतर कारुती नाम जो नदी है वहा एकमासका व्रत करनेवाली स्त्री, (स्त्री०) ॥ २१३ ॥

चित्रगुप्त–धर्मराज, धर्मराजका लेखक, (पु० )

दिवाकीर्ति–चाडाल, नाई, काकवैरी (स्त्री० ) ॥ २१४ ॥

दिवाभीत–उल्लू पक्षी, कुत्सित ( निंदित ), तालाब, ( पुं० )

द्वीपवान्(वत्)–समुद्र, नद, (पुं०)

द्वीपवती–नदी, पृथ्वी, ( स्त्री० ) ॥ २१५ ॥

धूमकेतु–अग्नि, उत्पात, ग्रहभेद, ( पुं० )

नदीकान्त–समुद्र, सिम्हालू वृक्ष, जलवेत ( पु० ) ॥ २१६ ॥

नदीकान्ता–माधवीलता या श्यामालता, जामुन, काकजंघा या घुँघुची, ( स्त्री० )

नन्द्यावर्त–मकानभेद, तगर-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ २१७ ॥

नागदन्त–हाथीदाँत, घरसे बाहिर निकला हुवा काष्ठ, ( पु० )

नागदन्ती–जलकुंभी, हाथीसूँडा, ( स्त्री० ) ॥ २१८ ॥

अस्वाध्याये प्रतिक्षेपे निराकारे निराकृतिः ।
त्रिषु निस्तुषितं त्यक्ते त्वचाशून्ये लघूकृते ॥ २१९ ॥
निष्काशितो निर्गमिते धिक्कतेप्युज्झिते त्रिषु ।
पञ्चगुप्तस्तु चार्वाकदर्शने कमठेऽपि च ॥ २२० ॥
गतासचेष्टिते ज्ञाते लाभे परिगतं मतम् ।
परिघातः समाघाताऽऽयुधयोरथ हायने ॥ २२१ ॥
परिवर्त्तो विनिमये कूर्म्मराजे पलायने ।
दन्ते सप्रसवे लाक्षारक्ते पल्लवितं त्रिषु ॥ २२२ ॥
पारावतः कलरवे शैले मर्कटतिन्दुके ।
पारावती तु गोपालगीतेऽपि लवलीफले ॥ २२३ ॥
पारिजातः पारिभद्रे मन्दारेऽपि च पादपे ।
पाशुपतः पशुपतिदैवते बकपुष्पके ॥ २२४ ॥

---

निराकृति—पाठका नहीं पढना, वर्जना, निकालना ( स्त्री० ).
निस्तुषित—त्यागाहुवा, त्वचाशून्य, छोटा कियाहुवा, (त्रि० ) ॥२१९॥
निष्काशित—निकालाहुवा, धिक्कार कियाहुवा, त्यागाहुवा, ( त्रि० )
पंचगुप्त—चार्वाकोंका शास्त्र, कमठ (कछुवा ) ( पु० ) ॥ २२० ॥
परिगत—गयाहुवा के प्राप्त होनेसे चेष्टित, जानाहुवा, लाभ, (त्रि०)
परिघात—वहुत आघात (चोट), हथियार, वर्ष, ( पु० ) ॥ २२१ ॥
परिवर्त्त—वदला, कूर्मराज, भागना, ( पुं० )
पल्लवित—दियाहुवा, उत्पत्तिवाला, लाखसे रंगाहुवा, (त्रि०) ॥२२२॥
पारावत—कबूतर, पर्वत, मकरतेंदुवा, ( पुं० )
पारावती—गोपालका गीत, हरपारेवडीका फल, ( स्त्री०) ॥ २२३ ॥
पारिजात—नींव-वृक्ष, आक-वृक्ष, कल्प-वृक्ष, ( पुं० )
पाशुपत—महादेव देवता है जिसका वह, अगस्तका पुष्प, ( पुं० )२२४

पुरस्कृतं भवेदग्रकृताभ्यर्चितयोस्त्रिपु ।
शस्ते शिक्ते रिपुग्रस्ते स्वीकृतेऽपि त्रिपु स्मृतम् ॥ २२५ ॥

पुष्पदन्तस्तु दिग्नागनागविद्याधरान्तरे ।
प्रजापतिः क्षितिपतौ विरिंच्ये च प्रजापतिः ॥ २२६ ॥

त्रिपु प्रणिहितं ख्यातं न्यस्ते लब्धे समाहिते ।
भवेत्प्रतिहतो द्विष्टे प्रतिस्खलितरुद्धयोः ॥ २२७ ॥

प्रतिपच्चेतनायां स्यात्प्रतिपत्तावपि स्मृता ।
प्रतिपत्तिः पदप्राप्तिः प्रतिप्राप्तिश्च गौरवे ॥ २२८ ॥

प्रतिपत्तिः प्रबोधेऽपि संवित्प्रागल्भयोरपि ।
प्रतिकृतिः प्रतीकारे प्रतिविम्बे च पूजने ॥ २२९ ॥

प्रतिक्षिप्तं प्रतिहते प्रेषिते च निराकृते ।
प्रधूपितस्त्रिपु क्लिष्टे सूर्यगम्यदिशि स्त्रियाम् ॥ २३० ॥

---

पुरस्कृत–आगेकियाहुवा, पूजाकिया हुवा, (त्रि०) श्रेष्ठ, सींचाहुवा, शत्रुका ग्रसाहुवा, अंगीकारकियाहुवा, (त्रि०) ॥ २२५ ॥

पुष्पदंत–दिग्हस्ती, एक नाग, एक विद्याधर, (पुं०)

प्रजापति–राजा, ब्रह्मा, (पुं०) ॥ २२६ ॥

प्रणिहित–स्थापनकियाहुवा, प्राप्तहुवा, सावधानहुवा, (त्रि०)

प्रतिहत–द्वेषकियाहुवा, आखलाहुवा, रुकाहुवा, (त्रि०) ॥ २२७ ॥

प्रतिपत्–वुद्धि, प्रतिपत्ति (प्रगल्भताआदि) (स्त्री०)

प्रतिपत्ति–पदप्राप्ति, प्रतिप्राप्ति, गौरव (बडप्पन) (स्त्री०)॥२२८॥

प्रतिपत्ति–ज्ञान, वुद्धि, प्रगल्भता (निःशंकपना) (स्त्री०)

प्रतिकृति–दूरकरना या इलाज, मूर्त्ति, पूजन, (स्त्री०) ॥ २२९ ॥

प्रतिक्षिप्त–रोकाहुवाआदि, प्रेराहुवा (भेजाहुवा), निकालाहुवा, (त्रि०)

प्रधूपित–क्लेशदियाहुवा, (त्रि०) सूर्यकेजानेवाली दिशा, (स्त्री०) ॥ २३० ॥

प्रव्रजिता तु मुण्डीरीमांस्योस्त्रिपु तपस्विनि ।
भगवान्सुगते पूज्ये त्रिपु गौर्यां तु योषिति ॥ २३१ ॥
भोगवान्नाट्यगानयोर्भोगवानहिभोगिनोः ।
मता भोगवती नागपुरि नागसरित्यपि ॥ २३२ ॥
रङ्गमाता तु लाक्षाया कुट्टिन्यामपि दृश्यते ।
लक्ष्मीपतिर्नृपे विष्णौ पूगीफललवङ्गयोः ॥ २३३ ॥
वनस्पतिर्विना पुष्पं फलिवृक्षेऽपि पादपे ।
विजृम्भितं विकसितेऽप्युद्गते वेष्टिते त्रिपु ॥ २३४ ॥
विनिपातस्तु दैवादिव्यसने पतनेऽपि च ।
विवस्वांस्तु पुमान्वासरेश्वरे त्रिदिवेश्वरे ॥ २३५ ॥
विवक्षितं वक्तुमिष्टे शोभनेऽपि विवक्षितम् ।
वैजयन्तो ध्वजे शक्रप्रासादे शरजन्मनि ॥ २३६ ॥

---

प्रव्रजिता—गोरखमुंडी, जटामासी, ( स्त्री० ) तपस्वी ( पुं० )
भगवा ( न् )त्—बुद्धदेव, ( पुं० ) पूज्य ( त्रि० )
भगवती—गौरी, ( स्त्री० ) ॥२३१ ॥
भोगवान्—नाट्य, गाना, सर्प, भोगी-पुरुष ( पुं० )
भोगवती—नागपुरी, नागनदी,(स्त्री०) ॥ २३२ ॥
रंगमाता—लाख, कुट्टिनी, ( स्त्री० )
लक्ष्मीपति—राजा, विष्णु, सुपारी, लौंग, ( पुं० ) ॥ २३३ ॥
वनस्पति—पुष्पोंके विना फलनेवाला वृक्ष, वृक्षमात्र, ( पुं० )
विजृंभित—खिलाहुवा, उछलाहुवा, लपेटाहुवा, (त्रि०) ॥ २३४ ॥
विनिपात—दैवआदिसे दुःख, पडना, ( पुं० )
विवस्वान्—सूर्य, इंद्र, (पुं०)॥२३५॥
विवक्षित—कहनेको इच्छित, सुंदर, ( त्रि० )
वैजयन्त—ध्वजा, इंद्रका महल, स्वामिकार्त्तिक, (पुं०) ॥ २३६ ॥

वैजयन्ती पताकायां जयन्ती वह्निमन्थयोः ।
व्यतीपातो योगभेदे महोत्पातेऽपमानने ॥ २३७ ॥
मतः शतधृतिः पाकशासने कमलासने ।
शुभ्रदन्ती मरुद्दन्ती दन्तिनीसुंदरस्त्रियोः ॥ २३८ ॥
संख्यावान्पण्डिते पुंसि त्रिपु सङ्ख्यायुते मृते ।
सदागतिर्गन्धवाहे निर्वाणेऽपि सदीश्वरे ॥ २३९ ॥
समुद्रान्ता त्वनन्तायां कार्पासीपृक्कयोरपि ।
समुद्धतः समुत्कीर्णेऽप्यविनीते समुद्धतः ॥ २४० ॥
समाघातो वधे युद्धे समाधिस्थे समाहितः ।
त्रिपु न्यस्तप्रतिज्ञातससिद्धे यम आत्मनि ॥ २४१ ॥
समाहितं समाधाने व्यसनेऽपि समाहितम् ।
सरस्वान्रसिके सिन्धौ नदेऽप्यथ सरस्वती ॥ २४२ ॥

---

**वैजयन्ती**–इन्द्रके महलकी पताका, जैतपुष्पवृक्ष, अरडों-वृक्ष (स्त्री०)

**व्यतीपात**–विष्कंभआदियोगोंमेंसे एकयोग, महाउत्पात, अपमान(पु०) ॥ २३७ ॥

**शतधृति**–इन्द्र, ब्रह्मा, (पु० )

**शुभ्रदन्ती**–वायव्यकोणके हस्तीकी हस्तिनी, सुंदर दाँतोंवाली स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ २३८ ॥

**संख्यावान्(वत्)**–पंडित, ( पुं० ) संख्यावाला, मृतक, (त्रि० )

**सदागति**–वायु,मुनि या अग्नि, श्रेष्ठ, ईश्वर, ( पुं० ) ॥ २३९ ॥

**समुद्रान्ता**–जवाँसा, कपास-वृक्ष, शाकविशेष ( असवरग ) (स्त्री०)

**समुद्धत**–पिछोडाहुवा, उद्धत ( अनाडी ) पुरुष, ( पु० ) ॥२४०॥

**समाघात**–मारना, युद्ध, (पुं०)

**समाहित**–समाधिमें स्थित, स्थापनकियाहुवा, प्रतिज्ञाकियाहुवा, अच्छेप्रकारसे सिद्ध, धर्मराज, आत्मा, ( त्रि० ) २४१

**समाहित**–समाधान, स्थापनकरना, (न०)

**सरस्वान्(वत्)**–रसिक, समुद्र, नद, ( पु० )

**सरस्वती**–॥ २४२ ॥

नदीभेदे नदीदिव्यस्त्रीगोवाग्देवतागिरि ।
सुधासूतिः पुमान्यज्ञे कुरङ्गतिलकेऽपि च ॥ २४३ ॥
सूर्यभक्तो मतो बन्धुजीवे भास्करदैवते ।
सेनापतिरनीकाधिकृते हैमवतीसुते ॥ २४४ ॥
हिमारातिः खले सूर्येऽनले हैमवती तु या ।
गौर्यां हरीतकीस्वर्णक्षीरीश्वेतवचासु सा ॥ २४५ ॥

तपंचमम् ।

स्यादध्यवसितं ज्ञाते गते क्रुद्धेऽपि वेष्टिते ।
पुंसि श्रीकण्ठवैकुण्ठयज्ञभेदेऽपराजितः ॥ २४६ ॥
जयन्ती पार्वतीविष्णुक्रान्तासु त्वपराजिता ।
वाच्यलिङ्ग· पिपतिषन्पतनेच्छौ खगे पुमान् ॥ २४७ ॥
दृष्टेऽवलोकितं ख्यातं लोकनाथेऽवलोकितः ।
उपधूपित आसन्नमरणे परिधूपिते ॥ २४८ ॥

---

सरस्वती नाम नदी, दिव्यस्त्री, गौ, वाणीकी अधिष्ठात्री देवता, वाणी ( स्त्री० )

सुधासूति–यज्ञ, मृगका तिलक,(पुं०) ॥ २४३ ॥

सूर्यभक्त–दुपहरियाका-झाड, सूर्यका उपासक, ( पु० )

सेनापति–सेनाका स्वामी, स्वामिकार्तिक, (पुं०) ॥ २४४ ॥

हिमाराति–खल ( खोटा ), सूर्य, अग्नि, ( पु० )

हैमवती–पार्वती, हरड, एकप्रकारकी कटेहली, सफेद वच ( स्त्री० ) ॥ २४५ ॥

तपंचम ।

अध्यवसित–जानाहुवा, गयाहुवा, क्रुद्धहुवा, लपेटाहुवा ( त्रि० )

अपराजित–महादेव, विष्णु, यज्ञभेद, ( पुं० ) ॥ २४६ ॥

अपराजिता–देवीभेद, पार्वती, कोयल या विष्णुक्रान्ता, ( स्त्री० )

पिपतिष(त्)न्–पड़नेकी इच्छावाला, (त्रि०) पक्षी, (पुं०) ॥२४७॥

अवलोकित–देखाहुवा, ( त्रि० ) लोकनाथ ( स्वामी ) ( पु० )

उपधूपित–नजदीकमृत्युवाला, धूपदियाहुवा ( पुं० ) ॥ २४८ ॥

गणाधिपतिरित्येष पिनाकिनि विनायके ।
श्वेतायामप्यसौ वाच्यलिङ्गस्तु स्यादनिर्जिते ॥ २४९ ॥
सर्वमुक्तेऽभिनिर्मुक्तः सुप्ते यत्रास्तगो रविः ।
पृथिवीपतिरित्युक्तो भूपाले ऋषभौषधे ॥ २५० ॥
मूर्धाभिषिक्तः क्ष्मापाले मन्त्रिणि क्षत्रियेऽपि च ।
यादसांपतिरम्भोधौ वरुणे यादसांपतिः ॥ २५१ ॥
वसन्तदूतश्चूतेऽसौ पिकपञ्चमरागयोः ।
वसन्तदूतीशब्दस्तु पाटलावतिमुक्तके ॥ २५२ ॥

तषष्ठम् ।

अर्द्धपारावतश्चित्रकण्ठे च तित्तिरावपि ।
समुद्रनवनीतं स्यादमृते च सुधानिधौ ॥ २५३ ॥

इति विश्वलोचने तान्तवर्गः ॥

---

गणाधिपति–महादेव, गणेश, कटेहली ( पुं० ) नही जीताहुवा, ( त्रि० ) ॥ २४९ ॥
अभिनिर्मुक्त–सर्वसे छुटा, जिसके सूतेहुए सूर्य अस्त होजाय वह, ( पुं० )
पृथिवीपति–राजा, ऋषभनाम औषधि, ( पु० ) ॥ २५० ॥
मूर्धाभिषिक्त–राजा, मंत्री, क्षत्रिय, ( पुं० )
यादसांपति–समुद्र, वरुण, ( पुं० ) ॥ २५१ ॥
वसन्तदूत–आम्र, कोयल, पंचमराग, ( पुं० )
वसन्तदूती–पाढलपुष्प, माधवी-पुष्पलता, ( स्त्री० ) ॥ २५२ ॥

तषष्ठ ।

अर्धपारावत–चित्रकंठ ( आधा कबूतरके समान-पक्षी ) तीतर-पक्षी-
समुद्रनवनीत–अमृत, चन्द्रमा, ( न० ) ॥ २५३ ॥
इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामे तान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ थान्तवर्गः ।

थैकम् ।

थः स्याच्छिलोच्चये भीतत्राणे थं मङ्गलेऽपि थम् ।

थद्वितीयम् ।

अर्थः प्रयोजने चित्ते हेत्वभिप्रायवस्तुषु ॥ १ ॥
शब्दाभिधेये विषये स्यान्निवृत्तिप्रकारयोः ॥ २ ॥
आस्था त्वालम्बनापेक्षायत्नास्थानेषु दृश्यते ।
कन्था तु मृत्तिकाभित्तौ कन्था प्रावरणान्तरे ॥ ३ ॥
कुथः स्त्रीपुंसयोर्वर्णकम्बले पुंसि बर्हिषु ।
कोथस्तु नेत्ररुग्भेदे मथने शटितेऽपि च ॥ ४ ॥
क्राथः स्याद्व्यसने पुंसि द्रवनिष्पाकदुःखयोः ।
गाथा वृत्तेऽपि वाग्भेदे ग्रन्थस्तु धनशास्त्रयोः ॥ ५ ॥
ग्रन्थः स्याद्ग्रन्थनायां च द्वात्रिंशद्वर्णनिर्म्मितौ ।
ग्रन्थिर्ना पर्वणि ग्रन्थिपर्णेरुग्भिदि च स्त्रियाम् ॥ ६ ॥

---

अथ थान्तवर्ग ।

थैक ।

थ–पर्वत (पुं०) भयसे रक्षा, मंगल, ( न० )

थद्वितीय ।

अर्थ–प्रयोजन (मतलब),चित्त, कारण, अभिप्राय, वस्तु, ॥ १ ॥ शब्दोंका अर्थ, विषय, निवृत्ति, प्रकार (पुं०) ॥ २ ॥

आस्था–आलम्बन ( आश्रय ), अपेक्षा, यत्न, स्थान, ( स्त्री० )

कन्था–मृत्तिकाकी भीत, ओढनेका वस्त्र ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

कुथ–वर्ण (रंग), कम्बल (स्त्री०पु०) मयूर ( पुं० )

कोथ–नेत्ररोगका भेद, मथना, दुःख ( पु० ) ॥ ४ ॥

क्राथ–व्यसन, पतली निष्पाव, दुःख, ( पु० )

गाथा–छंद–भेद, वाणीभेद, ( स्त्री० )

ग्रन्थ–धन, शास्त्र, ॥ ५ ॥ ग्रंथना ( गूँथना ), बत्तीस ३२ वर्णोंकी रचना, ( पुं० )

ग्रंथि–पोरी, ( पुं० ) गठिवन-वृक्ष, रोगभेद, ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥

कौटिल्ये बन्धभेदे च तीर्थं शास्त्रावतारयोः ।
पुण्यक्षेत्रमहापात्रोपायोपाध्यायदर्शने ॥ ७ ॥
ऋषिजुष्टे जले यज्ञे जातौ च वनितार्त्तवे ।
नीलीसूक्ष्मैलयोस्तुत्था तुत्थोऽग्नौ तुत्थमञ्जने ॥ ८ ॥
दुःस्थस्तु दुर्गते मूर्खे पार्थः स्यात्ककुभेऽर्जुने ।
पाथो दिवाकरे पुंसि पाथः पयसि न द्वयोः ॥ ९ ॥
पृथुर्नृपे कृष्णजीरे वाप्यां स्त्री महति त्रिषु ।
सानौ मानेऽस्त्रियां प्रस्थः स्यादप्युन्मितवस्तुनि ॥ १० ॥
प्रोथः पान्थेऽश्वघोणायामस्त्री ना कटिगर्भयोः ।
वीथी गृहतटीपङ्क्तौ नाट्यरूपकवर्त्मनोः ॥ ११ ॥
मन्थो मन्थानदण्डे स्याद्धादशात्मनि सक्तवे ।
मन्थो नयनरोगेऽपि यूथं तिर्यक्चये चये ॥ १२ ॥

---

तीर्थ–कुटिलता, बन्धभेद, शास्त्र, अवतार, पुण्यक्षेत्र, बडा पात्र, उपाय, पढानेवाला, दर्शन, ॥ ७ ॥ ऋषियोंका सेवित जल, यज्ञ, जाति, स्त्रीका रज, ( न० )

तुत्था–नीली-औषधि, छोटी इलायची, (स्त्री० ) तुत्थ–अग्नि (पुं०)

तुत्थ–अजन ( न० ) ॥ ८ ॥

दुःस्थ–दु.खसे गयाहुवा, मूर्ख, (पु०)

पार्थ–कोह–वृक्ष, अर्जुन-पांडुपुत्र, ( पुं० )

पाथ–सूर्य, ( पुं० ) पाथस्–जल, ( न० ) ॥ ९ ॥

पृथु–पृथु–राजा, कालाजीरा, (पुं०) बावडी ( स्त्री० ) महान् ( बडा ) ( त्रि० )

प्रस्थ–पर्वतकी समभूमि, ६४ तोला प्रमाण, ( पुं० न० ) उन्मान करीहुई वस्तु ( त्रि० ) ॥ १० ॥

प्रोथ–बटाऊ ( पु० ) अश्वकी नासिका, ( पुं० न० ) कटि, गर्भ, ( पु० )

वीथी–घरका अग, पंक्ति, नाट्यका रूपक, मार्ग, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

मन्थ–दधिआदि मथनका दंड (रई), सूर्य, सक्तु विकार या समूह, नेत्ररोग, ( पु० )

यूथ–सजातीय तिर्यक् जातियोंका समूह, समूहमात्र ( पुं० न० ) ॥ १२ ॥

अस्त्री यूथी तु मागध्यां पुष्पभेदे कुरण्टके ।
रथस्तु स्यन्दने काये वेतसे चरणेऽपि च ॥ १३ ॥
सार्थः स्याद्वणिजां वृन्दे वृन्दमात्रेऽपि दृश्यते ।
सिक्थं नील्यां मधूच्छिष्टे सिक्थो नौदनसम्भवे ॥ १४ ॥
संस्था नाशे व्यवस्थायां व्यक्तिसादृश्ययोः स्थितौ ।
संस्था क्रतौ समाप्तौ च चरे च निजराष्ट्रगे ॥ १५ ॥

थतृतीयम् ।

अतिथिः स्यात्प्राघुणके कोपेपि कुशपुत्रके ।
त्रिष्वव्यथो व्यथाहीने पथ्यायां पन्नगेऽव्यथः ॥ १६ ॥
अश्वत्थः पूर्णिमायां च गर्दभाण्डे च पिप्पले ।
उद्रथस्ताम्रचूडेऽपि महेन्द्रे महकामुके ॥ १७ ॥
उन्माथः कूटयन्त्रे स्यादपि मारणघातयोः ।
उपस्थस्तु भगे लिङ्गेऽप्युत्सङ्गेऽपि गुदे पुमान् ॥ १८ ॥

---

यूथी—पीपल, जूही-पुष्पवृक्ष, पीली-कटसैरया ( स्त्री० )

रथ—रथ, शरीर, वेतस-वृक्ष, पावँ ( पुं० ) ॥ १३ ॥

सार्थ—वणिकोंका समूह, समूहमात्र, ( पुं० )

सिक्थ—नीलका पेड, मोंम, ( न० ) ॥ १४ ॥

संस्था—नाश, व्यवस्था, व्यक्ति (पृथक्शरीर ), सादृश्य ( तुल्यता ), स्थिति, यज्ञभेद, समाप्ति, अपने राज्यमें प्राप्तहुवा जासूस ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥

थतृतीय ।

अतिथि—अभ्यागत, क्रोध, कुशका पुत्र ( पुं० )

अव्यथ—व्यथाहीन, हरड, सर्प (त्रि०) ॥ १६ ॥

अश्वत्थ—पूर्णिमातिथि, ( स्त्री० ) ( अश्वत्थ ) पारस पीपल, पीपल, ( पुं० ) ॥ १७ ॥

उद्रथ—ताम्रचूड ( मुरगा ), उरलू-पक्षी, श्वान ( पु० )

उन्माथ—कूटयंत्र, मारना, घात करना, ( पुं० )

उपस्थ—भग ( स्त्रीकी योनि ), लिंग, गोद, गुद, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

कायस्थस्तु नृणां जातिप्रभेदे परमात्मनि ।
कायस्था स्याद्वयस्थायां पथ्यायां कायगे त्रिपु ॥ १९ ॥
गोग्रन्थिस्तु करीषे स्याद्गोष्ठे गोजिह्विकौषधौ ।
दमथस्तु दमे दण्डे निर्ग्रन्थः क्षपणेऽधने ॥ २० ॥
वालिशेऽपि निशीथस्तु निशामात्रार्द्धरात्रयोः ।
प्रमथः शङ्करगणे पथ्यायां प्रमथा तथा ॥ २१ ॥
वयःस्था शाल्मलीपथ्याकाकोल्यामलकीपु च ।
ब्राह्मीत्रुटिगुडूचीपु वयस्थस्तरुणे त्रिपु ॥ २२ ॥
मन्मथः कामचिन्तायां कामदेवकपित्थयोः ।
वमथुः पुंसि वमने मातङ्गकरशीकरे ॥ २३ ॥
वरूथो रथगुप्तौ ना वरूथं चर्मवेश्मनि ।
विदथो योगिकृतिनोः शमथः शान्त्यमात्ययोः ॥ २४ ॥

---

कायस्थ–मनुष्योंकी जातिका भेद ( कायथ ), परमात्मा, ( पुं )
कायस्था–जवान उम्रमें स्थित स्त्री, हरड, ( स्त्री० ) शरीरमें स्थित ( त्रि० ) ॥ १९ ॥
गोग्रन्थि–आरना, गौवोंका ठान, गोभी या गावजवी-औषधि, ( पुं० स्त्री० )
दमथ–इंद्रियोंका रोकना, दण्ड, (पुं०)
निर्ग्रन्थ–मुनि, निर्धन, ॥ २० ॥ मूर्ख, ( पुं० )
निशीथ–रात्रिमात्र, अर्द्धरात्र, (पुं०)
प्रमथ–महादेवके गण, ( पुं० ) प्रमथा, ( हरड ) स्त्री० ) ॥ २१ ॥
वयःस्था–सेमलका–वृक्ष, हरड, काकोली, आँवला, ब्राह्मी, छोटी इलायची, गिलोय, ( स्त्री० ) वयःस्थ-जवान, ( त्रि० ) ॥ २२ ॥
मन्मथ–कामचिन्ता, कामदेव, कैथका-वृक्ष, ( पुं० )
वमथु–वमन, हस्तीकी सूंडके जलकण, ( पुं० ), ॥ २३ ॥
वरूथ–रथकी रक्षाके लिये लोहादिमयपरदा, ( पुं० ) चर्मका डेरा ( तंबू ) ( न० )
विदथ–योगी, पंडित, ( पुं० )
शमथ–शान्ति, मत्री, ( पुं० ) ॥२४॥

पङ्ग्रन्था तु वचाशट्योः पङ्ग्रन्थः करञ्जान्तरे ।
समर्थस्तूद्भटे शक्ते सम्बद्धार्थे हिते त्रिषु ॥ २५ ॥
सर्वार्थसिद्धे सिद्धार्थः सिद्धार्था सितसर्षपे ।
क्षवथुः पुंसि कासे स्याच्छिक्कायामपि सम्मतः ॥ २६ ॥

थचतुर्थम् ।

अनीकस्थो रणखले चिह्नेषु भटमर्दने ।
राजरक्षिषु मातङ्गशिक्षणातिविचक्षणे ॥ २७ ॥
भवेदितिकथा ग्राम्यकथामनष्टधर्म्मयोः ।
वाच्यवद्दशमीस्थः स्यात्स्थविरक्षीणरागयोः ॥ २८ ॥
वानप्रस्थो मधुष्ठीले तृतीयाश्रमिकिंशुके ।

थपंचमम् ।

भटे पुंस्यप्रतिरथं यात्रायां साम्नि मङ्गले ॥ २९ ॥

इति विश्वलोचने थान्तवर्गः ॥

---

पङ्ग्रन्था—वच, कचूर, ( स्त्री० ) पङ्ग्रन्थ, करञ्जुवाभेद, ( पुं० )
समर्थ—उद्भट, शक्तिमान्, सम्बद्ध अर्थ, हितकारी, ( त्रि० ) ॥ २५॥
सिद्धार्थ—बुद्धदेव, (पु०) सिद्धार्था-सफेद-सिरसों, ( स्त्री० )
क्षवथु—खाँसी, छींक, ( पुं० ) ॥२६॥

थचतुर्थ ।

अनीकस्थ—रणभूमि, चिह्न, योद्धाका मर्दन, राजाकी रक्षा करनेवाला, हस्तीकी शिक्षामें निपुण, ( पुं० ) ॥ २७ ॥
इतिकथा—व्यर्थभापण, नष्टधर्म, ( स्त्री० )
दशमीस्थ—बुड्ढा, राग ( स्नेह ) रहित, ( पु० ) ॥ २८ ॥
वानप्रस्थ—महुवा, तीसरा आश्रम, के ( टे ) सू, ( पुं० )

थपंचम ।

अप्रतिरथ—योद्धा, ( पुं० ) यात्रा, सामवेद, मगल, ( न० ) ॥२९॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भापाटीकामें थान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ दान्तवर्गः ।

### दैकम् ।

दः शुद्धौ देवने दास्तु दातरि च्छेददानयोः ॥ १ ॥

### दद्वितीयम् ।

अन्दुः स्त्रियामलङ्कारे वेदबंधनवस्तुनोः ।
अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके पर्वतान्तरे ॥ २ ॥
कन्दोऽस्त्री शूरणे वृक्षमूले पुंसि पयोधरे ।
कुन्दो माघ्ये पुमांश्चक्रे भ्रमौ निधिसुरद्विषोः ॥ ३ ॥
विष्णुभ्रातरि रोगे च मतः शस्त्रान्तरे गदा ।
छदः पत्रे पतत्रे च ग्रन्थिपर्णतमालयोः ॥ ४ ॥
छन्दोऽभिप्रायवशयोर्धीदा कन्यामनीषयोः ।
नदी सरित्यपि नदः सिन्धौ शोणाविनादयोः ॥ ५ ॥

---

अथ दान्तवर्ग ।

दैक ।

द-शुद्धि, क्रीडा, ( पु० )

दा-दाता, छेदन, दान, ( पुं० )॥१॥

दद्वितीय ।

अंदु-आभूषण, वेद, बेडी ( स्त्री० )

अब्द-संवत्सर, मेघ, नागरमोथा, पर्वतभेद, ( पु० ) ॥ २ ॥

कन्द-जमीकंद, वृक्षकी जड, ( पुं० न० ) नागरमोथा या मेघ (पुं०)

कुन्द-कुन्द पुष्पवृक्ष, चक्र, भ्रमणा, निधिभेद, एक राक्षस, ( पुं० ) ॥ ३ ॥

गद-विष्णुका भ्राता, रोग, ( पुं० )

गदा-शास्त्रभेद, ( स्त्री० )

छद-पत्ता, पक्षीकी पर, गठिवन औषधि, तमाल-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ४ ॥

छंद-अभिप्राय, वश, ( पुं० )

धीदा-कन्या, बुद्धि, (स्त्री०) ॥ ५ ॥

नदी-नदी, ( स्त्री० ) नद-सिंधु, शोण-नद, भेडीका शब्द ( पुं० )

नन्दिः शिवप्रतीहारे द्यूतभाण्डभिदोर्मुदि ।
नन्दा मणिकसम्पत्त्योर्निन्दा कुत्साऽपवादयोः ॥ ६ ॥
पदं वाक्ये प्रतिष्ठायां व्यवसायाऽपदेशयोः ।
पादातच्चिह्नयोः शब्दे स्थानत्राणाङ्घ्रिवस्तुषु ॥ ७ ॥
पादोऽस्त्री चरणे मूले तुरीयांशेऽपि दीधितौ ।
शैलप्रत्यन्तशैले ना त्रिदा ज्ञाने मतावपि ॥ ८ ॥
त्रिन्दुः स्याद्दन्तदशने शुक्रे वेदितृविप्रुषोः ।
वेदिरङ्गुलिमुद्रायां बुधे संस्कृतभूतले ॥ ९ ॥
भन्दं(द्रं) शर्म्मणि कल्याणे भेदो द्वैधविशेषयोः ।
विदारणे चोपजापे संपूर्वः सिन्धुसङ्गमे ॥ १० ॥
मदो मृगमदे मद्ये दानमुद्गर्वरेतसि ।
महापूर्वो मतङ्गे स्यान्मदी कृषकवस्तुनि ॥ ११ ॥

---

नन्दि–शिवका पौलिया, जूत्रा, भाड ( पात्र ) भेद, आनद, ( पुं०न० )
नन्दा–बडा घडा, सम्पत्ति, ( स्त्री० )
निन्दा–कुत्सा ( निंदा ), अपवाद ( बुरा कहना ) ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥
पद–वाक्य, प्रतिष्ठा, व्यवसाय ( उद्यम ), मिस, पाँव, पैड, शब्द, स्थान, रक्षा, वस्त्र, ( न० ) ॥७॥
पाद–चरण ( पाँव ), वृक्षकी जड, चौथा हिस्सा, किरण, पर्वत, पर्वतके समीप छोटा पर्वत, ( पुं० )
त्रिदा–ज्ञान, बुद्धि, ( स्त्री० ) ॥ ८ ॥
त्रिन्दु–दाँतसे कियाहुवा घाव, वीर्य, जाननेवाला, ( त्रि० ) जल आदिकी बूँद ( पु० )
वेदि–अँगूठी, पंडित, सस्कार कीहुई पृथ्वी, (पु० स्त्री० ) ॥ ९ ॥
भन्द (द्र)–सुख, कल्याण, ( न० )
भेद–द्विधाभाव, विशेष, फाडना, पुरुषोंके मेलको फोडना, ( पु० )
संभेद–समुद्र या नदियोंका मिलना, ( पुं० ) ॥ १० ॥
मद–कस्तूरी, मदिरा, हस्तीके मदसे झिरनेका जल, हर्ष, गर्व, वीर्य, (पुं०)
महामद–हस्ती, ( पुं० ) मदी–खेती करनेवालेकी वस्तु ( स्त्री० ) ॥११॥

मन्दः स्वैरे खले मन्दरते मूर्खाल्परोगिषु ।
अभाग्येऽपि त्रिषु पुमान् गजजात्यन्तरे शनौ ॥ १२ ॥

मृदुतीक्ष्णे त्रिषु श्लक्ष्णे रदो दन्ते विलेखने ।
शादस्तु कर्दमे शष्पे सूदः स्याद्व्यञ्जने गुणे ॥ १३ ॥

स्वादुर्मिष्टे मनोज्ञे च स्वेदः खेदनघर्म्मयोः ।
हृच्चित्तबुक्कयोः क्लीबं क्षोदश्चूर्णेऽपि पेषणे ॥ १४ ॥

दतृतीयम् ।

अङ्गदो वालिपुत्रे स्यात्केयूरे त्वङ्गदं मतम् ।
भवेद्दक्षिणदिग्दन्तीदन्तिन्या तु मताऽङ्गदा ॥ १५ ॥

अर्बी सङ्ख्यान्तरे मांसकीले शैलेऽपि नाऽर्बुदः ।
अर्द्धेन्दुरर्द्धचन्द्रे स्याद्गलहस्तनखाङ्कयोः ॥ १६ ॥

---

मंद्–यथेच्छ, खोटा, मंद स्त्रीसंग, मूर्ख, अल्प, रोगी, भाग्यहीन (त्रि०) हस्ती-भेद, शनैश्चर ( पुं० ) ॥ १२ ॥
मृदु–कोमल, सुंदर, ( त्रि० )
रद्–दाँत, काटना, ( पु० )
शाद्–कींच, छोटी घास आदि, (पुं०)
सूद्–व्यंजन ( तरकारी ), रसोइया, ( पुं० ) ॥ १३ ॥
स्वादु–रुचिकारी भोजन, सुंदर,(त्रि०)
स्वेद्–पसीना, धूप, ( पु० )
हृत्–चित्त, हृदयमें कमलाकार मास, ( न० )
क्षोद्–चूर्ण, पीसना, ( पुं० ) ॥१४॥

दतृतीय ।

अंगद्–वालिका पुत्र, ( पुं० ) बाजूबंद, ( न०) दक्षिणदिशाका हस्ती, ( पुं० )
अंगदा–दक्षिणदिक्हस्तीकी हस्तिनी ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥
अर्बुद्–संख्या ( अरब ), मांसकील, ( पुं० न० ) एक पर्वत, ( पुं० )
अर्द्धेन्दु–आधाचद्रमा, गलहस्त (ग्रीवापर हाथ देकर निकालना ), नखों करके शरीरपर चिह्न (पु)० ॥१६॥

अर्द्धेन्दुः स्यादतिप्रौढस्त्रीगुह्याङ्गुलियोजने ।
आक्रन्दो दारुणरणे मित्रे तातारिरोदने ॥ १७ ॥
पार्ष्णिग्राहात्परो राजा यस्तस्मिन्नारदेऽपि च ।
सुगन्धिमुदि वामोद आस्पदं पदकृत्ययोः ॥ १८ ॥
स्त्री ककुत् ककुदोऽप्यस्त्री वृषाङ्गे राजलक्ष्मणि ।
शृङ्गे श्रेष्ठे कपर्दस्तु वटे शम्भुजटाटयोः ॥ १९ ॥
कर्कन्दुः साक्षरे शाके वारिजाले गुदामये ।
उत्क्षिप्तिकायां कर्णान्दुः कर्णपाल्यामपि स्त्रियाम् ॥ २० ॥
कामदा धेनुकायां स्याद्वाच्यवत्कामदोग्धरि ।
कुमुदो नागदिङ्नागदैत्यान्तरवनौकसि ॥ २१ ॥
कुमुदं कैरवे क्लीवं कृपणे कुमुदन्यवत् ।
कुसीदिके कुसीदः स्यात्कुसीदं वृद्धिजीवने ॥ २२ ॥

---

अति जवान स्त्रीकी योनिमें अगुलि डालना, ( पुं० )
आक्रन्द—भयंकर रण, मित्र, भ्राता, शत्रुका रोना ॥ १७ ॥ अपने पासके राजदबानेवाले राजासे अन्य राजा, नारद, ( पुं० )
आमोद—सुगन्धि, हर्ष, ( पुं० )
आस्पद—पद, कृत्य, ( न० ) ॥१८॥
ककुत् ककुद—( स्त्री० ) वृषकी थूह, राजचिह्न ( ध्वजाआदि ), शृंग, श्रेष्ठ, ( पुं० न० )
कपर्द—वट-वृक्ष, महादेवकी जटा, ( पुं० ) ॥ १९ ॥
कर्कन्दु—साक्षर, शाकभेद, कमल, गुदरोग, ( पु० )
कर्णान्दु—उत्क्षिप्तिका ( कर्णभूषणमात्र ), कर्णपाली ( कानकी वाली ) ( स्त्री० ) ॥ २० ॥
कामदा—गौ, ( स्त्री० ) यथेच्छ देनेवाला, ( त्रि० )
कुमुद—नाग, दिग्हस्ती, दैत्यभेद, वनमें रहनेवाला, ( पुं० ) ॥२१॥
कुमुद—कमोदनी, ( न० )
कुमुत्—कृपण, ( त्रि० )
कुसीद—ब्याज लेनेवाला ( पुं० ) वृद्धिजीवन ( ब्याज ) (न०)॥२२॥

कौमुदः कार्तिके ज्योत्स्नापर्वणोरपि कौमुदी ।
क्रव्यात्क्रव्यादवत्पुंसि मांसभक्षकरक्षसोः ॥ २३ ॥
गोविन्द इन्द्रावरजे गवाध्यक्षे च गीष्पतौ ।
गोष्पदं गोपदश्वभ्रे गवां च गतिगोचरे ॥ २४ ॥
बलाहकोऽपि जलदो जलदो मुस्तकेऽपि च ।
जीवदो द्विषि वैद्ये च तरत्कारण्डवे प्लवे ॥ २५ ॥
तोयदो मुस्तके मेघे तोयदं तु घृतं मतम् ।
दरञ्चये प्रपातेऽद्रौ दायादो ज्ञातिपुत्रयोः ॥ २६ ॥
दारदः पारदे सिन्धौ हिङ्गुले गरलान्तरे ।
दृषत्पेषणपाषाणपट्टपाषाणयोः स्त्रियाम् ॥ २७ ॥
धनदो दातरि श्रीदे क्रीडामात्ये तु नर्म्मदः ।
नर्मदा नर्मदायिन्यां रेवायामपि नर्मदा ॥ २८ ॥

---

कौमुद्–कार्त्तिक-मास, ( पुं० )
कौमुदी–चाँदका चाँदना, पर्व, (स्त्री०)
क्रव्यात्–क्रव्याद्–मासभक्षी, राक्षस, ( पुं० ) ॥ २३ ॥
गोविन्द्–श्रीकृष्ण, गौवोंका स्वामी, वृहस्पति ( पुं० )
गोष्पद्–गौकी पैंड, गौवोंकी गति आदि (न०) ॥ २४ ॥
जलद्–मेघ, नागरमोथा, ( पुं० )
जीवद्–शत्रु, वैद्य, (पुं० )
तरद्–करडुवा पक्षी, पुंडेरी-पक्षी ( पुं० ) ॥ २५ ॥
तोयद्–नागरमोथा, मेघ, ( पुं० ) घृत, (न० )
दरद्–भय, पर्वतमे गिरनेका स्थान, पर्वत, ( पुं० )
दायाद्–अपनी सातवी पीढी भीतरका-मनुष्य, पुत्र (पुं०) ॥ २६ ॥
दारद्–पारा, समुद्र, हींगलू, विषभेद, ( पुं० )
दृषद्–पीसनेके लिये पत्थरका-पट्टा, पत्थर, ( स्त्री० ) ॥ २७ ॥
धनद्–दातार, कुवेर, ( पुं० )
नर्मद्–क्रीडाका मंत्री, ( पुं० )
नर्मदा–क्रीडा करानेवाली स्त्री, रेवा-नदी ( स्त्री० ) ॥ २८ ॥

नलदं मकरन्दे स्यान्मासिकोशीरयोरपि ।
निर्वादस्तु परीवादपरनिन्दितवादयोः ॥ २९ ॥
निषादः स्वरभेदेऽपि निषादः पचपचेऽपि च ।
प्रणादोऽत्युच्चशब्दे स्यात्प्रणादः कर्णरुग्भिदि ॥ ३० ॥
प्रमदा मत्तकाशिन्यां प्रमदो गर्विताम्रुदि ।
प्रसादस्तु प्रसन्नत्वे काव्यालङ्करणान्तरे ॥ ३१ ॥
स्वास्थ्ये चानुग्रहे चाथ प्रह्लादः प्रणदेऽसुरे ।
प्रासादः पुंसि देवस्य नरदेवस्य वाऽऽलये ॥ ३२ ॥
कन्याया वरदा शान्ते प्रसन्ने वरदस्त्रिषु ।
भसत्पुंस्येव काले स्याद्भसन्मांसे प्रभासुरे ॥ ३३ ॥
मर्यादा तु स्थितौ सीम्नि कूले कूले च वारिधेः ।
माकन्दस्तु रसाले स्यान्माकन्द्यामलकीफले ॥ ३४ ॥

---

नलद्-पुष्परस, जटामासी-औषधि, खस, ( न० )

निर्वाद्-अपवाद, दूसरोंसे निंदित वाद, (पु० ) ॥ २९ ॥

निषाद्-गानेका स्वरभेद, चांडाल भील आदि नीच, ( पुं० )

प्रणाद्-अति ऊँचा शब्द, कानरोगका भेद ( पु० ) ॥ ३० ॥

प्रमदा-गुणवती स्त्री, ( स्त्री० )

प्रमद्-गर्विताम्रीका, आनद, ( पुं० )

प्रसाद्-प्रसन्नत्व, काव्य-अलंकार, ॥ ३१ ॥ स्वस्थता, अनुग्रह (कृपा) ( पुं० )

प्रह्लाद्-ऊँचा शब्द, असुर, ( पु० )

प्रासाद्-देवताका मंदिर, राजाका महल, ( पु० ) ॥ ३२ ॥

वरदा-कन्या, ( स्त्री० ) वरद्-शांतचित्त, प्रसन्न, ( त्रि० )

भसद्-काल, ( पुं० ) मांस, ( न० ) प्रकाशवान ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥

मर्यादा-स्थिति, सीम, तीर, समुद्रका तीर, ( स्त्री० )

माकन्द्-आम्र, ( पुं० ) माकंदी-आँवलेका फल ( स्त्री० ) ॥ ३४ ॥

मेनादश्छागमार्जारमेघनादानुलासिषु ।
वार्तार्द्विर्वल्कले काष्ठलोहीवेदेक्कयोः स्त्रियाम् ॥ ३५ ॥
विशदः पाण्डरे व्यक्ते शरत्स्त्री शरदब्दयोः ।
शारदा जलपिप्पल्यां सप्तपर्णेऽथ शारदः ॥ ३६ ॥
नवाऽप्रतिमशालीनपीतमुद्गेन्दुवर्षयोः ।
स्त्रियां सम्पद्गुणोत्कर्षे भूतिहारप्रभेदयोः ॥ ३७ ॥
संवित्प्रतिज्ञासङ्केतज्ञानाचारेषु नामनि ।
स्त्रियां तोषे क्रियाकारे रणे सम्भाषणेऽपि च ॥ ३८ ॥
सम्भेदस्तु विकाशे स्यात्सम्भेदः सिन्धुसङ्गमे ।
सुनन्दा रोचनानार्योः क्षणदो गणके पुमान् ॥ ३९ ॥
त्रिपूत्सवप्रदे वारि क्षणदं क्षणदा निशि ।

दचतुर्थम् ।

अपवादस्तु निन्द्रायामाज्ञाविश्वासयोरपि ॥ ४० ॥

---

मेनाद–बकरा, बिलाव, मोर, (पुं०)
वार्तार्द्वि–वृक्षका बकला, काष्ठआदि, (स्त्री०) ॥ ३५ ॥
विशद–सफेद, प्रकट, (पु०)
शरद्–शरदृतु, वर्ष, (स्त्री०)
शारदा–जलपीपल, सप्तपर्णी या सातवण, (स्त्री०) शारद ॥३६॥ नवीन जिसके समान दूसरा न हो वह, लज्जावान, पीलामूग, चन्द्रमा, वर्ष (पुं०)
सम्पद्–गुणोंकरके उत्कर्ष (बडप्पन), संपत्ति, हारभेद, (स्त्री०) ॥३७॥
संविद्–प्रतिज्ञा, संकेत, ज्ञान, आचार, नाम, संतोष, किसी कार्यका करनेवाला, रण, संभाषण, (स्त्री०) ॥ ३८ ॥
सम्भेद–प्रकाश, समुद्र या नदियोंका मिलाप, (पु०)
सुनन्दा–रोचना (गोलोचन), स्त्री, (स्त्री०)
क्षणद–ज्यौतिषी, (पुं०) ॥ ३९ ॥
क्षणद–उत्सवदेनेवाला, (त्रि०) जल, (न०)
क्षणदा–रात्रि, (स्त्री०)

दचतुर्थ ।

अपवाद–निन्दा, आज्ञा, विश्वास, (पुं०) ॥ ४० ॥

अभिष्यन्दो विवृद्धौ स्यादास्रावे लोचनामये ।
अभिमर्दस्तु पुंस्येव रणमन्थानदण्डयोः ॥ ४१ ॥

अष्टापदं शारिफले क्लीबमस्त्री तु काञ्चने ।
शरभे मर्कटे पुंसि चन्द्रमल्ल्यां स्त्रियामपि ॥ ४२ ॥

एकपदं स्यात्तत्काले क्लीबमेकपदी पथि ।
कटुकन्दः पुमान् शृङ्गवेरे शिग्रुरसोनयोः ॥ ४३ ॥

कुरुविन्दस्तु मुस्ताया कुल्माषव्रीहिभेदयोः ।
कुरुविन्दं तु मुकुरे पद्मरागे च हिङ्गुले ॥ ४४ ॥

क्लीब कोकनदं रक्तकैरवे रक्तपङ्कजे ।
चक्रवुन्दस्तु भाकूटे पृष्ठशृङ्गे मृगान्तरे ॥ ४५ ॥

चतुष्पदो गवाश्वादिपशौ स्त्रीकरणान्तरे ।
पुमाञ्जनपदो देशे तथा जनपदो जने ॥ ४६ ॥

---

अभिष्यन्द्—अतिवृद्धि, चारोंतरफसे-झिरना, नेत्ररोग ( पुं० )

अभिमर्द—रण, मथनेका डॉडा (पुं०) ॥ ४१ ॥

अष्टापद्—चौपड़, ( न० ) सुवर्ण ( पुं० न० ) शरभ ( मृगभेद ), बन्दर, ( पुं० )

अष्टापदी—चंद्रमल्ली ( मल्लिकाभेद ) (स्त्री०) ॥ ४२ ॥

एकपद्—तत्काल, (न०)

एकपदी— मार्ग ( स्त्री० )

कटुकन्द्—अदरक, सहँजना, लस्सन, ( पुं० ) ॥ ४३ ॥

कुरुविन्द्—नागरमोथा, आधासीजा-धान्य, व्रीहिभेद ( पुं० )

कुरुविन्द्—शीशा, पुक्खराज, हींगलू, ( न० ) ॥ ४४ ॥

कोकनद्—लाल कमोदनी, लालकमल ( न० )

चक्रवुन्द्—तेजसमूह, पृष्ठशृङ्ग, असत्वभेद ( पु० ) ॥ ४५ ॥

चतुष्पद्—गौ अश्व आदि पशु, स्त्रियोंका करणभेद, ( पु० )

जनपद्—देश, जन, ( पुं० ) ॥४६॥

तमोनुदस्तमोनुच्च चन्द्रसूर्यकृशानुषु ।
परीवादोऽपवादे स्याद्वीणावादनवस्तुनि ॥ ४७ ॥

पृष्ठमर्दोऽतिधृष्टे स्यान्नाट्योक्त्या नायकप्रिये ।
पुटभेदो नदीवक्रे नगरातोद्ययोरपि ॥ ४८ ॥

प्रतिपत्तु स्त्रियामाद्यतिथौ संविदि सा स्मृता ।
प्रियंवदः खेचरे स्यात्प्रियवाचि तु वाच्यवत् ॥ ४९ ॥

महानादो महाशब्दे वर्षुकाब्दे गयानके ।
गजे च मुचुकुन्दस्तु मुनिदैत्यद्रुमान्तरे ॥ ५० ॥

मेघनादो दशग्रीवसुते पश्चिमदिक्पतौ ।
विशारदः पण्डिते स्यात्रिषु धृष्टे विशारदः ॥ ५१ ॥

पृत्वाकूटे प्रपञ्चे च मृगे शूके पदे मतम् ।
समर्यादं समीपे स्यान्मर्यादिन्यपि वाच्यत् ॥ ५२ ॥

---

तमोनुद्-तमोनुद्-चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, (पुं०)
परीवाद्-अपवाद ( निंदा आदि ), वीणाबजानेकी वस्तु ( पुं० )॥४७॥
पृष्ठमर्द-अतिधृष्ट ( ढीठा ), नाट्यकी उक्तिमें नायकका प्रिय, ( पुं० )
पुटभेद्-नदीका वक्र, नगर, बाजाभेद (पुं० ) ॥ ४८ ॥
प्रतिपत्-पड़वातिथि, बुद्धि, ( स्त्री० )
प्रियंवद्-खेचर ( आकाशमे विचरनेवाला), प्रियवचन कहनेवाला ( त्रि० ) ॥ ४९ ॥
महानाद्-महाशब्द, वर्षनेवालामेघ, सोनेवाला, हस्ती, ( पुं० )
मुचुकुन्द्-एकमुनि, एक दैत्य, मुचुकुंद-पुष्पवृक्ष, ( पुं० ) ॥ ५० ॥
मेघनाद्-रावणका पुत्र, वरुण, (पुं०)
विशारद्-पण्डित, धृष्ट, ( त्रि० ) ॥ ५१ ॥
प्रपच ( जगत् ), मृग, स्याळ, चरण (पुं०)
समर्याद्-समीप (नजदीक), (न०) मर्यादावाला ( त्रि० ) ॥ ५२ ॥

दपंचमम् ।

धर्मे रहस्युपनिषद्वेदान्ते पार्श्ववेश्मनि ।
सहस्रपादो मार्त्तण्डे कारण्डेपि च यज्वनि ॥ ५२ ॥

इति विश्वलोचने दान्तवर्गः ॥

---

## अथ धान्तवर्गः ।

धैकम् ।

धो धने च धनेशे च धास्तु धातरि धी मतौ ।

धद्वितीयम् ।

अन्धं स्यात्तिमिरे दृष्टिहीने त्वन्धोऽभिधेयवत् ॥ १ ॥
अब्धिर्वारानिधौ पुंसि पुंस्येवाऽब्धिः सरोवरे ।
अर्द्धं समांशके क्लीबमर्द्धः खण्डे पुमानपि ॥ २ ॥
पुंस्याधिश्चित्तपीडाया प्रत्याशायां च बन्धके ।
व्यसने चाप्यधिष्ठाने स्यादिद्धस्त्वातपे पुमान् ॥ ३ ॥

---

दपंचम ।

उपनिषद्–धर्म, एकान्त, वेदान्त, पसवाडाका मकान ( स्त्री० )

सहस्रपाद्–सूर्य, कारंड (हंसभेद), यज्ञ, ( पुं० ) ॥ ५२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचन कोशकी टीकामे दान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ धान्तवर्ग ॥

धैक ।

ध–धन, ( न० ) कुबेर, (पुं०)

धा–ब्रह्मा, ( पुं० )

धी–बुद्धि ( स्त्री० )

धद्वितीय ।

अन्ध–अंधकार, ( न० ) अंधा-मनुष्य, (त्रि०) ॥ १ ॥

अब्धि–समुद्र, सरोवर, ( पुं० )

अर्ध–बराबर अर्धभाग, (न०) अर्ध ( टुकडा ), ( पुं०) ॥ २ ॥

आधि–चित्तपीडा, प्रत्याशा, गिरवी-रखना, दुःख या शोक, अधिष्ठान ( पुं ) धूप, ( पुं० ) ॥ ३ ॥

प्रदीप्ते त्रिषु ऋद्धं तु सम्पन्नान्नसमृद्धयोः ।
ऋद्धिः स्यादोषधीभेदे योगशक्तौ च बन्धने ॥ ४ ॥
गन्धो गन्धकसम्बन्धलेशेष्वामोदगर्वयोः ।
गाधः स्थानेऽपि लिप्सायां गोधा तलनिहाकयोः ॥ ५ ॥
दग्धा स्थितार्ककाष्ठायां दग्धं प्लुष्टेऽन्यलिङ्गकः ।
दधि स्याच्छ्रीघने क्लीवं दधि श्रीवासवासयोः ॥ ६ ॥
विषाक्तविशिखे दिग्धो दिग्धं लिप्तार्थकेऽन्यवत् ।
त्रिपु प्रपूरिते दुग्धं दुग्धं क्षीरेऽपि न द्वयोः ॥ ७ ॥
वत्से गोपे कवौ दोग्धा दोग्धाऽप्यर्थोपजीविनि ।
सज्जे संपूर्वकं नद्धं नद्धं तद्भूतवद्धयोः ॥ ८ ॥
आधिवन्धनयोर्वेधो वन्धः संपूर्वकोऽन्वये ।
वन्धूकपादपे वन्धुर्वधूभ्रातरि बान्धवे ॥ ९ ॥

---

ऋद्ध—सिद्धहुवा अन्न, ( न० ) समृद्ध ( संपत्तिवाला, ) ( त्रि० )
ऋद्धि—ओषधीभेद, योगशक्ति, बंधन, ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥
गन्ध—गन्धक, संबंध, लेश ( सूक्ष्म-अंश), सुगंध, अभिमान, ( पुं० )
गाध—स्थान ( स्थितहोना ), लेनेकी इच्छा, ( पुं० )
गोधा—धनुषकी ज्याको निवारण करनेका, जलगोह ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥
दग्धा—स्थितहै सूर्य जिसमें वह दिशा, (स्त्री०) जलाहुवा, ( त्रि० )
दधि—दही, सरलवृक्षका गोंद, तेजपात, ( न० ) ॥ ६ ॥
दिग्ध—विषलगायाहुवा-बाण, ( पुं० ) किसीवस्तुमें लिप्तहुवा पदार्थ (त्रि०)
दुग्ध—प्रपूरितकिया हुवा, ( त्रि० ) दूध, ( न० ) ॥ ७ ॥
दोग्धा—बछडा, गोपालक, कवि, पदार्थोंसे जीविकावाला, ( पुं० )
संनद्ध—कवचधारी, ( त्रि० )
नद्ध—निकलाहुवा, बँधाहुवा, (त्रि०) ॥ ८ ॥
वेध—चित्तपीडा, बंधन, ( पुं० )
संबंध—अन्वय, जहांतहांका इकट्ठा-होना, ( पुं० )
बंधु—दुपहरिया-पुष्पवृक्ष, वधूका भ्राता बाधव, ( पुं० ) ॥ ९ ॥

बाधा दुःखे निषेधे च विपूर्वो तु विहेठने ।
बुधस्तु सुगते धीरे सौम्ये च बुधिते त्रिषु ॥ १० ॥
बुधः स्यात्पण्डिते सौम्ये बुधः क्वापि तथागते ।
ऋद्धिस्तु वर्द्धने ऋद्ध्यौषधे मुदि कलान्तरे ॥ ११ ॥
वृद्धिः कुरुण्डरोगे च वृद्धिर्योगेऽपि दृश्यते ।
वृद्धो रूढे कवौ जीर्णे त्रिषु वृद्धं तु शैलजे ॥ १२ ॥
बोधिः समाधिभेदे स्याद्बोधिर्बोधिमहीरुहे ।
मधु पुष्परसे क्षौद्रे मद्यक्षीराऽप्सु न द्वयोः ॥ १३ ॥
मधुर्मधूके सुरभौ चैत्रे दैत्यान्तरे पुमान् ।
जीवाशाके स्त्रियामेवं मधु—शब्दः प्रयुज्यते ॥ १४ ॥
सिद्धं चित्ताभिसक्षेपे सिद्धमालस्यनिद्रयोः ।
सुन्दरे वाच्यवन्मुग्धो मुग्धो मूढेऽपि वाच्यवत् ॥ १५ ॥
मेधः क्रतौ मतौ मेधा मेधिस्तु खलदारुणि ।
राधा तु वल्लवीभेदे चित्रभेदे च धन्विनाम् ॥ १६ ॥

---

बाधा—दुःख, निषेध, ( स्त्री० )
विबाधा—विशेषकरके पीडा, (स्त्री०)
बुध—बुद्धदेव, धीर, सौम्य, ( पुं० ) जानाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १० ॥
बुध—पंडित, बुध-ग्रह, बुद्धदेव (पुं०)
ऋद्धि—वढना, ऋद्धि औषधी, हर्ष, कलाभेद, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥
वृद्धि—कुरुण्डरोग, वृद्धि-योग ( पुं० )
वृद्ध—वटाहुवा, कवि, पुराना, वृद्ध पर्वतमें होनेवाला ( त्रि० ) ॥१२॥
बोधि—समाधिभेद, पीपल वृक्ष,(पुं०)
मधु—पुष्परस, शहद, मदिरा, दुग्ध, जल, ( न० ) ॥ १३ ॥
मधु—महुवा-वृक्ष, वसंत-ऋतु, चैत्र-मास, एक दैत्य, (पुं०) जीवशाक, ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥
सिद्ध—चित्तव्याकुलता, आलस्य, निद्रा, ( न० )
मुग्ध—सुंदर, मूढ, (त्रि०) ॥ १५ ॥
मेध—यज्ञ, ( पुं० )
मेधा—बुद्धि, ( स्त्री० )
मेधि—खोटा काष्ठ, ( पुं० )
राधा—गोपी-श्रीकृष्णपत्नी, धनुषधारियोंका चित्रभेद, ॥ १६ ॥

स्याद्विशाखातडिद्विष्णुक्रान्तातिष्यफलासु च ।
राधस्तु पुंसि वैशाखे लुब्धो मृगयुकाङ्क्षिणोः ॥ १७ ॥
वधूः स्नुषायां भार्यायां वधूर्योषिन्नवोढयोः ।
शठ्यां च सारिवायां च स्पृक्कायां च मता वधूः ॥ १८ ॥
भवेद्विधं तु सादृश्ये वेधितक्षिप्तयोस्त्रिषु ।
विधिर्वेधसि काले ना विधाने नियतौ स्त्रियाम् ॥ १९ ॥
विधा प्रकारे ऋद्धौ च गजान्ने वेतने विधौ ।
विधुः शशाङ्के विष्णौ च कर्पूरे राक्षसान्तरे ॥ २० ॥
व्याधिः स्यादामये व्याप्ये व्याधो मृगयुदुष्टयोः ।
शुद्धं तु केवले पूते श्रद्धा श्राद्धोर्ध्वकाङ्क्षयोः ॥ २१ ॥
श्राद्धं निवापे श्राद्धस्तु त्रिषु श्रद्धासमन्विते ।
सन्धा स्थितौ प्रतिज्ञायामवधानेऽपि सा स्मृता ॥ २२ ॥

---

विशाखा–नक्षत्र, विजली, कोयल-या विष्णुक्रान्ता, ऑवला ( स्त्री० )
राध–वैशाख–मास, ( पुं० )
लुब्ध–शिकारी, धनादिलोभवाला, (पुं०) ॥ १७ ॥
वधू–पुत्रवधू, अपनी स्त्री, नवीनविवाहिता स्त्री, कचूर, सरिवन, असवरग-औषधि ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥
विध–सदृशता ( तुल्यता ), बींधाहुवा, फेंकाहुवा (त्रि०)
विधि–ब्रह्मा, काल, विधान, भाग्य, ( पुं० ) ॥ १९ ॥
विधा–प्रकार, ऋद्धि, हस्तीका अन्न, नौकरी, विधान, ( स्त्री० )
विधु–चंद्रमा, विष्णु, कपूर, राक्षसभेद, (पुं०) ॥ २० ॥
व्याधि–रोग, कुष्ठरोग, ( पुं० )
व्याध–शिकारी, दुष्ट, ( पुं० )
शुद्ध–केवल ( एकला ), पवित्र,(न०)
श्रद्धा–आस्तिकता, ऊँची इच्छा, ( स्त्री० ) ॥ २१ ॥
श्राद्ध–पितरोंको पिंडआदिदान, (न०)
श्राद्ध–श्रद्धायुक्त, ( त्रि० )
सन्धा–स्थिति, प्रतिज्ञा, स्थिरचित्तता, ( स्त्री० ) ॥ २२ ॥

सन्धिः पुंसि सुरङ्गायां रन्ध्रसंघट्टने भगे ।
सन्धिर्भागेऽवकाशेऽपि वाटसंज्ञेऽपि पुंस्ययम् ॥ २३ ॥

साधुर्वार्द्धुषिके पुंसि चारुसज्जनयोस्त्रिषु ।
सिद्धस्तु नित्ये निष्पन्ने प्रसिद्धे देवयोनिषु ॥ २४ ॥

योगेऽप्याडिप्रभेदे च सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः ।
सद्व्याख्याभेषजे सिद्धिः सिद्धिर्वृद्ध्याख्यभेषजे ॥ २५ ॥

सिन्धुरब्धौ नदे देशभेदे ना सरिति स्त्रियाम् ।
सुधाऽमृते सुधा मूर्वा स्नुहीगाङ्गेष्टिकासु च ॥ २६ ॥

स्तृधूर्वृद्धौ गुदेऽपि स्यात्स्कन्धः कायप्रकाण्डयोः ।
बाहुमूले समूहे च समीहायां समीहतौ ॥ २७ ॥

स्कन्धो नराश्वमातङ्गवृन्दे भद्रादिकृत्यके ।
स्निग्धो वात्सल्यसंपन्ने चिक्कणेऽप्यभिधेयवत् ॥ २८ ॥

---

सन्धि–सुरंग, छिद्रकाजोडना, योनि, ( पुं० )

सन्धि–भाग, अवकाश, मार्गभेद ( पु ) ॥ २३ ॥

साधु–वृद्ध, ( पुं० ) सुंदर, सज्जन, ( त्रि० )

सिद्ध–नित्य, निष्पन्न ( पूर्णहुवा ), प्रसिद्ध, देवयोनि ॥ २४ ॥ योग, आडि-पक्षीभेद, ( पुं० )

सिद्धि–निष्पत्ति, योग, अच्छीव्याख्या, औषधि-मात्र, वृद्धि-औषध, ( स्त्री० ) ॥ २५ ॥

सिन्धु–समुद्र, नद, देशभेद, ( पुं० )

सिन्धु–नदी ( स्त्री० )

सुधा–अमृत, मूर्वा चुरनहार या मरोरफली, थोहर, कटशर्करालता (एकप्रकारकी वनस्पति ) ॥ २६ ॥

स्तृधू–वृद्धि, गुद, ( स्त्री० )

स्कन्ध–शरीर, वृक्षकी मोटी शाखा, भुजाका मूल ( कंधा ), समूह, चेष्टा, चेष्टित, ॥ २७ ॥

मनुष्य अश्व और हस्तियों का समूह, मंगल आदि कृत्य, (पुं०)

स्निग्ध–वत्सलतासे पूर्ण, चिकना ( त्रि० ) ॥ २८ ॥

स्पर्द्धा संहर्षणे साम्ये स्पर्द्धा क्रमसमुन्नतौ ।

धतृतीयम् ।

अगाधमतलस्पर्शे त्रिषु श्वभ्रे नपुंसकम् ॥ २९ ॥

अवधिर्नाऽवधौ न स्यात्सीम्नि काले बिलेऽवटे ।

आनद्धं त्रिषु बद्धे स्यादानद्धं मुरजादिके ॥ ३० ॥

आबन्धः प्रेम्ण्यलङ्कारे दृढबन्धेऽपि कीर्त्तितः ।

आविद्धः प्रहृते वक्रेऽप्युत्सेधः काय उच्छ्रये ॥ ३१ ॥

व्याजेऽपि चक्रेऽप्युपधिरुपाधिर्ना विशेषणे ।

कैतवे धर्म्मचिन्तायां कुटुम्बव्यापृतेऽपि च ॥ ३२ ॥

कबन्धस्तु हरे राहौ रक्षोभेदे मतः पुमान् ।

कबन्धं वारि न स्त्री तु गतमूर्द्धकलेवरे ॥ ३३ ॥

दुर्विधो दुःखिखलयोर्निरोधो रोधनाशयोः ।

निषधः पर्वते देशे तद्राजे कठिनेऽपि च ॥ ३४ ॥

---

स्पर्धा–अति हर्ष, समता, क्रमसे ऊँचापन, ( स्त्री० )

धतृतीयम् ।

अगाध–जिसकी थाह न लगे ऐसा ऊंचा, (त्रि०) खड्डा, (न०) ॥२९॥

अवधि–सीमाद, सीम, काल, बिल, खड्डा, ( पुं० )

आनद्ध–बँधाहुवा, ( त्रि० )

आनद्ध–मृदंगआदिक, ( न० ) ॥ ३० ॥

आबन्ध–प्रेम, आभूषण, दृढबन्धन, ( पुं० )

आविद्ध–प्रेराहुवा, कुटिल ( टेढा ), ( पुं० )

उत्सेध–शरीर, ऊँचाई (पुं०) ॥३१॥

उपधि–बहाना या मिस,रथका पहिया ( चक्र ) ( पुं० )

उपाधि–विशेषण, छल, धर्मचिंता, कुटुम्बमें आसक्त ( पु० ) ॥३२॥

कबन्ध–महादेव, राहु, राक्षसभेद, ( पुं० )

कबन्ध–जल, ( न० ) मस्तकरहित शरीर ( पुं० न० ) ॥३३॥

दुर्विध–दुःखित-जन,खल-जन,(पुं०)

निरोध–रोकना, नाश, (पु०)

निषध–पर्वत, निषधदेश, निषधका राजा, कठिन, (पुं०) ॥ ३४ ॥

न्यग्रोधस्तु वटे शम्यां न्यग्रोधो व्याममात्रके ।
न्यग्रोधी विषपर्ण्यां च मोहनाख्यौषधावपि ॥ ३५ ॥
परिधिर्यज्ञियतरोः शाखायामुपसूर्यके ।
प्रणिधिर्याच्ञाचरयोः प्रसिद्धः ख्यातभूषिते ॥ ३६ ॥
मागधो मगधोद्भूते क्षत्रियावैश्यजे त्रिषु ।
बन्दिजीरकयोः पुंसि कणायूथ्योस्तु मागधी ॥ ३७ ॥
पर्याहाराध्वभारेषु पण्ये विवधवीवधौ ।
विबुधः पण्डिते देवे विश्रब्धं तु भृशार्थकम् ॥ ३८ ॥
विश्रब्धः स्यात्तु विश्वस्ताऽनुद्धटेषु त्रिषु त्रिषु ।
लतायां विटपे वीरुत्सन्नद्धो व्यूढवर्म्मिते ॥ ३९ ॥
सन्निधिः सन्निधाने स्त्री पुमानिन्द्रियगोचरे ।
समाधिर्ध्याननीवाकनियमेषु समर्थने ॥ ४० ॥

---

न्यग्रोध—वड़-वृक्ष, शमी ( जाँट ) वृक्ष, तिरछी फैलाई हुई दोनों भुजाओंका प्रमाण (पुरस) ( पुं० )
न्यग्रोधी—विषपर्णी-औषधि, मोहन-नाम औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ३५ ॥
परिधि—यज्ञयोग्यवृक्षकी शाखा, सूर्यके चारों ओर गोलचक्र ( पुं० )
प्रणिधि—याचना, चर, ( पुं० )
प्रसिद्ध—विख्यात, भूषित ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥
मागध—मगधदेशमें होनेवाला, क्षत्रिया और वैश्यसे उत्पन्नहुवा, (त्रि०)
मागध—बन्दीजन, जीरा, ( पुं० )
मागधी—पीपल, जूही-पुष्पपेड, ( स्त्री० ) ॥ ३७ ॥
विवध—वीवध—पूर्तआहार, मार्ग, भार, दूकान, ( पुं० )
विबुध—पडित, देवता, ( पु० )
विश्रब्ध—अतिशय, ( अत्यंत ) (न०) ॥ ३८ ॥
विश्रब्ध—विश्वासपात्र, अनुद्धट (नम्र) ( त्रि० )
वीरुत् (ध्)—बेल, वृक्षशाखा (स्त्री०)
सन्नद्ध—रक्खाहुवा या इकट्ठा कियाहुवा, कवचधारी, (पुं०) ॥ ३९ ॥
सन्निधि—समीप, ( स्त्री० ) इंद्रियोंका विषय ( पुं० )
समाधि—ध्यान, धनधान्यसे मनुष्यका अतिशय आदर, नियम, समर्थन, ( पु० ) ॥ ४० ॥

सम्बाधः सङ्कटे योनौ सङ्गरेपि सुगन्धि तु ।
शैलेयेऽभीष्टगन्धे च संरोधः क्षेपरोधयोः ॥ ४१ ॥
संसिद्धिस्तु मता श्रीमत्तिनीप्रकृतिसिद्धिषु ।

धचतुर्थम् ।

अनिरुद्धः स्मरसुते पुंसि चानर्गले त्रिषु ॥ ४२ ॥
अनुबन्धः प्रकृत्यादेर्नश्वरेऽप्यनुयायिनि ।
दोषोत्पादे शिशौ च स्यात्प्रवृत्तस्यानुवर्त्तने ॥ ४३ ॥
अनुबन्धी तु हिक्कायां तृष्णायामपि दृश्यते ।
अवरोधस्तु शुद्धान्तेऽप्यन्तर्द्धौ राजसद्मनि ॥ ४४ ॥
स्यादवष्टब्ध आक्रान्तेऽप्यदूरेऽप्यविलम्बिते ।
आशाबन्धः समाश्वासे मर्कटस्य च वासके ॥ ४५ ॥
इक्षुगन्धा कोकिलाक्षे काशे क्रोष्ट्र्यां च गोक्षुरे ।
उग्रगन्धा वचायां स्याद्यवान्यां छिक्किकौषधौ ॥ ४६ ॥

---

सम्बाध–संकट, योनि ( भग ), युद्ध, ( पुं० )
सुगन्धि–गिलाजीत, श्रेष्ठगंध, (न०)
संरोध–फेंकना, रोकना, ( पुं० ) ॥ ४१ ॥
संसिद्धि–लक्ष्मीमदवाली स्त्री, स्वभाव, सिद्धि, ( स्त्री० )

धचतुर्थ ।

अनिरुद्ध–कामदेवका पुत्र, ( पुं० ) अनर्गल(नहींरुकनेवाला), ( त्रि० ) ॥ ४२ ॥
अनुबन्ध–प्रकृति आदिका नश्वरभाग, अनुयायी, दोषोंका उत्पादन, बालक, प्रवृत्तके पश्चात् वर्तना, (पुं०) ॥ ४३ ॥
अनुबन्धी–हिचकी, तृष्णा, ( स्त्री० )
अवरोध–रनवास, अंतर्धान (छुपना) राजाका महल, ( पुं० ) ॥ ४४ ॥
अवष्टब्ध–दबायाहुवा, समीप, नहीं जल्दी किया ( पु० )
आशाबन्ध–समाश्वास ( दिलासादेना), वानरपकड़नेका जाल, (पु०) ॥ ४५ ॥
इक्षुगन्धा–तालमखाना, काश, गीदड़ी, गोखरू ( स्त्री० )
उग्रगन्धा–वच, अजवायन, नकछीकनी-औषधि ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥

उपलब्धिः स्त्रियां प्राप्तिमतिज्ञानेषु लक्षणे ।
कालस्कन्धस्तमालेऽपि तिन्दुके जीवकद्रुमे ॥ ४७ ॥
तीक्ष्णगन्धो मतः शिग्रौ वचाराजिकयोः स्त्रियाम् ।
तृणगोधा भवेच्चित्रकोलके कृकलासके ॥ ४८ ॥
परिव्याधः पुमान्नीरवानीरेऽपि द्रुमोत्पले ।
ब्रह्मबन्धुरधिक्षिप्ते निर्देशेऽब्राह्मणस्य च ॥ ४९ ॥
महौषधं विषाशुण्ठी शृङ्गवेरे रसोनके ।
समुन्नद्धः समुद्भूते पण्डितम्मन्यगर्विते ॥ ५० ॥

घपञ्चमम् ।

योजनगन्धा तु कस्तूर्यां व्याससूसीतयोरपि ॥ ५१ ॥

इति विश्वलोचने धान्तवर्गः ॥

---

उपलब्धि–प्राप्ति, बुद्धि, ज्ञान, लक्षण, ( स्त्री० )

कालस्कन्ध–तमालवृक्ष, तेंदूका पेड जीवक वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ४७ ॥

तीक्ष्णगंध–सहँजना, (पु०) तीक्ष्णगंधा, वच, राई, ( स्त्री० )

तृणगोधा–चित्रकंकोल, गिरगट, ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥

परिव्याध–जलवेत, कर्णिकार या पांगारा-वृक्ष, ( पुं० )

ब्रह्मबन्धु–झिडकाहुवा, ब्राह्मण का-भेद ( अधम ), ( पु० ) ॥ ४९ ॥

महौषध–अतीस, सोंठ, अदरक, हस्सन, ( न० )

समुन्नद्ध–अच्छी तरह उत्पन्नहुवा, नहीं पडित होनेपर निजको पडित माननेवाला गर्वित (पुं०) ॥ ५० ॥

धपंचम ।

योजनगंधा–कस्तूरी, व्यासकी माता, सीता, ( स्त्री० ) ॥ ५१ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें धान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ नान्तवर्गः ।

नैकम् ।

नास्तु नेतरि नावि स्त्री नकारो जिनपूज्ययोः ।
नुः स्तोतरि नुतौ स्त्री च—स्यादन्नं भक्तभुक्तयोः ॥ १ ॥

नद्वितीयम् ।

इनः पत्यौ नृपे सूर्येऽप्युन्नं क्लिन्ने रतान्तरे ।
रणोद्योगे भवेदूनमूने न्यूनाऽभिधेयवत् ॥ २ ॥
निश्शेषे त्रिषु कृत्स्नं स्याकृत्स्नं स्यादुदरे जले ।
गानं गीतेऽपि शब्देऽपि गर्हणे तु विपूर्वकम् ॥ ३ ॥
घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्ये मध्यमताण्डवे ।
घनस्तु मेघे मुस्तायां विस्तारे लोहमुद्गरे ॥ ४ ॥
काठिन्ये चाथ कठिने सान्द्रेऽपि च घनस्त्रिषु ।
चिह्नमङ्के पताकायां ध्वजमात्रेऽपि न द्वयोः ॥ ५ ॥

---

अथ नान्तवर्ग ।

नैक ।

ना—प्राप्तकरनेवाला, ( पुं० )
ना—नौका, ( स्त्री० )
न( कार )—जिनदेव, पूज्य ( पुं० )
नु—स्तुतिकरनेवाला ( पुं० ) स्तुति, ( स्त्री० )

नद्वितीय ।

अन्न—अन्न, खायाहुवा अन्न आदि, (न०) ॥ १ ॥
इन—पति, राजा, सूर्य, ( पुं० )
उन्न—गीला, मैथुन भेद, रणका उद्योग, ( न० )
ऊन—कमती, न्यूनकेसमान ( त्रि० ) ॥ २ ॥
कृत्स्न—संपूर्ण ( त्रि० )
कृत्स्न—उदर ( पेट ), जल, ( न० )
गान—गाना, शब्द, ( न० )
विगान—निंदा, ( न० ) ॥ ३ ॥
घन—मंजीरा घंटा आदिवाजा, मध्यमनृत्य, ( न० )
घन—मेघ, नागरमोथा, विस्तार, लोहेका मुद्गर, ( पुं० ) ॥ ४ ॥ करड़ापन, कठिन, गहरा, ( त्रि० )
चिह्न—लाछन, पताका, ध्वजमात्र, ( न० ) ॥ ५ ॥

चीनो देशांशुकव्रीहितन्तुभेदे मृगान्तरे ।
रहसि च्छादिते छन्नमुत्पूर्वं छन्नमुज्वले ॥ ६ ॥
छिन्नाऽमृतायां पुंश्चल्यां छिन्नं भिन्नेऽभिधेयवत् ।
जनो लोके महर्लोकात्परे लोके च पामरे ॥ ७ ॥
जनी सीमन्तिनीवध्वोः स्त्रियां तु जनिरुद्भवे ।
जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोस्त्रिषु ॥ ८ ॥
ज्योत्स्ना तु चन्द्रिकायां स्यात्सोमलतायां विभावरौ ।
ज्योत्स्नी पटोलिकायां च चन्द्रकान्वितनिश्यपि ॥ ९ ॥
ज्यानिर्हानौ तटिन्यां च तनुर्देहत्वचोः स्त्रियाम् ।
तनुः केशेऽपि विरले स्वल्पमात्रेऽपि वाच्यवत् ॥ १० ॥
दानं त्यागे गजमदे छेदे शुद्धौ च रक्षणे ।
विक्रान्ते वाच्यवद्दानुर्दानदातरि वाच्यवत् ॥ ११ ॥

---

चीन–चीन-देश, वस्त्र, चीना-धान्य, तन्तुभेद, मृगभेद, ( पुं० )
छन्न–एकांत, ढकाहुवा, (त्रि०)
उच्छन्न–उज्ज्वल, ( त्रि० ) ॥ ६ ॥
छिन्ना–गिलोय, व्यभिचारिणी स्त्री, ( स्त्री० )
छिन्न–कटाहुवा, ( त्रि० )
जन–महर्लोकसे ऊपर लोक, जन (मनुष्यमात्र ), नीच, (पुं०) ॥ ७ ॥
जनी–स्त्री मात्र, पुत्रवधू, ( स्त्री० )
जनि–उत्पत्ति ( स्त्री० )
जिन–जिनदेव, बुद्धदेव, ( पु० ) अतिवृद्ध, जीतनेके स्वभाववाला, ( त्रि० ) ॥ ८ ॥
ज्योत्स्ना–चंद्रप्रभा, सोमलता, रात्रि ( चाँदनी रात्रि ) ( स्त्री० )
ज्योत्स्नी–परवल-शाक, चाँदनीरात्रि, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥
ज्यानि– हानि, नदी ( स्त्री० )
तनु–शरीर, त्वचा, ( स्त्री० )
तनु–केश, विरला ( कोई ), स्वल्पमात्र, ( त्रि० ) ॥ १० ॥
दान–त्याग ( दानदेना ), हस्तीका-मद, काटना, शुद्धि, रक्षा, (न० )
दानु–वीर, दानका देनेवाला, (त्रि०) ॥ ११ ॥

कातरे दुर्गते दीनो दीना मूषिकयोपिति ।
द्युम्नं पराक्रमे वित्ते प्रपूर्वं पुंसि मन्मथे ॥ १२ ॥
धनुः पुंसि प्रियालद्रौ राशिभेदेऽपि कामुके ।
धनं तु गोधने वित्ते धाना भृष्टयवे स्त्रियाम् ॥ १३ ॥
धान्याकेऽप्यङ्कुरेऽब्धौ तु धेनो धेनी सरित्यपि ।
नग्नस्त्रिषु विवस्त्रे स्यात्पुंसि क्षपणवन्दिनोः ॥ १४ ॥
न्यूनमूनेऽपि गर्ह्येऽपि पानं पीतौ च रक्षणे ।
वनं तु कानने नीरेऽप्युत्से वासप्रवासयोः ॥ १५ ॥
वस्नं तु वसने मूल्ये वेतनद्रव्ययोरपि ।
बुध्नः शिफायामीशाने भानुः सूर्येऽपि दीधितौ ॥ १६ ॥
भिन्नं वाच्यवदन्यार्थे दारिते सङ्गते स्फुटम् ।
मानं प्रमाणे प्रस्थादौ मानश्चित्तोन्नतौ ग्रहे ॥ १७ ॥

---

दीन–कायर, दरिद्र, ( पुं० )
दीना–मूसेकी स्त्री अर्थात् मूसी, (स्त्री०)
द्युम्न–पराक्रम, द्रव्य, ( न० )
प्रद्युम्न–कामदेव, ( पु० ) ॥ १२ ॥
धनु–चिरोंजी-वृक्ष, धन-राशि, कामी-पुरुष, ( पुं० )
धन–गोधन, द्रव्य, ( न० )
धाना–भूनाहुवा जौ ( स्त्री० )॥१३॥ धनिया, वृक्षका अकुर, ( पुं० )
धेन–समुद्र, ( पुं० )
धेनी–नदी, ( स्त्री० )
नग्न–वस्त्ररहित, ( त्रि० ) मुनि, वंदी-जन, ( पुं० ) ॥ १४ ॥
न्यून–कमती, निंद्य, ( त्रि० )
पान–जल आदिका पीना, रक्षा,(न०)
वन–वन ( कानन ), जल, झिरना, घर, प्रवास, ( न० ) ॥ १५ ॥
वस्न–वस्त्र, मूल्य, नौकरी, द्रव्य,(न०)
बुध्न–वृक्षकी जड़, महादेव, ( पुं० )
भानु–सूर्य, ( पुं० ) किरण, (स्त्री०) ॥ १६ ॥
भिन्न–अन्य, फाडाहुवा, सगत (युक्त) ( त्रि० )
मान–प्रस्थ ( ६४ तोले ) आदिप्रमाण, ( न० )
मान–चित्तकी उन्नति, ग्रह ( ग्रहणकर-ना ) ॥ १७ ॥ पूजा, ( पुं० )

मानः स्यादपि पूजायां मीनो राश्यन्तरे झषे ।
मुनिर्वाचंयमे बुद्धे प्रियालाऽगस्तिकिंशुके ॥ १८ ॥

इङ्गुद्यामपि मृत्स्ना तु तुवरीमृत्स्नयोर्म्मता ।
यानं वाह्यगतौ योनिर्द्वयोः स्यादाकरे भगे ॥ १९ ॥

रत्नं मणावपि श्रेष्ठे रत्नश्चक्षकचण्डयोः ।
रास्ना तु स्याद्भुजङ्गाक्ष्यामेलापर्ण्यामपि स्मृता ॥ २० ॥

राशीनामुदये लग्नं लग्नं सक्तेऽपि लज्जिते ।
वानं शुष्कफले शुष्कस्यूतयोस्त्रिष्वथ द्वयोः ॥ २१ ॥

वन्यासुरङ्गावातोर्मिसौरभेषु कटे गतौ ।
विन्नं ज्ञाते स्थिते लब्धे शीनोऽजगरमूर्खयोः ॥ २२ ॥

पुंस्येव पत्त्रिणि श्येनः श्येनः श्वेतेऽभिधेयवत् ।
सानुः श्रृङ्गे बुधेऽरण्ये वात्यायां पल्लवे पथि ॥ २३ ॥

---

मीन-मीन-राशि, मच्छी, ( पुं० )
मुनि-मुनि(साधु), बुद्धदेव, चिरोंजी-का वृक्ष, हथिया-वृक्ष, गोंदी-वृक्ष ( पुं० ) ॥ १८ ॥
मृत्स्ना-अरहर या तूर, श्रेष्ठ मृत्तिका, ( स्त्री० )
यान-बाहरको गमन, ( न० )
योनि-खान, भग, ( पुं०न० ) ॥१९॥
रत्न-मणि, श्रेष्ठ, ( न० )
रत्न-( पुं० )
रास्ना-सरहटी या मंडनी, रायसन, ( स्त्री० ) ॥ २० ॥
लग्न-राशियोंका उदय, ( न० )
लग्न-आसक्त, लज्जित ( त्रि० )
वान-सूखाफल, सूखा, सीना, (त्रि०) वनसमूह, सुरंग, मृगभेद, अच्छा-गध, चटाई, गति, ( पुं० स्त्री० )
विन्न-जानाहुवा, स्थित, लब्धहुवा, ( न० )
शीन-अजगर-सर्प, मूर्ख, ( पुं० ) ॥ २१ ॥ २२ ॥
श्येन-सिकरा-पक्षी, ( पुं० ) सफेद रंगवाला, ( त्रि० )
सानु-पर्वतका शृंग, बुध, वन, वायु-का समूह, पत्ता, मार्ग, ( पुं० ) ॥ २३ ॥

सूनुः पुत्रेऽनुजे सूर्ये सूनुर्दुहितरि स्त्रियाम् ।
सूनं प्रसूने प्रसवे सूनमुच्छ्वसिते त्रिषु ॥ २४ ॥
सूना पुत्र्यां वधस्थाने गलशुण्ड्यामपीष्यते ।
स्त्यानं लोम्नि प्रतिश्रुत्यां मता स्निग्धे तु वाच्यवत् ॥ २५ ॥
स्थानं स्थितौ च सादृश्ये संनिवेशाऽवकाशयोः ।
स्थाने स्यादव्ययं ख्यातं युक्तार्थकरणार्थयोः ॥ २६ ॥
स्यूनोऽर्के किरणे स्वप्नः सुप्तधीस्वापदर्शने ।
हनुः कपोलावयवे मृत्यौ प्रहरणेऽस्त्रियाम् ॥ २७ ॥
गदे हट्टविलासिन्यां हीनं गर्ह्योनयोस्त्रिषु ।

नतृतीयम् ।

अङ्गनं प्राङ्गणे यानेप्यङ्गना नायिकान्तरे ॥ २८ ॥
अङ्गना वामनेभस्य हस्तिन्यामपि दृश्यते ।
अञ्जनो दिक्करीन्द्रे स्यादञ्जनं तु रसाञ्जने ॥ २९ ॥

---

सूनु–पुत्र, छोटाभाई, सूर्य, (पुं० )
सून–पुष्प, जन्म ( उत्पत्ति ) (न०)
सून–ऊर्द्ध्वश्वास, (त्रि०) ॥ २४ ॥
सूना–पुत्री, जीवमारनेका स्थान, तालुके ऊपर एक छोटी जीभ ( स्त्री० )
स्त्यान–लोम, ( न० ) प्रतिध्वनि, ( स्त्री० ) स्निग्ध ( स्नेहवाला, ) ( त्रि० ) ॥ २५ ॥
स्थान–स्थिति, सादृश्य, प्रवेश, अवकाश, ( न० )
स्थाने–युक्त अर्थ, करण अर्थ, (अव्यय ) ॥ २६ ॥
स्यून–सूर्य, किरण, ( पु० )
स्वप्न–सोना, स्वप्नका देखना, (पुं० )
हनु–ठोडी, मृत्यु, हथियार, ॥ २७ ॥ रोगविशेष, नख-गंधद्रव्य, (पुं०न०)
हीन–निंदित, न्यून (कमती ) (त्रि०)

नतृतीय ।

अङ्गन–आँगन, सवारी ( न० )
अंगना–स्त्री, ॥ २८ ॥ वामननामदिग्हस्तीकी हस्तिनी, ( स्त्री० )
अंजन–एक दिग्हस्ती, ( पुं० ) रसौत ( न० ) ॥ २९ ॥

अक्षिकज्जलसौवीरे गिरिभेदेऽप्यथाञ्जने ।
ज्येष्ठीभेदे मरुत्पत्न्यामञ्जनी लेप्ययोषिति ॥ ३० ॥
अध्वा वर्त्मनि संक्लेशे स्कन्दे संस्थानकालयोः ।
अपानो गुदवाते स्यादपानं तु गुदे मतम् ॥ ३१ ॥
आब्जिनी विसिनीत्यादिपदान्यब्जसरोवरे ।
महासहायामाम्लानः पुंस्येव त्रिषु निर्मले ॥ ३२ ॥
अयनं पथि भानोश्च दक्षिणोत्तरतोगतौ ।
नाऽरत्निः कफणौ हस्ते प्रकोष्ठविततांगुलौ ॥ ३३ ॥
अर्जुनः पार्थककुभकार्तवीर्यशिखण्डिषु ।
मातुरेकसुतेऽपि स्यादर्जुनो धवलेऽन्यवत् ॥ ३४ ॥
अर्जुनी गव्युषायांच कुट्टिनीकरतोययोः ।
अर्जुनं तु तृणे नेत्ररोगेऽपि क्लीबमर्जुनम् ॥ ३५ ॥

---

नेत्रोका, कज्जल, कालासुरमा, पर्वतभेद, ज्येष्ठीमधु, वायुकी स्त्री, ( त्रि० ) अजनी, स्त्रीका चित्र, ( स्त्री० ) ॥ ३० ॥

अ( ध्वन् )ध्वा–मार्ग, संक्लेश, क्षिरना, मृत्यु, काल, ( पु० )

अपान–गुदाका वायु, ( पुं० )

अपान–गुद, ( न० ) ॥ ३१ ॥

अब्जिनी–विसिनी–कमल, सरोवर, ( स्त्री० )

अम्लान–मखवन ( पुं० ) निर्मल, ( त्रि० ) ॥ ३२ ॥

अयन–मार्ग, दक्षिण और उत्तरसे सूर्यगति, ( न० )

अरत्नि–कोंहनी, अँगुलियोंसमेत फैलाहुवा हाथ ( पुं० ) ॥ ३३ ॥

अर्जुन–अर्जुन-पाडुराजाका पुत्र, एकवृक्ष, सहस्रबाहु, शिखंडी, माताका-एकपुत्र, ( पुं० ) श्वेतवर्ण, (त्रि०) ॥ ३४ ॥

अर्जुनी–गौ, उषा-बाणासुरकी पुत्री, कुटनी, करतोया नदी, ( स्त्री० )

अर्जुन–तृण, नेत्ररोग, (न०) ॥३५॥

अर्थी स्याद्याचके यक्षे सेवके च विवादिनि ।
अर्वा हये पुमानर्वा कुत्सितेऽप्यभिधेयवत् ॥ ३६ ॥
अर्शोघ्नी तालपर्ण्यां स्यादर्शोघ्नः शूरणे पुमान् ।
अली तु वृश्चिके भृङ्गेऽप्यवनं रक्षणे मुदि ॥ ३७ ॥
अशनिस्तु द्वयोर्वज्रे तडित्यपि मताऽशनिः ।
असनं क्षेपणे क्लीवमसनः पीतसारके ॥ ३८ ॥
असिक्नी सरिति प्रेष्याशुद्धान्ताऽवृद्धयोषिति ।
आत्मा ब्रह्ममनोदेहस्वभावधृतिबुद्धिषु ॥ ३९ ॥
आत्मायत्तेऽप्यथाऽऽदानं ग्रहणे वाजिभूषणे ।
आपन्नस्तु विपत्प्राप्ते प्राप्ते चाप्यभिधेयवत् ॥ ४० ॥
आसनं द्विरदस्कन्धपीठे पीठस्थितावपि ।
आसनी पण्यवीथ्यां स्यादासनो जीवकद्रुमे । ॥ ४१ ॥

---

अर्थिन्–याचक, यक्ष, सेवक, विवादी, (पुं० )
अर्वन्–अश्व, (पुं०) कुत्सित, (त्रि०) ॥ ३६ ॥
अर्शोघ्नी–कपूरकचरी, ( स्त्री० )
अर्शोघ्न–जमीकद, ( पु० )
अलिन्–बीछू, भौंरा, ( पु० )
अवन–रक्षा, आनंद, ( न० )॥३७॥
अशनि–वज्र, ( पु०स्त्री० ) विजली, ( स्त्री० )
असन–फेंकना, ( न० )
असन–विजयसार, ) पुं० ) ॥ ३८॥

असिक्नी–नदीभेद, रनवासमें जानेवाली जवानदासी, ( स्त्री० )
आत्म(न्)–ब्रह्म, मन, शरीर, स्वभाव, धृति, बुद्धि, अपने अधीन ( पु० ) ॥ ३९ ॥
आपन्न–विपत्को प्राप्तहुआ, प्राप्तहुवा, ( त्रि० ) ॥ ४० ॥
आसन–हस्तियोंका कंधा, हस्तियोंकी-पीठ, पट्टाआदि, स्थिति, ( न० )
आसनी–दुकानोंकी पंक्ति, ( स्त्री० )
आसन–जीयापोता वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ४१ ॥

उत्तानमुन्मुखे सुप्तेऽप्यगम्भीरेऽपि वाच्यवत् ।
उत्थानमुद्गमे तन्त्रेऽप्युद्यमे हर्षणे रणे ॥ ४२ ॥
प्राङ्गणे पौरुषे चैव मलवेगे च पुस्तके ।
उदानस्तूदरावर्त्ते कण्ठवाताहिभेदयोः ॥ ४३ ॥
उद्धानं चुल्लिकायां स्यान्मतमुद्गमनेऽपि च ।
उद्यानं क्लीबमाक्रीडे निःसृतौ च प्रयोजने ॥ ४४ ॥
कठिना तु मता स्थाल्यां शर्करायां गुडस्य च ।
खटिकायां तु कठिनी कठिनं निष्ठुरे त्रिषु ॥ ४५ ॥
कदनं युधाद्ये कामे कम्पनं कम्प्रकम्पयोः ।
कमनः कामुके चाभिरूपे चाशोककामयोः ॥ ४६ ॥
कर्म्म व्याप्ये क्रियायां च परे स्यादङ्गसंस्कृतौ ।
कर्त्तनं छेदने तूलतन्तुकर्म्मणि योषिताम् ॥ ४७ ॥

---

उत्तान—ऊपरको मुखकरके सोयाहुवा, नहींगंभीर अर्थात् ऊँचा, ( त्रि० )
उत्थान—उद्गम, तन्त्र, उद्यम, आनंद, रण, ॥ ४२ ॥ आँगन, पौरुष, मलवेग, पुस्तक, ( न० )
उदान—उदरका चक्र, कठमें रहनेवाला वायु, सर्पभेद, ( पुं० ) ॥ ४३ ॥
उद्धान—चूल्हा, ( न० ) उद्गत ( प्रकटहुवा ) ( त्रि० )
उद्यान—बगीचा घरका, निकसना, प्रयोजन, ( न० ) ॥ ४४ ॥
कठिना—स्थाली ( चावलआदिपकानेका पात्र ) गुडकी डली, ( स्त्री० )
कठिनी—खडिया-(मिट्टी ) ( स्त्री० )
कठिन—निष्ठुर ( कठोर ) ( त्रि० ) ॥ ४५ ॥
कदन—युद्धआदि, कामदेव, ( न० )
कम्पन—कम्पनेके स्वभाववाला, काँपना ( न० )
कमन—कामीपुरुष, सुदर-पुरुष, शोकरहित, काम, ( पु० ) ॥ ४६ ॥
कर्मन्—व्याप्य, क्रिया, पर, अंगका संस्कार, ( न० )
कर्तन—कतरना, सूतकातना, (न०) ॥ ४७ ॥

कलग्लायान्तु कलनं कलनं बन्धनेऽपि च ।
कल्पनं छेदने क्लृप्तौ कल्पना गजसज्जने ॥ ४८ ॥
पणस्य मानदण्डस्य चतुर्थांशेऽपि काकिनी ।
काञ्चनो धूर्त्तपुन्नागनागकेसरचम्पके ॥ ४९ ॥
उदुम्बरे काञ्चनारे हरिद्रायां च काञ्चनी ।
क्लीबं तु काञ्चने हेम्नि केशरेऽपि च काञ्चनम् ॥ ५० ॥
काननं विपिनेऽपि स्याच्चतुर्म्मुखमुखे गृहे ।
व्यासे कर्णेपि कानीनः कानीनः कन्यकासुते ॥ ५१ ॥
कामिनी नायिकाभेदे वन्दायामपि कामिनी ।
कामी तु कामुके कोके कामी पारावतेऽपि च ॥ ५२ ॥
कुन्नानं तु ह्यलङ्कारे भाजने गोलकान्तरे ।
कुहना दम्भचर्यायामीर्ष्यालौ दाम्भिके त्रिषु ॥ ५३ ॥

---

कलन–बंधन ( न० )
कल्पन–छेदन, रचना, ( न० )
कल्पना–हस्तीसिंगारना, ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥
काकिनी–पैसाका चौथाहिस्सा, मान दंडका चौथाहिस्सा ( स्त्री० )
कांचन–धतूरा,पुन्नाग-वृक्ष,नागकेसर, चंपा, ॥ ४९ ॥ गूलर-वृक्ष, कचनार-वृक्ष, ( पुं० )
कांचनी–हलदी, ( स्त्री० )
कांचन–सुवर्ण, कमल केसर, (न०) ॥ ५० ॥

कानन–वन, ब्रह्माका मुख, घर, ( न० )
कानीन–व्यास, कर्ण, कन्याका पुत्र, ( पु० ) ॥ ५१ ॥
कामिनी–स्त्रीभेद, वृक्षकी लता ( स्त्री० )
कामिन्–कामी-पुरुष, चकवा, कबूतर ( पुं० ) ॥ ५२ ॥
कुन्नान–आभूषण, पात्र, गोलाभेद, ( न० )
कुहना–दंभचर्या, ईर्षाकरनेवाला, दंभकरनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ५३ ॥

कृती तु पण्डिते योग्ये केतनं लाञ्छने गृहे ।
केतनं स्यात्पताकायां कार्ये चोपनिमन्त्रणे ॥ ५४ ॥
चीनैकदेशे कौपीनं स्याद्गुह्याकार्ययोरपि ।
कौलीनं तु परीवादे कुलीनत्वे कुकर्म्मणि ॥ ५५ ॥
गुह्येऽपि सङ्गरेपि श्वभुजङ्गपशुपक्षिणाम् ।
भवेत्क्रन्दनमाह्वाने मतमश्रुविमोचने ॥ ५६ ॥
खङ्गी तु गण्डके पुंसि खङ्गी खड्गायुधेऽपि च ।
गन्धनं सूचने हिंसासमुत्साहप्रकाशने ॥ ५७ ॥
गर्जनं तु मतं कोपे निस्वने मेघनिस्वने ।
गहनं कानने दुःखे गह्वरे कलिलेऽपि च ॥ ५८ ॥
गायनं स्वप्ने क्लीवं च गीतजीविनि गायने ।
विषदिग्धपशोर्म्मांसे गृञ्जनं लशुने पुमान् ॥ ५९ ॥

---

कृतिन्–पंडित, योग्य, ( पु० )
केतन–लांछन, घर, ( न० )
केतन–पताका, कार्य, निमन्त्रण,(न०) ॥ ५४ ॥
कौपीन–वस्त्रका खंड, गुह्यदेश, अकार्य, ( न० )
कौलीन–निंदा, कुलीनत्व, कुकर्म, ॥ ५५ ॥
गुह्यदेश, कुत्ता सर्प-पशु-पक्षियोंका युद्ध, ( न० )
क्रंदन–बुलाना, आँसूडालना, (न०) ॥ ५६ ॥
खङ्गिन् गैंडा, ( पुं० ) खड्गहथियारवाला, ( त्रि० )
गंधन–सूचनकरना, हिंसा, उत्साहका प्रकाश, ( न० ) ॥ ५७ ॥
गर्जन–क्रोध, शब्द, मेघशब्द (न०)
गहन–वन, दुःख, सकड़ा, सघन, ( न० ) ॥ ५८ ॥
गायन–स्वप्न ( न० ) गानेकी जीविकावाला, ( त्रि० ) गाना, ( न० )
गृंजन–विषमिला पशुका मांस, (न०) हस्सन, ( पुं० ) ॥ ५९ ॥

गोमी गवीश्वरे हरौ स्यान्महेष्वासकेऽपि च ।
गोस्तनी हारहूरायां हारभेदे तु गोस्तनः ॥ ६० ॥
ग्रावा तु पुंसि पाषाणे गिरिवारिदयोरपि ।
घट्टना चलनायां स्यादावृत्त्यामपि घट्टिनी ॥ ६१ ॥
चक्री हरिकुलालाऽहिकोकेषु ग्रामजालिने ।
चन्दना कालिभेदे स्याच्चन्दनं मलयोद्भवे ॥ ६२ ॥
चन्दनी तु नदीभेदे चर्म्म स्यात्फलकत्वचोः ।
चर्म्मी फलकपाणौ स्याद्भृङ्गरीटे मृदुत्वचि ॥ ६३ ॥
चलनं भ्रमणे कम्पे वाच्यवत्कम्पशालिनि ।
चलनी वस्त्रघर्घर्यो वारीभेदेऽपि दृश्यते ॥ ६४ ॥
चेतनश्चेतनायुक्ते त्रिषु संविदि चेतना ।
पत्रे पतत्रे छदनं छद्म शापकिलासयोः ॥ ६५ ॥

---

गोमिन्–गोवोंका स्वामी, विष्णु, व- डाधनुष, ( पुं० )
गोस्तनी–दाख, ( स्त्री० )
गोस्तन–हारभेद, ( पुं० ) ॥ ६० ॥
ग्रावन्–पत्थर, पर्वत, मेघ, ( पुं० )
घट्टना–चलना, घट्टिनी–आवृत्ति, ( स्त्री० ) ॥ ६१ ॥
चक्रिन्–विष्णु, कुम्हार, सर्प, चकवा, ग्राममें होनेवाली तोरई, ( पुं० )
चन्दना–कालीभेद, ( स्त्री० )
चन्दन–मलयाचलमें होनेवाला काष्ठ, ( न० ) ॥ ६२ ॥
चन्दनी–नदीभेद, ( स्त्री० )
चर्मन्–ढाल, त्वचा, ( न० )
चर्मिन्–ढालधारी, भृंगरीट ( शिव- गण ) भोजपत्र, ( पुं० ) ॥ ६३ ॥
चलन–भ्रमण, कंप, (न०) कॉपनेके स्वभाववाला ( त्रि० )
चलनी–वस्त्रकी घघरी, हस्तीके पैरबाँ- धनेकी रस्सी, ( स्त्री० ) ॥ ६४ ॥
चेतन–चेतना (बुद्धि) सेयुक्त,(त्रि०)
चेतना–बुद्धि, ( स्त्री० )
छदन–पत्ता, पक्षीकी पर, ( न० )
छद्मन्–शाप, सीपरोग, ( न० ) ॥ ६५ ॥

लक्ष्येऽपि छर्दनस्तु स्यान्निम्बालम्बुषवान्तिषु ।
छेदनं भेदने छेदे जगंस्तुर्जन्तुशुष्मणोः ॥ ६६ ॥
जघनं वनिताश्रोणीपुरोभागे कटावपि ।
जयनं तु जये वाजिगजप्रभृतिकञ्चुके ॥ ६७ ॥
यवनो यवमात्रेऽपि यवाधिकतुरङ्गमे ।
देशभेदे तुरुष्केऽपि जवनः प्रजवे त्रिषु ॥ ६८ ॥
तपनो रविसन्तापे भल्लके नरकान्तरे ।
तमोघ्नश्चन्द्रसूर्योऽग्निबुद्धश्रीकण्ठविष्णुषु ॥ ६९ ॥
तलिनं विरले स्तोके स्वच्छगम्भीरयोरपि ।
तलुनः पवने यूनि वाच्यवत्तलुनी स्त्रियाम् ॥ ७० ॥
तेमनं व्यञ्जने क्लेदे चुल्लिकाभिदि तेमनी ।
तोदनं व्यथने तोत्रे त्यागी सूरेऽपि दातरि ॥ ७१ ॥

---

छर्दन—निशाना, नींव, लजालूभेद, छर्दि ( त्रि० )
छेदन—भेदनकरना, छेदनकरना, ( न० )
जगन्—जन्तु, अग्नि, ( पुं० ) ॥६६॥
जघन—स्त्रीकी श्रोणियोका अग्रभाग ( जाँघ ), और कटि, ( न० )
जयन—जय, अश्व (घोडे) हाथी आदि का कवच ( न० ) ॥ ६७ ॥
यवन—जवमात्र, जवभरजादा अश्व, देशभेद, यवन ('मुसलमान ) जाति, ( पुं० )
जवन—बहुतवेगवाला (त्रि० )॥६८॥
तपन—सूर्यसे गरम ( धूप ), भिलावा, नरकभेद, ( पुं० )
तमोघ्न—चद्रमा, सूर्य, अग्नि, बुद्धदेव, महादेव, विष्णु, ( पु० ) ॥ ६९ ॥
तलिन—विरल (कोई), थोड़ा, स्वच्छ, गम्भीर, ( त्रि० )
तलुन—वायु, ( पु० ) जवान, (त्रि०)
तलुनी—जवान स्त्री, ( स्त्री० ) ॥७०॥
तेमन—व्यजन ( शाक ), गीला, (न०)
तेमनी—चूल्हाभेद ( स्त्री० )
तोदन—पीड़ा, बैलआदि हाँकनेकी पैनी, ( न० )
त्यागिन्—शूर, दाता, ( पुं० )॥७१॥

पुष्पे वीरेऽपि दमनो दर्शनं दृशि दर्पणे ।
स्वप्ने वर्त्मनि बुद्धौ च शास्त्रधर्म्मोपलब्धिषु ॥ ७२ ॥
दंशनः शिशिरे पुंसि दंशनं कवचे रदे ।
दहने दुष्टचरिते भल्लाते चित्रकेऽनले ॥ ७३ ॥
दृशानस्तु गृहपतौ दृशानं ज्योतिषि स्मृतम् ।
देवनः पाशके पुंसि धन्व चापे स्थलेऽपि च ॥ ७४ ॥
धन्वी धनुर्द्धरे छिङ्गेऽप्यर्जुने चार्जुनद्रुमे ।
धमनस्त्वनले भस्त्राध्मापकक्रूरयोस्त्रिषु ॥ ७५ ॥
धमनी कंधरायां च हरिद्राशिरयोरपि ।
धाम रश्मौ गृहे देहे प्रभावस्थानजन्मसु ॥ ७६ ॥
धावनं धाविते शुद्धौ पृष्टिपर्ण्यां तु धावनी ।
स्याद्धावनी रजन्यां च धौताजन्यां च तर्त्तरे ॥ ७७ ॥

---

दमन–दोंना पुष्प, वीर, ( पुं० )
दर्शन–दृष्टि ( नेत्र ), दर्पण ( शीशा ), स्वप्न, मार्ग, बुद्धि, शास्त्र, धर्म, उपलब्धि ( प्राप्ति ) ( न० ) ॥७२॥
दंशन–शिशिर-ऋतु, ( पुं० )
दंशन–कवच, दॉत, ( न० )
दहन–दुष्टचरितवाला, भिलावा, चीता, अग्नि, ( पुं० ) ॥ ७३ ॥
दृशान–घरका स्वामी, ( पुं० )
दृशान–ज्योति, ( न० )
देवन–चौपड़खेलनेका पासा, ( पु० )
धन्वन्–धनुष, स्थल, ( न० )॥७४॥
धन्विन्–धनुषधारी, चतुरमनुष्य, अर्जुन, अर्जुनवृक्ष, ( पु० )
धमन–अग्नि, धमनीसे अग्निधमनेवाला, क्रूर, ( पुं० ) ॥ ७५ ॥
धमनी–ग्रीवा, हलदी, नाडी, (स्त्री०)
धाम–किरण, घर, शरीर, प्रभाव, स्थान, जन्म, ( न० ) ॥ ७६ ॥
धावन–धोवना, शुद्धि, ( न० )
धावनी–पिठवन ( स्त्री० )
धावनी–रात्रि, धोयाहै अंजनजिसने ऐसी स्त्री,–( स्त्री० ) ॥ ७७ ॥

ध्वजी द्विजे रथे शैले तुरङ्गे च भुजङ्गमे ।
नन्दनो हर्षके पुत्रे नन्दनं मिश्रकावने ॥ ७८ ॥
नन्दनी तु मता देवधुनीधेनुननान्दृषु ।
नन्दी नन्दीश्वरे गर्द्दभाण्डन्यग्रोधवृक्षयोः ॥ ७९ ॥
नलिनी तु सरोजिन्यां सरोजे च सरोवरे ।
व्योमगङ्गामलिकयोः नलिनं तु जलाब्जयोः ॥ ८० ॥
निदानं रोगनियमेऽप्यादिहेत्ववमानयोः ।
वत्सदाम्नि निदानं स्यान्निधनं कुलनाशयोः ॥ ८१ ॥
पत्री काण्डखगश्येननगद्रुरथिके रथे ।
पद्मिनी पद्मनलिनीसरस्सु वनितान्तरे ॥ ८२ ॥
पर्व स्यादुत्सवे ग्रन्थौ दर्शप्रतिपदोरपि ।
तत्सन्धौ विषुवादौ च प्रस्तावे लक्षणान्तरे ॥ ८३ ॥

---

ध्वजिन्—ब्राह्मण, रथ, पर्वत, सर्प, ( पुं० )
नंदन—हर्षकरनेवाला, पुत्र,
नन्दन—इंद्रका बगीचा, ( न० )॥७८॥
नंदनी—गंगा, धेनु-भेद, ननद,(स्त्री०)
नन्दिन्—नदीश्वर-रुद्रगण, पारसपीपल, बड़-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ७९ ॥
नलिनी—कमलिनी, कमल, सरोवर, आकाशगंगा, आँवला, ( स्त्री० )
नलिन—जल, कमल, ( न० ) ॥ ८० ॥
निदान—रोगोंका दूरकरना, आदिकारण, अपमान, बछड़ाकी रस्सी, ( न० )
निधन—कुल, नाश, ( न० ) ॥८१॥
पत्रिन्—बाण— पक्षी, शिकरा, पर्वत, वृक्ष, रथरवान, रथ, ( पुं० )
पद्मिनी—कमल, कमलिनी, सरोवर, स्त्रीभेद, ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥
पर्वन्—उत्सव, ग्रंथि, अमावस्या, प्रतिपदा, अमावस्या प्रतिपदाकी सन्धि, समानदिनरात्रिवाला काल आदि, प्रस्ताव, लक्षणभेद, ( न० ) ॥ ८३ ॥

पवनोऽस्त्री कुलालस्य पाकस्थानेऽनिले पुमान् ।
निर्विकल्पेऽपि पवनः पक्ष्म लोचनलोमनि ॥ ८४ ॥
पक्ष्म सूत्रादिसूक्ष्मांशे पक्ष्म स्यात्केशरेऽपि च ।
पावनं तु जले कृच्छ्रे पावकाध्यासयोः पुमान् ॥ ८५ ॥
पाठीनस्तु वदाले स्यादपि चित्रवदालके ।
पाठके गुग्गुलुद्रौ च प्रायश्चित्ते तु पाचनम् ॥ ८६ ॥
पाचनी तु हरीतक्यां पाचनो वह्निसिह्लयोः ।
पावनं पावयितरि त्रिपु पूतेऽपि पावनम् ॥ ८७ ॥
वरुणे पुंसि स्यात्पाशी पाशी पाशधरेऽन्यवत् ।
पिशुनो नारदे पुंसि खलसूचकयोस्त्रिषु ॥ ८८ ॥
पिशुनं कुङ्कुमे क्लीबं पृक्काया पिशुना मता ।
पीतनः कपिचूते स्यात्पीतनं पीतदारुणि ॥ ८९ ॥

---

पवन–कुम्हारका पाकस्थान, वायु, निर्विकल्प, ( पुं० )

पक्ष्म–नेत्रोंके लोम, ॥ ८४ ॥ सूत्र आदिका सूक्ष्म अंश, केशर, (न०)

पावन–जल, कृच्छ्र-व्रत आदि, अग्नि, अध्यास, (जैसे रज्जुमें सर्प) (पुं०) ॥ ८५ ॥

पाठीन–मत्स्यभेद, चितकबरामत्स्य-भेद, पढानेवाला, गूगल-वृक्ष,(पुं०)

पाचन–प्रायश्चित्त ( दोपदूरकरनेके-लिये पुण्यकर्म ) (न०) ॥ ८६ ॥

पाचनी–हरड, ( स्त्री० )

पाचन–अग्नि, हींग, ( पुं० )

पावन–पवित्र करनेवाला, पवित्र, ( त्रि० ) ॥ ८७ ॥

पाशिन्–वरुण, ( पुं० ) फाँसीधार-णकरनेवाला, ( त्रि० )

पिशुन–नारदमुनि, ( पुं० ) खल, चुगलखोर, ( त्रि० ) ॥ ८८ ॥

पिशुन–कुंकुम ( केसर ) ( न० )

पिशुना–असवरग-शाक,

पीतन–अंबाड़ा, पीतवृक्ष ॥ ८९ ॥

कुङ्कुमे हरिताले च पूतना राक्षसीभिदि ।
पथ्यायां चाथ पृतनाऽनीकिनीसैन्यभेदयोः ॥ ९० ॥
स्याच्चमूसेनयोश्चाथ प्रज्ञानं लाञ्छने धियि ।
प्रधनं दारुणे सङ्ख्ये प्रधानं परमात्मनि ॥ ९१ ॥
क्षेत्रज्ञधीमहामात्रेऽप्येकत्वे तूत्तमे सदा ।
प्रसूनो वाच्यवज्जाते प्रसूनं फलपुष्पयोः ॥ ९२ ॥
प्रसन्ना मदिरायां स्यात्प्रसादसहिते त्रिषु ।
प्रेत्वा तु सारसे वाते प्रेम तु स्नेहनर्म्मणोः ॥ ९३ ॥
फाल्गुनस्तु तपस्ये स्यादर्जुने चार्जुनद्रुमे ।
फाल्गुनः स्यान्नदीजेऽपि फाल्गुनी पूर्णिमान्तरे ॥ ९४ ॥
वन्धनं तु शतवन्धे वन्धमात्रेऽपि वन्धनम् ।
वर्द्धनं छेदने वृद्धौ वारिधान्यां तु वर्द्धिनी ॥ ९५ ॥

---

केसर, हरिताल, ( पु० )
पूतना–राक्षसीभेद, हरड, ( स्त्री० )
पृतना–सेना–मात्र, सेनाभेद, चमू ( सेनाभेद ), ( स्त्री ) ॥ ९० )
प्रज्ञानं–लाछन ( चिह्न ), बुद्धि, (न०)
प्रधन–कठोर युद्ध, ( न० )
प्रधान–परमात्मा, ( न० ) ॥ ९१ ॥ क्षेत्रज्ञ, बुद्धि, मंत्री, एकत्व, सदा उत्तम, ( न० )
प्रसून–उत्पन्नहुवा, ( त्रि० )
प्रसून–फल, पुष्प, ( न० ) ॥ ९२॥
प्रसन्ना–मदिरा, ( स्त्री० ) प्रसादयुक्त, ( त्रि० )
प्रेत्वन्–सारस-पक्षी, वायु, ( पुं० )
प्रेमन्–स्नेह ( प्रीति ), ठट्ठा, ( न० ) ॥ ९३ ॥
फाल्गुन–फाल्गुनमास, अर्जुन, कोह-वृक्ष, भीष्म, ( पुं० )
फाल्गुनी–फाल्गुनमासकी पूर्णिमा, ( स्त्री० ) ॥ ९४ ॥
वन्धन–शतवंध, वन्धमात्र, ( न० )
वर्द्धन–छेदन, वृद्धि, ( न० )
वर्द्धिनी–जलकी, मटकी ( स्त्री० ) ॥ ९५ ॥

संपूर्वाद्वर्द्धनं पोषे वसनं छादनांशुके ।
वाणिनी तु मत्तानर्त्तक्योर्विदग्धायां स्त्रियामथ ॥ ९६ ॥
वासना वसने वारासनज्ञाने च धूपने ॥
वाहिनी स्यादनीकिन्यां सैन्यभेदे सरित्यपि ॥ ९७ ॥
गुरौ पुंसि वुधानः स्याद्बुधानः पण्डितेऽपि च ।
वोधनी वोधिपिप्पल्योर्वोधनं गन्धदीपने ॥ ९८ ॥
सुरवर्त्मनि च व्योम व्योमचारिणि च स्मृतम् ।
ब्रह्मा विरिञ्चे विप्रेऽपि ऋत्विक्चन्द्रार्कयोगयोः ॥ ९९ ॥
ब्रह्म क्लीवं श्रुतिज्ञानेऽप्यध्यात्मतपसोरपि ।
ब्रह्माण्यां भट्टिनी नाट्ये राजयोषिति भट्टिनी ॥ १०० ॥
भण्डनं तु खलीकारे युद्धसन्नाहयोरपि ।
भर्म्म स्वर्णे भृतौ सारे भवनं भावसद्मनोः ॥ १०१ ॥

---

संवर्द्धन–पोषण, ( न० )
वसन–आच्छादन, वस्त्र, ( न० )
वाणिनी–मदोन्मत्ता स्त्री, नाचनेवाली, चतुरा स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ९६ ॥
वासना–वस्त्र, शतघधआदि, धूपदेना, ( स्त्री० )
वाहिनी–सेना, सेनाभेद, नदी, ( स्त्री० ) ॥ ९७ ॥
वुधान–बृहस्पति, पंडित, ( पुं० )
वोधनी–पीपल-वृक्ष, पिप्पली ( औषधि ( स्त्री० )
वोधन–गन्धदीपन ( गूगल ) (न०) ॥ ९८ ॥
व्योमन्–आकाश, अकाशचारी,(न०)
ब्रह्मन्–ब्रह्मा, ब्राह्मण, यज्ञकरानेवाला, चंद्रसूर्यका योग, ( पुं० ) ॥ ९९ ॥
ब्रह्मन्–श्रुतिज्ञान, ब्रह्मविद्या, तप,(न०)
भट्टिनी–ब्राह्मणी, नाट्यमें राजाकी रानी ( स्त्री० ) ॥ १०० ॥
भण्डन–नहींवुराको वुरा कहना, युद्ध, कवच, ( न० )
भर्मन्–सुवर्ण, नौकरी, सार, ( न० )
भवन–भाव, स्थान, (न०) ॥१०१॥

भाजनं पात्रे योग्येऽपि भावना ध्यानलेपयोः ।
भुवनं तु जगल्लोकसलिलेषु विहायसि ॥ १०२ ॥
भोगी भोगान्विते सर्पे ग्रामण्यां राज्ञि नापिते ।
संगृहीतस्त्रियां राजभार्याभेदेऽपि भोगिनी ॥ १०३ ॥
मंजनं भोजने क्लीबमलंकर्त्तरि वाच्यवत् ।
मदनः स्मरधत्तूरवसन्तद्रुमसिक्थके ॥ १०४ ॥
मलनः पठवासेऽपि स्यान्मलनं कर्द्दमे मतम् ।
पुष्पवत्यां तु मलिनी मलिनं दूषितेऽसिते ॥ १०५ ॥
मार्ज्जनं तु मतं मार्ष्टौ मार्जनो लोध्रपादपे ।
मालिनी वृत्तभेदे स्याद्गङ्गामालिकयोषितोः ॥ १०६ ॥
गौर्यां चम्पानगर्यां च राशौ तु मिथुनः पुमान् ।
मिथुनं दम्पतीयुग्मे सम्बन्धग्राम्यधर्म्मयोः ॥ १०७ ॥

---

भाजन–पात्र, योग्य, ( न० )
भावना–ध्यान, लेप, ( स्त्री० )
भुवन–जगत्, लोक-स्वर्ग आदि, जल, आकाश, ( न० )॥ १०२ ॥
भोगिन्–भोगोंसे युक्त, सर्प, ग्राममें प्रधान, राजा, नाई, ( पुं० )
भोगिनी–विवाहके विना सग्रहकरी हुई स्त्री, पाटरानीके विना राजाकी अन्य रानी, ( स्त्री० ) ॥ १०३ ॥
मंजन–भोजन, ( न० ) भूपितकरनेवाला ( त्रि० ) ।
मदन–कामदेव, धतूरा, वसन्तवृक्ष ( आमका पेड ), मोम, ( पुं० ) ॥ १०४ ॥
मलन–पढनेका स्थान, ( पुं० ) कीच, ( न० )
मलिनी–रजस्वला स्त्री, ( स्त्री० )
मलिन–दूषित, काला (न०) ॥१०५॥
मार्जन–माजना, ( न० ) मार्जन-लोधका वृक्ष, ( पुं० )
मालिनी–छंदभेद, गंगा, मालीकी स्त्री ( मालिन ) ॥ १०६ ॥ गौरी, चंपानगरी, ( स्त्री० )
मिथुन–मिथुन-राशि, ( पु० ) स्त्रीपुरुषका जोडा, सबंध, स्त्रीसग, (न०) ॥ १०७ ॥

मुण्डनं वपने त्राणे मेहनं शिश्नमूत्रयोः ।
मैथुनं स्यान्निधुवने मैथुनं सङ्गतावपि ॥ १०८ ॥
यमनं स्यादुपरमे बन्धने च यमे तथा ।
यापनं वर्त्तने कालक्षेपे निरसनेऽपि च ॥ १०९ ॥
प्रजानो ब्राह्मणेऽपि स्यात्प्रजानः सारथावपि ।
युवा तु तरुणे श्रेष्ठे निसर्गबलशालिनि ॥ ११० ॥
योजनं तु चतुःक्रोश्यां योगे च परमात्मनि ।
रजनी तु हरिद्रायां लाक्षायां नीलिकारसे ॥ १११ ॥
रञ्जनो रागजनके रञ्जनं रक्तचन्दने ।
रञ्जनी नीलिकाशुण्डामञ्जिष्ठारोचनीष्वपि ॥ ११२ ॥
जिह्वाकांचीरसज्ञेषु रसना रसने स्वने ।
स्वेदने मूर्छने भस्त्रावाते नासामरुत्पथे ॥ ११३ ॥

---

मुण्डन–संपूर्ण केशोंका क्षौर, रक्षा, ( न० )

मेहनं–लिंग, मूत्र, ( न० )

मैथुन–स्त्रीसंग, संगति, ( न० ) ॥ १०८ ॥

यमन–उपराम, बन्धन, यम ( अष्टांगयोगका एक अंग ), ( न० )

यापन–वर्तना, कालक्षेपकरना, निकासना, ( न० ) ॥ १०९ ॥

प्रजान–ब्राह्मण, सारथि, ( पुं० )

युवन्–जवान, श्रेष्ठ, स्वाभाविक बलवान्, ( पुं० ) ॥ ११० ॥

योजन–चारकोश, योग, परमात्मा, ( न० )

रजनी–हलदी, लाख, नीलिका रस, ( स्त्री० ) ॥ १११ ॥

रंजन–प्रसन्नकरनेवाला, ( पुं० )

रंजन–रक्त चंदन ( न० )

रंजनी–नीली, मदिरा, मँजीठ, गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ ११२ ॥

रसना–जिह्वा, करधनी, रसका जाननेवाला, स्वाना, शब्द, पसीनादिवाना, मूर्छा, धमनीका वायु, नासिकावायुका मार्ग (स्त्री०) ॥ ११३ ॥

राणी तु कोपने रक्ते रागयुक्तेऽपि कामिनि ।
राजा चन्द्रे नृपे शक्रे क्षत्रिये प्रभुयक्षयोः ॥ ११४ ॥
राधनं साधने प्राप्तौ तोषणेऽपि च राधनम् ।
रेचनी त्रिवृता शुण्डा रोचनी दन्तिकार्थिका ॥ ११५ ॥
रोचनो रक्तकह्लारे कूटशाल्मलिशाखिनि ।
अपि गोपित्तमङ्गलरचितस्त्रीषु रोचना ॥ ११६ ॥
रोदनं क्रन्दनेऽपि स्यादश्रुमात्रेऽपि रोदनम् ।
रोही रोहितके बोधिद्रुमे न्यग्रोधपादपे ॥ ११७ ॥
लङ्घनं क्रमणे पीडाकृतोपवसने प्लुतौ ।
ललना तु नितम्बिन्यां जिह्वायां नाडिकान्तरे ॥ ११८ ॥
लक्ष्म चिह्ने प्रधानेऽपि लाञ्छनं नामलक्ष्मणोः ।
लेखनं तु लिपिन्यासे छर्दे भूर्जेऽपि लेखनम् ॥ ११९ ॥

---

रागिन्—क्रोधी, अनुरक्त, राग (प्रीति) वाला, कामी, ( पु० )
राजन्—चन्द्रमा, राजा, इन्द्र, क्षत्रिय, प्रभु ( समर्थ ) यक्ष, ( पुं० ) ॥ ११४ ॥
राधन—साधन, प्राप्ति, तुष्टि, ( न० )
रेचनी—निसोथ, मदिरा, ( स्त्री० )
रोचनी—जमालगोटाकी जड़, वेश्या, ( स्त्री० ) ॥ ११५ ॥
रोचन—लालकमल, कालासेमर-वृक्ष, ( पुं० )
रोचना—गोरोचन, मंगलरचित (चौक ) स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ११६ ॥
रोदन—आवाजसे रोना, आँसूढालना, ( न० )
रोहिन्—हरीतावृक्ष, पीपल-वृक्ष, बड़-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ११७ ॥
लंघन—चलना, पीडामेंकिया उपवास, कूदना, ( न० )
ललना—स्त्री, जिह्वा, नाडीभेद,(स्त्री०) ॥ ११८ ॥
लक्ष्मन्—चिह्न, प्रधान, ( न० )
लांछन—नाम, चिह्न, ( न० )
लेखन—लिपिन्यास ( लिखना ), छर्द ( कय ), भोजपत्र,(न०)॥११९॥

वचक्नुर्वाक्पटौ विप्रे वशी सुगतशक्रयोः ।
वपनं मुण्डने वापे वमनं छर्द्दनेऽर्द्दने ॥ १२० ॥
आहुतावप्यथ क्लीबं वर्जनं त्यागहिंसयोः ।
वर्त्तनं जीवने जीव्ये तूलनाले च वर्त्तनम् ॥ १२१ ॥
वर्त्तनी तर्कुपिण्डेऽपि मलिने पथि वर्त्तनी ।
वर्णी चित्रकरे ब्रह्मचारिलेखकयोरपि ॥ १२२ ॥
आकारे शोभने वर्ष्म वर्ष्म देहप्रमाणयोः ।
वर्त्म नेत्रच्छदे मार्गे वाग्ग्मी वाचस्पतौ पटौ ॥ १२३ ॥
वाजी वाहे खगे बाणे स्त्रैंषु त्रिषु वामनः ।
वामनो विष्णुभेदे स्यादश्वे याम्यादिदिग्गजे ॥ १२४ ॥
विक्लिन्नस्तिमिते जीर्णे जराजीर्णेऽपि वाच्यवत् ।
विच्छिन्नस्तु समालब्धे विभक्ते कुटिलेऽन्यवत् ॥ १२५ ॥

---

वचक्नु–बहुतबोलनेवाला, ( त्रि० ) ब्राह्मण, ( पुं० )

वशिन्–बुद्धदेव, इंद्र, ( पुं० )

वपन–मुण्डन, बोना-बीजआदिका ( न० )

वमन–छर्दन, अर्दन (पीडन) ॥१२०॥ जानसे मारना, ( न० )

वर्जन–त्याग, हिंसा, ( न० )

वर्त्तन–जीना, आजीविका, रुईकी- नाली, ( न० ) ॥ १२१ ॥

वर्त्तनी–कुकडी, मलिन, मार्ग,(स्त्री०)

वर्णिन्–चित्रकार, ब्रह्मचारी, लेखक ( पुं० ) ॥ १२२ ॥

वर्ष्म–आकार, सुंदर, शरीर, प्रमाण, ( न० )

वर्त्मन्–पलक, मार्ग, ( न० )

वाग्मिन्–बृहस्पति, चतुर, ( पुं० ) ॥ १२३ ॥

वाजिन्–अश्व, पक्षी, बाण, ( पुं० )

वामन–बौना, ( त्रि० ) विष्णु अव- तार ( वामन ), अश्वभेद, दक्षिण दिशाका हस्ती, (पु०) ॥ १२४ ॥

विक्लिन्न–गलाहुवा, जीर्ण, ( पुं० ) वृद्धअवस्थासे जीर्ण ( वृद्ध ) ( त्रि० )

विच्छिन्न–अच्छेप्रकारसे लब्ध, वि- भागकियाहुवा, कुटिल, ( त्रि० ) ॥ १२५ ॥

विज्ञानं कार्म्मणे ज्ञाने वितानं रिक्तमन्दयोः ।
त्रिषु न स्त्री वितानं स्याद्विस्तारोल्लोचयोर्मखे ॥ १२६ ॥
वस्त्रवेश्मन्यवसरे वृत्ते च क्रतुकर्म्मणि ।
विपन्नो भुजगे पुंसि त्रिपु नष्टे विपद्गते ॥ १२७ ॥
विमानो व्योमयानेऽस्त्री सप्तभूमौ गृहेऽपि च ।
विलग्नस्त्वंगमध्ये स्यात्रिष्वेव चाङ्गलग्नयोः ॥ १२८ ॥
विषघ्नस्तु शिरीषे स्याद्गुडूचीत्रिवृतोः स्त्रियाम् ।
वृजिनं कलुषे क्लीबं केशे ना कुटिले त्रिषु ॥ १२९ ॥
वृषा सुरेश्वरे कर्णे वेदना ज्ञानपीडयोः ।
वेष्टनं कर्णशष्कुल्यामुष्णीषे मुकुटे वृतौ ॥ १३० ॥
व्यञ्जनं तेमने श्मश्रुचिह्नावयवकादिषु ।
स्वातंत्र्यकृत्ये व्युत्थानं विरोधाचरणेऽपि वा ॥ १३१ ॥

---

विज्ञान–औषधियोंके योगसे उच्चाटन आदिकर्म, ज्ञान, ( न० )
वितान–रीता, मद, ( त्रि० ) विस्तार, चँदोवा, यज्ञ, ॥ १२६ ॥ तंबूडेरा, अवसर, वृत्तांत, यज्ञकर्म ( पुं० न० )
विपन्न–सर्प, ( पुं० ) नष्ट, विपत्को प्राप्त, ( त्रि० ) ॥ १२७ ॥
विमान–आकाशमें चलनेवाला रथ, सातखना घर, ( पुं०न० )
विलग्न–अंगका मध्यभाग ( कटि ), जन्मलग्न, लग्नमात्र ( मेषादि ) ( त्रि० ) ॥ १२८ ॥
विषघ्न–सिरस वृक्ष, ( पुं० ) गिलोय, निसोथ ( स्त्री० )
वृजिन–पाप, ( न० ) केश, (पुं०) कुटिल, ( त्री० ) ॥ १२९ ॥
वृषन्–इंद्र, कर्ण, ( पु० )
वेदना–ज्ञान पीड़ा, ( स्त्री० )
वेष्टन–कानकी शष्कुली, पगडी, मुकुट, चारोतरफका घेरा ( न० ) ॥ १३० ॥
व्यंजन–शाक व कढी आदि, मूँछडाढी' चिह्न, अवयव आदि, ( न० )
व्युत्थान–स्वतंत्रतासे कृत्य, विरोधका आचरण, ( न० ) ॥ १३१ ॥

व्यसनं त्वशुभे सक्तौ पानस्त्रीमृगयादिषु ।
दैवानिष्टफले पाके विपत्तौ विफलोद्यमे ॥ १३२ ॥
सक्तिमात्रे सुचरिताद्भ्रंशे कोपजदूषणे ।
शकुनं मङ्गलाशंसिनिमित्ते शकुनः खगे ॥ १३३ ॥
शकुनिः पुंसि विहगे सौबल्ये करणान्तरे ।
शङ्खिनी शङ्खयूथे स्याद्भुजङ्गस्त्रीप्रभेदयोः ॥ १३४ ॥
शङ्खिनी वेतपुन्नागे चोरपुष्प्यां च शङ्खिनी ।
शतघ्नी शस्त्रभेदेऽपि वृश्चिकालीकरञ्जयोः ॥ १३५ ॥
शमनस्तु यमे शान्तिवधयोः शमनं मतम् ।
शयनं तल्पमात्रेऽपि निद्रासुरतयोरपि ॥ १३६ ॥
शाखी महीरुहे वेदे तुरुष्काख्यजनेऽपि च ।
शास्त्राज्ञाराजदत्तोर्वीराजलेखेषु शासनम् ॥ १३७ ॥

---

व्यसन–अशुभ, आसक्ति, पान, स्त्री, शिकार, भाग्यवशसे अनिष्टफल, कर्मफल, विपत्ति, विफलउद्यम, ॥ १३२ ॥ आसक्तिमात्र, अच्छे चरितसे गिरना, कोपसे उत्पन्नहुवा दोष, ( न० )

शकुन–मंगलको कहनेवाला निमित्त, ( न० ) पक्षी, (पुं०) ॥ १३३ ॥

शकुनि–पक्षी, कौरवोंका मामा, करणभेद, ( पु० )

शंखिनी–शंखसमूह, सर्पभेद, स्त्रीभेद, ॥ १३४ ॥ सफेद-पुन्नाग वृक्ष, चोरहुली, ( स्त्री० ) ।

शतघ्नी–शस्त्रभेद, वृश्चिकाली, करजुवा, ( स्त्री० ) ॥ १३५ ॥

शमन–धर्मराज, ( पुं० ) शांति, हिंसा, ( न० ) ।

शयन–शय्यामात्र, निद्रा, स्त्रीसंग, ( न० ) ॥ १३६ ॥

शाखिन्–वृक्ष, वेद, तुरुष्कजानिजन, ( पु० )

शासन–शास्त्र, आज्ञा, राजाकी दीहुई पृथ्वी, राजाका लेख, (न०) ॥ १३७ ॥

शिखी केतुग्रहे वह्नौ मयूरे कुक्कुटे शरे ।
बलीवर्दे बके वृक्षे व्रतिभेदसचूडयोः ॥ १३८ ॥
शिल्पी तु वाच्यवत्कारौ नासिकाया तु शिल्पिनी ।
शृङ्गी नागेऽपि वृषभे पर्वतेऽपि महीरुहे ॥ १३९ ॥
शोभनो योगभेदे ना शोभनः सुन्दरे त्रिषु ।
श्रीघनः सुगते भिक्षौ श्रीघनं दधि न द्वयोः ॥ १४० ॥
श्लेष्मघ्नी मल्लिकायां स्यात्कम्पिल्लकफणिज्जयोः ।
श्वसनः पवने श्वासे श्वसनो मदनद्रुमे ॥ १४१ ॥
सन्धानं स्यादभिषवे क्लीबं सङ्घट्टनेऽपि च ।
सन्धिनी तु वृषाक्रान्ताऽकालदुग्धगवोः स्मृता ॥ १४२ ॥
समानो नाभिपवने सदेकसदृशे त्रिषु ।
सम्पन्नं त्रिषु सम्पत्तिसहिते साधितेऽपि च ॥ १४३ ॥

---

शिखिन्—केतु-ग्रह, अग्नि, मोर, मुर्गा, शर, बैल, बगला, वृक्ष, व्रति-भेद, ( पुं० ) चोटीवाला, (त्रि०) ॥ १३८ ॥
शिल्पिन्—कारीगर, (त्रि०)
शिल्पिनी—नासिका, अडूसा—औषध, ( स्त्री० )
शृंगिन्—नाग, बैल, पर्वत, वृक्ष, ( पु० ) ॥ १३९ ॥
शोभन—योगभेद, ( पुं० )
शोभन—सुंदर, ( त्रि० )
श्रीघन—बुद्ध भगवान्, भिक्षु, (पुं०) दही, ( न० ) ॥ १४० ॥
श्लेष्मघ्नी—मोतियाभेद कवीला, छोटे-पत्तोंकी तुलसी, ( स्त्री० )
श्वसन—वायु, श्वास, अकोट-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १४१ ॥
संधान—जोडना, घडना, ( न० )
संधिनी—बैल ( साड ) की दवाईहुई गौ, बिनासमय दुग्धदेनेवाली गौ, ( स्त्री० ) ॥ १४२ ॥
समान—नाभिका वायु, श्रेष्ठ, एक, तुल्य, ( त्रि० )
संपन्न—सपत्तिसहित, साधित, (त्रि०) ॥ १४३ ॥

संव्यानमुत्तरासङ्गे संव्यानं छादने तथा ।
सवनं यजने स्नाने सोमनिर्दमने मतम् ॥ १४४ ॥
सादी तु सारथौ वाहवाहके हस्तिवाहके ।
साधनं मेहने सैन्ये निवृत्तिगतिसिद्धिषु ॥ १४५ ॥
करणे चोपकरणे मृतसंस्करणे वधे ।
द्रवणे चानुव्रज्यायामुपाये दापने धने ॥ १४६ ॥
साधनो यज्ञकर्म्मान्ते यजमानप्रचेतसोः ।
मर्यादायां स्त्रिया सीमा क्षेत्रे घाटे स्थितावपि ॥ १४७ ॥
सूचनाऽभिनये दृष्टौ गन्धने व्यधनेऽपि च ।
सेचनं सेकपात्रे स्यात्सेकरक्षणयोरपि ॥ १४८ ॥
सेनापतौ तु सेनानीः सेनानीः शरजन्मनि ।
सेवनं सीवने क्लीवं सेवायामपि सेवनम् ॥ १४९ ॥

---

संव्यान–दुपट्टा, टकना, ( न० )
सवन–पूजन, स्नान, सोमवल्लीका निचोडना ( न० ) ॥ १४४ ॥
सादिन्–रथका सारथि, अश्वका, चलानेवाला ( सवार ), फीलवान ( पु० )
साधन–लिंग, सेना, निवृत्ति, गति, सिद्धि, ॥ १४५ ॥ करण, उपकरण, मृतका सस्कार, वध ( मारना ), क्षिरना, उपासना करना, उपाय, दिवाना, धन, ( न० ) ॥ १४६ ॥
साधन–यज्ञकर्मका अत, यजमान, वरुण, ( पु० )
सीमन्–मर्यादा, क्षेत्र, घाट, स्थिति, ( स्त्री० ) ॥ १४७ ॥
सूचना–जनाना, दृष्टि, गन्धन, वीधना, ( स्त्री० )
सेचन–सींचनेका पात्र, सींचना, रक्षा करनी, ( न० ) ॥ १४८ ॥
सेनानी–सेनापति, स्वामिकार्त्तिक, ( पुं० )
सेवन–सीना वस्त्रआदिका, सेवा, (न०) ॥ १४९ ॥

संस्थानमाकृतौ सन्निवेशे मृत्यौ चतुष्पथे ।
स्तननं जलदध्वाने ध्वनिमात्रेऽपि कुन्थने ॥ १५० ॥
स्थापनं स्यात्पुंसवने समाधावर्पणेऽपि च ।
स्पर्शनः पवने पुंसि स्पर्शनं स्पर्शदानयोः ॥ १५१ ॥
स्यन्दनं प्रस्रवे नीरे स्यन्दनस्तिनिशे रथे ।
स्रंसनं रेचने पाते पृथग्भावातिसारयोः ॥ १५२ ॥
स्वामी प्रभौ विशाखे च हली स्यात्कर्षके बले ।
अङ्गारधान्यां हसनी हसनं हसिते मतम् ॥ १५३ ॥
हस्तिनी नायिकाभेदे हस्तिनी हस्तियोषिति ।
हायनो वत्सरे न स्त्री व्रीहिभेदार्चिषोः पुमान् ॥ १५४ ॥
हिण्डनं सुरते केलौ ह्रादिनी वज्रविद्युतोः ।

नचतुर्थम् ।

अथर्वा द्विजभेदे स्याद्वेदेऽथर्वं नपुंसकम् ॥ १५५ ॥

---

संस्थान-आकृति अच्छीतरह बनाहुवा वासस्थान, मृत्यु, चुराहा, ( न० )
स्तनन-मेघका शब्द, ध्वनिमात्र, सुकड़ना, ( न० ) ॥ १५० ॥
स्थापन-पुंसवन, समाधि, अर्पणकरना ( न० )
स्पर्शन-वायु, ( पुं० ) स्पर्शन, स्पर्शकरना, दानकरना, ॥ १५१ ॥
स्यन्दन-झिरना, जल, ( न० )
स्यन्दन-तिनिश वृक्ष, रथ, ( पु० )
स्रंसन-जुलाब, पड़ना, पृथग्भाव, अतिसार ( बहुत दस्तलगना ) ( न० ) ॥ १५२ ॥
स्वामिन्-प्रभु ( स्वामी ), स्वामिकार्तिक, ( पु० )
हलिन्-किसान, बलदेव, ( पुं० )
हसनी-सिगड़ी ( स्त्री० )
हसन-हँसना ( न० ) ॥ १५३ ॥
हस्तिनी-स्त्रीभेद, हथिनी, ( स्त्री० )
हायन-वर्ष, ( पुं०न० ) व्रीहिभेद, दीपआदिकी ज्वाला, ( पु० ) १५४
हिण्डन-स्त्रीसग, क्रीडा, ( न० )
ह्रादिनी-वज्र, बिजली, ( स्त्री० )

नचतुर्थ ।

अथर्वन्-द्विजभेद, ( पुं० )
अथर्व-वेदभेद, ( न० ) ॥ १५५ ॥

अधिष्ठानं प्रभावेऽपि पुरेऽन्यासनचक्रयोः ।
अनूचानो विनीतेऽपि साङ्गवेदविचक्षणे ॥ १५६ ॥
नयनाग्रेऽप्यनूचानः पुमानेव क्वचिन्मतः ।
अन्वासनं तु सेवायां स्नेहवस्तावुपासने ॥ १५७ ॥
अपाचीनं त्रिषु विपर्यस्ते दक्षिणसम्भवे ।
जन्मभूम्यामभिजनः कुले ख्यातौ कुलध्वजे ॥ १५८ ॥
अभिपन्नोऽपराद्धेऽभिद्रुते ग्रस्ते विपद्गते ।
दक्षिणे स्वीकृतेऽपि स्यादभिपन्नोऽभिधेयवत् ॥ १५९ ॥
अभिमानः पुमान्गर्वेऽज्ञानेऽप्रणयहिंसयोः ।
अर्यमा मिहिरे सूर्यसुतायां पितृदैवते ॥ १६० ॥
अवदानं मतमिति वृत्तकर्म्मणि खण्डने ।
तनुमध्येऽवलग्नः स्यात्संलग्ने त्वभिधेयवत् ॥ १६१ ॥

---

अधिष्ठान-प्रभाव, पुर, स्थितहोना, चक्र, ( न० )
अनूचान-विनीत, अंगसहित वेदपढनेवाला, ( पु० ) ॥ १५६ ॥
अनूचान-अच्छा नीतिजाननेवाला, ( पु० )
अन्वासन-सेवा, स्नेहवस्ति ( वस्तिकर्म ), उपासना ( न० )॥१५७॥
अपाचीन-विपर्यस्त ( उलटा ), दक्षिणदिशामें होनेवाला, ( त्रि० )
अभिजन-जन्मभूमि, कुल, विख्याति, कुलध्वज, ( पुं० ) ॥ १५८ ॥
अभिपन्न-अपराधयुक्त, भगाहुवा, ग्रस्तहुवा, विपत्को प्राप्तहुवा, (पुं०) चतुर, अंगीकारकियाहुवा ( त्रि०) ॥ १५९ ॥
अभिमान-गर्व, अज्ञान, अप्रणय ( अप्रता ), हिंसा, ( पुं० )
अर्यमन्-सूर्य ( पुं० ) सूर्यकी लागीहुई दिशा ( स्त्री० ) पितरोंका देवता, ( पुं० ) ॥ १६० ॥
अवदान-वदीतहुवा, कर्म, खण्डन, टुकडाकरना, ( न० )
अवलग्न-शरीरका बीच, अच्छीतरह, लगाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १६१ ॥

स्यादाकलनमाकाङ्क्षापरिसङ्ख्याविबन्धने ।
आच्छादनं पिधाने स्याद्वसनेनापवारणे ॥ १६२ ॥
आतञ्चनं प्रतीवापजवनाप्यायने मतम् ।
आत्मयोनिर्विरिञ्चे स्यादात्मयोनिर्मनोभवे ॥ १६३
आवेशनं शिल्पिगृहे भूतावेशे प्रवेशने ।
आयोधनं भवेद्युद्धे वधेऽप्यायोधनं मतम् ॥ १६४ ॥
आराधनं तु पूजायां पाकप्रापणयोरपि ।
आस्कन्दनं तिरस्कारे तथा संशोषणे रणे ॥ १६५ ॥
उत्पतनं समुत्पत्तौ भवेदूर्द्ध्वगतावपि ।
उत्सादनं समुल्लेखोद्वर्त्तनोद्वासनार्थकम् ॥ १६६ ॥
भवेदुदयनो वत्सराजे कलशसम्भवे ।
उद्वर्त्तनमुत्पतनाऽपावर्त्तनविलेपने ॥ १६७ ॥

---

आकलन-आकाङ्क्षा, गिन्तीकरना, विशेष करके बंधन, ( न० )
आच्छादन-छिपाना, वस्त्रसे ढका, ( न० ) ॥ १६२ ॥
आतंचन-प्रतीवाप ( सींचना ), वेग, तृप्ति, ( न० )
आत्मयोनि-ब्रह्मा, कामदेव, (पुं०) ॥ १६३ ॥
आवेशन-शिल्पीका घर, भूतका आवेश ( प्रवेश ), प्रवेश, ( न० )
आयोधन-युद्ध, वध ( मारना ) ( न० ) ॥ १६४ ॥
आराधन-पूजा, पाक ( रसोईकरना ), प्राप्त कराना, ( न० )
आस्कंदन-तिरस्कार, शोषणकरना, रण, ( न० ) ॥ १६५ ॥
उत्पतन-उत्पत्ति, ऊर्द्ध्वगति, ( न० )
उत्सादन-उल्लेख ( लिखना ), उबटनलगाना, उजाडना, ( न० ) ॥ १६६ ॥
उदयन-वत्सराज ( चन्द्रवंशका एक राजा ) अगस्त्यमुनि, ( पुं० ) ।
उद्वर्त्तन-ऊपरको उछलना, निकालना, विलेपन, ( न० ) ॥१६७॥

उद्वाहनं द्विसीत्ये स्यादूरज्ज्वावुद्वाहिनी मता ।
अंशुके रूपधानं स्याद्विशेषप्रणयेपि च ॥ १६८ ॥
उपासनं शराभ्यासे शुश्रूषाहिंसयोरपि ।
कञ्चुकी सौविदल्लेपि सर्पे खिङ्गेऽपि जोङ्गके ॥ १६९ ॥
शिरीषाम्रातकाश्वत्थगर्दभाण्डे कपीतनः ।
कलध्वनिः कलरवे कपीतपिकबर्हिपु ॥ १७० ॥
कलापी प्लक्षवृक्षे स्यान्मेघनादानुलासिनि ।
कात्यायनो वररुचौ गौर्यां कात्यायनी स्त्रियाम् ॥ १७१ ॥
काषायवस्त्रार्द्धवृद्धविधवायामपि स्मृता ।
रक्तचन्दनपत्राङ्गद्रुमभेदे कुचन्दनम् ॥ १७२ ॥
कुण्डली वरुणे केकिमृगाहिपु सकुण्डले ।
कुम्भयोनिरगस्त्ये स्यादर्जुनस्य गुरावपि ॥ १७३ ॥

---

उद्वाहन–दोवार वाहाहुवा क्षेत्र,(न०) उद्वाहिनी–रज्जु (रस्सी) (स्त्री०) ॥ १६८ ॥
उपासन–बाणछोडनेका अभ्यास, शुश्रूषा, हिंसा, ( न० )
कंचुकिन्–ड्योढीपर रहनेवाला, सर्प, चतुरनर, अगर-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १६९ ॥
कपीतन–सिरस, अबाडा, पीपल बहीहरस, ( पुं० )
कलध्वनि–मधुरशब्द, कबूतर, पपीहा, मोर ( पुं० ) ॥ १७० ॥
कलापिन्–पिलखन-वृक्ष, मोर,(पुं०)
कात्यायन–वररुचि, ( पुं० )
कात्यायनी–गौरी, ॥ १७१ ॥ गेरूके-रंगे वस्त्रधारनेवाली अधबूढी विधवा ( स्त्री० )
कुचंदन–रक्तचंदन, पतंग-वृक्ष या भोजपत्र-वृक्ष, ( न० ) ॥ १७२ ॥
कुंडलिन्–वरुण, मोर, मृग, सर्प, कुंडलवाला, ( पुं० )
कुंभयोनि–अगस्त्यमुनि, अर्जुनका गुरु, ( पुं० ) ॥ १७३ ॥

केशरी सिंहपुन्नागनागकेशरवाजिषु ।
क्रौञ्चादनस्तु पिप्पल्यां चिञ्चोटकमृणालयोः ॥ १७४ ॥
खकामिनी तु निर्दिष्टा चर्चिकाचिल्लयोषितोः ।
खड्गधेनुः स्त्रियां खड्गपुत्रिकागण्डकस्त्रियोः ॥ १७५ ॥
गदयित्नुस्तु जल्पाके कामकामुकयोरपि ।
गवादनीन्द्रवारुण्यां गवां घासादपाश्रये ॥ १७६ ॥
घनाघनो वर्षुकाब्दे शक्रे मत्तद्विपे घने ।
अन्योन्याद् घट्टके चैव घातुके तु घनाघनः ॥ १७७ ॥
घोषयित्नुः पिके विप्रे चित्रभानुरिनेऽनले ।
चोलकी नागरङ्गे स्यात्करीरे किष्कुपर्वणि ॥ १७८ ॥
वर्त्तते कङ्कक....वुघाराटेषु जलाटनः ।
जलाटनं जलभ्रान्तौ जलौकायां जलाटनी ॥ १७९ ॥

---

केशरिन्—सिंह, चपा, नागकेसर, अश्व, ( पुं० )

क्रौंचादन—पिप्पली, चिंचोटक-तृण, कमल, ( पुं० ) ॥ १७४ ॥

खकामिनी—रोगभेद, चील्हपक्षीकी स्त्री ( स्त्री० )

खड्गधेनु—छुरी, गैंडाकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ १७५ ॥

गदयित्नु—बहुत बोलनेवाला, कामदेव, कामी—पुरुष ( पु० )

गवादनी—गडूंभा, गौवोंके घास चरनेका स्थल, ( स्त्री० ) ॥ १७६ ॥

घनाघन—वर्षनेवाला मेघ, इंद्र, मत्तहस्ती, मेघमात्र, आपसमें घडनेवाला, मारनेवाला, ( पु० )॥१७७

घोषयित्नु—कोयल, ब्राह्मण, ( पुं० )

चित्रभानु—सूर्य, अग्नि ( पुं० )

चोलकिन्—नारगी, कैर, ईख या वास, ( पुं० ) ॥ १७८ ॥

जलाटन—...जलमें चलना ( न० )

जलाटनी—जोक, ( स्त्री० ) ॥१७९॥

जलमीनश्चिलिचिमे इश्वाकशिशुमारयोः ।
तपोधना तु मुण्डीर्यां तपस्विनि तपोधनः ॥ १८० ॥
तपस्वी तापसे चानुकम्प्ये चाथ तपस्विनी ।
मासिकाकटुरोहिण्योस्तरस्वी वेगिशूरयोः ॥ १८१ ॥
दुर्नामा पङ्कशुक्तौ दुर्नाम क्लीवमर्शसि ।
देवसेना तु गीर्वाणसेना देवेन्द्रकन्ययोः ॥ १८२ ॥
द्विजन्मा ब्राह्मणेऽपि स्याद् द्विजन्मा दशने खगे ।
करिमुद्गरिकानागयष्ट्योर्नागाङ्गना स्त्रियाम् ॥ १८३ ॥
मतं भवेन्निधुवनं सुरते कम्पनेऽपि च ।
स्यान्निरासे निरसनं वधे निष्ठीवने तथा ॥ १८४ ॥
निर्वासनं तु निर्वासहिंसयोर्गतवासरे ।
निर्भत्सनं तु निर्दिष्टं खलीकारेऽप्यलक्तके ॥ १८५ ॥

---

जलमीन–जलका तृण (सिवाल) चरनेवाली मच्छी,... शिशुमार मच्छ ( पुं० )
तपोधना–गोरखमुंडी, ( स्त्री० )
तपोधन–तपस्वी, ॥ १८० ॥
तपस्विन्–तपस्वी, दयाकरने योग्य, ( पु० )
तपस्विनी–जटामासी,कुटकी,(स्त्री०)
तरस्विन्–वेगवाला, शूरवीर, (पुं०) ॥ १८१ ॥
दुर्नामन्–जोंकके समान कीचका जन्तु, ( स्त्री० ) दुर्नामन्–बवासीर ( न० )
देवसेना–देवताओंकी सेना, इंद्रकी कन्या, ( स्त्री० ) ॥ १८२ ॥
द्विजन्मन्–ब्राह्मण, दाँत, पक्षी,(पुं०)
नागाङ्गना–हस्तियोंका मुद्गर, नागरवेल, ( स्त्री० ) ॥ १८३ ॥
निधुवन–मैथुन, कंपन, ( न० )
निरसन–निकालना, मारना, थूकना, ( न० ) ॥ १८४ ॥
निर्वासन–उजाड़ना, हिंसा, गया-हुवा दिन, ( न० )
निर्भर्त्सन–झिड़कना, जावक, (न०) ॥ १८५ ॥

दाने न्यासार्पणे वैरशुद्धौ निर्यातनं मतम् ।
श्रुतौ दृष्टौ निशमनं दृष्टयालोचे निशामनम् ॥ १८६ ॥
तपस्विनी पुनर्मांसी कटुरोहिणिकाऽपि च ।
परिज्वा तु पुमानिंदौ याज्ञिके परिचारके ॥ १८७ ॥
पलाशी राक्षसे वृक्षेऽप्यथ पुण्यजनः पुमान् ।
रक्षःसज्जनयक्षेषु मूर्खे नीचे पृथग्जनः ॥ १८८ ॥
भवेत्प्रजननं योनौ जन्मप्रजनयोरपि ।
प्रणिधानं प्रयत्ने स्यात्समाधौ च प्रवेशने ॥ १८९ ॥
प्रतिमानं प्रतिकृतौ गजदन्तान्तरालके ।
प्रतिपन्नः प्रतिज्ञाते विज्ञातेऽप्यभिधेयवत् ॥ १९० ॥
प्रतिपन्नस्तु संस्कारे लिप्सायामप्युपग्रहे ।
प्रत्यर्थी वाच्यलिङ्गः स्याद्विद्वेषिप्रतिवादिनोः ॥ १९१ ॥

---

निर्यातनं–दान, धरोहड रखना, वैरका त्यागना, ( न० )
निशमन–सुनना, देखना, ( न० )
निशामन–दृष्टिसे देखना, ( न० ) ॥ १८६ ॥
तपस्विनी–जटामासी, कुटकी, ( त्रि० )
परिज्वान्–चंद्रमा, यज्ञकरानेवाला, शुश्रूषा करनेवाला, (पुं०) ॥१८७॥
पलाशिन्–राक्षस, वृक्ष, ( पुं० )
पुण्यजन–राक्षस, सज्जन, यक्ष, (पुं०)
पृथग्जन–मूर्ख, नीच, (पुं०)॥१८८॥
प्रजनन–योनि, जन्म, गर्भग्रहण करना, ( न० )
प्रणिधान–प्रयत्न, समाधि, प्रवेशन, ( न० ) ॥ १८९ ॥
प्रतिमान–मूर्त्ति, हस्तिदंत, वीच, ( न० )
प्रतिपन्न–प्रतिज्ञाकिया हुवा, जाना-हुवा, ( त्रि० ) ॥ १९० ॥
प्रतिपन्न–सत्कार, लाभ करनेकी इच्छा, उपग्रह, ( पुं० )
प्रत्यर्थिन्–विद्वेषी, प्रतिवादी, (त्रि०) ॥ १९१ ॥

प्रयोजनं मतं कार्ये हेतौ च स्यात्प्रयोजनम् ।
भवेत्प्रवचनं वेदे प्रकृष्टवचनेऽपि च ॥ १९२ ॥
प्रस्फोटनं तु सूर्पे स्यात्ताडनेऽपि प्रकाशने ।
प्रसाधनी कंकतिकासिद्ध्योर्वेशे प्रसाधनम् ॥ १९३ ॥
क्लीवं प्रहसनं भङ्गे प्रहासाक्षेपयोरपि ।
फलकी राजसफरे तथा फलकपाणिके ॥ १९४ ॥
वर्द्धमानः शरावैरण्डयोः प्रश्नान्तरेऽच्युते ।
दृश्यते वर्द्धमानस्तु वृद्धिमत्यपि वाच्यवत् ॥ १९५ ॥
वारकी द्विषि पाथोधौ पर्णाजीवे ह्यान्तरे ।
वारासनं वाःसदने शूलापद्वारपालयोः ॥ १९६ ॥
परमेष्ठिनि भूतात्मा भूतात्मा पिङ्गलेऽपि च ।
मदयित्नुर्मतो मेघे मदयित्नुस्तु शीधुनि ॥ १९७ ॥

---

प्रयोजन–कार्य, कारण, ( न० )
प्रवचन–वेद, श्रेष्ठ वचन, ( न० ) ॥ १९२ ॥
प्रस्फोटन–सूर्प, ( छाज ), ताडना, प्रकाशन, ( न० )
प्रसाधनी–कंघी, सिद्धि, ( स्त्री० )
प्रसाधन–वेश ( शृंगार ) ( न० ) ॥ १९३ ॥
प्रहसन–एकप्रकारका काव्य, हँसना, आक्षेप, ( न० )
फलकिन्–मच्छी–भेद, ढालधारी, ( पुं० ) ॥ १९४ ॥
वर्द्धमान–मिट्टीका शराव, अरंड, प्रश्नभेद, विष्णु ( पुं० ) वृद्धिवाला, ( त्रि० ) ॥ १९५ ॥
वारकिन्–शत्रु, समुद्र, पत्तोंसे आजीविका करनेवाला, अश्वभेद, ( पुं० )
वारासन–जलस्थान ( न० ) त्रिशूल, अपद्वारपाल ( मकानकी पिछाडीकी रक्षावाला ) ( पुं० ) ॥ १९६ ॥
भूतात्मन्–ब्रह्मा, पिंगलवर्ण, ( पुं० )
मदयित्नु–मेघ, मदिरा ( पुं० ) ॥ १९७ ॥

महाधनं महामूल्ये चारुवस्त्रेऽपि सिह्लके ।
महामुनिरगस्त्ये स्याद्धान्याकागस्त्ययोरपि ॥ १९८ ॥
महासेनो विशाखेऽपि महासेनापतावपि ।
मातुलानी तु भङ्गायां कलाये मातुलस्त्रियाम् ॥ १९९ ॥
मालुधानश्चित्रसर्पे महापद्मे लतान्तरे ।
मालुधान्यथ मेधावी वाच्यवन्मेधयान्विते ॥ २०० ॥
ब्राह्म्यां मेधाविनी ख्याता गरुडेपि रसायनः ।
रसायनं जराव्याधिहरे विषविडङ्गयोः ॥ २०१ ॥
राजादनं प्रियालद्रौ क्षीरिकायां च किंशुके ।
ललामवल्ललामं च चिह्ने रम्ये विभूषणे ॥ २०२ ॥
शृङ्गे प्रधाने लाङ्गूले प्रभावध्वजवाजिषु ।
पुण्ड्रेऽपि लाङ्गली तु स्यान्नालिकेरे हलायुधे ॥ २०३ ॥

---

महाधन–बडामूल्यवाला, सुंदरवस्त्र, हींग, ( न० )
महामुनि–अगस्त्य–मुनि, धनियों, हथिया–वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १९८ ॥
महासेन–स्वामिकार्त्तिक, महासेनाका पति, ( पुं० )
मातुलानी–भंग, मटरअन्न, मामाकी स्त्री ( मामी ) ( स्त्री० ) ॥१९९॥
मालुधान–चित्रसर्प,बडाकमल (पु०)
मालुधानी–लताभेद, ( स्त्री० )
मेधाविन्–अच्छी बुद्धिवाला, (त्रि०) ॥ २०० ॥
मेधाविनी–ब्राह्मी, ( स्त्री० )
रसायन–गरुड, ( पुं० ) वृद्धता और रोगको हरनेवाला औषध, वच्छ-नाग, वायविडंग, (न०) ॥२०१॥
राजादन–चिरोंजी–वृक्ष, खिरनी, केसू ( न० )
ललामन्–ललाम–चिह्न, सुंदर, विभूषण, ॥ २०२ ॥ सींग, प्रधान, पूँछ, प्रभाव, ध्वजा, अश्व, पौंडा, ( न० )
लांगलिन्–नारियल, बलदेव, (पुं०) ॥ २०३ ॥

वनश्वा जम्बुके व्याघ्रे गन्धमार्जारकेऽपि च ।
विरोचनोऽर्के दहने चन्द्रे प्रह्लादनन्दने ॥ २०४ ॥
नरलायां लसद्वेश्याङ्गनायां च विलेपनी ।
विलासी भोगिनि व्याले विश्वप्सा वह्निचन्द्रयोः ॥ २०५ ॥
विषयि त्विन्द्रिये क्लीबं वाच्यवद्विषयान्विते ।
विषयी स्यान्मनसिजे लब्धे वैषयिके नृपे ॥ २०६ ॥
अनधीते भुजिष्ये च विषाणी शृङ्गिनागयोः ।
विष्वक्सेनोऽच्युते विष्वक्सेना तु फलिनीद्रुमे ॥ २०७ ॥
विसर्जनं परित्यागे दाने सम्प्रेषणे वधे ।
विस्मापनो हरिश्चन्द्रपुरे ना कुहके स्मरे ॥ २०८ ॥
मतं विहननं घाते पिञ्जने तूलधूनने ।
नानाविडम्बे हिंसायां मर्दनेऽपि विहेठनम् ॥ २०९ ॥

---

वनश्वन्–गीदड, बघेरा, गंधबिलाव, ( पुं० )
विरोचन–सूर्य, अग्नि, चंद्रमा, प्रह्लादका पुत्र, ( पुं० ) ॥ २०४ ॥
विलेपनी–यवागू, सुंदरवेश्या, (स्त्री०)
विलासिन्–भोगी-पुरुष, सर्प, (पुं०)
विश्वप्सन्–अग्नि, चंद्रमा, (पुं०) ॥ २०५ ॥
विषयि–इंद्रिय, ( न० ) विषययुक्त, ( त्रि० ) कामदेव, लब्धहुवा, विषयमें होनेवाला, राजा ॥२०६॥ बिनापढा, नौकर, ( पुं० )
विषाणिन्–सींगवाला, नाग, (पुं०)
विष्वक्सेन–विष्णु, ( पुं० )
विष्वक्सेना–फलिहारी-वृक्ष, (स्त्री०) ॥ २०७ ॥
विसर्जन–परित्याग, दान, संप्रेषण ( प्रेरण ), वध, ( न० )
विस्मापन–हरिश्चन्द्रराजाका पुर, कपटी, कामदेव, ( पुं० ) ॥२०८॥
विहनन–घात ( मारना ), पीनना, रूईका धुनना, ( न० )
विहेठन–अनेक प्रकारका विडंबन ( नकल ), हिंसा, मलना, (न०) ॥ २०९ ॥

वृक्षादनी वृक्षरुहाविदारीकन्दयोर्मता ।
वृक्षादनं मधुच्छत्रे कुठाराश्वत्थयोः पुमान् ॥ २१० ॥
वैरोचनस्तु बल्यर्कपुत्रयोः सुगतान्तरे ।
व्यवायी द्रव्यभेदे स्यात्कामुकेऽप्यभिधेयवत् ॥ २११ ॥
शिखरी स्यादपामार्गे गिरौ कोट्टेऽपि शाखिनि ।
शिखण्डी शरभिद्भीष्मद्विषोः केकिकलापयोः ॥ २१२ ॥
शिखण्डिनी तु गुञ्जायां यूथिकायां शिखण्डिनी ।
शृङ्गारी चारुवेशेऽपि कामुके क्रमुके गजे ॥ २१३ ॥
मता श्लेष्मघना मल्यां केतकीभक्तसज्जयोः ।
सदादानोऽभ्रमातङ्गे हेरम्बे गन्धहस्तिनि ॥ २१४ ॥
सनातनो हरे विष्णौ पितॄणामतिथौ स्थिरे ।
नित्येऽप्यथ समापन्नं प्राप्ते क्लिष्टसमाप्तयोः ॥ २१५ ॥

---

वृक्षादनी—अमरबेल, विदारीकंद, ( स्त्री० )
वृक्षादन—मधुच्छत्र ( न० ) कुहाड़ा, पीपल-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ २१० ॥
वैरोचन—बलिका पुत्र, सूर्यका पुत्र, बुद्ध-भगवान्, ( पुं० )
व्यवायिन्—द्रव्यभेद, कामी पुरुष आदि ( त्रि० ) ॥ २११ ॥
शिखरिन्—चिरचिटा, पर्वत, कोट, वृक्ष, ( पु० )
शिखंडिन्—शरभेद, भीष्मका शत्रु, मोर, मोरपख, ( पु० ) ॥२१२॥
शिखंडिनी—चोंटली ( चिरमठी ), जूही-पुष्पपेड, ( स्त्री० )
शृंगारिन्—सुंदरवेशवाला, कामीपुरुष, सुपारी-वृक्ष, हस्ती, ( पुं० ) ॥ २१३ ॥
श्लेष्मघना—मालती या मोतिया, केतकी ( स्त्री० ) भात, कवच ( न० )
सदादान—इंद्रहस्ती, गणेश, गंधहस्ती, ( पु० ) ॥ २१४ ॥
सनातन—महादेव, विष्णु, पितरोंका अतिथि, स्थिर, नित्य होनेवाला, ( पु० )
समापन्न—प्राप्तहुवा, क्लिष्ट(क्लेशयुक्त), समाप्त, ॥ २१५ ॥ ( त्रि० ) वध, ( न० )

समापन्नं वधे क्लीबं समाप्तौ तु समापनम् ।
समापनं परिच्छेदे समाधाने च मारणे ॥ २१६ ॥
समादानं समीचीनग्रहणे नित्यकर्म्मणि ।
समुत्थानं मतं रोगनिर्णयेऽपि समुद्यमे ॥ २१७ ॥
संमूर्छनमभिव्याप्तौ संमूर्छायां च मोहने ।
संवाहनं तु भारादेर्वाहनेऽप्यङ्गमर्दने ॥ २१८ ॥
स्यात्संवदनमालोचे संवादे च वशीकृतौ ।
सरोजिनी तु पद्मिन्यां सरोजे च सरोवरे ॥ २१९ ॥
सामयोनिस्तु सामोत्थे मातङ्गे परमेष्ठिनि ।
सामिधेनी ऋचि प्रोक्ता सामिधेनी समिध्यपि ॥ २२० ॥
मतं सारसनं काञ्च्यामुरस्त्रे च तनुत्रिणाम् ।
सुकर्म्मा योगभेदेऽपि सुकर्मा देवशिल्पिनि ॥ २२१ ॥

---

समापन–समाप्ति, परिच्छेद ( ग्रंथविभाग ), समाधान, मारना, ( न० ) ॥ २१६ ॥

समादान–अच्छीतरह ग्रहणकरना, नित्यकर्म ( न० )

समुत्थान–रोगका निर्णय, अच्छेप्रकारसे उद्यम, ( न० ) ॥ २१७ ॥

संमूर्छन–अभिव्याप्ति, समूर्छा, मोहन, ( न० )

संवाहन–भारआदिका वहना, अगका मर्दन करना, ( न० ) ॥ २१८ ॥

संवदन–देखना, सवादकरना, वशमें करना, ( न० )

सरोजिनी–कमलिनी, कमल, सरोवर, ( स्त्री० ) ॥ २१९ ॥

सामयोनि–सामसे उत्पन्नहुवा, हस्ती, ब्रह्मा, ( पुं० )

सामिधेनी–वेदऋचा, समिध् ( पलाशी ) ( स्त्री० ) ॥ २२० ॥

सारसन–तगड़ी, शरीरकी रक्षाकरनेवालोंका उरस्त्र, ( न० )

सुकर्मन्–एकयोग, देवताओंका शिल्पी ( कारीगर ) ( पुं० ) ॥ २२१ ॥

सुदर्शनं सुरपुरे हरेश्चक्रे सुदर्शनः ।
सुदर्शना मेरुजम्ब्वामाज्ञायामोषधीभिदि ॥ २२२ ॥
त्रिषु नेत्रानन्दकरे सुदामा त्वम्बुदे गिरौ ।
सुधन्वा वीरधानुष्के सुधन्वा विश्वकर्मणि ॥ २२३ ॥
सुपर्वा त्रिदशे वंशे शरे धूमे प्रपर्वणि ।
सुयामुनो वत्सराजे सौधेऽप्यभ्रान्तरे हरौ ॥ २२४ ॥
सौदामिनी तडिद्भेदविद्युतोरप्सरोन्तरे ।
यमपुर्यां संयमनी व्रते संयमनं मतम् ॥ २२५ ॥
स्तनयित्नुर्घने मेघस्तने मृत्यौ गदेऽपि च ।
हर्षयित्नुः सुते पुंसि कनके तु नपुंसकम् ॥ २२६ ॥

नपञ्चमम् ।

अग्रजन्मा विधौ विप्रे ज्येष्ठभ्रातरि च स्मृतः ।
अतिसर्जनमिच्छन्ति वधे दानेऽपि न द्वयोः ॥ २२७ ॥

---

सुदर्शन-स्वर्ग, ( न० ) विष्णुका चक्र, ( पुं० )

सुदर्शना-सुमेरुके जामनका वृक्ष, आज्ञा, औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ २२२ ॥ नेत्रोंको आनंदकरनेवाला, ( त्रि० )

सुदामन्-मेघ, पर्वत, ( पुं० )

सुधन्वन्-धन्वान, धनुर्धारी, विश्वकर्मा ( देवशिल्पी ) ( पुं० )॥२२३॥

सुपर्वन्-देवता, वंश, शर, दूर्वा, अष्टपर्व, ( पुं० )

सुयामुन-वत्सदेशका राजा, महल, मेघभेद, विष्णु, ( पुं० ) ॥ २२४ ॥

सौदामिनी-बिजली-भेद, बिजली, अप्सरा-भेद, ( स्त्री० )

संयमनी-धर्मराजकी पुरी, ( स्त्री० )

संयमन-व्रत ( न० ) ॥ २२५ ॥

स्तनयित्नु-मेघ, मेघशब्द, मृत्यु, रोग, ( पुं० )

हर्षयित्नु-पुत्र, (पुं०) सुवर्ण, (न०) ॥ २२६ ॥

नपंचम।

अग्रजन्मन्-चंद्रमा, ब्राह्मण, बड़ाभ्राता, ( पुं० )

अतिसर्जन-मारना, दान, ( न० ) ॥ २२७ ॥

अनुवासनमाख्यातं स्नेहकर्मणि धूपने ।
अन्तेवासी तु चण्डाले शिष्यप्रान्तगयोरपि ॥ २२८ ॥
अपवर्जनमित्येतद् दानेऽपि परिवर्जनम् ।
अथ स्यादभिनिष्ठानः पुंसि चन्द्रविसर्गयोः ॥ २२९ ॥
स्यादुपस्पर्शनं स्पर्शे स्नाने चाचमनेऽपि च ।
त्रिलिंग्यामुपसंपन्नं निहितेऽपि सुसंस्कृते ॥ २३० ॥
कपिशायनमित्येतन्मद्ये देशान्तरे पुमान् ।
कामचारी तु चटके कामिस्वच्छन्दयोस्त्रिषु ॥ २३१ ॥
धातुवादरते कांस्यकारे कारन्धमी मतः ।
किष्कुपर्वा तु वंशे स्यात्कोपकारे नडे(ले)ऽपि च ॥ २३२ ॥
कृष्णवर्त्मा हुतवहे दुराचारे विधुन्तुदे ।
कोपने खरसोल्ले च वर्त्तते खरभाजनम् ॥ २३३ ॥

---

अनुवासन–स्नेहकर्म (स्नेहवस्ति आदि), धूपन(धूपसे सुगंधि करना) (न० )

अन्तेवासिन्–चण्डाल, शिष्य, पासमें रहनेवाला, (पु० ) ॥ २२८ ॥

अपवर्जन–दान, परित्याग, ( न० )

अभिनिष्ठान–चंद्रमा, विसर्ग, (पुं०) ॥ २२९ ॥

उपस्पर्शन–स्पर्श, स्नान, आचमन, ( न० )

उपसंपन्न–स्थापित कियाहुवा, अच्छी तरह संस्कार कियाहुवा ( त्रि० ) ॥ २३० ॥

कपिशायन–मद्य, देशान्तर ( पुं० )

कामचारिन्–चिड़ा–पक्षी, कामी, स्वच्छंद, ( त्रि० ) ॥ २३१ ॥

कारंधमिन्–धातुवादमें, ( धातुके कहनेमें ) तत्पर, कासीका घड़ने-वाला, ( पुं० )

किष्कुपर्वन्–बांस, कोपकार ( इक्षु-भेद या काश ( पुं० ) ॥ २३२ ॥

कृष्णवर्त्मन्–अग्नि, दुराचारी, राहु-ग्रह, ( पु० )

खरभाजन–गोंधी, लोहपात्र,(न०) ॥२३३॥

स्याद्गन्धमादनः शैलभेदे भृङ्गेऽपि गन्धके ।
लतामृगप्रभेदे च सुरायां गन्धमादनी ॥ २३४ ॥
चक्रचारी मतः पोताधानके आमजालिनि ।
चिरजीवी चिरायुष्के स्यादजेऽपि सक्तमजे ॥ २३५ ॥
तिक्तपर्वा हिलमोचीगुडूचीमधुयष्टिषु ।
धूमकेतनशब्दोयं ग्रहभेदे हुताशने ॥ २३६ ॥
लोकेश्वरे विधौ सूर्ये धनदे पद्मलाञ्छनः ।
तारायां च सरस्वत्यां पद्मायां पद्मलाञ्छना ॥ २३७ ॥
पीतचन्दनमित्येतत्कालीयकहरिद्रयोः ।
पृष्ठशृङ्गी तु पण्ढे स्याद्गभीरौ वृकोदरे ॥ २३८ ॥
प्रवलाकी भुजङ्गेऽपि मेघनादानुलासिनि ।
बोधने प्रतिपत्तौ च दानेऽपि प्रतिपादनम् ॥ २३९ ॥

---

गन्धमादन—पर्वतभेद, भौंरा, गन्धक, लताभेद, मृगभेद, ( पुं० )
गन्धमादनी—मदिरा (स्त्री०) ॥२३४
चक्रकारिन्—छोटी २ मछली, आम, जाली ( पु० )
चिरजीविन्—दीर्घ आयुवाला, ब्रह्मा, काग, ( पु० ) ॥ २३५ ॥
तिक्तपर्वन्—हुलहुल-शाक, गिलोय, मुलहटी, ( स्त्री० )
धूमकेतन—ग्रहभेद (केतुतारा), अग्नि, ( पुं० ) ॥ २३६ ॥
पद्मलांछन—लोकोंका ईश्वर (स्वामी), ब्रह्मा, सूर्य, कुबेर, ( पुं० )
पद्मलांछना—तारा-देवी, सरस्वती, लक्ष्मी, ( स्त्री० ) ॥ २३७ ॥
पीतचंदन—दारुहलदी, हलदी (स्त्री०)
पृष्ठशृंगिन्—नपुसक, मच्छरोंसे डरनेवाला, भीमसेन, ( पुं० ) ॥ २३८ ॥
प्रवलाकिन्—सर्प मोर, ( पुं० )
प्रतिपादन—बोधन ( जनाना ), प्रसिद्धि, दान, ( न० ) ॥ २३९ ॥

वनमाली हृषीकेशे वाराह्यां वनमालिनि ।
क्षीरत्ते च फलिन्यां च लाक्षायां वरवर्णिनी ॥ २४० ॥
रोचनायां हरिद्रायामपि स्याद्वरवर्णिनी ।
देवदारुणि कालीये दृश्यते वरचन्दनम् ॥ २४१ ॥
व्योमचारी विहङ्गेऽपि सुरे विद्याधरेऽपि च ।
वनमालिनि रोलम्बे विज्ञेयो मधुसूदनः ॥ २४२ ॥
शातकुम्भे कुसुम्भेऽपि महारजनमद्वयोः ।
कृत्तिवाससि काकोले श्रीफले मृत्युवञ्चनः ॥ २४३ ॥
विघ्नकारी मतो भीमदर्शनेऽपि विघातिनि ।
विश्वकर्मा तु मार्तण्डे मुनिभिद्देवशिल्पिनोः ॥ २४४ ॥
वृषपर्वा हरे दैत्ये शृङ्गारिणि कसेरुणि ।
मासिकाजलपिप्पल्योर्दृश्यते शकुलादनी ॥ २४५ ॥

---

वनमालिन्–गोविंद-भगवान्, वाराहीकंद, वनमाली ( वनमाला धारणकरनेवाला, ) ( पु० )

वरवर्णिनी–स्वरूप स्त्री, फूलप्रियंगू, लाख, ॥ २४० ॥ गोरोचन, हलदी, ( स्त्री० )

वरचंदन–देवदार, कालाचंदन (न०) ॥ २४१ ॥

व्योमचारिन्–पक्षी, देवता, विद्याधर, ( पुं० )

मधुसूदन–विष्णु-भगवान्, भौंरा, ( पुं० ) ॥ २४२ ॥

महारजन–सुवर्ण, कसूँमा ( न० )

मृत्युवंचन–महादेव, कागभेद, बेलका पेड या खिरनीका पेड ( पु० ) ॥ २४३ ॥

विघ्नकारिन्–भयंकरदर्शनवाला, मारनेवाला, ( पुं० )

विश्वकर्मन्–सूर्य, मुनिभेद, देवताओंका शिल्पी, (पुं०) ॥ २४४ ॥

वृषपर्वन्–महादेव, एक दैत्य, सुपारीवृक्ष, कसेरूकंद, ( पुं० )

शकुलादनी–जटामांसी, जलपीपली, ॥ २४५ ॥ रुई पीननेकी नाँन, कुटकी ( स्त्री० )

पिञ्जन्यां कटुकायां च सम्मता शकुलादनी ।
शालङ्कायनशब्द' स्यादृषिभेदेऽपि नन्दिनि ॥ २४६ ॥
शिवकीर्त्तनशब्दोऽयं भृङ्गरीटेऽपि माधवे ।
स्यादर्जुनेऽपि पीयूषधामनि श्वेतवाहनः ॥ २४७ ॥
श्वेतधामा सुधाधाम्नि घनसाराब्धिफेनयोः ।
सिन्धुरे धान्यभेदे च वर्त्तते षष्टिहायनः ॥ २४८ ॥
संप्रयोगी कलाकेलौ कामुके सुप्रयोगिनि ।
गोशीर्षे दैवततरौ हरिचन्दनमस्त्रियाम् ॥ २४९ ॥
ज्योत्स्नाया कुङ्कुमे पद्मपारगे हरिचन्दनम् ।
पुमानहस्करे मेघवाहने करिवाहनः ॥ २५० ॥

नषष्ठम् ।

अन्तावसायी श्वपचे नापिते च मुनेर्भिदि ।
कलानुनादी रोलम्बे कलविङ्के कपिञ्जले ॥ २५१ ॥

---

शालंकायन–ऋषिभेद, नन्दी-गण, ( पु० ) ॥ २४६ ॥

शिवकीर्तन–शिवका एक गण, विष्णुभगवान्, ( पुं० )

श्वेतवाहन–अर्जुन, चद्रमा, ( पुं० ) ॥ २४७ ॥

श्वेतधामन्–चद्रमा, कपूर, समुद्र-झाग, ( पु० )

षष्टिहायन–हत्थी, धान्यभेद, ( माठीचावल ) ( पुं० ) ॥ २४८ ॥

संप्रयोगिन्–कलाकेली (कलाक्रीडा), कामी, अच्छाप्रयोगकरनेवाला, ( पुं० )

हरिचंदन–गोरोचन, देववृक्ष, ( पु० न० ) ॥ २४९ ॥ चॉदकी किरण, केसर, कमलकेसर, ( न० )

करिवाहन–सूर्य, इन्द्र, ( पुं० ) ॥ २५० ॥

नषष्ठ ।

अन्तावसायिन्–चडाल, नाई, मुनिभेद, ( पुं० )

कलानुनादिन्–भौंरा, चिडा, कपिंजल-पक्षी, ( पु० ) ॥ २५१ ॥

जायानुजीवी भगते दुर्गताखिलयोर्बके ।
मतः सहस्रवेधी तु रामठे चाम्लवेतसे ॥ २५२ ॥

इति विश्वलोचने नान्तवर्ग. ॥

---

## अथ पान्तवर्गः ।

पैकम् ।

पो वाते पा तु पाने स्यात्पास्तु पातरि वाच्यवत् ॥ १ ॥

पद्वितीयम् ।

कल्पो ब्राह्मदिने न्याये प्रलये विधिशान्तयोः ।
कूपोऽन्धुगर्त्तमृन्मानकूपके गुणवृक्षके ॥ २ ॥
कृपा दयाया व्यासे तु कृपो भारतपूरुषे ।
खप्पः क्रोधे बलात्कारे गोपो गोपालभूपयोः ॥ ३ ॥

---

जायानुजीविन्–नट, दुर्गत (दरिद्र), बगला-पक्षी, ( पु० )
सहस्रवेधिन्–हींग, अम्लवेत, (पु०) ॥ २५२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें नांतवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

### अथ पान्तवर्ग ।

पैक ।

प–वायु ( पुं० )
पा–पीना ( स्त्री० )
पा–रक्षाकरनेवाला ( त्रि० ) ॥ १ ॥

पद्वितीय ।

कल्प–ब्रह्माका दिन, न्याय, प्रलय, विधि, शान्त, ( पुं० )
कूप–कूवाँ, गढा, मिट्टीका प्रमाण, नितंबोंका खड्डा, नौकाका स्तंभ, (पु०) ॥ २ ॥
कृपा–दया, ( स्त्री० )
कृप–व्यास, कृपाचार्य, ( पु० )
खप्प–क्रोध, बलात्कार, ( पुं० )
गोप–गोपाल, राजा, ॥ ३ ॥ ग्रामोंके समूहका अधिकारी, गोष्ट (गोस्थान )का अधिकारी, गुप्तकरनेवाला, ( पुं० )

[illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ७ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ९ ॥

---

[illegible]

वपा तु विवरे भेदे बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः ।
शष्पं बालतृणं क्लीबं शष्पस्तु प्रतिभाक्षये ॥ १० ॥
शपथाक्रोशयोः शापः शिष्पं कृत्योचिते ध्रुवे ।
सूपो व्यञ्जनभेदेऽपि सूपकारेऽपि च स्मृतः ॥ ११ ॥
स्वापस्तु शयनाऽज्ञाननिद्रास्पर्शाज्ञतार्थकः ।
क्षेपो विलम्बे हेलायां गर्हाप्रेरणलेपने ॥ १२ ॥

पतृतीयम् ।

पुंस्यनूपस्तु महिषे वाच्यवज्जलसङ्कुले ।
आकल्पो वेशमात्रे स्यादाकल्पः कल्पनेऽपि च ॥ १३ ॥
आवापो भाण्डे वपने परिक्षेपालवालयोः ।
आक्षेपो भर्त्सनत्यागाकर्षणे काव्यभूषणे ॥ १४ ॥
उडुपः पुंसि चन्द्रे स्यादुडुपे भेलकेऽस्त्रियाम् ।
उलपस्तृणभेदे स्याद्गुल्मिन्यामुलपं मतम् ॥ १५ ॥

---

वपा–छिद्र, मेद, ( स्त्री० )
बाष्प–नेत्रजल, बाफ, ( पुं० )
शष्प–छोटातृण, ( न० ) शष्प–तीक्ष्णबुद्धिकी हानि, ( पुं० ) ॥१०॥
शाप–सौंगन, दुराशिष, ( पुं० )
शिष्प–कृत्यमें उचित, ध्रुव, ( न० )
सूप–व्यंजनभेद, रसोई करनेवाला, ( पुं० ) ॥ ११ ॥
स्वाप–सोना, अज्ञान, निद्रा, स्पर्श, अज्ञता ( मूर्खता ) ( पुं० )
क्षेप–विलंब ( देर ), क्रियोंका 'करण,' निंदा, प्रेरणकरना, लेपन, ( पुं० ) ॥ १२ ॥

पतृतीय ।

अनूप–भैंसा, ( पुं० ) जलप्रायदेश आदि ( त्रि० )
आकल्प–वेशमात्र, कल्पन (विचार) ( पुं० ) ॥ १३ ॥
आवाप–भाण्ड ( बरतन या अक्षभूषण ), क्षौर, परिक्षेप, वृक्षकी क्यारी, ( पुं० )
आक्षेप–झिड़कना, त्यागना, खैंचना, काव्यभूषण ( अलंकार ) ( पुं० ) ॥ १४ ॥
उडुप–चंद्रमा, ( पुं० ) उडुप–नौका, ( पु० न० )
उलप–तृणभेद ( पुं० ) फैली हुई बेल, ( न० ) ॥ १५ ॥

कच्छपः कमठे काष्ठे मल्लभेदेऽपि कच्छपः ।
कच्छपी तु डुलौ क्षुद्ररुग्भेदे वल्लकीभिदि ॥ १६ ॥
कलापः संहते बर्हे काञ्च्यादौ तूणवृन्दयोः ।
भक्ते वस्त्रे च कशिपुरेकोक्त्या तूभयोरपि ॥ १७ ॥
काश्यपी तु क्षितौ मीनमुनिभेदे तु कश्यपः ।
कुटपोऽस्त्री मानभेदे कुटपो निष्कुटे मुनौ ॥ १८ ॥
विदारिकायां कुणपी पूतिगन्धौ शवे पुमान् ।
कुतपो भागिनेये स्यादष्टमांशे दिनस्य च ॥ १९ ॥
कुतपस्तपने छागकम्बले कुशवाद्ययोः ।
जिह्वापः शुनि मार्जारे व्याघ्रपादपयोरपि ॥ २० ॥
पादपः पादपीठेऽद्रौ पादगण्डे च पादपः ।
पादपा पादुकायां स्यात्प्रतापः स्वेदतेजसोः ॥ २१ ॥

---

कच्छप–कछुवा, काष्ठ, मल्लभेद, ( पुं० )
कच्छपी–कछवी, क्षुद्ररुग्भेद, वीणाभेद, ( स्त्री० ) ॥ १६ ॥
कलाप–इकट्ठाहुवा, मोरपंख, काची ( करधनीं )आदि, बाणोंका भाथा, वृन्द, ( पुं० )
कशिपु–अन्न, वस्त्र, अन्नवस्त्र, ( पु० ) ॥ १७ ॥
काश्यपी–पृथ्वी, ( स्त्री० )
कश्यप–मीनभेद, मुनिभेद, ( पुं० )
कुटप–मानभेद, घरके समीप लगाया हुवा बाग, मुनि, ( पुं० ) ॥ १८ ॥
कुणपी–विदारीकंद, ( स्त्री० )
कुणप–दुर्गंधवाला मुर्दा, ( पु० )
कुतप–भानजा, दिनका आठवा भाग, ॥ १९ ॥
सूर्य, बकरेके ऊनका कंवल, कुशा, बाजा ( पु० )
जिह्वाप–कुत्ता, बिलाव, बघेरा, वृक्ष, ( पु० ) ॥ २० ॥
पादप–पादपीठ ( पैरोंकीचोकी ), पर्वत, गंडशैल ( पर्वतसे गिरा बडा पत्थर ) ( पुं० )
पादपा–खडाऊं, ( स्त्री० )
प्रताप–पसीना, तेज, ( पुं० ) ॥ २१ ॥

रक्तपा स्याज्जलौकायां रक्तपस्तु क्षपाचरे ।
विकल्पो विचिकित्साया विकल्पो भ्रान्तिपक्षयोः ॥ २२ ॥
विटपोऽस्त्री लतास्तम्बखिङ्गविस्तारपल्लवे ।

पचतुर्थम् ।

अपलापोऽपलपने प्रेमापह्नवयोरपि ॥ २३ ॥
अभिरूपो बुधे रम्ये प्राप्तरूपसुरूपवत् ।
अवलेपस्तु दोषे स्याद्गर्वे लेपे च सङ्गमे ॥ २४ ॥
उपतापो मतः पुंसि गदोत्तापत्वरार्थकः ।
उपयापो विक्षेपे स्यात्तथा भेदेऽवदारणे ॥ २५ ॥
जलकूपी पुष्करिण्यां कूपगर्भेऽपि सा स्मृता ।
नागपुष्पस्तु पुन्नागे चम्पके नागकेसरे ॥ २६ ॥
परिकम्पो मतो भीतौ परिकम्पः प्रकम्पने ।
परीवापो जलस्थाने पर्युप्तौ च परिच्छदे ॥ २७ ॥

---

रक्तपा–जोक, ( स्त्री० )
रक्तप–राक्षस, ( पुं० )
विकल्प–सदेह, भ्राति, पक्ष, ( कल्पना ) ( पुं० ) ॥ २२ ॥
विटप–वेल, गुच्छा, कामिशिरोमणि, विस्तार, पात्र ( पत्ते ) ( पुं० )

पचतुर्थ ।

अपलाप–खोटाबोलना, प्रेम, छुपाना, ( पुं० ) ॥ २३ ॥
अभिरूप–प्राप्तरूप–सुरूप-पंडित, सुदर, ( पुं० )
अवलेप–दोष, अभिमान, लेपन, सगम ( मिलाप ) ( पुं० ) ॥२४॥
उपताप–रोग, उत्ताप ( बहुतसेद ), शीघ्रता ( पु० )
उपयाप–विक्षेप ( भेद ), विदीर्ण करना, फोटना, ( पु० ) ॥ २५ ॥
जलकूपी–नदी, कूवाका गर्भ (बीच) ( स्त्री० )
नागपुष्प–पुन्नाग–वृक्ष, चंपा, नागकेसर, ( पु० ) ॥ २६ ॥
परिकंप–भय, कॉपना ( पुं० )
परीवाप–जलस्थान, अच्छी नगह बीजबोना, परिवार, (पुं०) ॥२७॥

कच्छपः कमठे काष्ठे मल्लभेदेऽपि कच्छपः ।
कच्छपी तु द्रुलौ क्षुद्रगुल्मभेदे वल्लकीभिदि ॥ १६ ॥
कलापः संहते बर्हे काञ्च्यादौ तूणवृन्दयोः ।
भक्ते वस्त्रे च कशिपुरेकोक्त्या तूभयोरपि ॥ १७ ॥
काश्यपी तु क्षितौ मीनमुनिभेदे तु कश्यपः ।
कुटपोऽस्त्री मानभेदे कुटपो निष्कुटे मुनौ ॥ १८ ॥
विदारिकाया कुणपी पूतिगन्धौ शवे पुमान् ।
कुतपो भागिनेये स्यादष्टमांशे दिनस्य च ॥ १९ ॥
कुतपस्तपने छागकम्बले कुशवाद्ययोः ।
जिह्वापः शुनि मार्जारे व्याघ्रपादपयोरपि ॥ २० ॥
पादपः पादपीठेऽद्रौ पादगण्डे च पादपः ।
पादपा पादुकाया स्यात्प्रतापः खेदतेजसोः ॥ २१ ॥

---

कच्छप–कछुवा, काष्ठ, मल्लभेद, ( पुं० )

कच्छपी–कछवी, क्षुद्रगुल्मभेद, वीणाभेद, ( स्त्री० ) ॥ १६ ॥

कलाप–इकट्ठाहुवा, मोरपंख, काची ( करधनी )आदि, बाणोंका भाथा, वृन्द, ( पुं० )

कशिपु–अन्न, वस्त्र, अन्नवस्त्र, ( पु० ) ॥ १७ ॥

काश्यपी–पृथ्वी, ( स्त्री० )

कश्यप–मीनभेद, मुनिभेद, ( पुं० )

कुटप–मानभेद, घरके समीप लगाया हुवा बाग, मुनि, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

कुणपी–विदारीकंद, ( स्त्री० )

कुणप–दुर्गंधवाला मुर्दा, ( पुं० )

कुतप–भानजा, दिनका आठवा भाग, ॥ १९ ॥

सूर्य, बकरेके ऊनका कंबल, कुशा, बाजा ( पुं० )

जिह्वाप–कुत्ता, बिलाव, बघेरा, वृक्ष, ( पु० ) ॥ २० ॥

पादप–पादपीठ ( पैरोंकीचौकी ), पर्वत, गंडशैल ( पर्वतसे गिरा बडा पत्थर ) ( पुं० )

पादपा–खडाऊं, ( स्त्री० )

प्रताप–पसीना, तेज, ( पुं० ) ॥ २१ ॥

रक्तपा स्याज्जलौकायां रक्तपस्तु क्षपाचरे ।
विकल्पो विचिकित्सायां विकल्पो भ्रान्तिपक्षयोः ॥ २२ ॥
विटपोऽस्त्री लतास्तम्बखिङ्गविस्तारपल्लवे ।

पचतुर्थम् ।

अपलापोऽपलपने प्रेमापह्नवयोरपि ॥ २३ ॥
अभिरूपो बुधे रम्ये प्राप्तरूपसुरूपवत् ।
अवलेपस्तु दोषे स्याद्गर्वे लेपे च सङ्गमे ॥ २४ ॥
उपतापो मतः पुंसि गदोत्तापत्वरार्थके ।
उपयापो विक्षेपे स्यात्तथा भेदेऽवदारणे ॥ २५ ॥
जलकूपी पुष्करिण्यां कूपगर्भेऽपि सा स्मृता ।
नागपुष्पस्तु पुन्नागे चम्पके नागकेसरे ॥ २६ ॥
परिकम्पे मतो भीतौ परिकम्पः प्रकम्पने ।
परीवापो जलस्थाने पर्युप्तौ च परिच्छदे ॥ २७ ॥

---

रक्तपा–जोंक, ( स्त्री० )
रक्तप–राक्षस, ( पुं० )
विकल्प–संदेह, भ्रांति, पक्ष, ( कल्पना ) ( पुं० ) ॥ २२ ॥
विटप–बेल, गुच्छा, डालियोंकेभपि, विस्तार, पत्र ( पत्ते ) ( पुं० )

पचतुर्थ ।

अपलाप–खोटाबोलना, प्रेम, छुपाना, ( पुं० ) ॥ २३ ॥
अभिरूप–प्राप्तरूप–सुरूप–पंडित, सुंदर, ( पुं० )
अवलेप–दोष, अभिमान, लेपन, संगम ( मिलाप ) ( पु० ) ॥२४॥
उपताप–रोग, उत्ताप ( बहुतखेद ), शीघ्रता ( पु० )
उपयाप–निक्षेप ( भेद ), विदारण करना, फोडना, ( पु० ) ॥ २५ ॥
जलकूपी–नदी, कूपाका गर्भ (बीच) ( स्त्री० )
नागपुष्प–पुनाग–वृक्ष, चंपा, नागकेसर, ( पुं० ) ॥ २६ ॥
परिकंप–भय, काँपना ( पु० )
परीवाप–जलस्थान, अच्छी तरह बीजबोना, परिवार, (पुं०) ॥२७॥

पिण्डपुष्पमशोके स्याज्जवापुष्पेऽपि पंकजे ।
बहुरूपः स्मरहेर स्वभूसरटघूनके ॥ २८ ॥
मेघपुष्पं तु पिण्डाभे जलनादेययोरपि ।
विप्रलापो विरोधोक्तावपार्थवचनेऽपि च ॥ २९ ॥
वीजपुष्पं मरुवके मतं दमनकद्रुमे ।
वृकधूपस्तु सरलद्रवकृत्रिमधूपयोः ॥ ३० ॥
वृषाकपिर्म्महादेवे कृष्णपावकयोरपि ।
हेमपुष्पमशोके स्याज्जवापुष्पेऽपि चम्पके ॥ ३१ ॥

पपञ्चमम् ।

भवेच्चामरपुष्पं तु काशे चूते च केतके ॥ ३२ ॥

इति विश्वलोचने पान्तवर्गः ॥

---

पिंडपुष्प–अशोक-वृक्ष, जवापुष्प, कमल, ( न० )

बहुरूप–कामदेव, महादेव, विष्णु, गिरगट, राल-वृक्ष, (पुं०) ॥२८॥

मेघपुष्प–मेघ, जल, नदीमें होनेवाला ( न० )

विप्रलाप–विरोधसे वचन, निरर्थक-वचन, ( पुं० ) ॥ २९ ॥

वीजपुष्प–मरुवा, दौना, ( न० )

वृकधूप–सरलवृक्षका गोंद, बनाई हुई धूप, ( पुं० ) ॥ ३० ॥

वृषाकपि–महादेव, कृष्ण, अग्नि ( पुं० )

हेमपुष्प–अशोक ७ वृक्ष, जवापुष्प, चंपा, ( न० ) ॥ ३१ ॥

पपंचम ।

अमरपुष्प–काश, आँब, केतकी-पुष्प, ( न० ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें पान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ फान्तवर्गः।

फैकम्।

फु मन्त्रे फे रुते सङ्कचे स्फा वृद्धौ फेरवे पुमान्।
फः स्याज्झञ्झानिले पुंसि स्फूः स्फुटे फुल्लभाषयोः॥ १॥

फद्वितीयम्।

गुम्फो बाहोरलंकारे गिरातन्तोश्च गुम्फने।
रेफो रवर्णे पुंस्येव कुत्सिते त्वभिधेयवत्॥ २॥
शफं खुरे गवादीनां तरूणां चरणेऽपि च।
शिफा जटायां नद्यां च मांसिकायां च मातरि॥ ३॥

इति विश्वलोचने फान्तवर्गः॥

---

## अथ वान्तवर्गः।

वैकम्।

वं प्रचेतसि पुंसि स्यादुपमाने तदव्ययम्॥ १॥

---

अथ फान्तवर्ग।

फैक।

फु–तंत्र (उच्चारण करके फूकदेना), शब्द, युद्ध, (पु०)
स्फा–वृद्धि, (स्त्री०) गीदड, (पुं०)
फ–वृष्टिसहित वायु, (पुं०)
स्फू–स्फुट (प्रकट), फूलाहुवा, (पुं०)॥ १॥

फद्वितीय।

गुम्फ–भुजाओंका आभूषण, वाणी और तंतुओंका गुम्फन (गूंथना), रेफ–र–वर्ण, (पुं०) कुत्सित, (त्रि०)॥ २॥
शफ–गौआदिकोंका खुर, वृक्षोंकी जड, (न०)
शिफा–वृक्षकी जड, नदी, जटामांसी, माता, (स्त्री०)॥ ३॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें फान्तवर्ग समाप्तहुवा॥

---

अथ वान्तवर्ग।

वैक।

व–वरुण, (पुं०) उपमान (अव्यय)॥ १॥

वद्वितीयम् ।

स्त्री वंशांशे खजाकायां कंबिः कंबुः पुमान् गजे ।
वलये शङ्खशम्बूक कन्धरामलके स्त्रियाम् ॥ २ ॥
द्वले सङ्ख्यान्तरे खर्वश्चार्वी स्याच्छोभनाधियोः ।
जम्बूः स्त्री मेरुसरिति द्वीपपादपभेदयोः ॥ ३ ॥
डिम्बस्तु विप्लवप्लीहफुप्फुसैरण्डभीतिषु ।
डिम्बः कलकलेऽपि स्याद्दर्वी फणखजाकयो॰ ॥ ४ ॥
दार्वी दारुहरिद्राया हरिद्रादेवदारुणोः ।
पुंभूम्नि पूर्वजेषु स्यात्पूर्वः प्रागाद्ययोस्त्रिषु ॥ ५ ॥
तिक्ततुम्बीश्रियोर्लम्बा बिम्बं स्याद्बिम्बिकाफले ।
मण्डले प्रतिबिम्बे च बिम्बः पुंसि नपुंसकम् ॥ ६ ॥
शंवः शुभान्विते वज्रे मुसलाग्रस्थमण्डले ।
शुम्बो मतः पुमानेव भृशगुल्माप्रकाण्डयोः ॥ ७ ॥

---

वद्वितीय ।

कंवि–वंशविभाग, कडछी, ( स्त्री० )
कंवु–हस्ती ( पुं० ) कंकण, शंख, सँखला, ग्रीवा, आँवला ( स्त्री० ) ॥ २ ॥
खर्व–बौना,, संख्याभेद, ( पुं० )
चार्वी–सुंदरी, बुद्धि, ( स्त्री० )
जंवू–सुमेरुकी नदी, ( स्त्री० ) जंबूद्वीप, जामन–वृक्ष, ( पुं० ) ॥३॥
डिंव–हलचल या नाश, तिल्ली, फुप्फुस, अरंड, भय, कोलाहल ( पुं० )
दर्वी–सर्पकी फणा, कडछी, ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥
दार्वी–दारुहलदी, हलदी, देवदार–वृक्ष, ( स्त्री० )
पूर्व–पहलेजन्मनेवाले ( पुं० ) बहुवचनात ) पूर्व ( पहल ) आदिमें-होनेवाला ( त्रि० ) ॥ ५ ॥
लंबा–कडवी तूँबी, लक्ष्मी, ( स्त्री० )
बिंव–बिंबिका ( गोहल ) फल, (न०) मंडल, प्रतिबिंब, ( पुं० ) ॥ ६ ॥
शंव–शुभयुक्त, ( त्रि० ) वज्र, मूसलके आगेका लोहमंडल, ( पुं० )
शुंव–सघनगुच्छा, वृक्षस्कन्ध ( वृक्षकी शाख ) ॥ ७ ॥

वतृतीयम् ।

कदम्बं निकुरम्बे स्यान्नीपसिद्धार्थयोः पुमान् ।
गजाह्वा गजपिप्पल्यां गजाह्वं हस्तिनापुरे ॥ ८ ॥
गन्धर्वो मृगभेदे स्याद्गायने खेचरे हये ।
अन्तराभवसिद्धे च रससिद्धे च कोकिले ॥ ९ ॥
गोडुम्बः शीर्णवृक्षेऽपि गवादिन्याः फलेपि च ।
द्विजिह्वः पन्नगे पुंसि द्विजिह्वः पिशुने त्रिषु ॥ १० ॥
कटीचक्रे नितम्बः स्याच्छिखरिस्कंधरोधसोः ।
प्रलम्बो लम्बने दैत्ये तालाङ्कुरकशाखयोः ॥ ११ ॥
प्रालम्बो हारभेदेऽपि त्रपुषेपि पयोधरे ।
भूजम्बूरपि गोडुम्बे विकङ्कतफले स्त्रियाम् ॥ १२ ॥
हेरम्बो महिषे लम्बोदरशूरत्वगर्विते ।

वचतुर्थम् ।

राजजम्बूस्तु जम्बूमित्पिण्डखर्जूरयोर्मता ॥ १३ ॥

---

वतृतीय ।

कदंब–समूह, कदव–वृक्ष, सिरसों ( पु० )
गजाह्वा–गजपीपल, ( स्त्री० )
गजाह्व–हस्तिनापुर, ( न० ) ॥ ८ ॥
गंधर्व–मृगभेद, गवैया, खेचर ( गंधर्व ), अश्व, अतराभवमे होनेवाला सिद्ध, रससिद्ध, कोकिल ( नर-कोयल ) ( पुं० ) ॥ ९ ॥
गोडुंब–गिराहुवा-वृक्ष, गहूँमा ( कडुतुंबी ) ( पुं० )
द्विजिह्व–सर्प, ( पुं० ) चुगलखोर, ( त्रि० ) ॥ १० ॥
नितंव–चूनड़ या कटी, पर्वतकी ऊँची चोटी, किनारा ( पुं० )
प्रलंब–लंबन ( लटकना ), प्रलंब दैत्य, तालका अकुर और शाखा, ( पुं० ) ॥ ११ ॥
प्रालंब–हारभेद, राग, कुच, ( पुं० )
भूजंबू–गहूँभा, खटाईका फल, (स्त्री०) ॥ १२ ॥
हेरंब–भैंसा, गणेश, शूरतासें गर्वित, ( पुं० ) ।

वचतुर्थ ।

राजजंबू–जामनभेद, मैनफल-वृक्ष, खजूर, ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥

ललजिह्वः प्रमानुष्ट्रे शुनि हिंस्रेऽभिधेयवत् ।
शतपर्वा तु दूर्वायां भार्गवस्य च योषिति ॥ १४ ॥

वपञ्चमम् ।

गोरक्षजम्बूर्गोधूमे तथा गोरक्षतंडुले ।
धूलीकदम्बस्तिनिशे कदम्बे वरुणद्रुमे ॥ १५ ॥
शृगालजम्बूर्गोडुम्बे कचित्तु वदरीफले ॥ १६ ॥

इति विश्वलोचने वान्तवर्गः ॥

---

## अथ भान्तवर्गः ।

भैकम् ।

भा स्यान्मयूखे शुक्रेऽपि पुंसि पुष्पंधये तु भः ।
दीप्तौ च स्थानमात्रे भा भं नक्षत्रे भये तु भी ॥ १ ॥
भूर्भुवि स्थानमात्रेऽपि स्त्रियां भवितरि त्रिषु ।
सम्बुद्धावव्ययं भो स्यात्-

---

ललजिह्व-ऊंट, कुत्ता, ( पुं० ) हिंसाकरनेवाला, ( त्रि० ) ।
शतपर्वा-दूब ( घास ), शुक्रकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥
गोरक्षजंबू-गेहूं, गुलसकरी, (पुं०)
धूलीकदंव-तिरिच्छ वृक्ष, कदव, वरना-वृक्ष, ( पु० ) ॥ १५ ॥
शृगालजंबू-गडूंभा (कडुतुंबी), वेर, ( पुं० ) ॥ १६ ॥
इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामे वान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

### अथ भान्तवर्ग ।

भैक ।

भा-किरण ( स्त्री० ) भ-शुक्र, भौंरा, ( पुं० ) भा-दीप्ति, स्थानमात्र, ( स्त्री० ) नक्षत्र, ( न० ) ।
भी-भय ( स्त्री० ) ॥ १ ॥
भू-पृथ्वी, स्थानमात्र, ( स्त्री० ) होनेवाला ( त्रि० ) ।
भो-सबोधनकरना ( अव्यय )

भद्वितीयम् ।

—कुम्भो राश्यन्तरे घटे ॥ २ ॥
समाधौ गजमूर्द्धांशे कुम्भकर्णसुते विटे ।
कुम्भी स्यात्पाटला वारिपर्णी पिठरकट्फले ॥ ३ ॥
कुम्भं गुग्गुलुवृक्षे स्यात्त्रिवृतायां च न द्वयोः ।
गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनसकण्टके ॥ ४ ॥
जम्भो दन्तेऽपि जम्बीरे दैत्यभेदेऽपि भक्षणे ।
जृम्भो विकासे पुंस्येव जृम्भस्तु त्रिषु जृम्भणे ॥ ५ ॥
डिम्भस्तु बालिशे पोते दम्भः कैतवकल्कयोः ।
दम्भूः सूर्ये पवौ नाभिर्ना क्षत्रे चक्रवर्त्तिनि ॥ ६ ॥
द्वयोः प्रधानचक्रान्तःप्राण्यङ्गेषु मदे स्त्रियाम् ।
निभस्तु सदृशे व्याजे संपूर्वः स्तुल्य एव सः ॥ ७ ॥

---

भद्वितीय ।

कुंभ—कुंभ-राशि, घट, ॥ २ ॥ समाधि, हस्तीका मस्तक-भाग, कुंभकर्णका पुत्र, कामी, ( पुं० )
कुंभी—पाढरका-पुष्प, जलकुंभी, नागरमोथा, कायफल, ( स्त्री० )॥३॥
कुंभ—गूगल-वृक्ष, निसोत, ( न० )
गर्भ—गर्भ ( भ्रूण ), बालक, कुक्षि, सन्धि, फनसका काटा, ( पुं० ) ॥ ४ ॥
जम्भ—दात, जम्बीरी नीबू, एक दैत्य, भक्षण, ( पुं० )
जृंभ—खिलना-पुष्प आदिका, ( पुं० ) जँभाई, ( त्रि० ) ॥ ५ ॥
डिम्भ—मूर्ख, बालक, ( पुं० )
दम्भ—छल, कल्क ( तिलपीठी आदि) ( पुं० )
दम्भू—सूर्य, वज्र, ( पुं० )
नाभि—चक्रवर्ती क्षत्रिय, नाभिराजा, ॥ ६ ॥ प्रधान, चक्रका मध्य-भाग, प्राणियोंका अंग ( सूँडी ), कस्तूरीमद, ( स्त्री० )
निभ—संनिभ—सदृश, व्याज ( बहाना ) ( पुं० ) ॥ ७ ॥

रम्भा कदल्यप्सरसो रम्भो वैणवदण्डके ।
परिपूर्वस्तु संश्लेषे विभुर्नित्ये शिवे प्रभौ ॥ ८ ॥
शुम्भः स्याद्ब्रह्मशिवयोरर्हत्यपि च केशवे ।
योगे शुभः शुभं क्षेमे शोभा कान्तीच्छयोर्मता ॥ ९ ॥
सभा सामाजिके गोष्ठ्यां द्यूतमन्दिरयोः सभा ।
स्तम्भो जडत्वे स्थूणायां स्वभूर्गोविन्दवेधसोः ॥ १० ॥

भतृतीयम् ।

पापेऽप्यरिष्टेऽप्यशुभमात्मभूः स्मरवेधसोः ।
आरम्भ उद्यमे दर्पे त्वरायां च वधेऽपि च ॥ ११ ॥
ऋषभः श्रेष्ठवृषयोरष्टवर्गौषधान्तरे ।
स्वराद्रिभेदे वराहपुच्छे रन्ध्रे च कर्णयोः ॥ १२ ॥

---

रम्भा—केला, अप्सरा, ( स्त्री० ) रम्भ—बांसका डंड, परिरम्भ—अच्छीतरह मिलना, ( पुं० )

विभु—नित्य, शिव, प्रभु, ( पु० ) ८

शुम्भ—ब्रह्मा, शिव, अर्हत देव, केशव ( विष्णु ) ( पु० )

शुभ—योग, ( पुं० ) क्षेम ( कुशल ) ( न० )

शोभा—कान्ति, इच्छा, ( स्त्री० ) ९

सभा—सामाजिक ( सहधर्मियोंकी सभा ), गोष्ठी, जूवा, मन्दिर, ( स्त्री० )

स्तंभ—जडता, स्थूणा ( थून ) (पु०)

स्वभू—विष्णु, ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥ १० ॥

भतृतीय ।

अशुभ—पाप, खेद, ( न० )

आत्मभू—कामदेव, ब्रह्मा, ( पुं० )

आरम्भ—उद्यम, अभिमान, शीघ्रता, वध, ( मारना ) ( पु० ) ॥११॥

ऋषभ—श्रेष्ठ, बैल, अष्टवर्गकी एक औषधि, एक गानेका स्वर, एक पर्वत, सूकरकी पूँछ, कानका छिद्र ( पुं० ) ॥ १२ ॥

ऋषभी तु नराकारनारीविधवयोषितोः ।
शूकशिंब्यां शिरालायां श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थितः ॥ १३ ॥
ककुभोऽर्जुनवृक्षेऽपि रागभेदे प्रसेवके ।
ककुब् दिक्शोभयोः शास्त्रे कम्बले चम्पकस्रजि ॥ १४ ॥
करभो मणिबन्धादिकनिष्ठान्ते क्रमेलके ।
अष्टापदेऽपि करभः शरभे च मृगान्तरे ॥ १५ ॥
कुसुम्भं हेमनि महारजने ना कमण्डलौ ।
गर्द्दभी रासभे गन्धभेदे क्लीब तु कैरवे ॥ १६ ॥
गर्द्दभी स्वल्परुग्जन्तुभेदयोरथ पुंस्ययम् ।
दुन्दुभिर्दैत्यभेर्योः स्त्री त्वक्षविन्दुत्रिके द्वये ॥ १७ ॥
दुष्प्रापे वल्लभे कच्छरोगिणि त्रिपु वल्लभः ।
निकुम्भः कुम्भकर्णस्य पुत्रे दन्त्यामपि स्मृतः ॥ १८ ॥

---

ऋषभी–नराकार ( दाढीमूछवाली ) स्त्री, विधवा स्त्री, कौंछ, कमरख ( स्त्री० )

ऋषभ–शब्द किसीके आगे जोडा-हुवा श्रेष्ठवाचक है ( पुं० ) ॥ १३ ॥

ककुभ–अर्जुन ( कोह ) वृक्ष, राग-भेद, वीणाकी तूँबी, ( पु० )

ककुभ–दिशा पूर्व आदि, शोभा, शास्त्र, कंबल, चंपाकी माला, ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

करभ–मणिबंध ( पहुँचा )से लेकर कनिष्ठाके अनतक भाग, ऊँट, चौपड या सुवर्ण, शरभ (साबर), मृगभेद ( पु० ) ॥ १५ ॥

कुसुंभ–सुवर्ण, कमंडलु ( जलपात्र ) ( पुं० )

गर्दभ–गधा, गंधभेद, ( पुं० ) श्वेत कमल ( न० ) ॥ १६ ॥

गर्दभी–क्षुद्ररोग, जन्तुभेद ( स्त्री० )

दुन्दुभि–एक दैत्य, भेरी (पु०) चौपड खेलनेके तीन पासे ( पुं० स्त्री० ) ॥ १७ ॥

वल्लभ–जो दुःखसे प्राप्त हो वह, प्रिय, कच्छरोगवाला, ( त्रि० )

निकुंभ–कुभकर्णका पुत्र, जमालगोटाकी जड, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

वल्लभो ना कुलीनाश्वे दयिताध्यक्षयोस्त्रिषु ।
पुनर्नवायां वर्षाभूः स्त्री ना किंचुलके प्लवे ॥ १९ ॥

विष्कम्भो योगभेदेऽपि बन्धभेदेऽपि योगिनाम् ।
रूपकाङ्गे परिष्टम्भे विस्तारप्रतियत्नयोः ॥ २० ॥

विष्कम्भः प्रतिबन्धेऽपि वैदर्भे विस्मृतावपि ।
विश्रम्भः केलिकलहे विश्वासे प्रणये वधे ॥ २१ ॥

वृषभस्तु वृषे शुक्रे वृषभः पुङ्गवेऽपि च ।
वैदर्भं वाक्यवक्रत्वे वैदर्भः स्यान्नृपान्तरे ॥ २२ ॥

सनाभिः पूजने पुंसि सनाभिः सदृशे त्रिषु ।
सुरभिश्चम्पके चैत्रे वसन्ते गन्धके कवौ ॥ २३ ॥

स्वर्णे जातीफले चाक्ले त्रिषु मद्यसुगन्धयोः ।
ख्याते च स्त्री तु शल्लक्यां सुरभी मातृभेदयोः ॥ २४ ॥

---

वल्लभ—कुलीन अश्व, ( पुं० ) प्रिय, अध्यक्ष, ( त्रि० )

वर्षाभू—सौंठी, ( स्त्री० ) कैंचुवा, मेंडक, ( पुं० ) ॥ १९ ॥

विष्कंभ—योगभेद, योगियोंका बंधभेद, रूपकका अंग, परिष्टम (अरली), विस्तार, प्रतियत्न, ॥ २० ॥ प्रतिबंध, वैदर्भ ( एक राजा ), विस्मृति ( भूलना ) ( पुं० )

विश्रंभ—क्रीडाकलह, विश्वास, नम्रता, वध ( मारना ) (पुं० ) ॥ २१ ॥

वृषभ—बैल, शुक्र, श्रेष्ठ, ( पुं० )

वैदर्भ—वाक्यकी वक्रता, ( न० )

वैदर्भ—एक राजा, ( पुं० ) ॥ २२ ॥

सनाभि—पूजन, (पुं०) सदृश (तुल्य) ( त्रि० )

सुरभि—चंपा, चैत्र-मास, वसंत-ऋतु, गंधक, कवि (पुं०) ॥ २३ ॥ सुवर्ण, जायफल, ( पुं० ) मद्य, सुगंध, विख्यात, ( त्रि० ) शल्लकी ( सेह ), गौ, मातृभेद, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥

भचतुर्थम् ।

वाण्यां छन्दःप्रभेदेऽपि स्यादनुष्टुबिति स्मृतः ।
अवष्टम्भः सुवर्णेऽपि प्रारम्भस्तम्भयोरपि ॥ २५ ॥
शातकुम्भं तु कनके शातकुम्भोऽश्वमारके ॥ २६ ॥

इति विश्वलोचने भान्तवर्गः ॥

---

## अथ मान्तवर्गः ।

मैकम् ।

मः शिवे पुंसि मश्चन्द्रे मो विधौ मां तु मातरि ।
स्त्रियां स्यान्मा रमायां च माक्षेपे मानवन्धयोः ॥ १ ॥
मा निषेधेऽव्ययं मे च ममेत्यर्थे ममाव्ययम् ।

मद्वितीयम् ।

अमो रोगेऽपि तद्भेदे स्यादपके तु वाच्यवत् ॥ २ ॥
इध्मः पुंसि वसन्ते स्यादिध्मः स्यान्मीनकेतने ।
उमा गौर्यामतस्यां च हरिद्राकान्तिकीर्तिषु ॥ ३ ॥

---

भचतुर्थ ।

अनुष्टुभ्–सरस्वती, छन्दोभेद, (स्त्री०)
अवष्टम्भ–सुवर्ण, प्रारंभ, स्तम्भ ( थंम ) ( पुं० ) ॥ २५ ॥
शातकुंभ–सुवर्ण, ( न० ) कनेरका पेड, ( पु० ) ॥ २६ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें भान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ मान्तवर्ग ।

मैक ।

म–शिव, चंद्रमा, ब्रह्मा, ( पुं० )
मा–माता, लक्ष्मी, ( स्त्री० )
मा–आक्षेप, माप, बधन, ॥ १ ॥ ( स्त्री० )
मा–निषेध, ( अव्यय )
मे–मम–मम ( मेरा ) शब्दका अर्थ ( अव्यय )

मद्वितीय ।

अम–रोग, रोगभेद, ( पु० ) अपक्व, (त्रि०) ॥ २ ॥
इध्म–वसंत–ऋतु, कामदेव, ( पुं० )
उमा–पार्वती–देवी, अलसी, हलदी, कान्ति, कीर्ति, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

उमस्तु स्यात्पुमानेव मतो नगरघट्टयोः ।
ऊर्म्मिर्द्वयोस्तरङ्गे स्याद्भङ्गे वेगप्रकाशयोः ॥ ४ ॥
वस्त्रसंकोचरेखायामुत्कण्ठापीडयोरपि ।
कामः स्मरेच्छयोः काम्ये कामं रेतोनिकामयोः ॥ ५ ॥
सम्मते स्यादनुमतौ काममित्येतदव्ययम् ।
कामिः स्त्री कामकान्ताया कामिः स्यात्कामुके पुमान् ॥ ६ ॥
सर्वनाम्नि किमित्येतद्विज्ञेयमभिधेयवत् ।
किं वितर्केऽव्ययं प्रश्ने क्षेपे निन्दाप्रकारयोः ॥ ७ ॥
किर्म्मिः स्त्री स्वर्णपुत्र्यां स्यादपि मालापलाशयोः ।
कृमिर्ना क्रिमिवत्कीटे लाक्षायां कृमिले खरे ॥ ८ ॥
क्रमः शक्तिपरीपाटीचलने कम्पनेऽपि च ।
खर्मः क्षौमप्रभेदेऽपि खर्मं स्यादपि पौरुषे ॥ ९ ॥

---

उम–नगर, घाट, ( पुं० )
ऊर्म्मि–तरंग, भंग ( टूटना ), वेग, प्रकाश ॥ ४ ॥ वस्त्रसकोचकी रेखा, उत्कंठा ( उमेर ), पीडा, ( पु० स्त्री० )
काम–कामदेव, इच्छा, इच्छित, (पु०) वीर्य, निकाम (यथेच्छित), (न०) ॥ ५ ॥
कामम्–सम्मति, अनुमति, (अव्यय)
कामि–कामदेवकी स्त्री (रति) (स्त्री०) कामी पुरुष, ( पुं० ) ॥ ६ ॥
किम्–वितर्क, प्रश्न, क्षेप ( आक्षेप ), निंदा, प्रकार, ( सर्वनाम होनेपर त्रिलिंग और अव्यय होनेपर अलिंग) ॥ ७ ॥
किर्म्मि–सनाय, असवरग–वृक्ष, ढाक-वृक्ष ( स्त्री० )
कृमि–क्रिमि–कीट, लाख, जिसके क्रिमि पडीहैं ऐसा गर्दभ, ( पु० ) ॥ ८ ॥
क्रम–शक्ति, परिपाटी, चलना, कॉपना ( पुं० )
खर्म–रेशमी वस्त्रका भेद, पुरुषार्थ, ( न० ) ॥ ९ ॥

गमो द्यूतान्तरे मार्गेऽप्यपर्यालोचितेऽपि च ।
गुल्मः स्तम्बे चमूरक्षासैन्ययोः प्लीहघट्टयोः ॥ १० ॥
गुल्मी स्यादामलक्येलावनिकावस्त्रवेश्मसु ।
ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वकः ॥ ११ ॥
घर्म्मः स्यादातपे ग्रीष्मे ऊष्मस्वेदजलेऽपि च ।
जाल्मः स्यात्पामरे क्रूरे जाल्मोऽसमीक्ष्यकारिणि ॥ १२ ॥
जिह्मं तु तगरे जिह्मस्त्रिषु स्यान्मन्दवक्रयोः ।
हरिद्यवेऽपि हरिते तोक्मस्तोक्मं श्रुतेर्म्मले ॥ १३ ॥
दमस्तु दमने दण्डे दमथे कर्द्दमेऽपि च ।
दस्मो वैश्वानरे चौरे यजमानेऽपि च स्मृतः ॥ १४ ॥
द्रुमस्तु पादपे पारिजाते किंपुरुषेश्वरे ।
धर्म्मः स्यादस्त्रियां पुण्ये धर्म्मो न्यायस्वभावयोः ॥ १५ ॥

---

गम–जूवा, मार्ग, अच्छी तरह नहीं देखा हुवा, ( पुं० )
गुल्म–गुच्छा, सेनाकी रक्षा, सेनाभेद, तिल्ली, घाट, ( पुं० ) ॥ १० ॥
गुल्मी–ऑवला, इलायची, वनी ( छोटावन ), तंबू-डेरा, ( स्त्री० )
ग्राम–स्वरभेद, ग्राम ( गॉव ), ग्रामके पूर्व शब्दआदि लगानेसे समूह, ( जैसे–शब्दग्राम ) (पुं०) ॥११॥
घर्म–धूप, ग्रीष्म–ऋतु, गरमी, पसीनाका जल, ( पुं० )
जाल्म–नीच, क्रूर, विनाविचारे करनेवाला ( पुं० ) ॥ १२ ॥
जिह्म–तगरका वृक्ष, ( न० ) मद, कुटिल, ( त्रि० )
तोक्म–हरा जव, हरा ( सवजा ), ( पुं० ) कानका मैल, ( न० ) ॥ १३ ॥
दम–दमनकरना ( इंद्रियोंको शात करना)दडदेना, रोकना, कीचड़(पुं०)
दस्म–अग्नि, चोर, यजमान, ( पुं० ) ॥ १४ ॥
द्रुम–वृक्ष, कल्पवृक्ष, कुवेर ( पुं० )
धर्म–पुण्य, (पुं० न०) धर्म–न्याय, स्वभाव, ( पुं० ) ॥ १५ ॥

उपमायां यमाचारवेदान्तेऽपि धनुष्यपि ।
यागे योगेऽप्यहिंसायां सोमपेऽपि क्वचिन्मत. ॥ १६ ॥

ध्यामो गन्धतृणे पुंसि ध्यामो दमनकेऽपि च ।
श्यामवर्णे त्रिषु ध्यामो नुमा नाम्नि परद्युतौ ॥ १७ ॥

नेमिः कूपत्रिकायां स्याच्चक्रान्ते तिनिशद्रुमे ।
नेमोऽर्द्धकीलसीमासु गर्त्तप्राकारकैतवे ॥ १८ ॥

पद्मोऽस्त्री पद्मनालेऽब्जे व्यूहसंख्यान्तरे निधौ ।
पद्मके नागभेदे ना पद्मा भार्ङ्गीश्रियोः स्त्रियाम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मी तु भारतीपङ्कगतिकाब्रह्मशक्तिषु ।
फञ्जिकायां तथा सोमवल्लरीशाकयोरपि ॥ २० ॥

भामः क्रोधे रवौ भासि भीमः शम्भौ वृकोदरे ।
स्यादम्लवेतसे भीमस्त्रिषु घोरे भयानके ॥ २१ ॥

---

उपमा, धर्मराज, आचार, वेदान्त, धनुष, याग, योग, अहिंसा, अमृत पान करनेवाला, ( पुं० ) ॥१६॥
ध्याम—सुगंधि तृण—विशेप, दौना ( पुष्पपेड ) ( पुं० ) श्यामवर्ण, ( त्रि० )
नुमा—नाम, परमकाति, ( स्त्री० ) ॥ १७ ॥
नेमि—कूएकी त्रिका ( चौखटा ), चक्रकी पुटी, तिरिच्छ वृक्ष, (पुं०)
नेम—आधा, कीला, सीमा, खड्डा, किला, कपट, ( पुं० ) ॥ १८ ॥
पद्म—कमलनाल, कमल, सेनारचना, संख्याभेद, निधि, पद्माक, नागभेद, ( पुं० )
पद्मा—भारगी, लक्ष्मी, ( स्त्री० ) १९
ब्राह्मी—सरस्वती, मत्स्यभेद ( कीचडकी मच्छी ), ब्रह्मशक्ति, धमासा, सोमवेल, शाकभेद, ( स्त्री० ) २०
भाम—क्रोध, सूर्य, प्रभा, ( पुं० )
भीम—महादेव, भीमसेन, अम्लवेत, ( पुं० ) घोर, भयानक ( पुं० ) ॥ २१ ॥

भीष्मस्तु हरगाङ्गेयरक्षसि त्रिषु भीषणे ।
स्थानमात्रे क्षितौ भूमिर्भौमस्तु नरके कुजे ॥ २२ ॥
भ्रमो भ्रान्तौ च कुन्दाख्ययन्त्रे च जलनिर्गमे ।
संयमे यमजे धर्मराजे ध्वाङ्क्षे युगे यमः ॥ २३ ॥
नित्यकर्मप्रभेदे च यमुनायां यमी स्त्रियाम् ।
प्रहरे संयमे यामो यामिः स्वसृकुलस्त्रियोः ॥ २४ ॥
प्रध्मश्चापेपि संग्रामे राममाधवयोषिति ।
रमस्तु मन्मथे कान्ते रमोऽशोकमहीरुहे ॥ २५ ॥
रश्मिरंशुप्रग्रहयो रश्मिर्लोचनलोमनि ।
रामस्तु राघवे जामदग्न्ये हलधरेऽपि च ॥ २६ ॥
पशुभेदे सितश्याममनोज्ञेषु तु वाच्यवत् ।
रामाङ्गनाहिङ्गुलिन्यो रामं वास्तुककुष्ठयोः ॥ २७ ॥

---

भीष्म—महादेव, भीष्मपितामह, राक्षस, ( पु० ) भीषण, ( त्रि० )
भूमि—स्थानमात्र, पृथ्वी, ( स्त्री० )
भौम—भौमासुर ( नरकासुर ), मंगलग्रह, ( पु० ) ॥ २२ ॥
भ्रम—भ्रान्ति, कुदनामक यंत्र, जलनिर्गम ( चक्राकार होकर जलोंका नीचेको जाना ) ( पुं० )
यम—संयम ( इंद्रियादिकोंका रोकना), शनि-ग्रह, धर्मराज, काग, जोडा ॥ २३ ॥ नित्यकर्मभेद, ( पुं० )
यमी—यमुना, ( स्त्री० )
याम—प्रहर ( पहर ), संयम, (पुं०)
यामि—बहन, कुलकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥
प्रध्म—धनुष, सग्राम, ( पुं० )
प्रध्मा—बलदेव कृष्णकी स्त्री ( स्त्री० )
रम—कामदेव, सुंदर, अशोक-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ २५ ॥
रश्मि—किरण, घोडा आदिकोंकी रस्सी, नेत्र, लोम, (पलख) (पुं०)
राम—रामचंद्र, परशुराम, बलदेव, ॥ २६ ॥ पशुभेद, ( पुं० ) श्वेत, श्याम, सुंदर, ( त्रि० )
रामा—स्त्री, कटेहली, ( स्त्री )
राम—बथुवा, कूठ ( न० ) ॥ २७ ॥

मनोरमेऽभिपूर्वायां रुक्मं तु स्वर्णलोहयोः ।
रुमा सुग्रीवकान्तायां रुमा तु लवणाकरे ॥ २८ ॥
लक्ष्मीः श्रीरिव संपत्तौ पद्माशोभाप्रियङ्गुषु ।
लक्ष्मीः स्यादौषधीभेदे नञः पूर्वा तु निर्ऋतौ ॥ २९ ॥
वमिः स्यात्पावके पुंसि वमिस्तु वमने स्त्रियाम् ।
वामः सव्ये हरे कामे धने वित्ते तु न द्वयोः ॥ ३० ॥
वल्गु प्रतीपयोर्वामस्त्रिषु वामा तु योषिति ।
वामी शृगाल्यां वडवारासभीकरभीष्वपि ॥ ३१ ॥
शमी शक्तुफलायां स्याच्छिवायां वल्गुलावपि ।
शुष्मः पुमान्दिनपतौ मतं शुष्मं तु तेजसि ॥ ३२ ॥
श्यामस्तु हरिते कृष्णे प्रयागस्य वटद्रुमे ।
पिके पयोधरे वृद्धदारकेऽपि पुमानयम् ॥ ३३ ॥

---

अभिराम–सुंदर, ( त्रि० )
रुक्म–सुवर्ण, लोह, ( न० )
रुमा–सुग्रीवकी स्त्री, नमककी खान, ( स्त्री० ) ॥ २८ ॥
लक्ष्मी–(श्री) सपत्ति, लक्ष्मी, शोभा, फूलप्रियंगु, औषधी–भेद (ऋद्धि–वृद्धि–आदि ( स्त्री० )
अलक्ष्मी–नरककी अशोभा ( स्त्री० ) ॥ २९ ॥
वमि–अग्नि, ( पुं० ) वमि–वमन ( स्त्री० )
वाम–सव्य ( बाया अंग ), महादेव, कामदेव, मेघ, ( पुं० ) धन, ( न० ) ॥ ३० ॥
वाम–सुंदर, प्रतिकूल, ( पुं० )
वामा–स्त्री, ( स्त्री० )
वामी–गीदड़ी, घोड़ी, गर्दभी, ऊँटनी ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥
शमी–सॉँट–वृक्ष, कौंछ, वाघल-पक्षी, ( स्त्री० )
शुष्म–सूर्य, ( पुं० ) शुष्म–तेज, ( न० ) ॥ ३२ ॥
श्याम–हरित, कृष्ण, प्रयागका वड़, कोयल–पक्षी, मेघ, भिदारा (पुं०) ॥ ३३ ॥

श्यामवर्णे हरिद्वर्णे त्रिषु श्यामा तु वल्गुलौ ।
अप्रसूताङ्गनायां च श्यामा सोमलतौषधौ ॥ ३४ ॥

त्रिवृताशारिवागुन्द्रानिशानीलीप्रियङ्गुषु ।
श्यामं लवणभेदेऽपि श्यामं स्यान्मरिचेऽपि च ॥ ३५ ॥

श्रामस्तु मण्डपे काले विपूर्वः श्रमवञ्चने ।
समा वर्षे सदृक्सर्वमान्येषु च समं त्रिषु ॥ ३६ ॥

सीमाऽवधौ च वेलायां क्षेत्रे घाटे स्थितावपि ।
सूक्ष्मं तु नभसि क्षीरे सूक्ष्ममल्पेऽभिधेयवत् ॥ ३७ ॥

कतकाऽध्यात्मयोः सूक्ष्मं सूक्ष्मः पुंस्यणुमात्रके ।
सोमः सुधांशुकर्पूरकुवेरपितृदैवते ॥ ३८ ॥

दिव्यौषधीश्यामलतावसुभिद्वातवानरे ।
तुषारे चन्दने शीते हिमं त्रिषु तु शीतले ॥ ३९ ॥

---

श्यामवर्णवाला, हरितवर्णवाला (त्रि०)
**श्यामा**—वाघल—पक्षी, नहीं प्रसूति हुई स्त्री, सोमलता औषधि ॥३४॥ निसोथ, अनंतमूल, भद्रमोथा, हलदी, लीलका पेड, फूलप्रियंगु, (स्त्री०)
**श्याम**—लवणभेद, स्याह मिरच, (न० ) ॥ ३५ ॥
**श्राम**—मंडप, काल, ( पुं० )
**विश्राम**—श्रम ( खेद ) का दूरकरना, ( पुं० )
**समा**—वर्ष, ( स्त्री० )
**सम**—तुल्य, संपूर्ण, श्रेष्ठ, (त्रि०)॥३६॥
**सीमा**—अवधि, वेला ( नदीआदिका तीर ), क्षेत्र, घाट, स्थिति, (स्त्री०)
**सूक्ष्म**—आकाश, दुग्ध, ( न० ) अल्प ( त्रि० ) ॥ ३७ ॥ **सूक्ष्म**—कतक ( निर्मली ), अध्यात्म ( आत्मविचार ) ( न० ) **सूक्ष्म**—अणु ( सूक्ष्ममात्र, ) ( पुं० )
**सोम**—चंद्रमा, कपूर, कुवेर, पितृदेवता, ॥ ३८ ॥ दिव्य औषधि, सोमलता, वसुभेद, वायु, वंदर, ( पु० )
**हिम**—वर्फ, चंदन, ठंढा, ( पुं० )
**हिम**—ठंढा, ( त्रि० ) ॥ ३९ ॥

होमिरग्नौ घृते चाथ क्षितौ क्षान्तावपि क्षमा ।
क्षमं युक्ते क्षमः शक्ते हिते क्षान्त्यन्वितेऽन्यवत् ॥ ४० ॥
क्षुमाऽतसीनीलिकयोः क्षेमं स्याल्लब्धरक्षणे ।
मङ्गले चोरके वा स्त्री क्षेमा चण्डाहरस्त्रियोः ॥ ४१ ॥
क्षौमं स्यादतसीवस्त्रे क्षौममट्टदुकूलयोः ।

मतृतीयम् ।

अधमः कुत्सिते न्यूनेऽप्यागमः शास्त्र आगतौ ॥ ४२ ॥
आश्रमो ब्रह्मचर्यादौ मुनिस्थाने मठे स्त्रियाम् ।
उत्तमा दुग्धिकायां स्यादुत्कृष्टे तु त्रिषूत्तमम् ॥ ४३ ॥
कलमः शालिलेखन्योश्चौरे लाक्षारसेऽपि च ।
कुसुमं पुष्पफलयोरार्त्तवे लोचनामये ॥ ४४ ॥
कृत्रिमं लवणे पुंसि सिह्लके कृतके त्रिषु ।
गुडार्मः स्याद्गुडक्षोदे क्षीरदारुणि च स्मृतः ॥ ४५ ॥

---

होमि–अग्नि, घृत, ( पुं० )
क्षमा–पृथ्वी, क्षान्ति, ( स्त्री० )
क्षम–युक्त, (न०) समर्थ, हित (पु०) क्षान्तियुक्त, ( त्रि० ) ॥ ४० ॥
क्षुमा–अलसी, नीली ( नील)(स्त्री०)
क्षेम–लब्धकी रक्षा, मंगल, चोरक गन्धद्रव्य, ( भटेउर ) ( न० स्त्री० )
क्षेमा–चंडा–औषधी, पार्वती (स्त्री०) ॥ ४१ ॥
क्षौम–अलसीवस्त्र, अट्ट ( अटारी ), रेशमीवस्त्र ( न० )

मतृतीय ।

अधम–निंदित, न्यून ( कमती ), ( पुं० )
आगम–शास्त्र, आना, (पुं०) ॥४२॥
आश्रम–ब्रह्मचर्य आदि, मुनिका स्थान, मठ ( विद्यार्थियोंका स्थान ) ( पुं० न० )
उत्तमा–दूधी–औषधि, ( स्त्री० )
उत्तम–उत्कृष्ट ( श्रेष्ठ ) ( त्रि० ) ॥ ४३ ॥
कलम–साँठी–चावल, कलम, चोर, लाखका रंग, ( पुं० )
कुसुम–पुष्प, फल, स्त्रीका रज, नेत्रका रोग, ( न० ) ॥ ४४ ॥
कृत्रिम–लवण, हींग, (पुं०) नकली वस्तु, ( त्रि० )
गुडार्म–गुडका चूर्ण, दूधवाला वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ४५ ॥

गोधूमो व्रीहिभेदे स्यान्नारङ्गे भेषजान्तरे ।
गोलोमी श्वेतदूर्वायां वारस्त्रीवचयोरपि ॥ ४६ ॥
गौतमः शाक्यसिंहेऽपि मुनिभेदेऽपि गौतमः
गौतमी चण्डिकायां च रोचन्यामपि गौतमी ॥ ४७ ॥
तलिमं कुट्टिमे तल्पे विताने यावकेऽपि च ।
दाडिमः पुंसि दाडिम्व एलायामपि दाडिमः ॥ ४८ ॥
निगमो हट्टपूर्वेदकटक्षुण्डीषु वाणिजे ।
नियमो निश्चये वन्धे यन्त्रणे संविदि व्रते ॥ ४९ ॥
निष्क्रमो निर्गमे वुद्धिसम्पत्तौ दुष्कुलेऽपि च ।
नैगमः क्षुरिवेदान्तवणिग्वाणिज्यनागरे ॥ ५० ॥
पञ्चमो रागभेदे स्यात्पञ्चानां पूरणे त्रिषु ।
त्रिषु दक्षिणमेघेऽपि पञ्चमी पाण्डवस्त्रियाम् ॥ ५१ ॥

---

गोधूम–गेहूँ, नारंजी, औषधिभेद ( पुं० )

गोलोमी–सफेद–दूब, वेश्या, वच–औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥

गौतम–बुद्धदेव, एकमुनि, ( पुं० )

गौतमी–चंडिका, गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ ४७ ॥

तलिम–कुट्टिम (रचितभूमि), शय्या, चँदोवा, यावक (कुल्माष) (न०)

दाडिम–अनार, इलायची, ( पुं० ) ॥ ४८ ॥

निगम–हाट, पुर, वेद, कट (मुर्दा), न्यायसारिणी, वाणिज, ( पुं० )

नियम–निश्चय, वन्ध, प्रेरणा, बुद्धि, व्रत, ( पुं० ) ॥ ४९ ॥

निष्क्रम–निकसना, बुद्धिसंपत्ति, दुष्कुल ( नेष्टकुल ) ( पुं० )

नैगम–नाई, वेदान्त, बनिया, वाणिज्य, नागर ( नगरमें होनेवाला पुरुष ) ( पुं० ) ॥ ५० ॥

पंचम–रागभेद, ( पुं० ) पाचोंको पूर्ण करनेवाला ( पांचवां ) (त्रि०) दक्षिण दिशाका मेघ, ( त्रि० )

पंचमी–पाडवोंकी स्त्री(द्रौपदी)(स्त्री०) ॥ ५१ ॥

परमस्तु त्रिषूत्कृष्टे प्रधानाद्योऽथ पुंसि तु ।
ओंकारे परमं तु स्यादनुज्ञायामसंज्ञकम् ॥ ५२ ॥
प्रक्रमोऽवसरे चानुक्रमे चापक्रमे क्रमे ।
प्रतिमाऽनुकृतौ दन्तवन्धनेऽपि च दन्तिनाम् ॥ ५३ ॥
आदावपि प्रधानेऽपि प्रथमं वाच्यलिङ्गकम् ।
प्रहर्म्यः सौधकूटस्थकलशाद्रिनितम्बयोः ॥ ५४ ॥
मध्यमो मध्यदेशे स्यात्स्वरे मध्येऽथ मध्यमा ।
त्रिषु दृष्टरजोनारीराकयोर्मध्यमा स्त्रियाम् ॥ ५५ ॥
कर्णिकात्र्यक्षरच्छन्दकरमध्याङ्गुलीषु च ।
विक्रमस्तूद्यमक्रान्तौ क्षमाया शक्तिसंपदि ॥ ५६ ॥
विद्रुमो रत्नवृक्षेऽपि प्रवाले नवपल्लवे ।
विभ्रमस्तु विलासे स्याद् विभ्रमो भ्रान्तिहावयोः ॥ ५७ ॥

---

परम—श्रेष्ठ, ( त्रि० ) प्रधान (मुख्य) आदि, ( पुं० )
परम—ॐकार, ( न० ) आज्ञा ( अव्यय ) ॥ ५२ ॥
प्रक्रम—अवसर, अनुक्रम, अपक्रम ( उलटा क्रम ) क्रम, ( पुं० )
प्रतिमा—अनुकृति ( अनुकरण ), हस्तियोंका दंतबंधन, ( स्त्री० ) ५३
प्रथम—आदि, प्रधान, ( त्रि० )
प्रहर्म्य—महलकी शिखरका कलश, पर्वतका नितंब, ( पु० ) ॥ ५४ ॥
मध्यम—मध्यदेश, मध्यम-स्वर, (पु०)
मध्यमा—रजस्वला स्त्री, पूर्णचंद्रवाली पूर्णिमा, ( स्त्री० ) ॥ ५५ ॥ कर्णिका ( पुष्पकी केसर ), तीन अक्षरोंका छंद, हाथकी मध्यम अंगुली, ( स्त्री० )
विक्रम—उद्यम, क्रान्ति, क्षमा, शक्ति, संपत्, ( पुं० ) ॥ ५६ ॥
विद्रुम—रत्नवृक्ष, मूंगा, नवीन पत्ता, ( पुं० )
विभ्रम—विलास, भ्रान्ति, हाव (स्त्रीकरणभेद ) ( पुं० ) ॥ ५७ ॥

विलोमो विपरीतेऽपि भुजङ्गेऽङ्गुलिरोमनि ।
विलोमी तु व्यवस्थायां विलोममरघट्टके ॥ ५८ ॥
व्यायामो दुर्गसंचारे वियामे पौरुषे श्रमे ।
सङ्क्रमः सङ्क्रमणेऽस्त्री तु वारिसंचारयन्त्रके ॥ ५९ ॥
त्रिपूतमे पूज्यतमे साधीयसि च सत्तमः ।
सम्भ्रमस्त्वादरे पुंसि संवेगे साध्वसेऽपि च ॥ ६० ॥
सुषमं चारुसमयोस्त्रिषु स्यात्सुषमा द्युतौ ।
अतिद्युतौ च सुषमा सुषीमः पन्नगान्तरे ॥ ६१ ॥
सुषीमं शिशिरे क्लीबं चारुशीतलयोस्त्रिषु ।

मचतुर्थम् ।

सुन्दरेऽप्युपमाशून्ये भवेदनुपमोऽन्यवत् ॥ ६२ ॥
गौरीनायकदिङ्नागयोषित्यनुपमा मता ।
अभ्यागमोऽन्तिके घाते विरोधेऽप्युद्गमे युधि ॥ ६३ ॥

---

विलोम-विपरीत, सर्प, अगुलियोंके रोम, ( पुं० )
विलोमी-व्यवस्था, ( स्त्री० )
विलोम-अरहट ( न० ) ॥ ५८ ॥
व्यायाम-दुर्गसंचार, संयम, पौरुष, परिश्रम, ( पुं० )
संक्रम-सक्रमण, ( पु० ) जलमे संचारका यत्र, ( पुं० न० )॥५९॥
सत्तम-उत्तम, पूज्यतम, अतिश्रेष्ठ, ( पुं० )
सम्भ्रम-आदर, संवेग, भय, (पुं० ) ॥ ६० ॥
सुषम-सुंदर, सम ( तुल्य ), (त्रि०)
सुषमा-कान्ति, अतिकान्ति, (स्त्री०)
सुषीम-सर्पभेद, ( पुं० ) शिशिर, ( न० ) सुदर, शीतल, ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥

मचतुर्थ ।

अनुपम-सुंदर, उपमाशून्य, (त्रि०) ॥ ६२ ॥
अनुपमा-ईशान कोणके हाथीकी हथिनी, (स्त्री० )
अभ्यागम-समीप, घात, विरोध, उद्गम, युद्ध, ( पु० ) ॥ ६३ ॥

उपक्रमश्चिकित्सायामुपधाने च विक्रमे ।
भवेदुपगमः पार्श्वगमनेऽङ्गीकृतावपि ॥ ६४ ॥
जलगुल्मो जलावर्त्तजलचत्वरकच्छपे ।
दण्डयामस्तु दिवसे कीनाशे कुम्भसम्भवे ॥ ६५ ॥
पराक्रमस्तु सामर्थ्ये विक्रमोद्योगयोरपि ।
प्लवङ्गमः कपौ भेके महापद्मं तु मानके ॥ ६६ ॥
महापद्मः पुमान्सङ्ख्यानिधिनागान्तरे मतः ।
यातयामो मतो जीर्णे परिभुक्तोज्झिते त्रिषु ॥ ६७ ॥
सार्वभौमस्तु दिग्नागभेदे सर्वमहीपतौ ।
अभ्युपगमः स्वीकारे समीपागमनेऽपि च ॥ ६८ ॥

इति विश्वलोचने मान्तवर्ग. ॥

---

उपक्रम–चिकित्सा ( इलाज ), उपधा, विक्रम, ( पुं० )

उपगम–समीपजाना, अंगीकार, ( पुं० ) ॥ ६४ ॥

जलगुल्म–जलका भँवर, जलचौक, कछुवा ( पुं० ) ।

दण्डयाम–दिन, धर्मराज, अगस्त्य मुनि, ( पु० ) ॥ ६५ ॥

पराक्रम–सामर्थ्य, विक्रम, उद्योग, ( पु० ) ।

प्लवंगम–बन्दर, मेंडक, ( पुं० )

महापद्म–प्रमाण, ( न० ) ॥ ६६ ॥

महापद्म–सख्याभेद, निधिभेद, नागभेद, ( पुं० )

यातयाम–जीर्ण, अच्छीतरह भोगा-हुवा, त्यागाहुवा, ( त्रि० ) ॥६७॥

सार्वभौम–दिग्हस्तीभेद, सपूर्णपृथ्वीका राजा, ( पुं० )

अभ्युपगम–अंगीकार, समीपमें आना, ( पुं० ) ॥ ६८ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषामें मान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ यान्तवर्गः ।

यैकम् ।

योः वातयशसोः पुंसि या यानत्यागयातृषु ।

यद्वितीयम् ।

अन्योऽसमाने भिन्ने च स्यादन्त्योऽन्तभवेऽधमे ॥ १ ॥
अर्थ्यो बुधे त्रिषु न्याय्ये शिलाजतुनि न द्वयोः ।
अर्घार्थे यत्तदर्घ्यं स्यात्रिषु यश्चार्घमर्हति ॥ २ ॥
अर्घ्यः स्याद्योग्यमात्रेऽपि स्यादर्यः स्वामिवैश्ययोः ।
पुंस्यार्यः सौविदल्ले स्यादार्यस्त्वभ्यर्हिते त्रिषु ॥ ३ ॥
आस्या स्थितौ मुखे चास्यं मुखमध्ये मुखोद्भवे ।
इज्यो गुरौ पुमानिज्या दानार्चासङ्गमेष्टिषु ॥ ४ ॥

---

**अथ यान्तवर्ग ।**

यैक ।

य–वायु, यश, ( पुं० )

या–यान ( सवारी ), त्याग, गमन करनेवाला, ( पुं० )

यद्वितीय ।

अन्य–असमान, भिन्न ( त्रि० )

अन्त्य–अन्तमें होनेवाला, अधम, ( त्रि० ) ॥ १ ॥

अर्थ्य–पंडित, ( पुं० ) न्याय्य (न्याययुक्त) ( त्रि० ) शिलाजीत ( न० )

अर्घ्य–जो अर्घके लिये द्रव्य है वह, जिसको अर्घ दियाजाय वह ( त्रि० ) ॥ २ ॥

अर्घ्य–योग्यमात्र, ( पु० )

अर्य–स्वामी, वैश्य, ( पुं० )

आर्य–कञ्चुकी, ( रनवासका पहरेदार) ( पुं० ) पूज्य, ( त्रि० ) ॥ ३ ॥

आस्या–स्थिति, ( स्त्री० )

आस्य–मुख, मुखमध्य, मुखसे उत्पन्न, ( त्रि० )

इज्य–गुरु ( बृहस्पति ) ( पुं० )

इज्या–दान, अर्चा ( पूजा ), संगम, इष्टि ( यज्ञ ) ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥

इभ्य आढ्य भवेदिभ्या करेण्वामपि शल्लकौ ।
कन्या कुमारिकानार्यो राशिभेदौषधीभिदोः ॥ ५ ॥
प्रातर्होदिनयोः कल्यं कल्यो नीरोगदक्षयोः ।
सज्जेऽपि त्रिषु कल्या तु मद्ये कल्या च वाचि च ॥ ६ ॥
कश्यं मद्ये कशार्हे च कश्यं मध्ये च वाजिनाम् ।
कक्ष्या बृहतिकाकाञ्चोर्मध्यबन्धे च दन्तिनाम् ॥ ७ ॥
हर्म्यादीना प्रकोष्ठे तु कांस्यं स्यात्पानभाजने ।
तैजसद्रव्यभेदेपि वाद्यभेदेऽपि न द्वयोः ॥ ८ ॥
कायो वर्ष्म स्वभावे च सङ्घे लक्ष्ये कदैवते ।
कार्यं मनुष्यतीर्थे स्यात्कार्यं हेतौ प्रयोजने ॥ ९ ॥
काव्यः शुक्रग्रहे पुंसि काव्या स्यात्पूतनाधियोः ।
काव्यं ग्रन्थान्तरे क्लीबं कुड्यं भित्तौ विलेपने ॥ १० ॥

---

इभ्य–धनी ( पु० )
इभ्या–हथिनी, शल्लकी ( सालई ) वृक्ष ( स्त्री० )
कन्या–कुमारी, स्त्रीमात्र, राशिभेद, औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥
कल्य–प्रातःकाल, कलका दिन, (न०)
कल्य–नीरोग, चतुर, सज्ज (कवच) आदिसे सजाहुवा ( त्रि० )
कल्या–मदिरा, वाणी, ( स्त्री० ) ६
कश्य–मद्य ( मदिरा ), चाबुक लगाने योग्य, (त्रि०) घोडोंका मध्यभाग ( न० )
कक्ष्या–कटेहली, करधनी, हस्तियोंका मध्यबंध, ( नाडी ) ॥ ७ ॥
हर्म्य ( महल ) आदिकोंका प्रकोष्ठ ( कोठा ) ( स्त्री० )
कांस्य–जलआदि पीनेका पात्र, तैजस द्रव्यभेद, वाद्य ( बाजा ) भेद, ( न० ) ॥ ८ ॥
काय–शरीर, स्वभाव, समूह, निशाना क ( प्रजापति ) देवतावाला,(पुं०)
कार्य–हेतु, प्रयोजन ( न० ) ॥ ९ ॥
कार्य–मनुष्यतीर्थ, ( न० )
काव्य–शुक्र–ग्रह, ( पुं० )
काव्या–पूतना, बुद्धि, ( स्त्री० )
काव्य–ग्रंथ,(न०)
कुड्य–दीवार, विलेपन ( लीपना ) ( न० ) ॥ १० ॥

कुल्यो मान्ये कुलोद्भूतकुलातिहितयोस्त्रिषु ।
कुल्यं स्यादामिषे शूर्पेप्यष्टद्रोण्यां च कीकसे ॥ ११ ॥
कुल्याऽल्पकृत्रिमनदीनदीजीवासु निर्झरे ।
कृत्या क्रियादेवतयोस्त्रिषु भेद्ये धनादिभिः ॥ १२ ॥
विद्विष्टकार्ययोश्चायं कृत्यास्तव्यादिषु स्मृताः ।
क्रिया कर्म्मणि चेष्टायां करणे संप्रधारणे ॥ १३ ॥
उपायारम्भशिक्षार्चाचिकित्सानिष्कृतिष्वपि ।
गव्यं नपुंसकं ज्यायां गवां क्षीरादिकेऽपि च ॥ १४ ॥
रागद्रव्येऽपि गव्या तु गोकुले गोहिते त्रिषु ।
गुह्यं रहस्युपस्थे च गुह्यो दम्भेपि कच्छपे ॥ १५ ॥
गृह्या शाखापुरे गृह्यास्त्वसक्तमृगपक्षिणोः ।
गुह्यं पुरीषमार्गेऽपि गृह्यमस्वैरिपक्षयोः ॥ १६ ॥

---

कुल्य–मान्य–पुरुष ( पुं० ) कुलमें उत्पन्नहुवा,कुलका अतिहित,(त्रि०)

कुल्य–मास, छाज, अष्ट द्रोणी, अस्थि ( हाड ) ( न० ) ॥ ११ ॥

कुल्या–छोटी कृत्रिमनदी, नदी, जीवन्ती–औषधि, झिरना, (स्त्री०)

कृत्या–क्रिया, देवता, ( स्त्री० ) धन आदिकरके भेद्य, ॥ १२ ॥ शत्रु, कार्य, ( त्रि० )

कृत्य–तव्य आदि प्रत्यय, ( पुं० )

क्रिया–कर्म, चेष्टा, करण, संप्रधारण ( अच्छेप्रकार धारण ) ॥ १३ ॥

उपाय, आरम, शिक्षा, पूजा, चिकित्सा, निकालना, ( स्त्री० )

गव्य–धनुषकी ज्या, गौवोंका दूध दधि आदि ॥१४॥ रंगनेका द्रव्य, (न०)

गव्या–गोकुल, गोहित, ( त्रि० )

गुह्य–रहस्य ( गुप्तसलाह ), स्त्रीपुरुषका योनि और शिश्न, (न०) दंभ, कछुवा, ( पुं० ) ॥ १५ ॥

गृह्या–शाखानगर ( एकपुरमाहँसे बसाहुवा दूसरा नगर), ( स्त्री० )

गृह्य–घरमें हिलाहुवा मृग और पक्षी, ( पुं० ) गुद, ( न० ) रोकाहुवा, पक्षकरने योग्य, ( त्रि० ) ॥१६॥

गेयस्तु त्रिपु गातव्ये गेयः स्याद्गायने पुमान् ।
गोप्यो दास्या अपत्ये स्याद्रक्षणीयेऽपि वाच्यवत् ॥ १७ ॥

ग्राम्यो जने त्रिपु ग्राम्यं त्वश्लीलरतबन्धयोः ।
चयस्त्वाहरणे वृन्दे प्राकारे मूलबन्धने ॥ १८ ॥

चव्यं तु चविके यच्च चव्या दूर्वाग्रगन्धयोः ।
चित्या मृतचितायां स्याच्चित्यं मृतकचैत्यके ॥ १९ ॥

चैत्यमायतने क्लीबं स्याच्चिताचूडकेऽपि च ।
बुद्धबिम्बे पुमांश्चैत्यश्चैत्यं उद्देश्यपादपे ॥ २० ॥
चोद्यं प्रश्नेऽद्भुते चोद्यं वाच्यवच्चोदनोचिते ।
छाया स्यादातपाभावे सत्कान्त्युत्कोचकान्तिषु ॥ २१ ॥
प्रतिबिम्बेऽर्ककान्तायां तथा पङ्क्तौ च पालने ।
जन्यस्ताते वरवधूज्ञातिभृत्यप्रियेहिते ॥ २२ ॥

---

गेय—गानेके योग्य, ( त्रि० ) गायन ( पुं० )
गोप्य—दासीकी संतान, रक्षाकरने योग्य, ( त्रि० ) ॥ १७ ॥
ग्राम्य—ग्राममें होनेवाला जन, (त्रि०) अश्लील, रतबंध, ( न० )
चय—इकट्ठाकरना, समूह, किला, जड़का बांधना, ( पुं० ) ॥ १८ ॥
चव्य—चव्य, ( न० )
चव्या—दूब, अजमोद, ( स्त्री० )
चित्या—मृतककी चिता, ( स्त्री० )
चित्य—मृतकका चौंतरा, ( न० ) ॥ १९ ॥
चैत्य—यज्ञस्थान, चिताका चिह्न, (न०) बुद्धदेवकी मूर्ति, उद्देश्य(प्रसिद्ध)वृक्ष (जिन सभाका वृक्ष) (पुं०) ॥२०॥
चोद्य—प्रश्न, अद्भुत ( न० ) प्रेरणाके योग्य, ( त्रि० )
छाया—धूपका अभाव, अच्छी कान्ति, रिशवत, शोभा, ॥ २१ ॥ प्रतिबिंब, सूर्यकी स्त्री, पंक्ति, पालनकरना, ( स्त्री० )
जन्य—पिता, वरवधू, ज्ञाति, भृत्य, प्रिय, हित ( हितू ) ॥ २२ ॥

जन्यस्तु जननीये स्यात्त्रिषु जन्यं तु संयुगे ।
परीवादेऽपि हट्टेऽपि जन्या मातृसखीमुदोः ॥ २३ ॥
जन्युः प्राणिनि वह्नौ च जन्युः स्यात्परमेष्ठिनि ।
जयो जयन्ते विजये जया तिथ्यन्तरोमयोः ॥ २४ ॥
उमासखीजयन्त्योश्च पथ्यायामग्निमन्थके ।
जात्यं कुलीने श्रेष्ठेऽपि तार्क्ष्योऽनूरुसुपर्णयोः ॥ २५ ॥
रथेऽश्वे चाश्वकर्णद्रौ मतं तार्क्ष्यं रसाञ्जने ।
तिष्यः पुष्ये कलौ तिष्या धात्र्यां तिष्यैव पुष्यवत् ॥ २६ ॥
त्रयी त्रिवेद्यां त्रितये पुरन्ध्र्यां सुमतावपि ।
दस्युर्विद्विषि चौरे च दायः सोल्लुण्ठभाषिते ॥ २७ ॥
यौतकादिधने दाने भागार्हपितृवस्तुनि ।
दिव्यं तु शपथे बाले लवङ्गकुसुमेऽपि च ॥ २८ ॥

---

जननेके योग्य, ( त्रि० )
जन्य–युद्ध, परिवाद, हाट, ( न० )
जन्या–माताकी सखी, आनंद (स्त्री०) ॥ २३ ॥
जन्यु–प्राणी, अग्नि, ब्रह्मा, ( पुं० )
जय–जयन्त ( इंद्रपुत्र ), विजय ( जीतना ) ( पुं० )
जया–तिथिभेद, पार्वती, ॥ २४ ॥ पार्वतीकी सखी, जयती या अगेथु पुष्पवृक्ष, हरड, अरइँ, ( स्त्री० )
जात्य–कुलीन, श्रेष्ठ, ( त्रि० )
तार्क्ष्य–अरुण, गरुड, ॥ २५ ॥ रथ, अश्व, साल–वृक्षभेद, (पु०)
तार्क्ष्य–रसोत–औषधि ( न० )
तिष्य-पुष्य–पुष्य–नक्षत्र, कलि युग, ( पुं० )
तिष्या–आँवला, ( स्त्री० ) ॥ २६ ॥
त्रयी–त्रिवेदी ( तीनवेद ), तीन अवयवोवाला, पतिपुत्रवाली स्त्री, श्रेष्ठ–बुद्धि, ( स्त्री० )
दस्यु–शत्रु, चोर, ( पुं० )
दाय–हास्य सहित भाषण ॥ २७ ॥ वरवधूको देनेका द्रव्य, दान, भाग-करने योग्य पिताकी वस्तु, (पु० )
दिव्य–सौंगन, बालक, लौंग, पुष्प, ( न०) ॥ २८ ॥

दिव्याऽऽमलक्यां दिव्यं तु वर्ग्ये द्युविभवेऽन्यवत् ।
दूष्यं वस्त्रगृहे वस्त्रे दूषणीये तु वाच्यवत् ॥ २९ ॥
दैत्या सुरासुराचण्डौषधीषु दितिजे पुमान् ।
द्रव्यं तु पित्तले वित्ते द्रुविकारे जतुन्यपि ॥ ३० ॥
भेषजे च पृथिव्यादौ त्रिषु भव्यविलेपयोः ।
धन्या धात्र्यामलक्योः स्याद्धन्यः पुण्यवति त्रिषु ॥ ३१ ॥
धान्यं व्रीहिषु धान्याके धिष्ण्यः स्यादनले पुमान् ।
धिष्ण्यं सद्मनि नक्षत्रे स्थाने शक्तौ च न द्वयोः ॥ ३२ ॥
नयो द्यूतान्तरे नीतौ व्यञ्जके त्वभिपूर्वकः ।
नाट्यं तौर्यत्रिके लास्ये नित्यं तु सतते ध्रुवे ॥ ३३ ॥
हरीतक्यां मता पथ्या मतं पथ्यं हिते त्रिषु ।
पद्यः शूद्रे पुमान्पद्यं श्लोके पद्या तु वर्त्मनि ॥ ३४ ॥

---

दिव्या—आँवला, ( स्त्री० )
दिव्य—सुंदर, आकाश या स्वर्गमें होनेवाला, ( त्रि० )
दूष्य—वस्त्रका घर ( तंबूडेरा ), वस्त्र, (न०) दूषणीय (निंदनीय) (त्रि०) ॥ २९ ॥
दैत्या—मदिरा, कपूरकचरी, चोर नामक गंध-द्रव्य, ( स्त्री० )
दैत्य—दितिके पुत्र, ( असुर ) (पुं०)
द्रव्य—पीतल, धन, वृक्षविकार, लाख, ॥ ३० ॥ औषधि, पृथिवी आदि, कल्याण, विलेप, ( त्रि० )
धन्या—धाय ( बच्चोंको दूध पिलानेवाली ), आँवला, ( स्त्री० )
धन्य—पुण्यवान, ( त्रि० ) ॥ ३१ ॥
धान्य—व्रीहि (धान), धनियाँ, (न०)
धिष्ण्य—अग्नि, ( पुं० ) मकान, नक्षत्र, स्थान, शक्ति, ( न० ) ॥ ३२ ॥
नय—द्यूतभेद, नीति, (पुं०)
अभिनय—हाथ आदिके इशारेसे बातका समझाना, ( पुं० )
नाट्य—नाचना-गाना-बजाना, नाचना, ( न० )
नित्य—निरन्तर, ध्रुव ( स्थिर ) ( न० ) ॥ ३३ ॥
पथ्या—हरड, ( स्त्री० )
पथ्य—हित भोजनादि, ( त्रि० )
पद्य—शूद्र, ( पुं० ) श्लोक ( न० )
पद्या—मार्ग ( स्त्री० ) ॥ ३४ ॥

नपुंसकं तु पाक्यं स्याद्यवक्षारे विडाह्वये ।
पाद्यं पयसि निन्द्ये च पीयुः कालार्कपेचके ॥ ३५ ॥
पुण्यं तु सुकृते धर्मे त्रिपु मध्यमनोज्ञयोः ।
श्वशुरे पुंसि पूज्यः स्यात्पूज्यो वन्द्योऽभिधेयवत् ॥ ३६ ॥
पेयं पातव्यपयसोः पेया श्राणाच्छमण्डयोः ।
प्रायः पुमाननशने मृत्युवाहुल्ययोस्तथा ॥ ३७ ॥
प्रियस्तु त्रिपु हृद्ये स्याद्धवे वृद्ध्यौषधे पुमान् ।
वन्यं त्रिपु वनोद्भूते वन्या वृन्दे वनाम्भसो ॥ ३८ ॥
अप्रजातस्त्रिया वन्ध्या वन्ध्यस्त्रिपु हलिद्रुमे ।
वल्यं प्रधानधातौ स्याद्बल्यं वलकरे त्रिपु ॥ ३९ ॥
वरेण्ये वाच्यवद्वर्यो वर्यः पञ्चशरे पुमान् ।
विन्ध्या त्रुटौ लवल्यां च विन्ध्यो व्याधाद्रिभेदयोः ॥ ४० ॥

---

पाक्य–जवाखार, विड-नमक, (न०)
पाद्य–जल, निंद्य, ( न० )
पीयु–काल, सूर्य, उल्लू, (पुं०) ॥३५॥
पुण्य–सुकृत ( अच्छा कर्म करना ), धर्म, ( न० ) मध्य, सुंदर, (त्रि०)
पूज्य–ससुर ( पुं० ) वंदनाके योग्य, ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥
पेय–पीनेके योग्य, दुग्ध, ( न० )
पेया–पकायाहुवा पतला अन्न, स्वच्छ-मॉड, ( स्त्री० )
प्रायः–अन्नजलका त्यागना, मृत्यु, बाहुल्य ( जियादहपना ) ( पुं० ) ॥ ३७ ॥
प्रिय–मनोरम, ( त्रि० ) पति, वृद्धि-नामक औषधि, ( पुं० )
वन्य–वनमें उत्पन्न होनेवाला, (त्रि०)
वन्या–वनका और जलका समूह ( स्त्री० ) ॥ ३८ ॥
वन्ध्या–अप्रसूता स्त्री, ( स्त्री० )
वन्ध्य कलिहारी–वृक्ष ( पुं० )
वल्य–प्रधान–धातु ( वीर्य ) ( न० ) वल करनेवाला ( त्रि० ) ॥ ३९ ॥
वर्य–श्रेष्ठ, ( त्रि० ) कामदेव, (पुं०)
विन्ध्या–छोटी–इलायची, हरफारेवड़ी, ( स्त्री० )
विन्ध्य–व्याध, पर्वत-भेद, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

वीर्यं प्रभावे शुक्रे च तेजःसामर्थ्ययोरपि ।
वेश्या तु गणिकायां स्याद् वेश्यं वेश्यानिकेतने ॥ ४१ ॥
भयं घोरे प्रतिभये प्रसूने कुब्जवीरुधः ।
कर्म्मरङ्गतरौ भव्यो भव्या करिकणोमयोः ॥ ४२ ॥
भाग्यं शुभात्मकविधौ स्याच्छुभाशुभकर्म्मणि ।
भृत्यो दासे भृतौ भृत्या मत्स्यो मीने जनान्तरे ॥ ४३ ॥
विष्णोर्मूर्त्यन्तरे मत्स्यो विराटाख्ये च यादवे ।
मध्यं न्याय्येऽवकाशे च मध्यं मध्यस्थिते त्रिषु ॥ ४४ ॥
लग्नकेऽप्यधमे मध्यमस्त्रियामवलग्नके ।
मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रोधे वासवे तु शतात्परः ४५ ॥
मयः शिल्पिनि दैत्याना करभेऽश्वतरे मयः ।
मयुर्मृगे किंपुरुषे मायः पीताम्बरेऽसुरे ॥ ४६ ॥

---

वीर्य-प्रभाव, शुक्र ( वीर्य ), तेज, सामर्थ्य, ( न० )
वेश्या-गणिका, ( स्त्री० )
वेश्य-वेश्याका घर, ( न० ) ॥४१॥
भय-भयानक, ( त्रि० ) भय, कूजा वेलका पुष्प, ( न० )
भव्य-कमरख-वृक्ष, ( पु० )
भव्या-गजपीपल, पार्वती, ( स्त्री० ) ॥ ४२ ॥
भाग्य-शुभात्मक विधि ( भाग्य ), शुभअशुभ कर्म, ( न० )
भृत्य-दास (नौकर) ( पु० )
भृत्या-नौकरी, ( स्त्री० )
मत्स्य-मछली, जनभेद, ॥ ४३ ॥ विष्णुका अवतार, विराट-देश, यादव, ( पुं० )
मध्य-न्याय्य ( युक्त ), अवकाश, ( न० ) मध्यमें स्थित ॥ ४४ ॥ जामिन, अधम, ( त्रि० ) शरीरका मध्यभाग, ( पुं० न० )
मन्यु-दीनता, यज्ञ, क्रोध, शतमन्यु-इन्द्र, ( पुं० ) ॥ ४५ ॥
मय-दैत्योंका कारीगर, ऊंट, खिच्चर, ( पु० )
मयु-मृग, किन्नर, ( पुं० )
माय-पीताम्बर, असुर, (पु०) ॥४६॥

माया दम्भे कृपायां च स्यान्माया शाम्बरीधियोः ।
माल्यं पुष्पेऽपि मालायां मूल्यं वेतनवस्तयोः ॥ ४७ ॥
मृत्युः स्यान्मरणे दैवे मेध्यं पूतेऽपि मेदुरे ।
मेध्या रक्तवचायां च रोचनायामपि स्त्रियाम् ॥ ४८ ॥
क्लीब स्यादाश्रमे मेध्यं ययुः ऋतुहये हये ।
याम्याऽपाच्यां भरण्यां च याम्योऽगस्त्येऽपि चन्दने ॥ ४९ ॥
योग्यः प्रवीणयोगार्हशक्तोपायिषु वाच्यवत् ।
योग्याऽभ्यासेऽर्ककान्ताया योग्यमृद्ध्याख्यभेषजे ॥ ५० ॥
रथ्या तु विशिखायां स्याद्रथौघे पथि चत्वरे ।
मतो रथोद्वहे रथ्यो रथ्यं त्रिषु मनोरमे ॥ ५१ ॥
रम्या विभावरी रम्यः पुंसि चम्पकपादपे ।
रूप्यं स्यादाहतस्वर्णरजते रजते तथा ॥ ५२ ॥

---

माया–दंभ, कृपा, बाजीगरकी विद्या, बुद्धि, ( स्त्री० )
माल्य–पुष्प, पुष्पमाला, ( न० )
मूल्य–नौकरी, वस्तुका मोल (कीमत) ( न० ) ॥ ४७ ॥
मृत्यु–मरना, धर्मराज, ( पुं० )
मेध्य–पवित्र, सघन सचिक्कण, (त्रि०)
मेध्या–रक्तवच, गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥
मेध्य–आश्रम ( न० )
ययु–यज्ञके लिये अश्व, अश्व–मात्र, ( पुं० )
याम्या–दक्षिण दिशा, भरणी-नक्षत्र, ( स्त्री० )
याम्य–अगस्त्य-मुनि, चन्दन (पुं०) ॥ ४९ ॥

योग्य–प्रवीण (चतुर), योगके योग्य, समर्थ, उपायवाला ( त्रि० )
योग्या–अभ्यास, सूर्यकी स्त्री, (स्त्री०)
योग्य ऋद्धि–औषध (न०) ॥ ५० ॥
रथ्या–गली, रथोंका समूह, मार्ग, घरका आँगन, ( स्त्री० )
रथ्य–रथको वहनेवाला अश्व आदि ( पुं० )
रम्य–सुंदर, (त्रि० ) ॥ ५१ ॥
रम्या–रात्रि, ( स्त्री० )
रम्य–चपाका वृक्ष, ( पुं० )
रूप्य–घड़ाहुवा ( सिक्का ) सुवर्ण या रजत ( चाँदी ) का, चान्दी–मात्र, ( न० ) ॥ ५२ ॥

त्रिषु प्रशस्तरूपेऽपि लभ्यं लब्धव्यमुक्तयोः ।
लयो नृत्यादिसाम्ये स्याद्विनाशाश्लेषयोर्लयः ॥ ५३ ॥
सङ्ख्याशरव्ययोर्लक्ष्यं लक्ष्यं स्याच्छद्मनि स्मृतः ।
अथ तौर्यत्रिके लास्यं लास्यं स्त्रीनृत्यनृत्ययोः ॥ ५४ ॥
वाच्यं दोषेऽपि वक्तव्ये वचोर्हे कुत्सितेऽन्यवत् ।
वीक्ष्योऽश्वविलासके वीक्ष्यो द्रष्टव्याद्भुतयोस्त्रिषु ॥ ५५ ॥
वर्गप्रस्थानयोर्व्रज्या व्रज्या पर्यटनेऽपि च ।
शयः शय्याहिहस्तेषु शय्या तु शयनीयके ॥ ५६ ॥
शब्दगुम्फेऽपि शल्यस्तु श्वाविन्मदनवृक्षयोः ।
शल्यं शङ्कौ शरे वंशकर्णिकायां च तोमरे ॥ ५७ ॥
शुन्या तु नलिकायां स्याच्छून्यं तु त्रिषु निर्जने ।
मतं शौर्यं तु शूरत्वे चारभट्यां च तन्मतम् ॥ ५८ ॥

---

श्रेष्ठरूपवाला, ( त्रि० )
लभ्य–लब्ध होनेके योग्य, युक्त, ( त्रि० )
लय–नृत्य आदिकी समता, विनाश, मिलना, ( पुं० ) ॥ ५३ ॥
लक्ष्य–सङ्ख्याभेद, निशाना, मिस ( बहाना ) ( न० )
लास्य–नाचना–गाना–बजाना, ये मिले हुए तीनों, स्त्री–नृत्य, नृत्य, (न०) ॥ ५४ ॥
वाच्य–दोष, कहनेयोग्य, वचनके योग्य, कुत्सित, ( त्रि० )
वीक्ष्य–अश्व, नाचनेवाला, ( पुं० ) देखने योग्य, अद्भुत, (त्रि०) ॥५५॥
व्रज्या–वर्ग, प्रस्थान, घूमना, (स्त्री०)
शय–शय्या, सर्प, हाथ, ( पुं० )
शय्या–पलग, शब्द–गुंफ ( रचना ) ( स्त्री० ) ॥ ५६ ॥
शल्य–सेह, मैनफल–वृक्ष, ( पु० )
शल्य–शङ्कु ( कीला ), शर, वंशकर्णिका, तोमर–शस्त्र, ( न० ) ॥ ५७ ॥
शून्या–बाँस आदिकी नली, ( स्त्री० )
शून्य–निर्जनस्थानादि, ( त्रि० )
शौर्य–शूरता, निडरपना, ( न० ) ॥ ५८ ॥

सङ्ख्यं तु सङ्गरे क्लीबं सङ्ख्यैकत्वादिचर्चयोः ।
तपोलोकात्परे सत्यं सत्यं सत्यप्रगर्त्तयोः ॥ ५९ ॥
दिव्येपि सत्या पामायां सत्यं तु त्रिषु तद्वति ।
सन्ध्या साये सरिद्भेदे सन्धाने कुसुमान्तरे ॥ ६० ॥
प्रतिज्ञाया च चिंतायां मर्यादायामपि स्त्रियाम् ।
वामदक्षिणयोः सव्यं सह्यं शस्त्रकले गुणे ॥ ६१ ॥
सह्यः शैलेऽपि सोढव्ये नैरुज्ये सह्यमद्वयोः ।
साध्यस्तु योगभेदे स्यात्साध्योऽपि गणदैवते ॥ ६२ ॥
वाच्यवत्साधनीयेऽपि सायः काण्डाऽपराह्णयोः ।
सूर्योऽर्के तत्प्रियायां तु सूर्या स्यादोषधीभिदि ॥ ६३ ॥
सेव्यं त्रिलिङ्गं सेवार्हे सेव्यं तु नलदे द्वयोः ।
सेनाया समवेते तु सैन्यः सैन्यं बले मतम् ॥ ६४ ॥

---

संख्य–युद्ध, ( न० )
संख्या–एक आदि–गिन्ती, विचार, ( स्त्री० )
सत्य–तप लोकसे ऊपर लोक, सत्य, प्रगर्त्त ( गहरा खड्डा ) ( न० ) ॥ ५९ ॥ सौगन, ( न० ) पाम ( स्त्री० ) सत्यवाला ( त्रि० )
सन्ध्या–सायंकाल, नदीभेद, स्मरण, पुष्पभेद, ॥ ६० ॥
प्रतिज्ञा, चिंता, मर्यादा, ( स्त्री० )
सव्य–वाम ( बामा ) अग, दक्षिण (दहना) अग, ( न० )
सह्य–शस्त्रकी कलावाली रज्जु (रस्सी) ( न० ) ॥ ६१ ॥
एक पर्वत, ( पुं० ) सहनेके योग्य, ( त्रि० ) नीरोगता ( न० )
साध्य–योगभेद, गणदेवता, ( पुं० ) ॥ ६२ ॥ साधनेके योग्य ( त्रि० )
साय–बाण, अपराह्न काल ( दिनका तृतीय प्रहर ) ( पु० )
सूर्य–सूर्य, ( पु० )
सूर्या–सूर्यकी स्त्री, औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ ६३ ॥
सेव्य–सेवाके योग्य, ( त्रि० )
सेव्य–खस, ( पु० स्त्री० )
सैन्य–सेना, सैनिक, ( पुं० )
सैन्य–बल ( न० ) ॥ ६४ ॥

इल्वलासु स्त्रियः सौम्या बुधे सौम्योऽथ वाच्यवत् ।
बौद्धे मनोरमेऽनुग्रे पामरे सोमदैवते ॥ ६५ ॥
विवादपक्षनिर्णेतर्यपि स्थेयः पुरोहिते ।
स्थेयं स्याद्द्रव्यमात्रेऽपि पुंसि गर्वेऽद्भुते स्मयः ॥ ६६ ॥
हार्यो विभीतकीवृक्षे हर्त्तव्ये हार्यमन्यवत् ।
हृद्यस्तु वशकृद्वेदमन्त्रे वृद्ध्याख्यभेषजे ॥ ६७ ॥
स्याच्छ्वेतजीरके हृद्यं हृत्प्रिये हृद्भवे त्रिषु ।
क्षयोऽपचयकल्पान्तनिवासेषु रुगन्तरे ॥ ६८ ॥

यतृतीयम् ।

अत्ययो दूषणे कृच्छ्रेऽतिक्रमे नाशदण्डयोः ।
अधृष्यस्तु प्रगल्भे स्यादधृष्या सरिदन्तरे ॥ ६९ ॥
अनयो व्यसनानीतिदैवाशुभविपत्तिषु ।
अपत्यं पुत्रयोः क्लीबमभयो निर्भये त्रिषु ॥ ७० ॥

---

सौम्या–इल्वला ( मृगशिरके ऊपरकी पाच तारा ) ( स्त्री० )
सौम्य–बुध, ( पुं० ) बौद्ध ( बुद्धशास्त्र ) सुंदर, नाम्र, पामर, सोमहै देवता जिसका वह (त्रि०) ॥६५॥
स्थेय–विवादपक्षका निर्णेता, पुरोहित, ( पुं० ) द्रव्यमात्र, ( त्रि० )
स्मय–गर्व, अद्भुत, ( पुं० ) ॥ ६६ ॥
हार्य–बहेडाका–वृक्ष, ( पुं० ) हडने योग्य, ( त्रि० )
हृद्य–वशमें करनेवाला वेदमन्त्र, (पुं०)
हृद्या–वृद्धिनामक औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ६७ ॥
हृद्य–सफेद जीरा, ( न० ) हृदयको प्रिय, हृदयमें प्राप्त ( त्रि० )
क्षय–कमहोना, कल्पका अन्त, निवास, रोगभेद ( पु० ) ॥ ६८ ॥

यतृतीय ।

अत्यय–दूषण, कृच्छ्र ( कष्ट ), उल्लंघन, नाश, दण्ड ( पु० )
अधृष्य–प्रगल्भ ( धृष्ट ) ( त्रि० )
अधृष्या–नदीभेद, (स्त्री०) ॥ ६९ ॥
अनय–व्यसन ( फिराक ), अनीति, दैव, अशुभ, विपत्ति, ( पु० )
अपत्य–पुत्री, पुत्र, ( न० )
अभय–निर्भय, ( त्रि० ) ॥ ७० ॥

मताऽभया तु पथ्यायामभयं स्यादुशीरके ।
अभिख्या तु यशःकीर्त्तिशोभाविख्यातिनामसु ॥ ७१ ॥
त्रिष्ववध्यं वधानर्हे क्लीबेऽनर्थकभाषिते ।
स्यादवन्ध्यं तु सफले त्रिपु त्रिष्वफलेग्रहौ ॥ ७२ ॥
अश्वीयमश्वसङ्घातेऽश्वीयमश्वहिते त्रिपु ।
अहल्याप्सरसोभेदे तथा गौतमयोषिति ॥ ७३ ॥
अहार्यः पर्वते पुंसि स्यादहार्यः स्थिरे त्रिपु ।
आतिथ्यमातिथेयेस्यादातिथ्यस्त्वतिथौ पुमान् ॥ ७४ ॥
आत्रेयी पुष्पवत्यां स्यादात्रेयी निम्नगान्तरे ।
आत्रेयस्तु मुनेर्भेदे स्यादादित्यः सुरे रवौ ॥ ७५ ॥
आम्नाय उपदेशेपि स्यादाम्नायः श्रुतावपि ।
आशयः स्यादभिप्रायेऽप्याधारे पनसे घने ॥ ७६ ॥

---

अभया–हरड, ( स्त्री० )
अभय–खस, ( न० )
अभिख्या–यश, कीर्ति, शोभा, विख्याति, नाम, ( स्त्री० ) ॥७१॥
अवध्य–वधके अयोग्य, ( त्रि० ) अनर्थक भाषण, ( न० )
अवन्ध्य–सफल, ( त्रि० ) कालके अनुकूल फलोंको धारण करनेवाला वृक्ष, ( त्रि० ) ॥ ७२ ॥
अश्वीय–अश्वोंका समूह, ( न० ) अश्वोंका हित, ( त्रि० )
अहल्या–अप्सराभेद, गौतमऋषिकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ७३ ॥
अहार्य–पर्वत, ( पुं० ) स्थिर,(त्रि०)
आतिथ्य–जो वस्तु अतिथिके लिये हो वह, ( त्रि० ) अतिथि (पु०) ॥ ७४ ॥
आत्रेयी–रजस्वला, नदीभेद, (स्त्री०)
आत्रेय–मुनिभेद ( पुं० )
आदित्य–देवता, सूर्य, (पु०)॥७५॥
आम्नाय–उपदेश, वेद, ( पुं० )
आशय–अभिप्राय, आधार, पनस–वृक्ष, धन ॥ ७६ ॥

कोष्ठागारेऽप्यजीर्णेऽपि किंपचानेऽपि चाशयः ।
इन्द्रियं रेतसि क्लीबमिन्द्रियं विषयीन्द्रिये ॥ ७७ ॥
पुंसि स्यादुदयः पूर्वपर्वतेऽपि समुन्नतौ ।
उपायः सामभेदादावुपायः स्यादुपागतौ ॥ ७८ ॥
ऊर्णायुरेडके मेषकम्बलक्षणभङ्गयोः ।
एणेयमेण्याश्चर्माद्ये रतबन्धान्तरे स्त्रियाः ॥ ७९ ॥
औचित्यमुचितत्वे स्यादौचित्यं सत्ययोग्ययो· ।
अस्त्री कषायो निर्यासे रसे रक्ते विलेपने ॥ ८० ॥
अङ्गरागे सुगन्धे तु त्रिषु स्याल्लोहितेऽपि च ।
कालेयो दैत्यभेदे स्यात्कालेयं कालखण्डकम् ॥ ८१ ॥
कुलायो नीडवत्पक्षिनिलयस्थानयोः पुमान् ।
कौकृत्यमनुतापे स्यादयुक्तकरणेऽपि च ॥ ८२ ॥

---

कोष्ठागार (शरीरके भीतरकी पोल, अजीर्ण, धनलोभी, ( पुं० )
इंद्रिय–वीर्य, विषयि ( चक्षुआदि ) इंद्रिय, ( न० ) ॥ ७७ ॥
उदय–पूर्वपर्वत, समुन्नति (ऊंचापना) ( पु० )
उपाय–साम भेद आदि, समीपमें आना, ( पुं० ) ॥ ७८ ॥
ऊर्णायु–भेड, भेडीके ऊनका कंबल, क्षणभंग ( मकडी ) ( पुं० )
एणेय–मृगीका चर्म आदि, स्त्रीका रतबंध, ( न० ) ॥ ७९ ॥
औचित्य–उचितपना, सत्य, योग्य, ( न० )
कषाय–काटा, रस, रक्त, विलेपन, ( पुं० ) ॥ ८० अगराग, सुगंध, लोहित, ( त्रि० )
कालेय–दैत्यभेद, ( पुं० ) कालखंड, ( न० ) ॥ ८१ ॥
कुलाय ( नीड )–पक्षीका घूंसला, स्थान, ( पुं० )
कौकृत्य–पश्चात्ताप, अयुक्त करना, ( न० ) ॥ ८२ ॥

गाङ्गेयस्तु महासेने भीष्मे गङ्गाभवे त्रिपु ।
चक्षुष्यः केतके पुण्डरीकवृक्षे रसाञ्जने ॥ ८३ ॥
अस्त्री स्त्री तु कुलथ्यां स्यादयुक्तकरणेऽपि च ।
गाङ्गेयं मुस्तकस्वर्णकसेरुषु नपुंसकम् ॥ ८४ ॥

गाङ्गेयस्तु महासेने भीष्मे गङ्गोद्भवे त्रिपु ।
चक्षुष्यः केतके पुंसि शुभगेऽक्षिहिते त्रिपु ॥ ८५ ॥
चाम्पेयश्चम्पके नागकेसरे पुष्पकेसरे ।
स्वर्णे क्लीवं जघन्यं तु निन्द्ये चरमशिश्नयोः ॥ ८६ ॥

जटायुः पक्षिभेदे स्यात्पुंसि गुग्गुलपादपे ।
तपस्या व्रतचर्यायां तपस्यः फाल्गुने पुमान् ॥ ८७ ॥
देवयुर्धार्मिके देवयात्रिकेऽप्यभिधेयवत् ।
द्वितीया तिथिभित्पत्न्योः पूरणेऽपि द्वयोस्त्रिपु ॥ ८८ ॥

---

गांगेय-स्वामिकार्त्तिक, भीष्म, (पु०) गंगासे होनेवाला, ( त्रि० )

चक्षुष्य-केतकी ( पुष्पवृक्ष ), दौंना पुष्पवृक्ष, कमल-वृक्ष, रसोत,॥८३॥ (पु० न० ) कुलथी, ( स्त्री० ) अलग करना ( न० )

गांगेय-नागरमोथा, सुवर्ण, कसेरु-कंद, ( न० ) ॥ ८४ ॥

गांगेय-स्वामिकार्त्तिक, भीष्म, (पु०) गंगासे होनेवाला ( त्रि० )

चक्षुष्य-केतक ( केतक ) ( पुं० ) अच्छे भाग्यवाला, नेत्रोंका हित-कारी ( त्रि० ) ॥ ८५ ॥

चांपेय-चंपा, नागकेर, पुष्पकेसर, ( पु० ) सुवर्ण, ( न० )

जघन्य-निंद्य, पिछला, शिश्न (लिंग) ( न० ) ॥ ८६ ॥

जटायु-पक्षिभेद, गूगल-वृक्ष, (पुं०)

तपस्या-व्रतचर्या, ( स्त्री० )

तपस्य-फाल्गुन-मास, (पुं०) ॥८७॥

देवयु-धर्मात्मा, देवयात्रिक, ( त्रि० )

द्वितीया-तिथिभेद, पत्नी ( स्त्री० ) दोयोंको पूरण करनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ८८ ॥

नादेयी नीरवानीरे भूजम्बूनागरङ्गयोः ।
जपाजयन्त्योर्व्यङ्गुष्ठे निकायस्त्वात्मवेश्मनोः ॥ ८९ ॥

सधर्मिनिवहे लक्ष्ये संहताना च मेलके ।
रङ्गभूमौ तु नेपथ्यं नेपथ्यं च प्रसाधने ॥ ९० ॥

पयस्या क्षीरकाकोल्यां स्वर्णक्षीर्यामपि स्मृता ।
पयस्या दुग्धिकाया च पयोहितभवेऽन्यवत् ॥ ९१ ॥

पर्जन्यो वासवे मेघध्वनौ च ध्वनदम्बुदे ।
पर्यायः क्रमनिर्वाणप्रकारावसरे पुमान् ॥ ९२ ॥

पेयवारिणि पानीयं पारुष्यस्तु बृहस्पतौ ।
पारुष्यं परुषत्वे स्यादपि शक्रस्य कानने ॥ ९३ ॥

पौलस्त्यः किन्नराधीशे पौलस्त्यो दशकन्धरे ।
प्रकीर्यः पूतिकरजे विनिकीर्णे तु वाच्यवत् ॥ ९४ ॥

---

नादेयी—जलवेत, भूईजामन, नारंगी, जपा ( अलसी ), जैत-पुष्पवृक्ष, व्यंगुष्ठ ( अंगूठाहीन ) ( स्त्री० )

निकाय—परमात्मा, स्थान ॥ ८९ ॥ सधर्मियोंका समूह, लक्ष्य, सहतोंका मिलाप, ( पुं० )

नेपथ्य—रंगभूमि, अलंकृतकी शोभा ( न० ) ॥ ९० ॥

पयस्या—क्षीरकाकोली, एक प्रकारकी कटेहरी, दूधी, दुग्धका हित, दूधसे उत्पन्नहुवा, ( त्रि० ) ॥ ९१ ॥

पर्जन्य—इंद्र, मेघध्वनि, गर्जताहुवा मेघ, ( पुं० )

पर्याय—क्रम, निर्वाण ( मोक्ष ), प्रकार, अवसर, ( पुं० ) ॥ ९२ ॥

पानीय—पीनेके योग्य ( त्रि० ), जल, ( न० )

पारुष्य—बृहस्पति, ( पुं० ) पारुष्य-कठोरता, इद्रका वन, (न०)॥९३॥

पौलस्त्य—कुबेर, रावण, ( पुं० )

प्रकीर्य—काँटाकरज (करजुवा), (पुं०) बिखराहुवा, ( त्रि० ) ॥ ९४ ॥

प्रणयः प्रेमविश्रम्भप्रश्रयप्रसरेऽर्थने ।
प्रणाय्योऽसंमते तृष्णावर्जितेऽप्यभिधेयवत् ॥ ९५ ॥
प्रत्ययः शपथे हेतौ ज्ञानविश्वासनिश्चये ।
सन्नाद्यधीनरन्ध्रेषु ख्यातत्वाचारयोरपि ॥ ९६ ॥
प्रलयो मृत्युकल्पान्तमूर्च्छासु विदितः पुमान् ।
प्रसव्यमन्यलिङ्गं स्यात्प्रतिकूलानुकूलयोः ॥ ९७ ॥
वलयः, कङ्कणे न स्त्री बलाकण्ठरुजोरपि ।
वालेयः फञ्जिकायां स्यात्खरे वालहिते मृदौ ॥ ९८ ॥
ब्रह्मण्यस्तु शनौ यूपे ब्रह्मसाधौ तु वाच्यवत् ।
ब्राह्मण्यं ब्राह्मणत्वे स्याद्ब्राह्मणानां च संहतौ ॥ ९९ ॥
भुजिष्यस्तु सहायेऽपि हस्तसूत्रेऽप्यथ त्रिषु ।
अनधीते भुजिष्या तु वेश्याचेटिकयोर्मता ॥ १०० ॥

---

प्रणय–प्रेम, विश्वास, नम्रता, प्रसर ( फैलना ), याचना ( पुं० )
प्रणाय्य–असमत ( नहीं मानाहुवा), तृष्णासे रहित, ( त्रि० )॥ ९५ ॥
प्रत्यय–सौगन, हेतु ( कारण ), ज्ञान, विश्वास, निश्चय, सन् आदि-प्रत्यय, अधीन, छिद्र, विख्यात, आचार, ( पुं० ) ॥ ९६ ॥
प्रलय–मृत्यु, कल्पान्त, मूर्छा, ( पुं० )
प्रसव्य–प्रतिकूल, अनुकूल, ( त्रि० ) ॥ ९७ ॥
वलय–कंगन, ररैंटी, कंठरोग, ( पुं० न० )
वालेय–भारगी, गर्दभ, वालहित, कोमल, ( पुं० ) ॥ ९८ ॥
ब्रह्मण्य–शनैश्चर, यूप, ( पुं० ) ब्रह्ममें साधु ( श्रेष्ठ ) ( त्रि० )
ब्राह्मण्य–ब्राह्मणपना, ब्राह्मणोंका समूह, ( न० ) ॥ ९९ ॥
भुजिष्य–दास ( नौकर ), हस्तसूत्र ( मंगलसूत्र ) ( पुं० ) विनापढा ( त्रि० )
भुजिष्या–वेश्या, दासी, ( स्त्री० ) ॥ १०० ॥

भुवन्युः स्याद्वह्निहव्यवाहनभानुशीतलभानुषु ।
भ्रातृव्यो भ्रातृतनये त्रिषु पुंसि तु विद्विषि ॥ १०१ ॥
मङ्गल्यं दध्नि मङ्गल्यं तत्रसाधौ मनोहरे ।
मङ्गल्यः श्रीफले स्वच्छे मसूरत्रायमाणयोः ॥ १०२ ॥
मङ्गल्या रोचनायां स्यात्प्रियङ्गुशतपुष्पयोः ।
मल्लिगन्धि च यत्कृष्णागुरु तत्रापि सा स्मृता ॥ १०३ ॥
अधःपुष्पीशमीखण्डपुष्पीश्वेतवचासु च ।
मलयः पुंसि देशाद्रिभेदयोः पर्वतांशके ॥ १०४ ॥
आरामे चन्दने चाथ मलया त्रिवृतौषधौ ।
मृगयुर्ब्रह्मणि प्रोक्तो गोमायुव्याधयोरपि ॥ १०५ ॥
रहस्यं वाच्यवद्गोप्ये रहस्या तु नदीभिदि ।
लौहित्यं रक्तताया स्यात्पुंसि व्रीहौ नदान्तरे ॥ १०६ ॥
वक्तव्यः कुत्सिते हीनेऽप्यधीने वाच्यवत्त्रिषु ।
वदान्यस्तु सुवाग्दात्रोर्विजयो जयपार्थयोः ॥ १०७ ॥

---

भुवन्यु–अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ( पु० )
भ्रातृव्य–भाईका पुत्रआदि ( त्रि० ) शत्रु, ( पु० ) ॥ १०१ ॥
मंगल्य–दही ( न० ) मंगलकरनेवाला, सुंदर, ( त्रि० )
मंगल्य–वेलका–वृक्ष, निर्मल, मसूर, त्रायमाणा, ( पु० ) ॥ १०२ ॥
मंगल्या–गोरोचन, फूलप्रियंगु, सौंफ, मल्लिका ( मोगरा ) सरीखी गंधवाला काला अगर, (स्त्री०) ॥१०३॥ गोभी, जाट, खंडपुष्पी ( शारा-हुली ), सफेद वच, ( स्त्री० )
मलय–देशभेद, पर्वतभेद, पर्वतका भाग, (पुं०) ॥१०४॥ बाग, चंदन, निसोत, ( स्त्री० )
मृगयु–ब्रह्म, गीदड, व्याधा (शिकारी) ( पु० ) ॥ १०५ ॥
रहस्य–गोप्य, ( त्रि० )
रहस्या–नदीभेद, ( स्त्री० )
लौहित्य–रक्तता, ( न० ) धान, नदभेद, ( पु० ) ॥ १०६ ॥
वक्तव्य–निंदित, हीन, अधीन, ( त्रि० )
वदान्य–अच्छी वाणीवाला, दानशील ( बहुत देनेवाला ) ( पुं० )
विजय–जय, अर्जुन, ( पुं० )॥१०७

विजया तु मता गौर्या तत्सखीतिथिभेदयोः ।
विनयस्तु नतौ नीतौ शिक्षाया विनयो द्वयोः ॥ १०८ ॥
विशल्याऽग्निशिखादन्तीगुडूचीत्रिवृति स्त्रियाम् ।
वाच्यवद्गतशल्ये स्याद्विस्मयोऽद्भुतगर्वयोः ॥ १०९ ॥
विषयो गोचरे देशे इन्द्रियार्थेऽपि नीवृति ।
प्रबन्धाद्यस्य यो ज्ञातः स तस्य विषयः स्मृतः ॥ ११० ॥
व्यवायः सुरतेन्तर्द्धौ व्यवायं तेजसि स्मृतम् ।
शाण्डिल्यो मुनिभेदेऽपि श्रीफले पावकान्तरे ॥ १११ ॥
शालेयः शतपुष्पायां त्रिषु शाल्युद्भवोचिते ।
शीर्षण्यः पुंसि विशदे कचे क्लीबं तु शीर्षके ॥ ११२ ॥
शैलेयं सिन्धुलवणे तालपर्ण्यां च शैलजे ।
भृङ्गे पुंसि श्वशुर्यस्तु देवरे श्यालकेऽपि च ॥ ११३ ॥

---

विजया–गौरी, गौरीकी सखी, तिथिभेद, ( स्त्री० )
विनय–नति, नीति, शिक्षा, ( पुं० स्त्री० ) ॥ १०८ ॥
विशल्या–कलिहारी, जमालगोटाकी जड, गिलोय, निसोत, ( स्त्री० ) शल्यरहित ( त्रि० )
विस्मय–अद्भुत, गर्व, ( पुं० ) ॥ १०९
विषय–गोचर ( समक्ष ), देश, शब्द स्पर्श आदि, जनपद, ( मनुष्यके नामसे विख्यात देश ), जिसके प्रबंधसे जो जाना है वह उसका विषय कहा है ( पुं० ) ॥ ११० ॥
व्यवाय–स्त्रीसंग, व्यवधान, ( पुं० )
व्यवाय–तेज, ( न० )
शांडिल्य–एकमुनि, बिल्व वृक्ष, अग्निभेद, ( पुं० ) ॥ १११ ॥
शालेय–सौंप, ( पुं० ) शालि ( चावल ) की उत्पत्तिवाला क्षेत्र ( त्रि० )
शीर्षण्य–श्वेत, केश, ( पुं० ) शिरकी रक्षाकरनेवाला, ( न० ) ११२
शैलेय–समुद्रलवण, तालपर्णी ( मुसली ), पत्थरका फूल, ( न० ) भौंरा, ( पु० )
श्वशुर्य–देवर, साला, ( पु० ) ११३

पृष्ठस्थायिबले नीतौ समवायेऽपि सन्नयः ।
समयः पुंसि सिद्धान्तशपथाचारसंविदि ॥ ११४ ॥
कालसिद्धान्तनिर्देशक्रियाकारेषु सङ्गमे ।
मेलके योगियोगिन्योः समयः क्वापि दृश्यते ॥ ११५ ॥
सरण्युर्वारिदे वाते सामर्थ्यं योग्यताबले ।
सौकर्यं स्यादनायासे क्रियायां सूकरस्य च ॥ ११६ ॥
सौभाग्यं सुभगत्वे स्याद्योगभेदे पुमानयम् ।
सौरभ्यं तु सुगन्धत्वे गुरुत्वे गुणगौरवे ॥ ११७ ॥
संस्त्यायः सन्निवेशेऽपि सस्थाने विस्मृतौ गणे ।
हिरण्यमक्षये द्रव्ये वराटे स्वर्णरेतसि ॥ ११८ ॥
घटिताऽघटितस्वर्णरूप्ययोर्मानभिद्यपि ।
वुक्काया हृदयं ज्ञेयं हृदयं हृदि वक्षसि ॥ ११९ ॥

---

सन्नय—पिछाडी स्थितहुई सेना, नीति, समूह, ( पु० )

समय—सिद्धान्त, सौगन, आचार, बुद्धि ॥ ११४ ॥ काल, सिद्धान्त, निर्देश, क्रियाकार, सगम, कहीं योगी और योगिनीके मिलाप में भी समय देखा है ( पु० ) ॥ ११५ ॥

सरण्यु—मेघ, वायु, ( पु० )

सामर्थ्य—योग्यता, बल, ( न० )

सौकर्य—विनापरिश्रम, सूकरकी क्रिया ( न० ) ॥ ११६ ॥

सौभाग्य—सुभगपना ( न० ) योग-भेद, ( पुं० )

सौरभ्य—सुगंधपना, गुरुपना, गुणोंसे बडप्पन, ( न० ) ॥ ११७ ॥

संस्त्याय—अच्छीतरह बनाहुवा वास-स्थान, अच्छीतरह स्थिति, विस्तार, ( पु० )

हिरण्य—अक्षय, द्रव्य, कौडी, सुवर्ण, वीर्य, ॥ ११८ ॥ घडाहुवा नहीं घडाहुवा सुवर्ण और चाँदी, मान-भेद, ( न० )

हृदय—हृदयके अंदर कमलाकार मासभेद, हृदय, छाती, ( न० ) ॥ ११९ ॥

तनौ स्त्रियां क्षिपण्युः स्यात्क्षिपण्युः सुरभौ नरि ।
परदाररताऽसाध्यरोगयोः क्षेत्रियः पुमान् ॥ १२० ॥
अन्यदेहे चिकित्सार्हे क्लीवं क्षेत्रतृणेऽपि च ।

यचतुर्थम् ।

दीर्घद्वेषानुतापानुबन्धेष्वनुशयः पुमान् ॥ १२१ ॥
अन्तशय्या तु मरणे भूमिशय्याश्मशानयोः ।
अपसव्यमवामे स्यात्प्रतिकूले तु वाच्यवत् ॥ १२२ ॥
गर्वेऽपि तुहिनेऽपि स्यादवश्यायः पुमानयम् ।
उपकार्या नृपावासेऽप्युपकारोचितेऽन्यवत् ॥ १२३ ॥
उपक्रयश्चिकित्सायामारम्भवधयोरपि ।
काद्रवेयः पुमान्नागे तथा सीसकरङ्गयोः ॥ १२४ ॥
चन्द्रोदयो विताने स्यात्स्त्रियामेवोषधीभिदि ।
जलाशयो जलाधारे जलदे तु जलाशयम् ॥ १२५ ॥

---

क्षिपण्यु–शरीर ( स्त्री० ) क्षिपण्यु–सुगंधि द्रव्य ( त्रि० )

क्षेत्रिय–परस्त्रीमें रत, असाध्य रोग, ( पुं० ) ॥ १२० ॥ दूसराका शरीर, चिकित्साके योग्य, क्षेत्रका तृण, ( न० )

यचतुर्थ ।

अनुशय–बहुतदिनोंका वैर, पिछताना, प्रकृति–प्रत्यय–आगम–आदेशमें विनश्वर, ( पुं० ) ॥१२१॥

अन्तशय्या–मरना, भूमिशय्या, श्मशान ( मरघट ) ( स्त्री० )

अपसव्य–दहना-हाथ आदि, प्रतिकूल, ( त्रि० ) ॥ १२२ ॥

अवश्याय–अभिमान, पाला या वर्फ ( पु० )

उपकार्या–राजभवन, ( स्त्री० ) उपकारके योग्य, ( त्रि० )॥१२३॥

उपक्रय–चिकित्सा, आरभ, वध ( मारना ) ( पु० )

काद्रवेय–नाग ( सर्प ), सीसा, राग, ( पु० ) ॥ १२४ ॥

चन्द्रोदय–चंदोवा, ( पु० ) औषधीभेद ( स्त्री० )

जलाशय–तालाब आदि, ( पुं० ) खस, ( न० ) ॥ १२५ ॥

तण्डुलीयो विडङ्गद्रावल्पमारिपताप्ययोः ।
तृणशून्यं तु केतक्याः फले मह्यां च निस्तृणे ॥ १२६ ॥
धनंजयोऽग्नौ ककुभे नागदेहानिलेऽर्जुने ।
निरामयं हुडुके स्यात्कल्पे त्रिषु निरामयः ॥ १२७ ॥
परिधायो जलस्थाने नितम्बे च परिच्छदे ।
पाञ्चजन्यो हरेः शङ्खे शङ्खपोटगलेऽनले ॥ १२८ ॥
पौरुषेयस्तु पुरुषविकारेऽपि पदान्तरे ।
पुंसः समूहवधयोः पुरुषेण कृते त्रिषु ॥ १२९ ॥
क्लीबं प्रतिभयं भीतौ वाच्यवत्तु भयानके ।
प्रतिश्रयः सभाया स्यादाश्रयेऽपि प्रतिश्रयः ॥ १३० ॥
फलानामुदये लाभे त्रिदिवेऽपि फलोदयः ।
मतो विलेशयः पुंसि मूषिकेऽपि भुजङ्गमे ॥ १३१ ॥

---

तंडुलीय–वायविडग–वृक्ष, चौलाई शाक, सोनामाखी, ( पुं० )
तृणशून्य–केतकीका फल, मल्लिका ( मोतिया ) ( न० ) तृणरहित ( त्रि० ) ॥ १२६ ॥
धनंजय–अग्नि, कोह–वृक्ष, सर्प, शरीरका वायु, अर्जुन, ( पुं० )
निरामय–वाद्यभेद(एक बाजा),(न०) समर्थ (नीरोग) ( त्रि० ) ॥१२७॥
परिधाय–जलस्थान, नितंब, परिकर, ( पुं० )
पांचजन्य–विष्णुका शंख, शंख-मात्र, काश या देवनल, अग्नि ( पुं० ) ॥ १२८ ॥
पौरुषेय–पुरुषविकार, पदान्तर, ( त्रि० ) समूह, वध, ( पु ० ) पुरुषका कियाहुवा ( त्रि० ) ॥१२९॥
प्रतिभय–भय, ( न० ) भयानक, ( त्रि० )
प्रतिश्रय–सभा, आश्रय, ( पुं० ) ॥ १३० ॥
फलोदय–फलोंका उदय, लाभ, स्वर्ग, ( पु० )
विलेशय–मूसा, सर्प, ( पुं० ) ॥ १३१ ॥

भागधेयं स्मृतं भाग्ये पुंसि स्यात्करभागयोः ।
भूतेन्द्रियं तु करणशब्दगोचरसंहतौ ॥ १३२ ॥
महोदयः समुदये कान्यकुब्जापवर्गयोः ।
महालयो विहारेऽपि तीर्थेऽपि परमात्मनि ॥ १३३ ॥
महामूल्यं पद्मरागे महार्घे त्वभिधेयवत् ।
मार्जारीयस्तु शूद्रे स्याद्बिडाले कायशोधने ॥ १३४ ॥
रौहिणेयः प्रलम्बघ्ने बुधे वत्से तु वाच्यवत् ।
वैनतेयस्तु कथितो गरुडे गरुडाग्रजे ॥ १३५ ॥
उत्सेधेऽपि विरोधेपि पुमानेव समुच्छ्रयः ।
मतः समुदयो वृन्दे संयुगे समुपक्रमे ॥ १३६ ॥
समुदायः समूहे स्यात्समुद्भूतौ रणेऽपि च ।
संपरायस्तु सङ्ग्रामे विपदुत्तरकालयोः ॥ १३७ ॥
समाह्वयो रणे नाम्नि क्रीडायां पशुपक्षिभिः ।
स्थूलोच्चयस्त्वसाकल्ये गण्डोपलवरण्डयोः ॥ १३८ ॥

---

भागधेय–भाग्य, ( न० ) कर (दंड), विभाग, ( पुं० )
भूतेंद्रिय–करण ( इंद्रिय ), शब्द आदि गोचर, समूह ( न० ) ॥ १३२ ॥
महोदय–अच्छे प्रकारसे उदय, कान्यकुब्ज, मोक्ष, ( पुं० )
महालय–विहार ( क्रीडा ), तीर्थ, परमात्मा, ( पुं० ) ॥ १३३ ॥
महामूल्य–पुखराज, ( न० ) बहुत कीमतवाला, ( त्रि० )
मार्जारीय–शूद्र, बिलाव, शरीरशोधन, ( पुं० ) ॥ १३४ ॥
रौहिणेय–शूद्र, बुध–ग्रह, ( पुं० ) प्रिय, ( त्रि० )
वैनतेय–गरुड, अरुण, (पुं०)॥१३५॥
समुच्छ्रय–ऊँचापन, विरोध, (पु०)
समुदाय–समूह, युद्ध, प्रारंभ या उद्गम ( पुं० ) ॥ १३६ ॥
समुदाय–समूह, उद्भव, रण, (पुं०)
संपराय–संग्राम, विपत्, उत्तरकाल, ( पुं० ) ॥ १३७ ॥
समाह्वय–रण, नाम, पशुपक्षियों करके क्रीडा, ( पुं० )
स्थूलोच्चय–असंपूर्णता, पर्वतसे गिरा शृंग, मुखरोग, ॥ १३८ ॥

स्थूलोच्चयो मतङ्गानां स्यान्मध्यमगतेऽपि च ।
हिरण्मयः स्वर्णमये लोकधात्रन्तरे पुमान् ॥ १३९ ॥

यपञ्चमम् ।

कालानुसार्यं कालेये शैलेये शिंशपाद्रुमे ।
मतं तु दुग्धतालीयं दुग्धाम्रे दुग्धफेनके ॥ १४० ॥
स्याद्दुग्धचमसेऽप्येतत्खण्डकीटे पुमानयम् ॥
त्रिपु प्रवचनीयं स्यात्प्रवाच्येऽपि प्रवक्तरि ॥ १४१ ॥
वृषाकपायी श्रीगौरीजीवन्तीपु शतावरी ।

यषष्ठम् ।

प्रत्युद्गमनीयमुपस्थेये धौतांशुकद्वये ।
विष्वक्सेनप्रिया तु स्यात्कमलात्रायमाणयोः ॥ १४२ ॥

इति विश्वलोचने यान्तवर्ग. ॥

---

'हस्तियोंका मध्यम गमन, ( पुं० )
हिरण्मय–सुवर्णमय, लोकधातु ( ब्रह्मा ) ( पुं० ) ॥ १३९ ॥

यपंचम।

कालानुसार्य–कालमें होनेवाला, शिलाजीत, सीसम–वृक्ष, ( न० )
दुग्धतालीय–दुग्ध-आम्र, दुग्धका फेन ( झाग ) ॥ १४० ॥ दुग्ध-पीनेका पात्र, ( न० ) शक्करका कीट ( पुं० )
प्रवचनीय–कहनेके योग्य, कहने-वाला, ( त्रि० ) ॥ १४१ ॥
वृषाकपायी–लक्ष्मी, गौरी, जीवंती, शतावरी, ( स्त्री० )

यषष्ठ ।

प्रत्युद्गमनीय–आगेसे उठनेके योग्य या धौतवस्त्रजोडा ( न० )
विष्वक्सेनप्रिया–लक्ष्मी, त्रायमाण-औपधि, ( स्त्री० ) ॥ १४२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें यान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

## अथ रान्तवर्गः ।

### रैकम् ।

रस्तु कामाऽनले वह्नौ तीक्ष्णे रास्त्वर्थरुक्मयोः ।
रुर्ना शब्दे भये भागे रीः श्रोतरि भुवि स्त्रियाम् ॥ १ ॥
क्रेतरि क्रीः क्रये तु स्त्री घ्रा घ्राणे घ्रातरि स्मृतः ।
द्रुर्वृक्षेऽपि द्रुमेऽपि स्याद्द्रुः स्वर्णे कामरूपिणि ॥ २ ॥
श्रीर्लक्ष्मीभारतीशोभाप्रभासु सरलद्रुमे ।
वेशत्रिवर्गसम्पत्तौ शेपापकरणे मतौ ॥ ३ ॥
स्रुः स्रवे निर्झरे चाथ ह्रीर्व्रीडे लज्जिते त्रिपु ।

### रद्वितीयम् ।

अग्रं त्रिपु प्रधाने स्यादग्रं मूर्द्धाधिकादिपु ॥ ४ ॥
पुरस्तात्पलमाने च व्रातेप्यालम्बनान्तयोः ।
अङ्घ्रिः पुंस्येव चरणे मूलेऽपि च महीरुहे ॥ ५ ॥

---

अथ रान्तवर्गः ।

रैक ।

र–कामाग्नि, अग्नि, तीक्ष्ण, (पु०)
रा–द्रव्य, सुवर्ण, ( पु० )
रु–शब्द, भय, भाग, ( पुं० )
री–श्रोता (पुं०) पृथ्वी, (स्त्री०) ॥१॥
क्री–खरीदनेवाला, ( पुं० ) खरीदना, ( स्त्री० )
घ्रा–नासिका, ( स्त्री० ) सूंघनेवाला, ( पुं० )
द्रु–वृक्ष, कल्पवृक्ष, सुवर्ण, यथेच्छरूप धारण करनेवाला, ( पुं० ) ॥ २ ॥
श्री–लक्ष्मी, सरस्वती, शोभा, प्रभा, (स्त्री०) सरल–वृक्ष, वेश (शृंगार), त्रिवर्गसंपत्ति, शेपका नहीं करना, बुद्धि, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥
स्रु–स्रव (झिरना), निर्झर (फुंवारा ),
ह्री–लज्जा, ( स्त्री० ) लज्जावान,(त्रि०)

रद्वितीय ।

अग्र–आदि, ( त्रि० ) मस्तक, अधिक आदि, ॥ ४ ॥ अगाड़ी, पल ( ४ तोला प्रमाण) समूह, आलम्बन, अन्त, ( न० )
अंघ्रि–पांव, जड़, वृक्ष, ( पु० )॥५॥

अद्रिः शैले द्रुमे सूर्येऽप्यभ्रं खे गिरिजेऽम्बुदे ।
स्वर्णेऽप्यथाऽरं शीघ्रे स्याच्चक्राङ्गे शीघ्रगे त्रिषु ॥ ६ ॥
अस्रं तु शोणिते लोम्न्यप्यस्रः स्यात्कोणकेशयोः ।
अस्त्रं प्रहरणे चापेऽप्यार्द्रा भे स्तिमिते त्रिषु ॥ ७ ॥
आरा तु चर्म्मवेधन्यामारो भौमे शनैश्चरे ।
आरुर्ना द्रुमभेदे स्यादपि कर्कटदंष्ट्रिणोः ॥ ८ ॥
इन्द्रः शक्रात्मसूर्येषु योगेऽथेन्द्रा फणिज्जके ।
इरा तु मदिरावारिभारव्यसनभूमिषु ॥ ९ ॥
उग्रस्तीव्रे त्रिषु क्षत्राच्छूद्रापुत्रे हरे पुमान् ।
उग्रा वचाछिक्किक्योरुष्ट्रस्तु स्यात्क्रमेलके ॥ १० ॥
उष्ट्रा गोलकिकायां स्यादुष्ट्री करभयोषिति ।
उस्रा गव्युपचित्रायामुस्रस्तु किरणे पुमान् ॥ ११ ॥

---

अद्रि—पर्वत, वृक्ष, सूर्य, (पुं०)
अभ्र—आकाश, धातुभेद, मेघ, स्वर्ण, (न०)
अर—शीघ्र, चक्रका अंग (आरा) (न०) शीघ्र चलनेवाला, (त्रि०) ॥ ६ ॥
अस्र—रुधिर, लोम, (न०)
अस्र—कोण, केश (बाल) (पुं०)
अस्त्र—फेंकके मारनेका हथियार, धनुष, (न०)
आर्द्रा—एक नक्षत्र, (स्त्री०) गीला, (त्रि०) ॥ ७ ॥
आरा—चर्मवेधनी (आर) (स्त्री०)
आर—भौम, शनैश्चर, (पुं०)
आरु—वृक्षभेद, कर्कट (केकड़ा) प्राणी, दाढोंवाला प्राणी, (पुं०) ॥ ८ ॥
इन्द्र—इन्द्र, आत्मा, सूर्य, योग, (पुं०)
इन्द्रा—छोटेपत्तोंकी तुलसी (स्त्री०)
इरा—मदिरा, जल, भार, व्यसनभूमि, (स्त्री०) ॥ ९ ॥
उग्र—तीव्र, (त्रि०) क्षत्रियसे शूद्राका पुत्र, महादेव, (पुं०)
उग्रा—वच, नकछिकनी, (स्त्री०)
उष्ट्र—ऊंट (पुं०) ॥ १० ॥
उष्ट्रा—चावलआदिके बांधनेका उपयोगी पात्र, ऊंटनी, (स्त्री०)
उस्रा—गौ, चीता—औषधि, (स्त्री०)
उस्र—किरण, (पुं०) ॥ ११ ॥

ऐन्द्रिः काके जयन्ते स्यादोड्रा जनपदान्तरे।
ओड्रो जने जवावृक्षे देशे पुष्पे तु न द्वयोः ॥ १२ ॥
अंघ्रिः पादे च बुध्ने च कद्रुः कनकपिङ्गले।
तद्वति त्रिषु कद्रुः स्यात्कद्रुः स्त्री नागमातरि ॥ १३ ॥
करस्तु पाणिप्रत्यायशुण्डारश्मिघनोपले।
कारो वधे तुषाराद्रौ निश्चये यतियत्नयोः ॥ १४ ॥
बलावप्यथ कारा स्याद्बन्धनागारबन्धयोः।
सुवन्ते कारिकापीडादूतिकासु प्रसेवके ॥ १५ ॥
कारुः शिल्पिनि शिल्पे च कारके विश्वकर्मणि।
कारिः क्रियानापिताद्यो' कीरो जनपदे शुके ॥ १६ ॥
कुरुर्नृपान्तरे भक्ते कुरुः श्रीकण्ठजाङ्गले।
कृच्छ्रं तु कष्टे पापे च तथासान्तपनादिके ॥ १७ ॥

---

ऐन्द्रि–काग, जयत (इंद्रपुत्र) (पुं०)
ओड्रा–जनपद (देशविशेप) (पुं० बहुवचनात)
ओड्र–जन, जवा वृक्ष, देश, (पुं०) पुष्प, (न०) ॥ १२ ॥
अंघ्रि–चरण, वृक्षकी जड़, (पुं०)
कद्रु–सुवर्ण, कुछेक पीला रग, (पु०) कुछपीलारगवाला (त्रि०) नागमाता (स्त्री०) ॥ १३ ॥
कर–हस्त, निश्चय, हस्तीकी सूँड, किरण, ओला, (पुं०)
कार–मारना, हिमाद्रि (पर्वत), निश्चय, यति, यत्न, ॥ १४ ॥
बलि, (पु०)
कारा बधनका स्थान, बंधन, सुवन्त, कारिका, पीडा, दूती, वीणाकी तूँबी, (स्त्री०) ॥ १५ ॥
कारु–शिल्पी, शिल्प, करनेवाला, विश्वकर्मा, (पुं०)
कारि–क्रिया, (स्त्री०) नाई आदि, (त्रि०)
कीर–देशविशेप, (पुं० बहुवचनात) सूवा–पक्षी, (पुं०) ॥ १६ ॥
कुरु–नृपभेद, अन्न, महादेव, जागलदेश, (पुं०)
कृच्छ्र–कष्ट, पाप, सान्तपन आदि–व्रत, (न०) ॥ १७ ॥

क्रूरस्त्रिषु नृशंसे स्यादपि निर्दयघोरयोः ।
क्रोष्ट्री शृगालिकाक्षीरविदारीलाङ्गलीष्वथ ॥ १८ ॥
देवताडे द्वये तीक्ष्णे त्रिषु ना गर्दभे खरः ।
खरुर्दशन ईशेऽश्वे दर्पे पुंसि सिते त्रिषु ॥ १९ ॥
खुरः शफे कोलदले खङ्गादेश्चरणेऽपि च ।
गरो विषे चोपविषे गरं करणरोगयोः ॥ २० ॥
गात्रं गजाग्रजङ्घादिविभागेऽप्यङ्गदेहयो ।
गिरिर्गिर्णौ गिरियकग्रावनेत्रगदेषु ना ॥ २१ ॥
गिरिः पूज्येऽन्यलिङ्गः स्याद्भारत्या भाषणे च गीः ।
गुरुर्निषेकादिकरे पित्रादिसुरमन्त्रिणोः २२ ॥
गुरुस्त्रिषु स्यान्महति दुर्जरे वाऽलघुन्यपि ।
गुन्द्रस्तेजनके गुन्द्रा मुस्तके भद्रमुस्तके ॥ २३ ॥

---

क्रूर—हिंसाकरनेवाला, निर्दय, भयंकर (पु० )
क्रोष्ट्री—गीदड़ी, क्षीरविदारीकंद, कलिहारी, ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥
खर—देवताड, ( पु० स्त्री० ) तीक्ष्ण, ( त्रि० ) गर्दभ, ( पु० )
खरु—दांत, महादेव, अश्व, अभिमान, ( पुं० ) सफेदरंगवाला, ( त्रि० ) ॥ १९ ॥
खुर—पशुका खुर, नख नामका गंधद्रव्य, गैंडा आदिका चरण, ( पु० )
गर—विष, उपविष ( धतूरा आदि ) ( पु० )
गर—करण, रोग, ( न० ) ॥ २० ॥
गात्र—गजका अग्रभाग, जंघा आदि-विभाग, अंग, शरीर, ( न० )
गिरि—निगलना, खिन्न, पर्वत, नेत्ररोग ( पुं० ) ॥ २१ ॥
गिरि—पूज्य, ( त्रि० )
गिर्—सरस्वती, भाषण, ( स्त्री० )
गुरु—निषेक ( गर्भाधान ) आदि संस्कार करानेवाला, पिता आदि, देवताओंका मंत्री, ( पु० )॥ २२॥
गुरु—महान्, दुर्जर, भारी, ( त्रि० )
गुन्द्र—सरकंडा, ( पुं० )
गुंद्रा—मोथा, भद्रमोथा, ॥ २३ ॥

कुटंनटे प्रियङ्गौ च गृध्रो लुब्धे खगान्तरे ।
गोत्रः क्षोणीधरे गोत्रं कुले क्षेत्रे च नाम्नि च ॥ २४ ॥
सम्भावनीयबोधेऽपि वित्ते वर्त्मनि कानने ।
गोत्रा भुवि गवां वृन्दे गौरः पुंसि निशाकरे ॥ २५ ॥
गौरः पीतारुणश्वेतविशुद्धेष्वभिधेयवत् ।
गौरी तु पार्वतीनग्नकन्ययोर्वरुणस्त्रियाम् ॥ २६ ॥
नदीभिद्यामिनीपिङ्गारोचनीक्ष्माप्रियङ्गुषु ।
गौरं तु विशदे श्वेतसर्षपे पद्मकेसरे ॥ २७ ॥
घस्रोऽह्नि हिंस्रे घोरस्तु हरे भीमेऽभिधेयवत् ।
अथ पुंस्येव चक्रः स्याच्चक्रवाकसमूहयोः ॥ २८ ॥
चक्रं सैन्ये रथाङ्गेऽपि आम्रजालेऽम्भसाम्भ्रमे ।
कुलालकृत्यनिष्पत्तिभाण्डे राष्ट्रास्त्रभेदयो· ॥ २९ ॥

---

अरलू या टेंट–वृक्ष, फूलप्रियंगू, (स्त्री० )
गृध्र–व्याध, पक्षिभेद, ( पु० )
गोत्र–पर्वत, ( पुं० )
गोत्र–कुल, क्षेत्र, नाम, ॥ २४ ॥ सभावनीय बोध, धन, मार्ग, वन, ( न० )
गोत्रा–पृथ्वी, गौवोंका समूह, (स्त्री०)
गौर–चन्द्रमा, ( पु० ) ॥ २५ ॥
गौर–पीला, लाल, सफेद, स्वच्छ, ( त्रि० )
गौरी–पार्वती, नहीं उत्पन्न हुवा है रजस् जिसके ऐसी कन्या, वरुणकी स्त्री, ॥ २६ ॥ नदीभेद, रात्रि, पीलारंगवाली, गोरोचन, पृथ्वी, फूलप्रियगु, (स्त्री०)
गौर–स्वच्छ ( सफेद ) ( त्रि० ) सफेद सरसों, कमलकेसर, (न० ) ॥ २७ ॥
घस्र–दिन, हिंसाकरनेवाला, ( पु० )
घोर–महादेव, ( पु० ) भयंकर, ( त्रि० )
चक्र–चकवा-पक्षी, समूह, (पु० ) २८
चक्र-सेना, रथका पहियाँ, आम्रजाल, जलोंका भ्रमण, कुम्हारके कृत्यके-लिये पात्र, देशभेद, अस्त्रभेद, (न०) ॥ २९ ॥

चन्द्रः सुधांशुकर्पूरस्वर्णकम्पिल्लवारिषु ।
चरश्चारे चले द्यूतप्रभेदे जङ्गमेऽपि च ॥ ३० ॥
चरुर्भाण्डेपि हव्यान्ने चारश्चरपियालयोः ।
गतौ बन्धेऽपि चित्रं तु कर्बुराद्भुतयोस्त्रिषु ॥ ३१ ॥
चित्रमालेख्यतिलकव्योमसु स्यान्नपुंसकम् ।
चित्राऽस्रवन्तीनक्षत्रभुजङ्गाऽप्सरसाम्भिदि ३२ ॥
चित्राऽऽखुपर्णीगोडुम्बासुभद्रादन्तिकासु च ।
चीरं तु वस्त्रे चूडायां त्रपुण्यालेखरेखयोः ॥ ३३ ॥
चीरी कच्छाटिकाझिल्योश्चुक्रस्त्वम्लेऽम्लवेतसे ।
चुक्री चाङ्गेरिकाया स्याच्चुक्रं वृक्षाम्लके मतम् ३४ ॥
मासाद्रिभेदयोश्चैत्रश्चैत्रं मृतकचैत्यके ।
चौरश्चौरे सुगन्धे च छत्रमातपवारणे ॥ ३५ ॥

---

चन्द्र—चंद्रमा, कपूर, सुवर्ण, कबीला-औपधि, जल, ( पुं० )
चर—चार ( फिरताहुवा ) पुरुष, हिलताहुवा, जूवाभेद, जंगम, (पुं०) ॥ ३० ॥
चरु—भाण्ड ( पात्र ), हव्यअन्न ( देवान्न ) ( पु० )
चार—राजाका गुप्त पुरुष, चरोंजी, गमन, बधन, ( पुं० )
चित्र—कबरा, अद्भुत, ( त्रि० )॥३१॥
चित्र—आलेख्य ( चित्रनिकालना ), तिलक, आकाश, ( न० )
चित्रा—नदी, नक्षत्र, सर्प, और अप्सराओंका भेद, ( स्त्री० ) ॥ ३२ ॥
चित्रा—मूसाकन्नी, गडूँभा, सरिवन, जमालगोटाकी जड़ ( स्त्री० )
चीर—वस्त्र, चोटी, सीसा, लेखभेद, रेखा, ( न० ) ॥ ३३ ॥
चीरी—धोतीकी कच्छ, भँमीरी (वर्षाऋतुमें झीं झीं बोलनेवाला प्राणी ) ( स्त्री० )
चुक्र—खट्टा-द्रव्य, अम्लवेत, ( पुं० )
चुक्री—अम्ललोना ( स्त्री० )
चुक्र—चूका-वृक्ष, ( न० ) ॥ ३४ ॥
चैत्र—चैत्र-मास, पर्वतभेद, ( पुं० )
चैत्र—मृतकका चौंतरा, ( न० )
चोर—चोर, सुगंध-द्रव्य, ( पुं० )
छत्र—छत्र, ( न० ) ॥ ३५ ॥

छत्रा मधुरिकायां स्यात्कुस्तुम्बुरुशिलीन्ध्रयोः ।
जारस्तूपपतौ जारी मता वश्यौषधीभिदि ॥ ३६ ॥
जीरस्तु जीरे खड्गे च टारो लिङ्गतुरङ्गयोः ।
तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते श्रुतिशाखान्तरेऽपि च ॥ ३७ ॥
कुटुम्बधारणे शास्त्रे कारणे च परिच्छदे ।
इतिकर्तव्यतायां च सूत्रवायेऽगदोत्तमे ॥ ३८ ॥
तन्त्रं द्विसाधके पात्रे तन्त्री स्याद्वल्लकी गुणे ।
शिरायां च गुडूच्यां च तन्द्री निद्राप्रमीलयोः ॥ ३९ ॥
वस्त्रादिपेटके नावि दशाया च तरिः स्त्रियाम् ।
ताम्रं शुल्बे त्रिष्वरुणे तारोऽस्युच्चध्वनौ त्रिषु ॥ ४० ॥
तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरुणे शुद्धमौक्तिके ।
तारं तु रजते तारा सुग्रीवगुरुयोषितोः ॥ ४१ ॥

---

छत्रा–सौंफ, धनियाँ, छत्राक (भौंफोड़ ) ( स्त्री० )
जार–उपपति, ( पुं० )
जारी–वशीभूत करनेवाली औषधीभेद ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥
जीर–जीरा, खड्ग, ( पुं० )
टार–लिंग, अश्व, ( पुं० )
तन्त्र–प्रधान, सिद्धान्त, वेदशाखाभेद, ॥३७॥ कुटुंबधारण, शास्त्र, कारण, सामग्री, निश्चित करना, सूत्रबुननेवाला, उत्तम औषधी, ( न० ) ॥ ३८ ॥
तंत्र–दोनोंका साधक, पात्र, ( न० )
तंत्री–वीणाका तार, नाडी, गिलोय, ( स्त्री० )
तन्द्री–निद्रा, आलस्य, (स्त्री०)॥३९॥
तरि–वस्त्रआदिकी पेटी, नौका, वस्त्रका पल्ला, ( स्त्री० )
ताम्र–तांबा, ( न० ) रक्तवर्णवाला, ( त्रि० )
तार–अति उच्चध्वनि, (त्रि०)॥४०॥
तार–मोती आदिकी शुद्धि, जवान, स्वच्छमोती, ( पुं० )
तार–चांदी, ( न० )
तारा–सुग्रीवकी स्त्री, बृहस्पतिकी स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥

बुद्धदर्शनदेव्यां च दृग्मध्यतारके न ना ।
तीरस्त्रपौ नटे तीरं तटे प्रादुत्तरं च तत् ॥ ४२ ॥
तीव्रमत्यन्तकटुके नितान्ते तद्वतोस्त्रिषु ।
तीव्रा तु कटुरोहिण्यामासुरीगण्डदूर्वयोः ॥ ४३ ॥
वेणुके प्राजने तोत्रं दरोऽस्त्री भीतिगर्त्तयोः ।
दरी स्यात्कन्दरे स्त्री तदीपदर्थे दराऽव्ययम् ॥ ४४ ॥
दस्रः खरेऽप्याश्विनेये दारु स्याद्देवदारुणि ।
अस्त्री त्वारेऽप्यथ क्लीवं द्वारं द्वाराऽभ्युपाययोः ॥ ४५ ॥
धरः कच्छपनाथे स्याद्गिरौ कर्प्पासतूलके ।
धरा धरण्यां स्त्रीणा च गर्भाधारेऽपि मेदसि ॥ ४६ ॥
धात्री त्वामलकीक्षित्योरुपमातरि मातरि ।
धारस्तु धारासम्पातवर्षणे स्यादृणेऽपि च ॥ ४७ ॥

---

बुद्धधर्मकी देवी, ( स्त्री० ) नेत्रका तारा ( स्त्री० न० )
तीर-राग, नट, ( पुं० ) तीर
तीर-प्रतीर-तट-नदी आदिका, ( न० ) ॥ ४२ ॥
तीव्र-अत्यंत चर्चरा, अत्यर्थ, ( न० ) कटुरसवाला, अत्यर्थवाला ( त्रि० )
तीव्रा-कुटकी, राई, गॉडर दूब, (स्त्री०) ॥ ४३ ॥
तोत्र-चाबुक, पैनी, ( न० )
दर-भय, खड्डा, ( पुं० न० )
दरी-गुफा, ( स्त्री० )
दर-ईषत्का अर्थ ( थोड़ा ) ( अव्यय ) ॥ ४४ ॥
दस्र-गर्दभ, अश्विनीकुमार, ( पु० )
दारु-देवदार-वृक्ष ( न० ) पीतल ( पु० न० )
द्वार-दरवाजा, अभ्युपाय ( अंगीकार या उपाय ) ( न० ) ॥ ४५ ॥
धर-कूर्माधिप ( बड़ा कछुवा ), पर्वत, कपासकी रूई, ( पुं० )
धरा-पृथ्वी, स्त्रियोंका गर्भाशय, मेद, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥
धात्री-आँवला, पृथ्वी, धाय ( स्तन प्यानेवाली ), माता ( स्त्री० )
धार-धारापूर्वक बरसना, ऋण, ( पु० ) ॥ ४७ ॥

धारा पङ्क्तौ द्रवद्रव्यस्रवेऽश्वगतिपञ्चके ।
खड्गादीनां मुखे सेनाग्रिमस्कन्धपुरान्तरे ॥ ४८ ॥

भृङ्गारादेश्च नालायां धाराभ्यासे नुतावपि ।
हरिद्रानिशयोश्चाथ धीरः स्यात्पुंसि पण्डिते ॥ ४९ ॥

धैर्यशालिनि मन्दे च त्रिषु धीरं तु कुङ्कुमे ।
नक्रस्तु पुंसि कुम्भीरे नक्रं घ्राणेऽग्रदारुणि ॥ ५० ॥

नरः पार्थाजयोर्मर्त्ये रामकर्पूरके नरम् ।
नारस्तु तन्दुके नीरे नीध्रः पुंसि निशापतौ ॥ ५१ ॥

नीध्रं वलीके नेमौ च रेवतीतारके वने ।
नेत्रं विलोचने वृक्षमूले वस्त्रे गुणे मथि ॥ ५२ ॥

नेत्रं रथेऽपि नद्यां च नेत्रो नेतरि वाच्यवत् ।
पत्रं पर्णे च पक्ष्मे च नृत्योद्यतनटेऽपि च ॥ ५३ ॥

---

धारा–पंक्ति, पतला द्रव्य (जलआदि) का झिरना, अश्वकी पाँच गति, खड्गआदिकी धार, सेनाका अग्रभाग, पुरभेद, ॥ ४८ ॥ झारीआदिकी, नालीमें धारानिरंतरता, स्तुति, हलदी, रात्रि, ( स्त्री० )
धीर–पंडित, ॥४९॥ धैर्यवान, (पुं०) मन्द ( त्रि० ) केसर ( न० )
नक्र–ग्राहविशेष ( नाका ), नासिका, चंभोंके ऊपरका काष्ठ (न०) ॥ ५० ॥
नर–अर्जुन, विष्णु, मनुष्य, (पुं०) तृणविशेष ( रोहिनसोधिया ) ( न० )
नार–निरनों, जल, ( पु० )
नीध्र–चंद्रमा, ( पु० ) ॥५१॥ छप्परका अन ( ओलानी ), कूएकी रस्सीआदि रखनेका चक्र, रेवती नक्षत्र, वन, ( न० )
नेत्र–नेत्र, वृक्षकी जड, वस्त्रभेद, दधि आदिमथनेकी रस्सी, ॥ ५२ ॥ रथ, नदी, ( न० ) लेजानेवाला (त्रि०)
पत्र–पत्ता, नेत्रकी पलक, नृत्यमें उद्यत नट ( पुं० ) ॥ ५३ ॥

ऋत्विगादौ पात्रं स्यात्पारः ? एरंजयन्तमाः ।
कर्करीपूरयोः पारी पारी पूरपरागयोः ॥ ५४ ॥

हस्तिनः पादरज्ज्वां च पुण्ड्राः स्युर्नीवृदन्तरे ।
पुण्ड्रो वासन्तिकाया च दिक्षु दैत्यप्रभेदयोः ॥ ५५ ॥

पुण्ड्रस्तिलकभेदेपि पुण्डरीके कृमावपि ।
पुरं पाटलिपुत्रे स्याद्गृहोपरिगृहे गृहे ॥ ५६ ॥

पुरं देहे गुग्गुलौ तु पुरः पुरि पुरं न ना ।
दशपूर्वस्तु वालेये पूर्वकाले पुराऽव्ययम् ॥ ५७ ॥

पुरुः स्वर्गे परागे च पुरुः प्राज्यनृपान्तरे ।
पूरो वारिप्रवाहे स्यात्पूरः स्यात्पिष्टकान्तरे ॥ ५८ ॥

पोत्रं वज्रे मुखाग्रे च सूकरस्य हलस्य च ।
पौरः पुरभवे वाच्यलिङ्गं पौरं तु कत्तृणे ॥ ५९ ॥

---

पात्र–ऋत्विक् आदि, ( न० )
पार– ( पु० )
पारी–झारी, जलकी वृद्धि, व्रणशुद्धि, पुष्पकी रज, ॥ ५४ ॥ हस्तीके पाँवकी रस्सी, ( स्त्री० )
पुण्ड्र–देशविशेष ( पु० बहुवचनात ) जूही–पुष्पवेल, इक्षुभेद, दैत्यभेद, ॥ ५५ ॥ तिलकभेद, कमल, कृमि ( कीड़ा ) पु० )
पुर–पटना शहर, घरके ऊपर घर, घर, ॥ ५६ ॥ शरीर, ( न० )
पुर–गूगल, ( पु० )
दशपुर–गर्दभ, ( पुं० )
पुरा–पूर्वकाल, ( अव्यय ) ॥ ५७ ॥
पुरु–स्वर्ग,पुष्पराज, बहुत, एक राजा, ( पु० )
पूर–जलप्रवाह, पिष्टभेद, ( पुं० ) ॥ ५८ ॥
पोत्र–वज्र, सूकरके मुखका अग्रभाग, हलका अग्रभाग, ( न० )
पौर–पुरमें होनेवाला मनुष्यआदि, ( त्रि० ) सुगंधिक तृण, ( रोहिस ) ( न० ) ॥ ५९ ॥

वक्रः शनैश्चरे वक्रं पुटभेदेऽथ वाच्यवत् ।
वक्रः स्यात्कुटिले क्रूरे वध्रं त्रपुवरत्रयोः ॥ ६० ॥
बभ्रुर्मुनौ कृशानौ च नकुले च हरीशयोः ।
पिङ्गलेऽपि विशालेऽपि बभ्रुः स्यादभिधेयवत् ॥ ६१ ॥
त्रिफलायां वरा प्रोक्ता शतावर्यां मता वरी ।
वारः सूर्यादिदिवसे द्वारेऽप्यवसरे हरे ॥ ६२ ॥
कुब्जवृक्षे च गन्धे च वारं स्यान्मद्यभाजने ।
वारी तु गजबन्धन्यां घटिकायामपि स्मृता ॥ ६३ ॥
वारिः सरस्वतीदेव्यां वारि ह्रीवेरनीरयोः ।
वास्रः पुंसि दिने वास्रं मन्दिरेऽपि चतुष्पथे ॥ ६४ ॥
वीरस्तु सुभटे श्रेष्ठे वीरं शृङ्ग्यां नते त्रिषु ।
वीरा तु रम्भागम्भारीतामलक्यैलवालुषु ॥ ६५ ॥

---

वक्र–शनैश्चर-ग्रह, (पु० )पुट (पत्र-पात्र ) भेद, ( न० )
वक्र–कुटिल, क्रूर, ( त्रि० )
वध्र–सीसा, वाधी ( चर्मरज्जु ) (न०) ॥ ६० ॥
बभ्रु–मुनिभेद, अग्नि, नौला, (पुं०) विष्णु, महादेव, ( पुं० )
बभ्रु–पिंगलवर्णवाला, विशाल (बडा) ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥
वरा–त्रिफला, ( स्त्री० )
वरी–सतावर, ( स्त्री० )
वार–सूर्य आदिका दिन, द्वार, अवसर, महादेव, ॥ ६२ ॥

चिरचिरा-वृक्ष, गन्ध, (पु०) मदिरापात्र, ( न० )
वारी–गजबधनी, हाथीको बाँधनेकी जगह, कलशी, ( स्त्री० ) ॥ ६३ ॥
वारि–सरस्वती देवी, ( स्त्री० )
वारि–नेत्रवाला, जल, ( न० )
वास्र–दिन, (पुं० ) मन्दिर, चौपट-रास्ता, ( न० ) ॥ ६४ ॥
वीर–योधा, श्रेष्ठ (पु०), काकड़ासींगी, ( न० ) तगर ( त्रि० )
वीरा–केला, कभारी, भुँईआँवला, एलवा, ( स्त्री० ) ॥ ६५ ॥

ऋत्विगादौ पात्रं स्यात्पारः ? परंजयन्तमाः ।
कर्करीपूरयोः पारी पारी पूरपरागयोः ॥ ५४ ॥

हस्तिनः पादरज्ज्वां च पुण्ड्राः स्युर्नीवृदन्तरे ।
पुण्ड्रो वासन्तिकाया च दिक्षु दैत्यप्रभेदयोः ॥ ५५ ॥

पुण्ड्रस्तिलकभेदेऽपि पुण्डरीके कृमावपि ।
पुरं पाटलिपुत्रे स्याद्गृहोपरिगृहे गृहे ॥ ५६ ॥

पुरं देहे गुग्गुलौ तु पुरः पुरि पुरं न ना ।
दशपूर्वस्तु वालेये पूर्वकाले पुराऽव्ययम् ॥ ५७ ॥

पुरुः स्वर्गे परागे च पुरुः प्राज्यनृपान्तरे ।
पूरो वारिप्रवाहे स्यात्पूरः स्यात्पिष्टकान्तरे ॥ ५८ ॥

पोत्रं वज्रे मुखाग्रे च सूकरस्य हलस्य च ।
पौरः पुरभवे वाच्यलिङ्गं पौरं तु कत्तृणे ॥ ५९ ॥

---

पात्र–ऋत्विक् आदि, ( न० )
पार– ( पु० )
पारी–झारी, जलकी वृद्धि, व्रणशुद्धि, पुष्पकी रज, ॥ ५४ ॥ हस्तीके पॉवकी रस्सी, ( स्त्री० )
पुण्ड्र–देशविशेष ( पु० बहुवचनात ) जूही–पुष्पवेल, इक्षुभेद, दैत्यभेद, ॥ ५५ ॥ तिलकभेद, कमल, कृमि ( कीड़ा ) पु० )
पुर–पटना शहर, घरके ऊपर घर, घर, ॥ ५६ ॥ शरीर, ( न० )
पुर–गूगल, ( पु० )
दशापुर–गर्दभ, ( पुं० )
पुरा–पूर्वकाल, ( अव्यय ) ॥ ५७ ॥
पुरु–स्वर्ग,पुखराज, बहुत, एक राजा, ( पुं० )
पूर–जलप्रवाह, पिष्टभेद, ( पुं० ) ॥ ५८ ॥
पोत्र–वज्र, सूकरके मुखका अग्रभाग, हलका अग्रभाग, ( न० )
पौर–पुरमें होनेवाला मनुष्यआदि, ( त्रि० ) सुगधिक तृण, ( रोहिस ) ( न० ) ॥ ५९ ॥

वक्रः शनैश्चरे वक्रं पुटभेदेऽथ वाच्यवत् ।
वक्रः स्यात्कुटिले क्रूरे वध्रं त्रपुवरत्रयोः ॥ ६० ॥
बभ्रुर्मुनौ कृशानौ च नकुले च हरीशयोः ।
पिङ्गलेऽपि विशालेऽपि बभ्रुः स्यादभिधेयवत् ॥ ६१ ॥
त्रिफलायां वरा प्रोक्ता शतावर्यां मता वरी ।
वारः सूर्यादिदिवसे द्वारेऽप्यवसरे हरे ॥ ६२ ॥
कुब्जवृक्षे च गन्धे च वारं स्यान्मद्यभाजने ।
वारी तु गजवन्धन्यां घटिकायामपि स्मृता ॥ ६३ ॥
वारिः सरस्वतीदेव्यां वारि ह्रीवेरनीरयोः ।
वास्रः पुंसि दिने वास्रं मन्दिरेऽपि चतुष्पथे ॥ ६४ ॥
वीरस्तु सुभटे श्रेष्ठे वीरं शृङ्गयां नते त्रिषु ।
वीरा तु रम्भागम्भारीतामलक्यैलवालुषु ॥ ६५ ॥

---

वक्र—शनैश्चर-ग्रह, (पुं० ) पुट (पत्र-पात्र ) भेद, ( न० )
वक्र—कुटिल, क्रूर, ( त्रि० )
वध्र—सीसा, बाधी ( चर्मरज्जु ) (न०) ॥ ६० ॥
बभ्रु—मुनिभेद, अग्नि, नौला, (पुं०) विष्णु, महादेव, ( पुं० )
बभ्रु—पिंगलवर्णवाला, विशाल (बडा) ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥
वरा—त्रिफला, ( स्त्री० )
वरी—सतावर, ( स्त्री० )
वार—सूर्य आदिका दिन, द्वार, अवसर, महादेव, ॥ ६२ ॥
चिरचिरा-वृक्ष, गन्ध, (पु०) मदिरापात्र, ( न० )
वारी—गजबंधनी, हाथीको बाँधनेकी जगह, कलशी, ( स्त्री० ) ॥ ६३ ॥
वारि—सरस्वती देवी, ( स्त्री० )
वारि—नेत्रवाला, जल, ( न० )
वास्र—दिन, (पुं० ) मन्दिर, चौपट-रास्ता, ( न० ) ॥ ६४ ॥
वीर—योधा, श्रेष्ठ (पुं०), काकड़ासींगी, ( न० ) तगर ( त्रि० )
वीरा—केला, कमारी, भुईंआँवला, एलवा, ( स्त्री० )॥ ६५ ॥

स्त्री सुराक्षीरकाकोलीपतिपुत्रवतीष्वपि ।
गोष्ठोदुम्बरिकाक्षीरविदार्योरपि सा स्मृता ॥ ६६ ॥
वृत्रो दानवशक्रादिध्वान्तवारिदवैरिषु ।
भद्रो हरे रामबले वृषे मेरुकदम्बके ॥ ६७ ॥
लक्ष्मणाद्योऽवशः शीघ्रं यः प्रकुप्यति कोपितः ।
गजे तत्राऽपि भद्रः स्याद्वाच्यवच्छ्रेष्ठसाधुनोः ॥ ६८ ॥
भद्रं तु करणप्रीतिमुस्तक्षेमहेमसु ।
भद्रा तु जाह्नवीरास्नाकृष्णानन्तासु कट्फले ॥ ६९ ॥
भद्रा भद्रालिकायां च गम्भार्यां हेमदुग्धके ।
भरस्त्वतिशये भारे भरुर्भर्तरि काञ्चने ॥ ७० ॥
भारस्तु वीवधे स्वर्णपलानामयुतद्वये ।
वाच्यवत्कातरे भीरु भीरुरिन्द्रीवरीस्त्रियोः ॥ ७१ ॥

---

मदिरा, क्षीरकाकोली, पतिपुत्रवाली स्त्री, गोला, दूधविदारी कंद ( स्त्री० ) ॥ ६६ ॥
वृत्र—एक दानव, इंद्रादि, अंधकार, मेघ, शत्रु, ( पु० )
भद्र—महादेव, रामचन्द्र, बलदेव, बैल, सुमेरुका कदंब वृक्ष, ॥ ६७ ॥ जो लक्ष्मणसे कुपित कियाहुवा शीघ्र अवशहुवा प्रकोपको प्राप्त हुवा वह अर्थात् परशुराम, ( पुं० ) श्रेष्ठ, साधु ( अच्छा ) ( त्रि० ) ॥ ६८ ॥
भद्र—करण, प्रीति, नागरमोथा, मंगल, सुवर्ण, ( न० )
भद्रा—आकाशगंगा, रायसन, पीपल, अनंतमूल, कायफल, ॥ ६९ ॥ गवाली या पसरन, कंभारी, गूलर-वृक्ष, ( स्त्री० )
भर—अत्यंत भार. ( पुं० )
भरु—भर्ता, सुवर्ण, ( पु० ) ॥ ७० ॥
भार—धानआदिका संग्रह या मार्ग, सुवर्ण पलोंका २० सहस्र पल (८००० तोला सुवर्ण) ( पुं० )
भीरु—डरपोर, शतावर या कटेहली, स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ७१ ॥

भूरि प्राज्ये सुवर्णे च भूरिर्ब्रह्मेशशौरिषु ।
मन्त्रो वेदान्तरे गुप्तवादे देवादिसाधने ॥ ७२ ॥
मरुर्धन्वनि शैले च मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे ।
मात्रा परिच्छदे वित्ते मानेऽल्पे कर्णभूषणे ॥ ७३ ॥
अक्षिभागेऽप्यथो मारो विघ्ने मृत्यौ स्मरे वृषे ।
मारी जनक्षये चण्ड्यां मित्रं सख्यौ रवौ पुमान् ॥ ७४ ॥
मीरोऽब्धिशैलनीरेषु मुरो दैत्ये मुरौषधे ।
यात्राऽनुवृत्तौ गमने यापने देवतोत्सवे ॥ ७५ ॥
विषयोत्पातयो राष्ट्रमस्त्री दैत्ये मृगे रुरुः ।
रेत्रं रेतसि पीयूषे पारदे पटवासके ॥ ७६ ॥
रोध्रः सावरके लोध्रो रोध्रं पापापराधयोः ।
रौद्री तु चण्ड्यां रौद्रस्तु त्रिषु तीव्रे भयानके ॥ ७७ ॥

---

भूरि–बहुत ( त्रि० ) सुवर्ण, ( न० )
भूरि–ब्रह्मा, महादेव, कृष्ण, ( पुं० )
मन्त्र–वेदभेद, गुप्तसलाह, देवआदिकोंका साधन, ( पुं० ) ॥ ७२ ॥
मरु–मारवाड देश, पर्वत, ( पुं० )
मात्र–संपूर्णता, निश्चय ( न० )
मात्रा–उपकरण ( सामान ), द्रव्य, परिमाण, अल्प, कर्णभूषण, नेत्रभाग, ( स्त्री० ) ॥ ७३ )
मार–विघ्न, मृत्यु, कामदेव, बैल, (पुं०)
मारी–जनोंका नाश, चंडी ( देवी ) ( स्त्री० )
मित्र–सखा, ( न० ) सूर्य, ( पु० ) ॥ ७४ ॥
मीर–समुद्र, पर्वत, जल, ( पुं० )
मुर–दैत्य, ( पुं० )
मुरा–कपूरकचरी, ( स्त्री० )
यात्रा–अनुवर्तन, गमन, भेजना, देवताका उत्सव ( स्त्री० ) ॥ ७५ ॥
राष्ट्र–देश, उत्पात, ( पुं०न० )
रुरु–दैत्यविशेष, मृगविशेष, ( पुं० )
रेत्र–वीर्य, अमृत, पारा, बकुचा, ( न० ) ॥ ७६ ॥
रोध्र–लोध्र–लोध, ( पुं० )
रोध्र–पाप, अपराध, ( न० )
रौद्री–चंडी ( देवी ) ( स्त्री० )
रौद्र–तीव्र, भयानक, ( त्रि० )॥७७॥

रौद्रं स्यादातपे क्लीबं रौद्रो नाट्यरसान्तरे ।
छन्दोभेदे मुखे वक्त्रं स्याद्वज्रा तंत्रिकौषधौ ॥ ७८ ॥
वज्रोऽस्त्री हीरके शम्बे वज्रो योगान्तरे पुमान् ।
क्लीबं स्यादारनालेऽपि वक्रं वामेऽलकेपि च ॥ ७९ ॥
वप्रस्तातेऽस्त्रिया तीरे तु क्षेत्रचयरेणुषु ।
वेरं शरीरकाश्मीरवार्त्ताकीषु नपुंसकम् ॥ ८० ॥
व्याकुलाशक्तयोर्व्यग्रो व्याघ्रो द्वीपिकरञ्जयोः ।
शरस्तेजनके काण्डे शरं नीरे नपुंसकम् ॥ ८१ ॥
छुरिकायां मता शस्त्री शस्त्रमायुधलोहयोः ।
शारस्तु शबले वाते शारिः शाकुनिकान्तरे ॥ ८२ ॥
युद्धार्थगजपर्याणे नाऽक्षोपकरणे पणे ।
आज्ञायामागमे शास्त्रं शिग्रुः काक्षीवशाकयोः ॥ ८३ ॥

---

रौद्र–धूप, ( न० )
रौद्र–नाट्यभेद, रसभेद, ( पुं० )
वक्त्र–छन्दभेद, मुख ( न० )
वज्रा–गिलोय, ( स्त्री० ) ॥ ७८ ॥
वज्र–हीरा, वज्र–आयुध, ( पुं०न० )
वज्र–एक योग ( पुं० ) काजी, (न०)
वक्र–टेढा, जुलफ, ( न० ) ॥ ७९ ॥
वप्र–तात, तीर, क्षेत्र, चय ( ढेर ), रेणु, ( पुं० न० )
वेर–शरीर, कंभारी, बैंगन, ( न० ) ॥ ८० ॥
व्यग्र–व्याकुल, अशक्त, ( पुं० )
व्याघ्र–बघेरा, करंजुवा ( पुं० )
शर–सरकंडा, बाण, ( पुं० ) जल ( न० ) ॥ ८१ ॥
शस्त्री–छुरी, ( स्त्री० )
शस्त्र–आयुध ( हथियार ), लोह ( न० )
शार–कबरा ( त्रि० ) वायु ( पुं० )
शारि–पक्षीभेद, ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥ युद्धके लिये हस्तीका साजना, चौपटकी सार, जूवा ( पुं० )
शिग्रु–सहँजना, शाकमात्र ॥ ८३ ॥

चक्राङ्गोशीरयोः शीघ्रं तूर्णेपि त्रिषु तद्वति ।
शुक्रः काव्येऽनले ज्येष्ठे शुक्रं रेतोऽक्षिरोगयोः ॥ ८४ ॥
शुक्लेऽपि शुभ्रं त्वभ्रे स्यात्प्रदीप्तश्वेतयोस्त्रिषु ।
शूरः शूरे भटे ख्यातः शूरः सूर्येपि दृश्यते ॥ ८५ ॥
सत्रं यज्ञे सदादाने कैतवे वसने वने ।
शरो हारे शरे पुंसि दध्यग्रेऽपि शरः पुमान् ॥ ८६ ॥
क्लीबं तु कानने सान्द्रं सान्द्रं त्रिषु घने मृदौ ।
सारः स्यान्मज्जनि बले स्थिरांशेऽपि पुमानयम् ॥ ८७ ॥
सारं न्याय्ये जले वित्ते सारं स्याद्वाच्यवद्वरे ।
निदाघसलिले सिप्रः सिप्रा तु सरिदन्तरे ॥ ८८ ॥
सीरस्तु लाङ्गले पुंसि सीरो दिनपतावपि ।
सुरो देवे सुरा तु स्यान्मदिरापानपात्रयोः ॥ ८९ ॥

---

शीघ्र–चक्रका अंग, खस, जल्दी, ( न० ) शीघ्रतावाला, ( त्रि० )
शुक्र–भार्गव, अग्नि, ज्येष्ठ-मास,(पुं०)
शुक्र–वीर्य, नेत्ररोग ( न० ) ॥८४॥ शुक्लवर्ण, ( पुं० )
शुभ्र–भोडर, ( न० ) उद्दीप्त, सफेदरंगवाला, ( त्रि० )
शूर–एक यादव, योधा, सूर्य, (पुं०) ॥ ८५ ॥
सत्र–यज्ञ, सदादान, कपट, वस्त्र, वन, ( न० )
शर–हार, बाण, ( पु० )
शर–दधिकी मलाई, ( पुं० ) ॥ ८६ ॥
सान्द्र–वन, ( न० )
सान्द्र–सघन, कोमल ( त्रि० )
सार–मज्जा, बल, स्थिरभाग, ( पुं० ) ॥ ८७ ॥ न्याय्य ( युक्त ), जल, द्रव्य ( न० ) श्रेष्ठ ( त्रि० )
सिप्र–ग्रीष्मऋतुका जल ( पसीना ) ( पुं० )
सिप्रा–एक नदी, ( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥
सीर–हल, सूर्य, ( पुं० )
सुर–देवता ( पुं० )
सुरा–मदिरा, जलआदिपीनेका पात्र, ( स्त्री० ) ॥ ८९ ॥

सूत्रं तु सूचनाग्रन्थे सूत्रं तंतुव्यवस्थयोः ।
स्थिरस्तु निश्चले मोक्षे शालपर्णीभुवोः स्थिरा ॥ ९० ॥
स्फारः स्याद्विकटे स्फारः करटादेश्च बुद्बुदे ।
स्वरोऽकाराद्युदात्तादिनिषादादिषु निस्वने ॥ ९१ ॥
स्वरो नासासमीरेऽपि स्वैरं स्वच्छन्दमन्दयोः ।
स्वरुर्वज्रे शरे यज्ञे यूपखण्डेऽपि च स्वरुः ॥ ९२ ॥
हरिर्गोविन्दवारीन्द्रचन्द्रवातेन्द्रभानुषु ।
यमाऽहिकपिभेकाश्वशुके शोकान्तरे त्विषि ॥ ९३ ॥
त्रिषु पिङ्गेऽपि हरिते हारो मुक्तावलौ युधि ।
हिंस्रा काकादनीमांसीहिंस्रः स्याद्घातकेऽन्यवत् ॥ ९४ ॥
रक्तैरण्डेऽप्यथ व्याघ्री स्मृत्या श्रेष्ठे परस्थितः ।
शक्रः पुलोमजाकान्ते कुटजेऽर्जुनपादपे ॥ ९५ ॥

---

सूत्र—सूचनाग्रंथ, तंतु ( सूत ), व्यवस्था ( नं० )
स्थिर—निश्चल, मोक्ष, ( पुं० )
स्थिरा—शालपर्णी—औषधि, पृथ्वी, ( स्त्री० ) ॥ ९० ॥
स्फार—विकट (बडका), करटादिक, बुद्बुद, ( पुं० )
स्वर—अकार आदि, उदात्तआदि, निषाद षड्ज आदि, शब्द (ध्वनि) ( पुं० ) ॥ ९१ ॥
स्वर—नासिकाका वायु ( पुं० )
स्वैर—स्वच्छन्द, मन्द, ( त्रि० )
स्वरु—वज्र, बाण, यज्ञ, यज्ञस्तंभका टुकडा ( पुं० ) ॥ ९२ ॥
हरि—विष्णु, वरुण, चंद्रमा, वायु, इंद्र, सूर्य, ॥ ९३ ॥ यमराज, सर्प, बन्दर, मेंडक, अश्व, सूवा ( तोता ), शोकभेद, कान्ति, ( पुं० ) पिंगल वर्णवाला, हरितवर्णवाला ( त्रि० )
हार—मोतियोंकी लडी. युद्ध. ( पु० ) ॥ ९४ ॥
हिंस्रा—काकदनी—वृक्ष जटामांसी. ( स्त्री० )
हिंस्र—घातक ( जीव मारनेवाला ) ( त्रि० ) रक्तएरंड, ( पुं० )
व्याघ्री—कटेहली, ( स्त्री० ) व्याघ्र शब्द शब्दके आगे लगाहुवा श्रेष्ठवाचक कहा है, ( पु० )
शक्र—इंद्र, कुडाबृक्ष, अर्जुनवृक्ष, ( पुं० ) ॥ ९५ ॥

शङ्क्रिः शचीपतौ मेघे स्वरुः कुलिशकोपयोः ।
हीरा पिपीलिकालक्ष्म्योर्हीरो वज्रेऽपि शङ्करे ॥ ९६ ॥

होरा रेखान्तरे शास्त्रभेदे राश्यर्द्धलग्नयोः ।
क्षरो मेघे क्षरं नीरे क्षारः स्याद्भस्मकाचयोः ॥ ९७ ॥

चूर्णादौ धूर्तलवणे रसभेदेऽपि दृश्यते ।
क्षीरं नीरेऽपि दुग्धेऽपि वटादीनां पयस्यपि ॥ ९८ ॥

क्षुद्रः स्वल्पाऽधमक्रूरकृपणेष्वभिधेयवत् ।
क्षुद्रा वेश्यानटीव्यङ्गासरघाबृहतीष्वपि ॥ ९९ ॥

चाङ्गेर्यां कण्टकार्यां च हिंस्रामक्षिकयोरपि ।
नापितस्योपकरणे गोक्षुरे च क्षुरे क्षुरः ॥ १०० ॥

क्षेत्रं शरीरे दारेषु केदारे सिद्धसंश्रये ।
क्षौद्रं तु माक्षिके क्लीबं मतं क्षौद्रं पयस्यपि ॥ १०१ ॥

---

शङ्क्रि–इंद्र, मेघ, ( पुं० )
स्वरु–वज्र, कोप, ( पुं० )
हीरा–चीटी, लक्ष्मी, ( स्त्री० )
हीर–वज्र, महादेव, ( पुं० ) ॥९६॥
होरा–रेखाभेद, शास्त्रभेद, राशिका अर्द्धभाग, लग्न ( स्त्री० )
क्षर–मेघ, ( पुं० )
क्षर–जल, ( न० )
क्षार–भस्म, काच, ॥ ९७ ॥ चूर्ण आदि, विरियासंचर नौन, रसभेद ( पु० )
क्षीर–जल, दूध, बड़आदिकोंका दूध, ( न० ) ॥ ९८ ॥
क्षुद्र–स्वल्प, अधम, क्रूर, कृपण, ( त्रि० )
क्षुद्रा–वेश्या, नटी, अंगहीना, मधुमक्खी, बडी कटेहली, ( स्त्री० ) ॥ ९९॥ चूका, कटेहली, जटामासी, मक्षिकामात्र, ( स्त्री० )
क्षुर–नाईका उस्तरा, गोखरु, तालमखाना, ( पुं० )
क्षेत्र–शरीर, कुटुंबिनी स्त्री, खेत, सिद्धोंकी पृथ्वी, (न०) ॥ १०० ॥
क्षौद्र–शहद, जल, ( न० ) ॥१०१॥

रतृतीयम् ।

अगुरु स्याच्छिंशपायां क्लीबे लघुनि त्रिषु ।
अङ्कुरः स्यादभिनवोद्भिदि रोम्ण्यप्सु शोणिते ॥ १०२ ॥
अङ्गारस्तूल्मुके न स्त्री पुंस्यङ्गारो महीसुते ।
वातेऽजिरः प्राङ्गणाङ्गविषये दर्दुरेऽजिरः ॥ १०३ ॥
अन्तरं तु विशेषे स्यादुत्तरीयावकाशयोः ।
आत्मात्मीयविनांऽतर्द्धिवहिर्म्मध्यावधिष्वपि ॥ १०४ ॥
तादर्थ्येऽवसरे रन्ध्रेऽप्यन्यार्थेऽपि तथान्तरम् ।
अपरा तु जरायौ स्यादर्वाचीनेऽपरं त्रिषु ॥ १०५ ॥
अपरं त्वधुनार्थेऽपि पश्चाद्गात्रेऽपि दन्तिनाम् ।
अवरा हिमवत्पुत्र्यां चरमे त्ववरं त्रिषु ॥ १०६ ॥
अवीरा निष्पतिसुता स्त्रिया शौर्योज्झिते त्रिषु ।
अमरस्तु सुरेऽप्यस्थिसंहारे कुलिशद्रुमे ॥ १०७ ॥

---

रतृतीय ।

अगुरु–शिशपा ( सीसम–वृक्ष ), अगर, ( न० ) लघु ( छोटा ) ( त्रि० )
अङ्कुर–वृक्षआदिका नया अकुर, रोम, जल, रुधिर, ( पु० ) ॥ १०२ ॥
अङ्गार–सुराह ( पुं० न० ) मगल–ग्रह, ( पु० )
अजिर–वायु, आँगन, अग, देश, मेडक ( पुं० ) ॥ १०३ ॥
अन्तर–विशेष ( भेद ), डुपट्टा, अवकाश, आत्मा, आत्मीय, विना, आच्छादन ( ढकना ), बाहिर, मध्य, अवधि, तादर्थ्य, अवसर, छिद्र, अन्यार्थ ( न० ) ॥१०४॥
अपरा–जरायु ( जेर ) ( स्त्री० )
अपर–अर्वाचीन ( उरे होनेवाला ) ( त्रि० ) ॥ १०५ ॥ अधुना (अव) का अर्थ, हस्तियोंके शरीरका पिछला भाग, ( न० )
अवरा–पार्वती, ( स्त्री० )
अवर–उरे होनेवाला, ( त्रि० ) १०६
अवीरा– पतिपुत्ररहिता स्त्री, (स्त्री०) वीरतासे रहित, ( त्रि० )
अमर–देवता, हडशंकरी–औषधि, थूहर, ( पु० ) ॥ १०७ ॥

अमरा त्विन्द्रनगरीदूर्वास्थूणागुडूचिषु ।
अम्बरं रसकर्प्पासव्योमरागसुगन्धके ॥ १०८ ॥
गृहे कपाटेऽप्यररमशिरोऽर्काग्निराक्षसे ।
असुरो दानवे सूर्ये निशाराश्योर्म्मताऽसुरा ॥ १०९ ॥
अक्षरं न द्वयोर्मोक्षे ब्रह्मणि व्योमवर्णयोः ।
उत्पत्तिस्थाननिवहश्रेष्ठेषु स्यात आकरः ॥ ११० ॥
आकार इङ्गितेऽपि स्यात्स्यात्स्थानाह्वानयोरपि ।
स्यादाधारोऽधिकरणेऽप्यालवालेऽम्बुधारणे ॥ १११ ॥
आसारस्तु प्रसरणे धारावृष्टौ सुहृद्बले ।
आह्वरं तिमिरे युद्धे स्वाबलायां स्वसाध्वसे ॥ ११२ ॥
आहारो भोजने पुंसि स्यादाहरणहारयोः ।
इतरः पामरेऽन्यस्मिन्नित्वरो गत्वरेऽन्यवत् ॥ ११३ ॥

---

अमरा—इन्द्रनगरी, दूब, लोहेकी मूर्त्ति या खंभा, गिलोय, ( स्त्री० )
अम्बर—रस, कपास, आकाश, राग, सुगंधद्रव्य, ( न० ) ॥ १०८ ॥
अरर—घर, किवाड, ( न० )
अशिर—सूर्य, अग्नि, राक्षस, ( पुं० )
असुर—दानव, सूर्य, ( पुं० )
असुरा—रात्रि, राशि, ( स्त्री० )२०९
अक्षर—मोक्ष, ब्रह्म, आकाश, वर्ण, ( न० )
आकर—उत्पत्तिस्थान, समूह, श्रेष्ठ, ( पु० ) ॥ ११० ॥
आकार—चेष्टित, स्थान, बुलाना, ( पुं० )
आधार—अधिकरण, वृक्षकी क्यारी, जलका धारणकरना, (पुं०) १११
आसार—फैलना, वेगसे वर्षा, मित्रबल ( पुं० )
आह्वर—अन्धकार, युद्ध, अपनी स्त्री, अपना भय, ( न० ) ॥ ११२ ॥
आहार—भोजन, हरना, हार, ( पुं० )
इतर—नीच, अन्य ( दूसरा ) (त्रि०)
इत्वर—गमनशीलवाला, ॥ ११३ ॥

इत्वरो दुर्विधे नीचे पथिके क्रूरकर्म्मणि ।
ईश्वरो धनसम्पन्ने शिवे व्याधिनि मन्मथे ॥ ११४ ॥
ईश्वरी स्वामिनीगौर्योरीश्वरा स्कन्दमातरि ।
उत्तरं प्रतिवाक्ये स्याद्विराटतनये पुमान् ॥ ११५ ॥
उत्तरा तु मतोदीच्यामूर्द्ध्वोदीच्योत्तमे त्रिषु ।
उदरो जठरे युद्धेऽप्युद्धारस्तूद्धृतौ रणे ॥ ११६ ॥
उदारो दातृमहतोर्दक्षिणस्थूलयोस्त्रिषु ।
सर्वशस्याढ्यमेदिन्यां मेदिन्यामपि चोर्वरा ॥ ११७ ॥
ऋक्षरं वारिधारायां पुंसि ऋत्विजि ऋक्षरः ।
एकाग्रमन्यलिङ्गं स्यादेकतानेऽप्यनाकुले ॥ ११८ ॥
औशीरं चामरे दण्डेऽप्येकोक्त्या शयनाशने ।
कर्वुरं पामरेऽपि स्यात्पुंश्चलेऽप्यथ कर्वुरा ॥ ११९ ॥

---

दरिद्र, नीच, पथिक (बटाऊ), क्रूर-कर्मवाला, ( त्रि० )

ईश्वर—धनसम्पन्न, महादेव, व्याधि-वाला, कामदेव, ( पु० ) ॥११४॥

ईश्वरी—स्वामिनी, गौरी, ( स्त्री० )

ईश्वरा—पार्वती ( स्त्री० )

उत्तर—प्रतिवाक्य ( जवाब ) (न०) विराटका पुत्र ( पु० ) ॥ ११५ ॥

उत्तरा—उत्तर दिशा, ( स्त्री० )

उत्तर—ऊर्ध्व ( ऊपर ) होनेवाला, उत्तर दिशामें होनेवाला, उत्तम, ( त्रि० )

उदर—जठर ( पेट ), युद्ध, ( पुं० )

उद्धार—उद्धार ( उबारना ), रण, ( पु० ) ॥ ११६ ॥

उदार—दाता, महान् ( बडा ), चतुर, स्थूल ( मोटा ) ( त्रि० )

उर्वरा—सपूर्ण शस्य ( कृषि ) संयुक्त भूमि, भूमि-मात्र, ( स्त्री० ) ११७

ऋक्षर—जलकी धारा, ( न० )

ऋक्षर—ऋत्विज् ( यज्ञकरानेवाला ) ( पुं० )

एकाग्र—अनन्यवृत्ति, अनाकुल (व्याकुलतारहित ( त्रि० ) ॥ ११८ ॥

औशीर—चॅवर, डंडा, सोना और भोजनकरना, ( न० )

कर्वुर—नीच, व्यभिचारी, ( पुं० )

कर्वुरा—॥११९॥

दुरालभायां दुःस्पर्शाशूकशिंबीशटीषु च ।
कुञ्जरो वारणे सूर्ये विरञ्चिमुनिकुक्षिषु ॥ १२० ॥
कङ्कुरं तु मतं तक्रे कङ्कुरं कुत्सिते त्रिषु ।
कटप्रू रक्षसीशेऽक्षदेवने सत्ययौवने ॥ १२१ ॥
कटित्रं कटिवस्त्रे स्यात्काञ्चीचर्म्माङ्गयोरपि ।
कडारः पिङ्गले दासे पिङ्गवर्णे तु वाच्यवत् ॥ १२२ ॥
कणेरुः करिणीवेश्याकर्णिकारे गणेरुवत् ।
कदरः श्वेतखदिरे रुग्भेदे क्रकचे सृणौ ॥ १२३ ॥
वा स्त्री तु कन्दरो दर्यामङ्कुशे पुंसि कन्दरः ।
कन्धरः पुंसि जलदे ग्रीवायां कन्धरा स्त्रियाम् ॥ १२४ ॥
कवरं लवणेऽम्ले च शाककेशभिदोः स्त्रियाम् ।
नपुंसकं तु कर्वूरं शटीकाञ्चनयोर्मतम् ॥ १२५ ॥

---

असवरग, जवाँसा, कौंच, कचूर ( स्त्री० )
कुंजर–हस्ती, सूर्य, ब्रह्मा, एक मुनि, कुक्षि, ( पुं० ) ॥ १२० ॥
कङ्कुर–छाछ, कुत्सित, ( त्रि० )
कटप्रू–राक्षस, महादेव, पासोंसे खेलनेवाला, सत्य बोलना, यौवन (पुं०) ॥ १२१ ॥
कटित्र–कटिवस्त्र, करधनी, चर्मभेद, ( न० )
कडार–पिंगल वर्णवाला, दास ,(पु०) पिंगल वर्ण, ( त्रि० ) ॥ १२२ ॥
कणेरु–गणेरु–हथिनी, वेश्या, कर्णिकार–वृक्ष या पागारा ( स्त्री० )
कदर–सफेद–खैर, रोगभेद, करोंत, अकुश, ( पुं० ) ॥ १२३ ॥
कन्दर–गुफा–( पु० स्त्री० )
कन्दर–अकुश ( पुं० )
कन्धर–मेघ ( पुं० )
कन्धरा–ग्रीवा ( गरदन ) ( स्त्री० ) ॥ १२४ ॥
कवर–नमक, खट्टा, ( न० )
कवरी–शाकभेद, केशविन्यास,(स्त्री०)
कर्वूर–कचूर, सुवर्ण, ( न० ) १२५

कर्परस्तु कपाले स्यादस्त्रभेदकटाहयोः ।
करटः खगभित्त्विश्च करीरः क्रकचार्थकः ॥ १२६ ॥
वंशाङ्कुरे करीरोऽस्त्री पुंसि वृक्षान्तरे घटे ।
करीरी चीरिकाया च दन्तमूले च दन्तिनाम् ॥ १२७ ॥
कर्करी तु गलन्त्यां स्यात्कर्करो दर्पणे दृढे ।
कर्बुरो राक्षसे पापे जले हेम्नि च कर्बुरम् ॥ १२८ ॥
कर्बुरा कृष्णवृन्तायां कर्बुरं शबलेऽन्यवत् ।
कर्वरी तु शिवायां स्याद्व्याघ्रे पुंस्येव कर्बुरः ॥ १२९ ॥
कलत्रं भूभुजां दुर्गस्थानेऽपि श्रोणिभार्ययोः ।
कान्तार उपसर्गादौ कोशकारान्तरे पुमान् ॥ १३० ॥
कान्तारं दुर्गमार्गेऽपि महारण्येऽपि न स्त्रियाम् ।
कावेरी तु नदीभेदे हरिद्रापण्ययोषितोः ॥ १३१ ॥

---

कर्पर—कपाल, अस्त्रभेद, कडाह, (पु०)
करट—पक्षीभेद, ( पु० )
करीर—करोंत, ॥१२६॥ वंशका अकुर, ( पु० न० ) कैर—वृक्ष, घट, (पुं०)
करीरी—चीं, चीं, बोलनेवाला परोंवाला कीट, हस्तियोंके दाँतोंका मूल, ( स्त्री० ) ॥ १२७ ॥
कर्करी—चावलआदिको धोनेका पात्र, ( स्त्री० )
कर्कर—दर्पण ( शीशा ), दृढ, (पुं०)
कर्बुर—राक्षस, पापी, ( पुं० )
कर्बुर—जल, सुवर्ण ( न० ) ॥१२८॥
कर्बुरा—पाडर—वृक्ष या मपवन, (स्त्री०)
कर्बुर—कबरारंगवाला ( त्रि० )
कर्वरी—गीदडी, ( स्त्री० )
कर्बुर—बघेरा ( पुं० ) ॥ १२९ ॥
कलत्र—राजाओंका दुर्ग (किलाआदि) स्थान, कमर, स्त्री, ( न० )
कान्तार—उत्पातआदि, कोशकारभेद, ( पु० ) ॥ १३० ॥
कान्तार—कठिनमार्ग, बडा वन, ( पु० न० )
कावेरी—नदीभेद, हलदी, वेश्या ( स्त्री० ) ॥ १३१ ॥

काश्मीरं कुङ्कुमेऽपि स्याट्टङ्कपुष्करमूलयोः ।
किंशारुर्विशिखे सस्यशूके कङ्काख्यपक्षिणि ॥ १३२ ॥
किर्म्मीरो दैत्यक्रव्यादभेदयोः कर्बुरे त्रिषु ।
वर्णमात्रेऽपि किर्म्मीरः किशोरो वाजिबालके ॥ १३३ ॥
सूर्येऽपि तरुणावस्थे तैलपर्ण्यामपि स्मृतः ।
कुक्कुरः सारमेये स्याद्ग्रन्थिपर्णे तु कुक्कुरम् ॥ १३४ ॥
कुञ्जरो हस्तिकरयोर्धातक्यां पाटलौ स्त्रियाम् ।
कुठरं मैथिले क्लीबं कुठरं कवलेऽपि च ॥ १३५ ॥
कुठारुः पादपेऽपि स्यात्कर्म्मठेऽपि पुमानयम् ।
कुमारो बालके स्कन्दे युवराजेऽश्ववारके ॥ १३६ ॥
कीरे च वरुणद्रौ च कुमारं जात्यकाञ्चने ।
कुमारी कन्यकागौर्योर्नवमल्ल्यां नदीभिदि ॥ १३७ ॥

---

काश्मीर–केसर, राजआमवृक्ष, पोहकरमूल, ( न० )

किंशारु–बाण, सस्यका तीखाभाग, कंक ( सफेद चील ) पक्षी, (पुं०) ॥ १३२ ॥

किर्मीर–दैत्यभेद, राक्षसभेद, (पु०) कवरावर्णवाला ( त्रि० ) वर्णमात्र, ( पुं० )

किशोर–घोडाका बचा ॥ १३३ ॥ तरुण अवस्थावाला, सूर्य, सरलका गौंद या शिलारस, ( पुं० )

कुक्कुर–कुत्ता, ( पुं० )

कुक्कुर–गठिवन या धनहर नामका सुगधद्रव्य ( न० ) ॥ १३४ ॥

कुंजर–हस्ती, कर ( हाथीकी सूँड ) ( पुं० )

कुंजरा–धायके फूल, पाडर–पुष्पवृक्ष, ( स्त्री० )

कुठर–मैथिल, ग्रास ( न० )॥१३५॥

कुठारु–वृक्ष, कर्मकरानेवाला ( पुं० )

कुमार–बालक, स्वामिकार्त्तिक, युवराज, घोडा फेरनेवाला, ॥ १३६ ॥ सूवा ( तोता ) पक्षी, वरणा–वृक्ष, ( पुं० )

कुमार–अच्छा सुवर्ण, ( न० )

कुमारी–कन्या, गौरी, नेवारी–पुष्पवृक्ष, नदीभेद ॥ १३७ ॥

सहायराजिताजम्बूद्वीपेषु च मता स्त्रियाम् ।
कूर्परो जानुमात्रेऽपि कफोणावपि कूर्प्परः ॥ १३८ ॥
कुवेरस्त्र्यंबकसखे नदीवृक्षे कुविग्रहे ॥ १३९ ॥
कुहरः कोटरे छिद्रे नागराजविशेषयोः ।
कूवरः कुब्जके चारौ त्रिषु पुंसि युगन्धरे ॥ १४० ॥
केदार आलवालेऽद्रौ क्षेत्रभूमेदशम्भुषु ।
केनारः कुम्भिनरके शिरःकपालसन्धिषु ॥ १४१ ॥
केसरो वकुले सिंहच्छटायां नागकेसरे ।
पुन्नागेऽस्त्री तु किंजल्के स्यात्तु हिङ्गुनि केसरम् ॥ १४२ ॥
कौटिरुर्नकुले शक्रे शक्रगोपेऽपि दृश्यते ।
कोटरो नागरे कूपे पुष्करिण्याश्च पाटके ॥ १४३ ॥
खण्डाभ्रं योषितां हस्तक्षतभेदेऽभ्रलेशके ।
खदिरी शाकभेदे स्यात्खदिरो वालपुत्रके ॥ १४४ ॥

---

घीकुँवार, हारसिंगार, जम्बूद्वीप (स्त्री०)
कूर्पर–घुटना, कोंहनी ( पु० ) १३८
कुवेर–यक्षराजा, नदीवृक्ष, कुत्सित-शरीरवाला ( पुं० ) ॥ १३९ ॥
कुहर–वृक्षथोथ, छिद्र, नागभेद, राजभेद, ( पु० )
कूवर–कूबड़ा, सुंदर, ( त्रि० ) जूवाको धारनेवाला काष्ठ ( पुं० ) ॥१४०॥
केदार–वृक्षकी क्यारी, पर्वत, क्षेत्रभेद, पृथ्वीभेद, महादेव, ( पुं० )
केनार–कुंभीपाक नामका नरक, शिर, कपाल, संधि ( जोड़ ) (पुं०)॥१४१॥
केसर–मौलश्री, सिंहका स्कंधके केश, नागकेसर, पुन्नाग–वृक्ष, ( पुं० ) पुष्परज, ( पुं० न० ) हींग (न०) ॥ १४२ ॥
कौटिरु–नौला, इंद्र, वर्षामें होनेवाला लाल कीट ( पुं० )
कोटर–नगरमें होनेवाला जन, कूवा, नदीका पाट ॥ १४३ ॥
खंडाभ्र–स्त्रियोंके हाथका व्रणभेद, मेघका लेश ( न० )
खदिरी–शाकभेद ( स्त्री० )
खदिर–खैर–वृक्ष ( पु० ) ॥ १४४ ॥

खपुरः क्रमुके भद्रमुस्तके लसके पुमान् ।
खपुरं तूद्वसपुरे खर्जूरस्तु द्वयोर्द्रुमे ॥ १४५ ॥
द्रुणे धूर्त्तेऽपि खर्जूरः खर्जूरं रजते मतम् ।
पिण्डपूर्वस्तु खर्जूरो मतः क्ष्मापालकाम्बके ॥ १४६ ॥
खर्परस्तस्करे भिक्षापात्रे धूर्त्तकपालयोः ।
खिङ्खिराश्च स्त्रियां भूम्नि खिङ्खिरा च शिवान्तरे ॥ १४७ ॥
भिक्षाभाण्डेऽपि भिक्षाणां खट्वाङ्गे वारिवालके ।
गर्गरो मीनभेदे स्यान्मन्थन्यां गर्गरी स्त्रियाम् ॥ १४८ ॥
गह्वरस्तु गुहायां स्याद्गहने कुञ्जदम्भयोः ।
गान्धारस्तु स्वरे देशे गान्धारं रक्तवालुके ॥ १४९ ॥
वनेऽपि स्यात्तु गान्धारी धृतराष्ट्रस्य योषिति ।
गायत्री खदिरे स्त्री स्याच्छन्दोवेदप्रभेदयोः ॥ १५० ॥

---

खपुर–सुपारी–वृक्ष, भद्रमोथा, (पुं०) उजड़ा हुवा पुर, ( न० )
खर्जूर–खजूरका वृक्ष ( पुं० स्त्री० ) ॥ १४५ ॥
खर्जूर–वीछू, धूर्त, ( पुं० )
खर्जूर–चाँदी ( न० )
पिंडखर्जूर–पिंडखजूर ( पुं० ) १४६
खर्पर–चोर, भिक्षापात्र, धूर्त, कपाल ( पुं० )
खिखिरा ( स्त्री० बहुवचन )
खिखिरा–गीदड़ी, ॥ १४७ ॥ भिक्षा-भाँडा, भिक्षाओंका पात्र, सुगंध-वाला, ( स्त्री० )

गर्गर–मीन ( मच्छी ) भेद, ( पु० )
गर्गरी–मंथनी ( दधिमथनेका पात्र ) ( स्त्री० ) ॥ १४८ ॥
गह्वर–गुफा, वन, कुंज ( लताओंकी कुटी ) दंभ ( पुं० )
गान्धार–गानेका एक स्वर. एक देश, ( पुं० )
गांधार–सिंदूर, वन, (न०) ॥१४९॥
गान्धारी–धृतराष्ट्रकी स्त्री ( स्त्री० )
गायत्री–खैर–वृक्ष, छंदोभेद, वेद-भेद (गायत्रीमंत्र) (स्त्री०) ॥१५०॥

कैवर्त्तीमुस्तके द्वारि पुरद्वारे तु गोपुरम् ।
घर्घरस्तु चलद्वारिशब्दे घूके नदान्तरे ॥ १५१ ॥
चमरं चामरे वल्ल्यां चमरी मञ्जरौ मृगे ।
चातुरश्चातुरकवच्चक्रगण्डौ नियन्तरि ॥ १५२ ॥
दृग्गोचरे चाटुकारे चिकुरश्चञ्चले कचे ।
गृहे वभ्रौ भुजङ्गे च शैले पक्षिद्रुमान्तरे ॥ १५३ ॥
छित्वरं छेदनद्रव्ये छित्वरो धूर्तविद्विषोः ।
छिदिरस्तु वृहद्भानुखङ्गरज्जुपरश्वधे ॥ १५४ ॥
जठरं कठिने वृद्धे त्रिपु स्यादुदरेऽस्त्रियाम् ।
जम्वीरः पुंसि जम्वीरपादपमरुपुष्पयोः ॥ १५५ ॥
जर्जरं वाच्यवज्जीर्णे जर्जरं वासवध्वजे ।
जलेन्द्रो वरुणे सिन्धौ जलेन्द्रो जम्भले मतः ॥ १५६ ॥

---

गोपुर—कैवटीमोथा, दरवाजा, पुरदरवाजा, ( न० )
घर्घर—चलताहुवा जलका शब्द, उल्लू-पक्षी, नदभेद ( घाघर नदी) ( पु० ) ॥ १५१ ॥
चमर—चवँर, वेल ( न० )
चमरी—मंजरी, मृगभेद ( स्त्री० )
चातुर—चातुरक—चक्रगंड (कपोलपर )चक्रवाला, प्रेरणेवाला, ॥१५२॥ नेत्रगोचर, चाटुकार ( खुशामद ) ( पु० )
चिकुर—चंचल, केश, घर, नौला, सर्प, पर्वत, पक्षिभेद, वृक्षभेद, ( पुं० ) ॥ १५३ ॥

छित्वर—छेदनद्रव्य ( न० )
छित्वर—धूर्त, शत्रु, ( पुं० )
छिदिर—अग्नि, खड्ग, रस्सी, फरसा ( पुं० ) ॥ १५४ ॥
जठर—कठिन, वृद्ध ( त्रि० )
जठर—उदर ( पेट ) ( पुं० न० )
जम्वीर—जमीरी नींबूवृक्ष, मरुवा, ॥ १५५ ॥
जर्जर—वृद्ध ( त्रि० )
जर्जर—इंद्रध्वज, ( न० )
जलेन्द्र—वरुण, समुद्र, जमीरी नींबू ( पुं० ) ॥ १५६ ॥

जम्भुरिः पुंसि वज्रे स्याज्जम्भुरिः पावके पुमान् ।
झर्झरः स्यात्कलियुगे वाद्यभेदे नदान्तरे ॥ १५७ ॥
झल्लरी झलरी च द्वे हुडुक्के बालचक्रके ।
टगरष्टङ्कणे टेरे हेलाविभ्रमगोचरे ॥ १५८ ॥
टङ्कारः शिञ्जिनीध्वाने प्रसिद्धौ विस्मयेऽपि च ।
डिङ्गरो वाच्यवत्क्षेपे डिङ्गरो डङ्गरे पुमान् ॥ १५९ ॥
तिमिरं दृग्गदे ध्वान्ते तीवरो लुब्धकेम्बुधौ ।
तुम्बरी तु मता शुन्यामार्द्रधान्याकयोरपि ॥ १६० ॥
तुषारो हिमतद्भेदशीकरे तद्वति त्रिषु ।
कषायश्रृङ्गवृषयोः श्मश्रुपुंसि तु तूवरः ॥ १६१ ॥
स्यात्त्वक्पत्री तु कारव्यां त्वक्पत्रं तु वराङ्गके ।
दण्डारः कुम्भकृच्चके वहने मत्तवारणे ॥ १६२ ॥

---

जम्भुरि–वज्र ( पुं० )
जम्भुरि–अग्नि ( पुं० )
झर्झर–कलियुग, वाद्यभाण्ड, एक नद, ( पुं० ) ॥ १५७ ॥
झल्लरी–झलरी–हुडुक–बाजा, वालोंका चक्र, ( स्त्री० )
टगर–सुहागा, काणा, हेला ( लीला ) विभ्रम ( स्त्रीकरण ) विषय, (पु०) ॥ १५८ ॥
टंकार–धनुषकी ज्याका शब्द,प्रसिद्धि, आश्चर्य, ( पु० )
डिंगर–क्षेप ( फेंकनेकी वस्तु) ( त्रि०)
डिङ्गर–डंगर ( पुं० ) ॥ १५९ ॥
तिमिर–नेत्ररोग, अंधकार, ( न० )
तीवर–व्याधा, समुद्र, ( पुं० )
तुंबरी–कुत्ती, अदरक, धनिया ( स्त्री० ) ॥ १६० ॥
तुषार–हिम ( पाला ), हिमभेद, शीकर ( जलकण ) ( पुं० ) इन वाला ( त्रि० )
तूवर–कसैला रस, बड़े सींगोंवाला-बैल, बडी मूछदाढीवाला पुरुष ( पुं० ) ॥ १६१ ॥
त्वक्पत्री–हींगपत्री, ( स्त्री० )
त्वक्पत्र–स्त्रीकी योनि ( न० )
दंडार–कुम्हारका चाक, सवारी, उन्मत्तहस्ती, ॥ १६२ ॥

गर्दभे दन्तुरस्तु विषमोन्नतदन्तयोः ।
दहरो मूषिकायां स्यादल्पभ्रातरि बालके ॥ १६३ ॥
दर्दरः शैलभेदे स्यात्किञ्चिद्भग्ने तु वाच्यवत् ।
दर्दुरो भेकजलदयोर्वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः ॥ १६४ ॥
दर्दुरा हरकान्तायां ग्रामजाले तु दर्दुरम् ।
दासेरो दासिकापत्ये त्रिषु पुंसि क्रमेलके ॥ १६५ ॥
दीनारो नाणके स्वर्णमानभेदेऽपि दृश्यते ।
दुर्द्धरं त्रिषु दुर्द्धार्ये पुमांस्तु ऋषभौषधौ ॥ १६६ ॥
दैत्यारिस्त्रिदिवे विष्णौ द्वापरः संशये युगे ।
धूसरस्तु खरे स्वल्पपाण्डुरे वदन्ति त्रिषु ॥ १६७ ॥
नरेन्द्रः पृथिवीनाथे विषवैद्येऽपि वार्त्तिके ।
गजादौ सरलादर्यां निष्कलायां च नर्मरा ॥ १६८ ॥

---

गर्दभ, (पुं०)
दन्तुर-ऊँचा नीचा, ऊँचे दाँतोंवाला (पुं०)
दहर-छोटा मूसा, छोटा भ्राता, बालक (पुं०) ॥ १६३ ॥
दर्दर-पर्वतभेद (पुं०) कुछेक फूटा-हुवा पात्र आदि (त्रि०)
दर्दुर-मेंढक, मेघ, बाद्यभेद, पर्वत-भेद, (पुं०) ॥ १६४ ॥
दर्दुरा-पार्वती, (स्त्री०)
दर्दुर-ग्रामजाल, (न०)
दासेर-दासीकी संतान (त्रि०) ऊँट (पुं०) ॥ १६५ ॥
दीनार-नाणा (द्रव्यमात्र), स्वर्णमा-नभेद, (पुं०)
दुर्द्धर-दुःखसे धारनेके योग्य, (त्रि०) ऋषभ-औषधि (पुं०) ॥ १६६ ॥
दैत्यारि-देवता, विष्णु, (पुं०)
द्वापर-सन्देह, द्वापर-युग (पुं०)
धूसर-गर्दभ, थोड़ापीला रंग, (पुं०) थोड़ापीलारंगवाला (त्रि०) १६७
नरेन्द्र-राजा, विषवैद्य, वृत्ति (आ-जीविका) देनेवाला, हस्तीआदि, (पुं०)
नर्मरा-निवार, गुफा, कलारहिता (स्त्री०) ॥ १६८ ॥

नागरो नगरोद्भूते विदग्धेऽप्यभिधेयवत् ।
नागरं मस्तके शुण्ठ्यां रतभेदेऽपि नागरम् ॥ १६९ ॥

निकरो निवहे सारे न्यायदेयधनान्तरे ।
निकारः स्यात्परिभवे धानस्योत्क्षेपणेऽपि च ॥ १७० ॥

सूर्याश्वे फेनकर्पासतुषवह्निषु निर्झरः ।
निर्जरस्त्रिदशे त्यक्तजराके त्वभिधेयवत् ॥ १७१ ॥

निर्जरा तु गुडूच्यां स्यात्तालपत्र्यां च दृश्यते ।
निर्वरं निस्त्रपे सारे निर्भये कठिनेऽपि च ॥ १७२ ॥

निष्ठुरः कठिनेऽपि स्यात्त्रपाशून्येऽपि निष्ठुरः ।
स्यान्नीवरो वाणिजके वास्तव्ये त्रिषु नीवरः ॥ १७३ ॥

पङ्कारः सेतुसोपानशैवले जलकुब्जके ।
पञ्जरस्तु शरीरे स्यात्पक्षिपाशे तु पञ्जरम् ॥ १७४ ॥

---

नागर-नगरमें होनेवाला, चतुर, (त्रि० )

नागर-नागरमोथा, सोंठ, मैथुनभेद (न० ) ॥ १६९ ॥

निकर-समूह, सार, न्यायसे देनेयोग्य धन, (पुं० )

निकार-तिरस्कार, धान्यका पिछोड़ना, (पु० ) ॥ १७० ॥

निर्झर-सूर्यका घोड़ा, झाग, कपास, तुषोंकी अग्नि, (पुं० )

निर्जर-देवता, (पुं० ) वृद्धावस्थारहित (त्रि० ) ॥ १७१ ॥

निर्जरा-गिलोय, तालपर्णी, (स्त्री० )

निर्वर-निर्लज्ज, सार, निर्भय, कठिन (त्रि० ) ॥ १७२ ॥

निष्ठुर-कठिन, लज्जारहित, (त्रि० )

नीवर-वणिजकरनेवाला (पुं० ) वसनेवाला, (त्रि० ) ॥ १७३ ॥

पंकार-पुल, पैड़ी, सिवाल, काई(पुं०)

पंजर-शरीर (पुं० )

पंजर-पक्षीका पिंजरा (न० ) १७४

पादालिन्दे पदारः स्यात्पदारः पादधूलिषु ।
पवित्रमुपवीतांबुताम्रे दर्भेऽपि धर्मणि ॥ १७५ ॥
मेध्ये त्रिष्वथ पाटीरः केदारे तितउन्यपि ।
मूलके वार्तिके वङ्गे वेणुसारेऽपि वारिदे ॥ १७६ ॥
पाण्डुरं स्यान्मरुबके वर्णे ना तद्वति त्रिषु ।
पामरो वाच्यवन्नीचे मूर्खे स्वस्थेऽपि पामरः ॥ १७७ ॥
राजयक्ष्मणि कीनाशे भक्तशिक्थेपि पार्परः ।
पार्प्परो भस्ममात्रेऽपि जठरे नीपकेसरे ॥ १७८ ॥
पिञ्जरं कनके पीते त्रिषु पुंसि हयान्तरे ।
पिठरस्तु मतः स्थाल्यां पिठरं मन्थमुस्तयोः ॥ १७९ ॥
पिण्डारो महिषीपाले क्षेपक्षपणशाखिषु ।
पीवरः कच्छपे पुंसि पीनेषु त्रिषु पीवरः ॥ १८० ॥

---

पदार—पादालिन्द, पावोकी धूलि (पुं०)

पवित्र—यज्ञोपवीत, जल, ताँवा, कुशा, धर्म (न०) पवित्र (त्रि०) ॥१७५॥

पाटीर—खेत, चलनी, मूली, वार्त्तिक (वृत्तिकरनेवाला), राँगा, सरलका गोंद, मेघ, (पु०) ॥ १७६ ॥

पांडुर—मरुवा (न०) श्वेतरग (पु०) श्वेतरगवाला (त्रि०)

पामर—नीच, मूर्ख, स्वस्थ (प्रकृतिमे स्थित) (त्रि०) ॥ १७७ ॥

पार्पर—राजयक्ष्मा रोग, धर्मराज या मृत्यु, जठार (जटावाला), कदवकेसर, (पु० ॥ १७८ ॥

पिंजर—सुवर्ण (न०) पीलारगवाला (त्रि०) अश्वभेद (पुं०)

पिठर—चावल आदि पकानेका वर्तन, (पुं०) दधिआदिमथनेका दंड, नागरमोथा, (न०) ॥ १७९ ॥

पिंडार—भैंसोका पालनेवाला, क्षेप (फेंकनेका द्रव्य), भिक्षुक, वृक्ष, (पुं०)

पीवर—कछुवा, (पुं०) मोटा (स्थूल) (त्रि०) ॥ १८० ॥

पुष्करं व्योम्नि पानीये हस्तिहस्ताग्रपद्मयोः ।
रोगोरगौषधिद्वीपतीर्थभेदेऽपि सारसे ॥ १८१ ॥
काण्डे खड्गफले वाद्यभाण्डवक्त्रे च पुष्करम् ।
प्रकरो निकुरुम्बे स्यात्प्रकीर्णकुसुमादिषु ॥ १८२ ॥
प्रकरं जोङ्गके ज्ञेयं प्रकरी चत्वरावनौ ।
प्रकारः सदृशे भेदे प्रखरोऽतिखरे त्रिषु ॥ १८३ ॥
प्रखरः स्यात्तुरङ्गादिसन्नाहेऽश्वतरे शुनि ।
प्रदरः स्त्रीरुजो भेदे प्रदरः शरभङ्गयोः ॥ १८४ ॥
प्रान्तरं दूरशून्याऽध्ववनयोरपि कोटरे ।
प्रवीरः सुभटेऽपि स्यात्प्रवीरः क्वचिदुत्तरे ॥ १८५ ॥
प्रवरं सन्ततौ गोत्रे प्रवरस्तु वनेऽन्यवत् ।
प्रकारः सङ्गरे वेशे प्रसरः प्रणयेऽपि च ॥ १८६ ॥

---

पुष्कर–आकाश, जल, हस्तीकी सूँडका अग्रभाग, कमल, रोगभेद, सर्पभेद, औषधिभेद ( कूट ), पुष्करनामक द्वीप, पुष्करतीर्थ, सारस-पक्षी, ( त्रि० ) ॥ १८१ ॥ वाण, खड्गकी मूठ, वाद्यभाण्डका मुख ( पुं० न० )

प्रकर–समूह, बिखरेहुए पुष्पआदि, ( पुं० ) ॥ १८२ ॥

प्रकर–अगर ( न० ) प्रकरी–आँगनकी भूमि ( स्त्री० )

प्रकार–सदृश ( तुल्य ), भेद (पुं०)

प्रखर–अतितीक्ष्ण (त्रि०) ॥ १८३ ॥

अश्वआदिका कवच, खिच्चर, कुत्ता ( पुं० )

प्रदर–स्त्रीका रोगभेद ( पैरा ), वाण, भंग, ( पुं० ) ॥ १८४ ॥

प्रान्तर–लंबा और जलआदिसे शून्यमार्ग, वनवृक्षके भीतरकी थोथ, ( न० )

प्रवीर–अच्छा योद्धा, उत्तर ( पुं० ) ॥ १८५ ॥

प्रवर–सन्तति, गोत्र, ( न० )

प्रवर–श्रेष्ठ ( त्रि० )

प्रकार–संग्राम, वेश, ( पुं० )

प्रसर–नम्रता, ( पुं० ) ॥ १८६ ॥

प्रस्तरः पुंसि पाषाणे मणौ च प्रस्तरः पुमान् ।
वण्टरस्तु करीरस्य कोषे स्याच्चालपल्लवे ॥ १८७ ॥
वक्रोट स्त्रगिकारजो लाङ्गूले कुक्कुरस्य च ।
वदरी कोलिकार्पास्योर्वदरं तु फले तयोः॥ १८८ ॥
एलापर्ण्यां तु वदरा विष्णुकान्तौषधावपि ।
वन्धूरवन्धुरौ रम्ये नम्रे त्रिष्वथ वन्धुरः ॥ १८९ ॥
वन्धूके विहगे हंसे वन्धुरं तून्नतानते ।
वन्धुरा पण्ययोषायां वरत्रा वध्रिकान्ययोः ॥ १९० ॥
वर्बरः कचविन्यासे पारसीकेऽपि पामरे ।
वर्बरा फञ्जिकायां च वर्बरा शाकपुष्पयोः ॥ १९१ ॥
वागरो निर्नरे शाणे वारके वारवेष्टयोः ।
वागरो विगतातङ्क मुमुक्षौ च विशारदे ॥ १९२ ॥

---

प्रस्तर—पत्थर, मणि, ( पुं० )

वण्टर—करीरका कोश, ताडके पत्र ( पत्ते ) (पुं०) ॥ १८७ ॥ कुत्तेकी पूंछ ( पु० )

वदरी—बेरी-वृक्ष, कपास ( स्त्री० ) वदर—बेर या कपासका फल ( न० ) ॥ १८८ ॥

वदरा—रायसन—औषधि, विष्णुक्रान्ता औषधि ( स्त्री० )

वन्धू(न्धु)र—रमणीक, नम्र, ( त्रि० )

वन्धुर— ॥ १८९ ॥
विजयसार, या दुपहरिया-वृक्ष, पक्षी, हंस, ( पुं० )

वन्धुर—ऊंचानीचा ( न० )

वन्धुरा—वेश्या, ( स्त्री० )

वरत्रा—चर्मरज्जु, अन्यरज्जु, ( स्त्री० ) ॥ १९० ॥

वर्बर—केशोंकी रचना, पारसीक—देश, नीच, ( पुं० )

वर्बरा—भारंगी, शाकभेद, पुष्पभेद, ( स्त्री० ) ॥ १९१ ॥

वागर—मनुष्यरहित स्थल, कसौटी, आसवार,...... .....
आतंक ( रोगादि ) रहित, मुमुक्षु, विशारद ( बुद्धिमान् ) ( पुं० ) ॥ १९२ ॥

वासरो दिवसे पुंसि नागभेदेऽपि वासरः ।
वासुरा वासितायां स्यान्निशाभूम्योश्च वासुरा ॥ १९३ ॥

भार्यारुः क्रीडया यस्य पुत्रोऽभूत्परयोषिति ।
तस्मिन्मृगाद्रिभेदे च भास्करो वह्निसूर्ययोः ॥ १९४ ॥

भृङ्गारी झिल्लिकायां स्याद्भृङ्गारः कनकालुके ।
भ्रमरः कामुके भृङ्गे भ्रामरं माक्षिकाश्मयोः ॥ १९५ ॥

मकरस्तु मराले स्यान्निधिराशिप्रभेदयोः ।
मकुरो मुकुरश्चैव दर्पणे बकुलद्रुमे ॥ १९६ ॥

मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे मात्सर्ये क्रुधि मत्सरः ।
त्रिषु तद्वत्कृपणयोर्मक्षिकायां तु मत्सरा ॥ १९७ ॥

मन्दारः सिन्धुरे धूर्ते मधुद्रौ भृङ्गकामिनोः ।
मधुरस्तु रसे पुंसि मधुरं तु विषान्तरे ॥ १९८ ॥

---

वासर–दिन (पु० ) नागभेद, (पुं० )

वासुरा–हथिनी, रात्रि, पृथ्वी, (स्त्री० ) ॥ १९३ ॥

भार्यारु–क्रीडाकरते जिसके परस्त्रीमें पुत्र हुवा है वह, मृगभेद, पर्वतभेद, (पुं० )

भास्कर–अग्नि, सूर्य, (पुं०) ॥१९४॥

भृंगारी–झिल्लिका (झीं,झीं,बोलनेवाला कीटविशेष ) ( स्त्री० )

भृंगार–झारी ( पुं० )

भ्रमर–कामी–पुरुष, भौरा, ( पुं० )

भ्रामर–शहद, पत्थर ( न० ) ॥ १९५ ॥

मकर–हंस-पक्षी, निधिभेद,राशिभेद, (पु० )

मकुर–मुकुर–दर्पण, बौलश्रीका वृक्ष, (पु० ) ॥ १९६ ॥

मत्सर–दूसरेके शुभका द्वेष, मत्सरता, क्रोध ( पु० )

मत्सरता वाला, कृपण ( त्रि० )

मत्सरा–मक्खी ( स्त्री० ) ॥ १९७ ॥

मन्दार–हस्ती, धूर्त, महुवा–वृक्ष, भौंरा, कामीपुरुष, (पुं०) ॥ १९८ ॥

मधुरो रसवत्स्वादुप्रियेषु त्रिपु वाच्यवत् ।
मधुरा मधुकुक्कुट्यां शतपुष्पाऽपुरीभिदोः ॥ १९९ ॥
मिश्रेयाशुक्रयोर्मेदामधुलीयष्टिकासु च ।
मन्थरः सूचके कोशे मन्थानेऽप्यथ मन्थरम् ॥ २०० ॥
कुसुंभ्यां मन्थरस्तु स्यान्मन्दे वक्रे पृथौ त्रिषु ।
मन्दारः स्वर्गमन्दारमन्थशैलेषु पुंस्ययम् ॥ २०१ ॥
मन्दरस्तु मतो मन्दे बहुलेऽप्यभिधेयवत् ।
मन्दिरं नगरेऽगारे मन्दिरो मकरालये ॥ २०२ ॥
मंदारो देववृक्षे स्यात्पारिभद्रार्कपर्णयोः ।
मन्दुरा वाजिशालायां शयनीयार्थवस्तुनि ॥ २०३ ॥
मयूरः शिख्यपामार्गशिखिचूडासु दृश्यते ।
मर्मरो वस्त्रभेदेऽपि पत्रभेदेऽपि मर्मरः ॥ २०४ ॥

---

मधुर—मधुर रसवाला, ( पुं० ) विषभेद ( न० )स्वादिष्ठ, प्रिय, ( त्रि० )
मधुरा—एकप्रकारका नीबू, सौंफ, पुरीभेद ( मथुरा ) ॥ १९९ ॥ सोआ, चीता-वृक्ष, महामेदा, राई, जेठीमध ( स्त्री० )
मन्थर—सूचना करनेवाला, कोश ( खजाना ) ( पुं० )
मन्थर—दधिमथनेका डंडा, ( न० ) ॥ २०० ॥
मन्थर—कुसुभी, (......) मन्द, टेढा, स्थूल ( त्रि० )
मन्दार—स्वर्ग, मन्दार-वृक्ष ( देवतरु ), मन्थपर्वत, ( पुं० ) ॥ २०१ ॥
मन्दर—मन्द, बहुत ( त्रि० )
मन्दिर—नगर, घर, ( न० ) मन्दिर—मगरका स्थान, ( पुं० ) ॥२०२॥
मन्दार—देव-वृक्ष, निंब-वृक्ष, आकका पत्ता, ( पुं० )
मन्दुरा—अश्वशाला, शय्याकी उपयोगी वस्तु ( स्त्री० ) ॥ २०३ ॥
मयूर—मोर, चिरचिटा, मोरशिखा, ( पुं० )
मर्मर—वस्त्रभेद, पत्रभेद, अर्थात् वस्त्र व पत्रका शब्द, ( पुं० ) ॥ २०४ ॥

मर्मरी दारुवर्णिन्यां पीतदारौ च मर्म्मरी ।
मसूरो मसुरश्चैव व्रीहिभित्पण्ययोषितोः ॥ २०५ ॥
मसूरा मसुरा चात्र मसूरी पापरुग्भिदि ।
मिहिरस्तपने बुद्धे महेन्द्रे वासवे गिरौ ॥ २०६ ॥
स्यात्पारिपार्श्विके भानोर्द्विजभेदेऽपि माठरः ।
मायूरं चापि मार्जारं क्रीडाबन्धे च तद्गणे ॥ २०७ ॥
मार्जार ओतौ खट्टाशे मुदिरः कामुकेऽम्बुदे ।
लोष्टादिभेदनोपाये मल्लीभेदेऽपि मुद्गरम् ॥ ॥ २०८ ॥
मुर्मुरः सूर्यतुरगे तुषवह्नौ च मन्मथे ।
मुहिरः पुंसि मदने मूर्खे तु मुहिरस्त्रिषु ॥ २०९ ॥
रुधिरं कुङ्कुमे रक्ते रुधिरो भूमिनन्दने ।
वठरः कमठेऽपि स्याद्वठरः शठवक्रयोः ॥ २१० ॥

---

मर्मरी–दारुवर्णिनी (... ) देव दारु ( स्त्री० )
मसूर–मसुर–व्रीहिभेद, ( पुं० )
मसूरा–मसुरा–वेश्या ( स्त्री० ) ॥ २०५ ॥
मसूरी–पाप और रोगभेद, ( स्त्री० )
मिहिर–सूर्य, बुद्ध भगवान् ( पु० )
महेन्द्र–इंद्र, पर्वत, ( पुं० ) ॥२०६॥
माठर–सूर्यके समीप होनेवाला एक ग्रह, द्विज ( ब्राह्मण ) भेद ( पुं० )
मायूर–मार्जार–क्रीडाबन्ध, ( ... ) और क्रमसे मयूर व मार्जारों ( बिलाओं ) का समूह ( न० ) ॥ २०७ ॥
मार्जार–बिलाव ( मार्जार ), खट्टाश ( वनमार्जार ) ( पुं० )
मुदिर–कामीपुरुष, मेघ, ( पुं० )
मुद्गर–ढला आदिके फोडनेका अस्त्र, मल्लिका ( मोतिया ) भेद ( न० ) २०८
मुर्मुर–सूर्यका अश्व, तुषकी अग्नि, कामदेव ( पुं० )
मुहिर–कामदेव, ( पुं० ) मूर्ख ( त्रि० ) ॥ २०९ ॥
रुधिर–केसर, लोही, ( न० ) रुधिर–मंगल–ग्रह ( पुं० )
वठर–कछुवा, शठ, वक्र ( पु० ) ॥ २१० ॥

वर्करस्तरुणे वाच्यलिङ्गो मेषे तु वर्करः ।
वल्लूरं त्रिपु संशुष्कमांसे मांसे च दंष्ट्रिण. ॥ २११ ॥

वल्लूरस्तूषरे क्लीवं वनक्षेत्रेऽपि वाहने ।
वल्लरी वल्लरं चैव मञ्जर्यामथ वल्लरः ॥ २१२ ॥

शाद्वले निर्झरस्थाने विल्वक्षेत्रनिकुञ्जयोः ।
वशिरः सिन्धुलवणकिणिहीभकणार्थकः ॥ २१३ ॥

वार्द्दरं दक्षिणावर्त्तशङ्खे वारि च वार्दरम् ।
वार्दरं रक्तगुञ्जायां वीजेपि कृमिजेऽपि च ॥ २१४ ॥

धूपेऽपि पक्षिवासाय गृहकुम्भेऽपि वासतुः ।
विकारो विकृतौ रोगे विदारो दारणे रणे ॥ २१५ ॥

विदुरः पण्डिते खिन्ने कौरवाणां च मन्त्रिणि ।
विधुरं तु प्रविश्लेषे प्रत्यवायेऽपि तन्मतम् ॥ २१६ ॥

---

व(ब)र्कर—जवान (त्रि०) मेंढा (पुं०)
वल्लूर—सूखा मास, सूकरका मास, ( न० ) ॥ २११ ॥
वल्लूर—ऊपर-भूमि, वनक्षेत्र, वाहन, ( न० )
वल्लरी—वल्लर—मंजरी, (स्त्री० न० ) ॥ २१२ ॥
वल्लर—हरिततृणवाली भूमि, झिरना, विल्वक्षेत्र ( एक क्षेत्र ), निकुञ्ज ( लताकुटी )
वशिर—समुद्र नोंन, चिरचिरा ( अपामार्ग ), गजपीपल, ( पु० ) ॥ २१३ ॥
वार्दर—दक्षिणावर्त्त शंख, जल, लाल घुंघुचीके बीज, वायविडंग ॥ २१४ ॥
वासतु—धूप, कबूतरआदिपक्षियोंके निवासके लिये घरमें गाडाहुवा कुंभ ( पु० )
विकार—विकृति, रोग ( बीमारी ) ( पु० )
विदार—फाडना, रण, ( पुं० ) ॥ २१५ ॥
विदुर—पंडित, विदग्ध, कौरवोंका मन्त्री, ( पुं० )
विधुर—अलग वियोग, दोप, (न०) ॥ २१६ ॥

विधुरा तु रसालायां विधुरं विकलेऽन्यवत् ।
विवरं वर्त्तते गर्ते दोषेऽपि छिद्ररन्ध्रवत् ॥ २१७ ॥

विसरः प्रसरे पुंसि विसरो निकुरम्बके ।
विस्तरः पुंसि विस्तारे प्रपञ्चे प्रणयेऽपि च ॥ २१८ ॥

विस्तारः पुंसि विटपे विस्तारो विस्तृतावपि ।
विष्टरः कुशमुष्टौ स्यादासनेऽपि महीरुहे ॥ २१९ ॥

विहारो भ्रमणे स्कन्धे सुगतालयलीलयोः ।
छन्दोभेदे नदीभेदे मेखलायां च शक्करी ॥ २२० ॥

शङ्करः पार्वतीनाथे त्रिषु कल्याणकारिणि ।
शणीरं शोणमध्यस्थपुलिने दर्दरीतटे ॥ २२१ ॥

शर्करा शर्करायुक्तदेशे स्यात्कर्परांशके ।
शकले खण्डविकृतावुपलायां च तद्भिदि ॥ २२२ ॥

---

विधुरा–दाख, या सिखरन, (स्त्री०)
विधुर–विकल, ( त्रि० )
विवर–खड्डा, दोप, ( न० ) ( ऐसे ही छिद्र–रंध्र–जानना ॥ २१७॥
विसर–फैलना, समूह ( पुं० )
विस्तर–विस्तार, प्रपंच, नम्रता ( पुं० ) ॥ २१८ ॥
विस्तार–वृक्षकी टहनी आदि, विस्तार ( पुं० )
विष्टर–कुशमुष्टि, आसन, वृक्ष (पु०) ॥ २१९ ॥
विहार–भ्रमणा, स्कन्ध, बुद्धभगवानका मंदिर, लीला ( पुं० )
शक्करी–छदोभेद, नदीभेद, मेखला ( तागडी ) ( स्त्री० ) ॥ २२० ॥
शंकर–महादेव ( पुं० ) कल्याण करनेवाला ( त्रि० )
शणीर–शोणनदके मध्यका टीला, ( नदीभेद ) का किनारा ( न० ) ॥ २२१ ॥
शर्करा–शर्करा ( डली ) युक्त स्थल, खप्परका टुकडा, टुकडामात्र, खाँडका विकार (शक्कर), पत्थरभेद, ( स्त्री० ) ॥ २२२ ॥

शर्वरी तु त्रियामायां हरिद्रायोषितोरपि ।
श(व)वरो म्लेच्छभेदेऽपि शवरः शङ्करे जले ॥ २२३ ॥
शक्करस्तु बलीवर्दे छन्दोभेदे तु शाक्करम् ।
शाङ्करिर्विघ्नपे स्कन्दे शारीरो देहजे वृषे ॥ २२४ ॥
शार्करो दुग्धफेने स्याद्वाच्यवच्छर्करावति ।
शार्वरं त्वन्धतमसे घातुके त्रिषु शार्वरम् ॥ २२५ ॥
शालारं स्याद्धस्तिनखे सोपाने पक्षिपञ्जरे ।
शावरो लोध्रवृक्षे स्यात्तथा पापाऽपराधयोः ॥ २२६ ॥
शावरी शूकशिम्ब्यां च तद्भवे त्रिषु शावरम् ।
शिखरं शैलवृक्षाग्रे कक्षापुलककोटिषु ॥ २२७ ॥
पक्वदाडिमबीजाभमाणिक्यशकलेऽपि च ।
शिलीन्ध्रस्तु पुमान्मीनभेदे वृक्षप्रभेदयोः ॥ २२८ ॥

---

शर्वरी—रात्रि, हलदी, स्त्री ( स्त्री० )
शव(ब)र—म्लेच्छभेद, महादेव, जल ( पुं० ) ॥ २२३ ॥
शक्कर—बैल ( पुं० )
शाक्कर—छन्दोभेद ( न० )
शांकरि—गणेश, स्वामिकार्त्तिक, ( पु० )
शारीर—शरीरसे उत्पन्न होनेवाला ( त्रि० ) बैल ( पुं० ) ॥ २२४ ॥
शार्कर—दूधके झाग ( पुं० ) शर्करा ( डलियों ) वाला देश ( त्रि० )
शार्वर—अंधकार, ( न० )
शार्वर—जीवोंको मारनेवाला ( त्रि० ) ॥ २२५ ॥
शालार—पुरदरवाजाका खडंजा, पैडी, पक्षीका पिंजरा ( न० )
शावर—लोध-वृक्ष, पाप, अपराध, ( पुं० ) ॥ २२६ ॥
शावरी—कौंछ, ( स्त्री० ) शावर—कौंछकी फली आदि ( त्रि० )
शिखर—पर्वत या वृक्षकी चोटी, घुघुची, मुरदासंग या हरताल कोटि (असवरग) (न०) ॥२२७॥ पकेहुए अनारके बीजोंके तुल्य माणिक्यका टुकडा ( न० )
शिलीन्ध्र—मीन ( मच्छी ) भेद, वृक्षभेद ( पुं० ) ॥ २२८ ॥

शिलीन्ध्रं कवके रम्भापुष्पत्रिपुटयोरपि ।
शिलीन्ध्री विहगीभेदे तथा गण्डूपदीमृदि ॥ २२९ ॥
शिशिरस्तु ऋतौ पुंसि तुषारे शीतलेऽन्यवत् ।
शीकरः शरले वाते निःसृताम्बुकणेषु च ॥ २३० ॥
शुषिरं विवरे वाद्ये नाऽग्नौ रन्ध्रवति त्रिषु ।
शृङ्गारः सुरते नाट्यरसे द्विरदभूषणे २३१ ॥
शृङ्गारं चूर्णसिन्दूरे लवङ्गकुसुमे मतम् ।
सङ्कारोऽग्निचटत्कारे सम्मार्जन्यपमार्जिते ॥ २३२ ॥
नरदूषितकन्यायां सङ्करी क्वचिदिष्यते ।
सङ्गरस्तु प्रतिज्ञाजिक्रियाकारे विषापदोः ॥ २३३ ॥
सङ्गरं स्यात्फले शम्याः सम्भारः सम्भृतौ गणे ।
संवरस्तु मृगक्ष्माभृद्दैत्यमत्स्यजिनान्तरे ॥ २३४ ॥

---

शिलीन्ध्र–कवक (मत्स्यभेद) केलाका पुष्प, मटर, ( न० )
शिलीन्ध्र–पक्षिभेद–मादीन, गिंडो एकी मिट्टी ( स्त्री० ) ॥ २२९ ॥
शिशिर–शिशिर–ऋतु ( पुं० ) पाला, ठंढा ( त्रि० )
शीकर–सरल–वृक्ष, वायु, वायुके प्रेरेहुए जलकण ( पुं० ) ॥२३०॥
शुषिर–भूमिछिद्र, बाजा, अग्नि ( पुं० ) छिद्रवाला ( त्रि० )
शृंगार–मैथुन, शृंगार रस, हस्तीका आभूषण ( पुं० ) ॥ २३१ ॥
शृंगार–चूर्ण (पिसा हुवा) सिंदूर, लौंगका पुष्प ( न० )

संकार–अग्निका चटत्कार ( शब्द ), झाडूसे इकट्ठाकिया कूडा, ( पुं० ) ॥ २३२ ॥
संकरी–मनुष्यसे दूपितहुई कन्या ( स्त्री० )
संगर–प्रतिज्ञा, युद्ध, क्रियाकरनेवाला विष, विपत् ( पुं० ) ॥ २३३ ॥
संगर–जांटकी फली ( सॅांगर ) ( न० )
संभार–सामग्री, समूह ( पुं० )
संवर–मृग, पर्वत, एक दैत्य, मच्छी, जिन भगवान् ( पुं० ) ॥ २३४ ॥

संवरं सलिले बौद्धव्रतभेदे वनेऽपि च ।
संवरी त्वौषधीभेदे सामुद्रं लवणान्तरे ॥ २३५ ॥
सामुद्रं स्यात्समुद्रीयलवणादिषु वाच्यवत् ।
सावित्री देवताभेदे सावित्रः पार्वतीपतौ ॥ २३६ ॥
सिन्दूरस्तरुभेदे ना सिन्दूरं रक्तधातुके ।
सिन्दूरमपि सिन्दूरपुष्पकेऽपि महीभृताम् ॥ २३७ ॥
सिन्दूरी धातकीरक्तचेलिकारोचनीष्वपि ।
सुन्दरी नायिकाभेदे तरुभेदेऽपि सुन्दरी ॥ २३८ ॥
सुनारस्तु शुनीस्तन्ये सर्पाण्डकलविङ्कयोः ।
सैरिन्ध्री परवेश्मस्थशिल्पकृत्स्ववशस्त्रियाम् ॥ २३९ ॥
वर्णसङ्करजातायां ववाग्यां च महल्लके ।
सौवीरं काञ्जिके स्रोतोऽञ्जने बदरदेशयोः ॥ २४० ॥
संस्कारः पुंस्यनुभवे मङ्गलस्नानयत्नयोः ।
संस्तरः प्रस्तरे पुंसि पुंसि यज्ञेऽपि संस्तरः ॥ २४१ ॥

---

संवर–जल, बौद्धव्रतभेद, वन (न०)
संवरी–औषधिभेद (स्त्री०)
समुद्र–साँभर समुद्रीय लवण (न०) ॥ २३५ ॥
सामुद्र–समुद्रमें होनेवाला लवण (नमक) आदि (त्रि०)
सावित्री–देवताभेद, (स्त्री०)
सावित्र–पार्वतीपति (महादेव) (पुं०) ॥ २३६ ॥
सिन्दूर–वृक्षभेद (पुं०)
सिंदूर–रक्तधातु (सिंदूर), गजा-कंटा सिंदूरपुष्प वृक्ष (न०) २३७
सिंदूरी–धायके फूल, रक्तचोलीवाली स्त्री, गोरोचन (स्त्री०)
सुंदरी–नायिकाभेद, वृक्षभेद, (स्त्री०) ॥ २३८ ॥
सुनार–कुत्तीका दूध, सर्पोंका अंडा, चिड़ा–पक्षी (पुं०)
सैरिन्ध्री–दूसरेके घरमें शिल्पकारी स्त्री अपने वश रहकर शिल्प-करनेवाली (स्त्री०) ॥ २३९ ॥
सौवीर–काँजी, सोता, बेर, सौवीर-देश (न० पुं०) ॥ २४० ॥
संस्कार–अनुभव, मङ्गल, स्नान (पुं०)
संस्तर–पत्थर, यज्ञ (पुं०) ॥२४१॥

हिण्डीरस्तु पुमान्फेने तथा वातिङ्गने नरि ।

रचतुर्थम् ।

अकूपारः स्रवन्तीनां नाथे कर्म्मठनायके ॥ २४२ ॥
अग्निहोत्रो मतो वह्नौ वह्निहोत्रे हविष्यपि ।
अनुत्तरं त्रिषु श्रेष्ठे प्रतिवाक्यविवर्जिते ॥ २४३ ॥
उपर्युदीच्यश्रेष्ठानां विपर्यासे त्वनुत्तरः ।
वधे युद्धेऽप्यभिमरः स्वबलादपि साध्वसे ॥ २४४ ॥
अभिहारोऽभियोगे स्याच्चौर्ये सन्नहनेऽपि च ।
अरुष्करस्तु भल्लाते व्रणकारिणि वाच्यवत् ॥ २४५ ॥
अर्द्धचन्द्रस्तु खण्डेन्दौ गलहस्ते शरान्तरे ।
चन्द्रकेऽप्यर्द्धचन्द्रः स्यादर्द्धचन्द्रा त्रिवृद्भिदि ॥ २४६ ॥
अलङ्कारस्तु भूषायामुपमादिगुणेषु च ।
भवेदवसरः पुंसि मतः प्रस्ताववर्षयोः ॥ २४७ ॥

---

हिंडीर–समुद्रझाग, बैंगन, (पुं० )
रचतुर्थ ।
अकूपार–समुद्र, कर्मठोंका अधिपति ( पु० ) ॥ २४२ ॥
अग्निहोत्र–अग्नि, अग्निहोत्र, हवि ( होमकरनेका द्रव्य ) (पुं० )
अनुत्तर–श्रेष्ठ ( त्रि० ) उत्तर नहीं देना ( न० ) ॥ २४३ ॥
अनुत्तर–नहीं ऊपर ( आगे ), नहीं उदीची (उत्तर), नहीं अश्रेष्ठ (त्रि०)
अभिमर–वध, युद्ध, अपनीसेनासे भय ( पुं० ) ॥ २४४ ॥
अभिहार–लडाईमें पुकारना, चोरी, कवच धारण करना ( पुं० )
अरुष्कर–भिलावा ( पुं० ) व्रण ( घाव ) करनेवाला ( त्रि० ) ॥ २४५ ॥
अर्द्धचंद्र–आधाबिंबवाला चंद्रमा, गलहस्त (तर्जनी अंगूठा फैलाया हुवा हाथसे ग्रीवाके धक्का देकर निकालना), बाणभेद, मोरकी पंख, (पुं०)
अर्धचंद्रा–निसोतभेद ( स्त्री० ) ॥ २४६ ॥
अलंकार–आभूषण, उपमाआदि गुण ( पुं० )
अवसर–प्रस्ताव, वर्षा, ( पुं० )२४७

[illegible] ।
अवहारः [illegible] ॥ २४८ ॥

[illegible] ।
अवस्करः [illegible] ॥ २४९ ॥

[illegible] ।
अभिषवः [illegible] ॥ २५० ॥

आडम्बरः [illegible] ।
[illegible] ॥ २५१ ॥

[illegible] ।
इन्दीवरं [illegible] ॥ २५२ ॥

उडुम्बरो [illegible] ।
उडुम्बरं [illegible] ॥ २५३ ॥

---

अवतार– [illegible]

अवहार– [illegible] ॥ २४८ ॥ [illegible]

अवस्कर– [illegible] ॥ २४९ ॥

अभिषव– [illegible] ॥ २५० ॥

आडम्बर– [illegible] ॥ २५१ ॥

[illegible] – [illegible]

इन्दीवर– [illegible]

इन्दीवर– [illegible] ॥ २५२ ॥

उडुम्बर– [illegible]

उडुम्बर– [illegible] २५३

उद्दन्तुरः स्यादुत्तुङ्गे करालोत्कटदन्तयोः ।
उपकारो मतः कीर्णकुसुमायुधकृत्ययोः ॥ २५४ ॥

उपह्वरं समीपे स्याद्रहोमात्रेऽप्युपह्वरम् ।
औदुम्बरः श्राद्धदेवे रोगभेदे नपुंसकम् ॥ २५५ ॥

कटम्भरा प्रसारिण्यां रोहिणीकरियोषितोः ।
कलम्बिकायां गोलायां वर्षाभूमूर्वयोरपि ॥ २५६ ॥

करवीरोऽश्वमारे स्याद्दैत्यभेदकृपाणयोः ।
सपुत्रादेवसूश्रेष्ठगवीषु करवीर्यपि ॥ २५७ ॥

मल्लिकाप्रतिहार्योस्तु करवीरी क्वचिन्मता ।
कर्णिकारो मतः पुंसि शम्याके च द्रुमोत्पले ॥ २५८ ॥

कर्णपूरं कुवलयेऽप्यवतंसशिरीषयोः ।
त्रिषु कर्म्मकरो भृत्ये भृतिजीविनि कर्षके ॥ २५९ ॥

---

उद्दन्तुर–ऊँचा, भयंकर, भयंकर दाँतोंवाला ( त्रि० )

उपकार–बिखराहुवा पुष्पआदि, हथियारसे कृत्य ( पुं० ) ॥२५४॥

उपह्वर–समीप, एकान्तमात्र ( न० )

औदुंबर–धर्मराज ( पुं० ) रोग-भेद, ( न० ) ॥ २५५ ॥

कटंभरा–पसरन, कुटकी, हथिनी, कलंबी-शाक, मनसिल, सोंठी, मरोरफली, ( स्त्री० ) ॥ २५६ ॥

करवीर–कनेर, दैत्यभेद, तलवार (पुं०)

करवीरी–पुत्रवाली स्त्री, देवमाता ( अदिति ), श्रेष्ठ गौ, ॥ २५७ ॥ मल्लिका ( मोतियाभेद ), द्वारपालिनी ( स्त्री० )

कर्णिकार–अमलतास, छोटा संदल, ( पुं० ) ॥ २५८ ॥

कर्णपूर–कमल, कर्णआभूषण या शिर-आभूषण, सिरस-वृक्ष ( न० )

कर्मकर–नौकर, नौकरीकी आजीविकावाला, किसान (खेतीकरनेवाला) ( त्रि० ) ॥ २५९ ॥

भृत्यां बिम्बिकायां च स्त्रियां कर्मकरी क्वचित् ।
कलिकारस्तु पूत्यण्डे पीतमुण्डे खगान्तरे ॥ २६० ॥

कादम्बरस्तु दध्यग्रे मद्यभेदेऽपि च द्वयोः ।
कादम्बरी मत्तकोकिलवाणीशारिकास्वपि ॥ २६१ ॥

कालञ्जरो योगिचक्रमेलके भैरवे गिरौ ।
देशभेदेऽपि गौर्यां स्यात्कालञ्जरी मता ॥ २६२ ॥

कुम्भकारः कुलाले स्यात्कुलत्थ्यां तु स्त्रियामपि ।
कुष्मागारो गृहे पुंसि गृहगोधिकयोः स्त्रियाम् ॥ २६३ ॥

गङ्गाधरो गिरिशेऽप्यथ नाथे च पयसाम् ।
गिरिसारस्तु लौहे मलयाचलटङ्कयोः ॥ २६४ ॥

कृकलासखरोटयोः कुम्भीरेऽपि गृहाम्बरः ।
घनसारोऽम्बु कर्पूरे दक्षिणावर्तपारदे ॥ २६५ ॥

---

कर्मकरी—कुम्हार या मजदूरनी, कन्दूरी, (स्त्री०)
कलिकार—दुर्गन्धकरंज—कांटा, पीत-मुंडा, काकड़ा (पुं०) २६०
कादम्बर—दही की मलाई (पुं०) मदिरा (न०)
कादम्बरी—कोयल, मैना (पक्षी), वाणी, मैना—मदिरा (स्त्री०) ॥ २६१ ॥
कालञ्जर—योगियों का चक्रमेलक, भैरव, पर्वत, देशभेद, (पुं०)
कालञ्जरी—पार्वती (स्त्री०) २६२।
कुंभकार—कुम्हार (पुं०) कुंभकारी—कुलथी (स्त्री०)
कुष्मागार—घर (पुं०)
कुष्मागारी—गोह, छिपकली—कृमि (स्त्री०) ॥ २६३ ॥
गंगाधर—महादेव, समुद्र (पुं०)
गिरिसार—लोहा, मलयाचल-पर्वत, टिन (पुं०) ॥ २६४ ॥
गृहांबर—कठफोड़े टटहरी डोडी, कुरकुरिया पक्षी, (पुं०)
घनसार—जल, कपूर, दक्षिणावर्त पारा (पुं०) ॥ २६५ ॥

भवेच्चक्रधरो विष्णौ भुजङ्गे ग्रामजालिनि ।
चराचरं तु भुवने स्यादिङ्गे जङ्गमे त्रिषु ॥ २६६ ॥

चर्म्मकारः पुमान्पादुकृति चर्मकषौषधौ ।
चर्म्मकारी स्त्रियां चित्राटीरस्तु रजनीपतौ ॥ २६७ ॥

घण्टाकर्णवलिहृतच्छागास्रतिलकेऽपि च ।
जटाटीरो जटायां स्यादोकणे पार्वतीपतौ ॥ २६८ ॥

वरोहे पादपानां च समावेदोक्तवैजवे ।
रण्डायां तालपत्री स्यात्तालपत्रं तु कुण्डले॥ २६९ ॥

तुङ्गभद्रा नदीभेदे तुङ्गभद्रो मदोत्कटे ।
तुण्डिकेरी तु कर्पास्यां बिम्बिकायामपि स्त्रियाम् ॥ २७० ॥

तुलाधारस्तुलाराशौ तुलाधारो वणिक्ष्वपि ।
भवेत्तोयधरो मेघे मुस्तके सुनिषण्णके ॥ २७१ ॥

---

चक्रधर–विष्णु, सर्प,...( पुं० )

चराचर–जगत्, अभिप्रायके अनुरूप चेष्टा, जंगम ( चलनेवाला ), ( त्रि० ) ॥ २६६ ॥

चर्मकार–चमार–जाति ( पुं० )

चर्मकारी–थोहरका भेद ( स्त्री० )

चित्राटीर–चंद्रमा, घंटाकर्णयक्षकी वलिके लिये माराहुवा वकराके रुधिरका जिसने तिलक किया है वह, ( पुं० ) ॥ २६७ ॥

जटाटीर–जटा, महादेव, ( पुं० ) ॥ २६८ ॥ वृक्षकी जडसे चलकर आगेतक गई हुई शाखा ( पुं० )

तालपत्री–रंडा-स्त्री, ( स्त्री० )

तालपत्र–कुंडल ( न० ) ॥ २६९ ॥

तुंगभद्रा–नदीभेद ( स्त्री० )

तुंगभद्र–मदोन्मत्त ( पुं० )

तुंडिकेरी–कपास, कन्दूरी, ( स्त्री० ) ॥ २७० ॥

तुलाधार–तुला-राशि, वणियां,(पु०)

तोयधर–मेघ, नागरमोथा, चौपतिया या सिरिआरी शाक, ( पु० ) ॥ २७१ ॥

यमे नृपे दण्डधरो दण्डधारो यमे नृपे ।
दण्डयात्रा दिग्विजये संयानवरयात्रयोः ॥ २७२ ॥

क्लीबं दशपुरं देशे पुरगोनर्दयोरपि ।
दिगम्बरस्तु क्षपणे नग्ने ध्वान्ते च शूलिनि ॥ २७३ ॥

दरोदरं पणे द्यूते द्यूतकारे दुरोदरः ।
देहयात्रा मता मृत्यौ देहयात्राऽपि भोजने ॥ २७४ ॥

द्वैमातुरो जरासन्धे द्वैमातुर इभानने ।
धराधरश्चक्रधरे क्ष्माधरे च धराधरः ॥ २७५ ॥

मेघे धाराधरो वारिवाहिनिस्त्रिंशयोः पुमान् ।
धाराङ्कुरस्तु ना नीरे करकायां च शीकरे ॥ २७६ ॥

धार्तराष्ट्रोऽसितैश्चञ्चुपदैर्हंसेऽपि कौरवे ।
सर्पेऽप्यथो धवतरो धूर्वहे च धुरन्धरः ॥ २७७ ॥

---

दंडधर—धर्मराज, राजा, ( पुं० )
दंडधार—धर्मराज, राजा, ( पु० )
दंडयात्रा—दिग्विजय, अच्छीतरह-यात्रा, श्रेष्ठ यात्रा, ( स्त्री० ) २७२
दशपुर—देश, पुर, केवटीमोथा, ( न० ) ।
दिगम्बर—मुनि, नग्न, अन्धकार, महादेव, ( पु० ) ॥ २७३ ॥
दुरोदर—पण, जुवा, ( न० ) जूवाकरनेवाला, ( पुं० )
देहयात्रा—मृत्यु, भोजन, ( स्त्री० ) ॥ २७४ ॥
द्वैमातुर—जरासन्ध, गणेश, ( पुं० )
धराधर—विष्णु, पर्वत, ( पुं० ) २७५
धाराधर—मेघ, खड्ग, ( पु० )
धारांकुर—हल, ओला, वायुप्रेरित जलबिन्दु, ( पुं० ) ॥ २७६ ॥
धार्तराष्ट्र—श्यामचोंच चरणोंवाला हंस, कौरव, सर्पभेद, ( पुं० )
धुरंधर—धव-वृक्ष, धुरको वहनेवाला बैलआदि, ( पु० ) ॥ २७७ ॥

धुन्धुमारः शक्रगोपे गृहधूमे पदालिके ।
धृतराष्ट्रस्त्वांबिकेये पक्षिभेदे सुराज्ञि च ॥ २७८ ॥
धृतराष्ट्री मता हंसपदीनामौषधान्तरे ।
नभश्चरो घने विद्याधरे वाते विहङ्गमे ॥ २७९ ॥
निशाचरः फेरवभूतरक्षोभुजङ्गघूकेषु निशाचरी तु ।
भवेदसत्यां हि निषद्वरः स्यात्पङ्के निशाया तु निषाद्वरी स्यात्
परम्परः प्रपौत्रादौ मृगभेदे परम्परः ।
परम्परा तु सन्ताने खड्गकोशे परिच्छदे ॥ २८१ ॥
भवेत्परिसरो दैवोपात्ते मृत्युप्रदेशयोः ।
यूथभ्रष्टपृथक्चारिगजे पक्षचरो विधौ ॥ २८२ ॥
पात्रटीरो जरत्पात्रे मुक्तव्यापारमन्त्रिणि ।
सिङ्घाणे लौहकांस्ये च जतुपात्रे च पाठके ॥ २८३ ॥

---

धुन्धुमार–वीरबहूटी, गृहधूम ( घरका धुवा ), ( पुं० )

धृतराष्ट्र–अंबिकाका पुत्र ( धृतराष्ट्र–राजा ), पक्षिभेद, श्रेष्ठराजा, ( पुं० ) ॥ २७८ ॥

धृतराष्ट्री–लालरंगका लज्जालू (स्त्री०)

नभश्चर–मेघ, विद्याधर, वायु, पक्षी, ( पुं० ) ॥ २७९ ॥

निशाचर–गीदड, भूत, राक्षस, सर्प, उल्लू पक्षी, ( पुं० )

निशाचरी–कुलटा स्त्री ( स्त्री० )

निषद्वर–कीच, ( पुं० ) निषद्वरी–रात्रि ( स्त्री० ) ॥ २८० ॥

परम्पर–प्रपौत्र आदि, मृगभेद, ( पुं० )

परम्परा–सन्तान ( वंश ), तलवारका म्यान, ढकनेवाला, (स्त्री०) ॥२८१॥

परिसर–भाग्यवशसे प्राप्त, मृत्यु, प्रदेश, ( प्रान्त ) ( पुं० )

पक्षचर–समूहसे बिछडकर अलग विचरनेवाला हस्ती, चंद्रमा, ( पुं० ) ॥ २८२ ॥

पात्रटीर–व्यापाररहित मंत्री, नासिकाका मल, लोहेका पात्र, कांसीकापात्र, लाखका पात्र, अग्नि, ( पुं० ) ॥ २८३ ॥

पारावारः सरिन्नाथे पारावारं तटद्वये ।
पारिभद्रः पुमान्निम्बतरौ मन्दारपादपे ॥ २८४ ॥

मतः पीताम्बरश्चक्रपाणौ पीताम्बरो नटे ।
पीतसारस्तु गोमेदे मणौ मलयसम्भवे ॥ २८५ ॥

पूर्णपात्रं तु सम्पूर्णपात्रे वर्धापकेऽपि च ।
यात्रायां पटहे चैव पूर्णपात्रमिति स्मृतम् ॥ २८६ ॥

द्वारि द्वाःस्थे प्रतीहारः प्रतीहारी त्वनन्तरा ।
पुंसि प्रतिसरो माल्ये चमूपृष्ठेऽपि कङ्कणे ॥ २८७ ॥

भूषायां व्रणशुद्धौ च नियोज्याऽऽरक्षयोरपि ।
मन्त्रभेदे स्त्रियां पुंसि हस्तसूत्रेऽपि न स्त्रियाम् ॥ २८८ ॥

समे प्रतिक्रियायां च प्रतीकारो भटेऽपि च ।
प्रभाकरोऽर्के दहने वक्रनक्रः शुके खले ॥ २८९ ॥

---

पारावार—समुद्र ( पुं० ) पारावार—दोनों तट ( न० )

पारिभद्र—नींब—वृक्ष, कल्पवृक्षभेद ( देवतरु ), ( पुं० ) ॥ २८४ ॥

पीतांबर—विष्णु, नट, ( पुं० )

पीतसार—गोमेद—मणि, मलयज ( चंदन ), ( पुं० ) ॥ २८५ ॥

पूर्णपात्र—पूर्णहुवा पात्र, वृद्धिकरनेवाला, यात्रा, पहट ( बाजा ), ( न० ) ॥ २८६ ॥

प्रतीहार—द्वार, द्वारपाल, ( पुं० )

प्रतीहारी—द्वारपालनी ( स्त्री० )

प्रतिसर—माला, सेनापीठ, कंकण, ॥ २८७ ॥ आभूषण, व्रणशुद्धि, प्रेरणेके योग्य, हस्तिके ललाटका मर्म, मंत्रभेद, ( स्त्री० पुं० ) हस्तसूत्र ( पुं० न० )

प्रतीकार—सम ( तुल्य ), प्रतिक्रिया ( बदला ), भट ( योद्धा ), २८८

प्रभाकर—सूर्य, अग्नि, ( पुं० )

वक्रनक्र—सूवा, खल-पुरुष, ( पुं० ) ॥ २८९ ॥

वलभद्रा कुमार्यो स्यात्त्रायमाणे वले पुमान् ।
वार्वटीरस्त्रपौ चूतास्थ्यङ्कुरे गणिकासुते ॥ २९० ॥
उकणे वारकीरः स्यान्नीराजितहयेऽपि च ।
वीरभद्रोऽश्वमेधाश्वे महावीरेऽपि वीरणे ॥ २९१ ॥
क्लीबं वीरतरं वीरश्रेष्ठे वीरणगुन्द्रयोः ।
मणिच्छिद्रा तु मेदायामृषभाख्यौषधावपि ॥ २९२ ॥
महावीरस्तु गरुडे शूरे कण्ठीरवे पवौ ।
महावीरः पिके चाश्वमखाग्नौ च जराटके ॥ २९३ ॥
महामात्रो हस्तिपके समूहामात्ययोरपि ।
रथकारस्तु माहिष्यात्करणीजेऽपि तक्षणि ॥ २९४ ॥
रागसूत्रं तुलासूत्रे पट्टसूत्रेऽपि न द्वयोः ।
वसन्तकङ्कणाभिख्यशङ्खे नोगण्डिपट्टके ॥ २९५ ॥

---

वलभद्रा–घीकुमार, त्रायमान, (स्त्री०) वलभद्र–वलदेव ( पुं० ) ॥ २९० ॥

वार्वटीर–सीसा, या रॉगा, आमकी गुठली और अकुर, वेश्याका पुत्र, ( पुं० ) ॥ २९१ ॥

वारकीर–...आरती कियाहुवा अश्व, ( पुं० )

वीरभद्र–अश्वमेध यज्ञका अश्व, महावीर, ( पुं० ) वीरनमूल ( न० ) ॥ २९२ ॥

वीरतर–वीरश्रेष्ठ, वीरनमूल, शर, ( पुं० )

मणिच्छिद्रा–मेदा–औषधि, ऋषभाख्य औषधि, (स्त्री०) ॥२९३॥

महावीर–गरुड, शूर, सिंह, वज्र, कोयल–पक्षी, अश्वमेधयज्ञका अग्नि, ( पुं० ) ॥ २९३ ॥

महामात्र–फीलवान, समूह, मंत्री, ( पुं० )

रथकार–वैश्याके क्षत्रियसे उपजे पुरुषसे शूद्रीके वैश्यसे उपजी स्त्रीमें उत्पन्नहुवा, (वढई) (पुं०) ॥२९४॥

रागसूत्र–तराजूका सूत्र, पाटका सूत्र, ( न० ) वसतकंकण नाम शंख, हस्तीका पट्टा, ( पुं० ) ॥ २९५ ॥

दग्धदीपदशाप्वेष मतो लङ्कश्चतुः पुमान् ।
लम्बोदरः स्यादुध्माने हेरम्बे लम्बकुक्षिके ॥ २९६ ॥
लक्ष्मीपुत्रस्तु कन्दर्पे लक्ष्मीपुत्रस्तुरङ्गमे ।
वातपुत्रो महाधूर्त्ते हनूमद्भीमयोरपि ॥ २९७ ॥
त्रिन्दुतन्त्रः पुमाञ्शारिफलके चतुरङ्गके ।
विभाकरो बृहद्भानौ चित्रभानौ विभाकरः ॥ २९८ ॥
विभावरी तमस्विन्या हरिद्रायां विभावरी ।
विवाहवस्त्रगुण्ठ्याञ्च कुट्टिन्यां वक्रयोषिति ॥ २९९ ॥
विश्वम्भरो हरौ शक्रे स्त्रियां विश्वम्भरा भुवि ।
विश्वकद्रुः खले ध्वाने स्यादाखेटिककुक्कुरे ॥ ३०० ॥
वीतिहोत्रो बृहद्भानौ वीतिहोत्रो दिवाकरे ।
भवेद्व्यतिकरः पुंसि व्यसनव्यतिषङ्गयोः ॥ १ ॥
व्यवहारो व्यवहृतौ वृक्षभेदे स्थितावपि ।
शतपत्रो राजकीरे दार्वाघाटे शिखण्डिनि ॥ २ ॥

---

लम्बोदर–जलंधर रोगवाला, गणेश, लंबापेटवाला, ( पुं० ) ॥ २९६ ॥
लक्ष्मीपुत्र–कामदेव, अश्व ( पुं० )
वातपुत्र–महाधूर्त, हनूमान, भीमसेन, ( पुं० ) ॥ २९७ ॥
विन्दुतंत्र–चौपटखेलनेका पट, चतुरंग-खेल, (पुं०)
विभाकर–अग्नि, सूर्य, ( पुं० ) ॥ २९८ ॥
विभावरी–रात्रि,हलदी,कुट्टिनी–स्त्री, वक्र स्त्री ( स्त्री० ) ॥ २९९ ॥
विश्वंभर–विष्णु, इन्द्र, ( पुं० )
विश्वंभरा–पृथ्वी, ( स्त्री० )
विश्वकद्रु–खल–पुरुष, शब्द, शिकारी कुत्ता, ( पुं० ) ॥ ३०० ॥
वीतिहोत्र–अग्नि, सूर्य, ( पुं० )
व्यतिकर–शौक (मदिरापानआदि), उलटा, ( पुं० ) ॥ १ ॥
व्यवहार–व्यवहार, वृक्षभेद, स्थिति ( ठहरना ), ( पुं० )
शतपत्र–राजकीर ( बडा-सूवा ), मुरगा, मोर, ( पुं० ) ॥ २ ॥

शतपत्रं तु राजीवे वरीशुण्ठ्योः शतावरी ।
शिशुमारो जलकपौ तारात्मकहरावपि ॥ ३ ॥
समुद्रारुर्मतः सेतुबन्धे ग्राहे तिमिङ्गिले ।
संप्रहारो मृतौ युद्धे झिण्ट्यां सहचरी द्वयोः ॥ ४ ॥
स्याद्वयस्ये सहचरस्त्रिषु प्रतिकृतौ पुमान् ।
सालसारो मतो हिङ्गौ सालसारो महीरुहे ॥ ५ ॥
सुकुमारस्तु पुण्ड्रेक्षौ कोमले त्वभिधेयवत् ।
सूत्रधारो मतः शिल्पिप्रभेदेऽपि पुरन्दरे ॥ ६ ॥
नान्द्यनन्तरसञ्चारिपात्रभेदेऽपि स स्मृतः ।
स्थिरदंष्ट्रो भुजङ्गे स्याद्वराहाकृतिकेशवे ॥ ७ ॥

रपञ्चमम् ।

उत्पलपत्रं तूत्पलच्छदे योषिन्नखक्षते ।
स्वर्गनद्यां तु कपिलधारा तीर्थान्तरे पुमान् ॥ ८ ॥

---

शतपत्र–कमल ( न० )
शतावरी–शतावर, सौंठ, ( स्त्री० )
शिशुमार–जलजंतु ( मकरभेद ), तारात्मक विष्णु, ( पुं० ) ॥ ३ ॥
समुद्रारु–सेतुबंध, ग्राह, तिमिंगिल ( मकरभेद ), ( पुं० )
संप्रहार–मृत्यु, युद्ध, ( पुं० )
सहचरी–कटसरैया वृक्ष (पुं० स्त्री०) ॥ ४ ॥
सहचर–समानउमरवाला, ( त्रि० ) मूर्त्ति ( पुं० )
सालसार–हींग, वृक्ष, ( पुं० )॥५॥
सुकुमार–पौंडा ( ऊख ) ( पुं० ) कोमल ( त्रि० )
सूत्रधार–शिल्पिभेद, इंद्र, ॥ ६ ॥ नादीके पीछे आनेवाला नाटकका पात्रभेद, ( पुं० )
स्थिरदंष्ट्र–सर्प, वराह अवतार, (पुं०) ॥ ७ ॥

रपंचम ।

उत्पलपत्र–कमलपत्र, स्त्रीके नखसे हुवा घाव, ( न० )
कपिलधारा–स्वर्गनदी ( स्त्री० )
कपिलधार–तीर्थभेद ( पुं० ) ॥८॥

तमालपत्रं तिलके तापिच्छे पत्रकेऽपि च ।
तालीशपत्रं तालीशे तामलक्या च न द्वयो· ॥ ९ ॥

सैकते करके छागे पिप्पले पादचत्वरः ।
परदीपप्रकाशैकतत्परेऽपि मतो नरे ॥ ३१० ॥

क्लीवं तु पीतकावेरं पित्तले कुङ्कुमेऽपि च ।
स्यात्पांशुचामरो धूलीगुच्छकेऽपि प्रशंसने ॥ ११ ॥

वर्द्धोपके पुरोटौ च दूर्वाञ्चिततटीभुवि ।
वकुले वेधके नागकुसुमे नागकेसरः ॥ १२ ॥

स्याद्राजवदरं रक्तामलके लवलीफले ।
रोमगुच्छे च मन्तौ च रोमकेसर इष्यते ॥ १३ ॥

वस्वौकसारा श्रीदस्य नलिन्यामलकापुरि ।
विप्रतीसारः कौकृत्ये रोषेऽप्यनुशयेऽपि च ॥ १४ ॥

---

तमालपत्र–तिलक–पुष्पवृक्ष, तमाल–वृक्ष, तेजपात, ( न० )
तालीशपत्र–तालीशपत्र, भुई आँवला ( न० ) ॥ ९ ॥
पादचत्वर–रेतीवाला–स्थल, ओला ( वर्षाका पत्थर ), बकरा, पीपल–वृक्ष, दूसरेके दोष प्रकाशितकरना–एक इसी काममें तत्पर मनुष्य, ( पुं० ) ॥ ३१० ॥
पीतकावेर–पीतल, केसर, ( न० )
पांशुचामर–धूलिगुच्छ, प्रशंसा ११
वर्धापक ( ...... . ), पुरोटि ( ........ ) दूब जमे हुये तट–वाली पृथ्वी, ( पुं० )
नागकेसर–वौलश्री, अम्लवेत, नागकेसर ( पुं० ) ॥ १२ ॥
राजवदर–लालआँवला, हरपारेवड़ीका फल, ( न० )
रोमकेसर–रोमोंका गुच्छा, अपराध, ( पु० ) ॥ १३ ॥
वस्वौकसारा–कुवेरकी अलका नामकी पुरी, कमलिनी, ( स्त्री० )
विप्रतीसार–क्रोध, पछताना, ( पु० ) ॥ १४ ॥

मतः समभिहारस्तु पौनःपुन्ये भृशार्थके ।
पुंस्येव सर्वतोभद्रः काव्यचित्रे गृहान्तरे ॥ १५ ॥
निम्बेऽथ सर्वतोभद्रा गम्भार्यां नटयोषिति ॥ ३१६ ॥
इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां रेफान्तवर्गः समाप्तः॥

---

## अथ लान्तवर्गः ।

### लैकम् ।

ल इन्द्रे ला तु दाने स्यादाश्लेषेऽपि लयेऽपि च ।
अपि लूश्छेदके पुंसि लवणे लूरपि स्मृता ॥ १ ॥

### लद्वितीयम् ।

अम्लो रसप्रभेदे स्यादम्ली चाङ्गेरिकौषधौ ।
अलिर्भृङ्गे सुरायां स्त्री स्यादालिः पिण्डले स्त्रियाम् ॥ २ ॥
सख्यां पङ्क्तावपि ख्याता वाच्यवद्विशदाशये ।
आलुर्गलन्तिकायां स्त्री क्लीबे भेलककन्दयोः ॥ ३ ॥

---

समभिहार–वारवार, अत्यंत (पुं०)
सर्वतोभद्र–काव्य-चित्रबंध, गृह (घर) भेद ॥१५॥ नीव वृक्ष (पुं०)
सर्वतोभद्रा–कंभारी, नटकी स्त्री, (स्त्री०) ॥ ३१६ ॥
॥ इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा टीकामें रान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ लान्तवर्गः ।

लैक ।

ल–इन्द्र ( पुं० )
ला दान, मिलना, प्रलय, (पुं०)
लू–काटनेवाला, ( पुं० ) लू–नमक ( स्त्री० ) ॥ १ ॥

लद्वितीय ।

अम्ल–रसभेद ( पुं० )
अम्ली–चूका-औषधि ( स्त्री० )
अलि–भौंरा ( पुं० ) मदिरा (स्त्री०)
आलि–पुल, ॥ २ ॥ सखी, पंक्ति, (स्त्री०) स्वच्छहृदयवाला (त्रि०)
आलु–झारी ( स्त्री० ) भेलक ( नदीतैरनेको पूलाआदि ), कन्द, ( न० ) ॥ ३ ॥

इला गोभूमिपीयूषे भारत्यां सौम्ययोपिति ।
ओलस्तु सूरणे पुंसि स्यादार्द्रे त्वभिधेयवत् ॥ ४ ॥
कलस्तु मधुराव्यक्तशब्देऽजीर्णे कलं सिते ।
कला तु षोडशांशे स्यादिन्दोरप्यंशमात्रके ॥ ५ ॥
मूलार्थवृद्धौ शिल्पादौ कलनाकालभेदयोः ।
कलिरन्त्ययुगे कन्दे कन्दले सुभटे पुमान् ॥ ६ ॥
कालस्तु समये मृत्यौ महाकाले यमे शितौ ॥
कृष्णे त्रिष्वथ काली स्यात्कालिकामातृभेदयोः ॥ ७ ॥
गौर्यां नवाम्बुदानीके क्षीरकीटापवादयोः ।
काला तु कृष्णत्रिवृत्ति नीलीमञ्जिष्ठयोरपि ॥ ८ ॥
कीला कफोणिघाते स्यात्कीले शङ्कौ च कीलवत् ।
कुलं सजातीयगणे गोत्राङ्गगृहनीवृति ॥ ९ ॥

---

इला—गौ, भूमि, अमृत, वाणी ( सरस्वती ), बुधग्रहकी स्त्री, ( स्त्री० )

ओल—जमीकद ( पुं० ) गीला (त्रि०) ॥ ४ ॥

कल—मधुर और अप्रकट शब्द, ( पुं० ) अजीर्ण ( त्रि० )

कल—वीर्य ( न० )

कला—सोलहवॉ भाग, चंद्रमाकी कला, ॥ ५ ॥ मूलद्रव्यकी वृद्धि, शिल्पआदि, कलना ( सख्या-जोडना ), कालभेद, ( स्त्री० )

कलि—कलियुग, कन्द, कंदल ( नवीन अंकुर ), योद्धा, ( पु० ) ॥ ६ ॥

काल—समय, मत्यु, महाकाल, धर्म-राज, नीला रग, ( पुं० ) काला रंगवाला ( त्रि० )

काली—काला रंगवाली,मातृभेद ( देवी भेद ), ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥ गौरी, नवीनमेघकी घटा, दुग्धका कीट, निंदा, ( स्त्री० )

काला—काली निसोथ, नीली, मॅजीठ, ( स्त्री० ) ॥ ८ ॥

कीला—कील—कोंहनीसे मारना, अग्नितेज, शंकु (कीला), (स्त्री० पुं०)

कुल—सजातीयसमूह, गोत्र, शरीर, घर, देश, ( न० ) ॥ ९ ॥

कूलं प्रतीरे सैन्यस्य पृष्ठे स्तूपतडागयोः ।
कोलोऽङ्कपालावुत्सङ्गे क्रोडे भेलकचित्रयोः ॥ १० ॥
खञ्जे कोलं तु कुवले कोला पिप्पलिचव्ययोः ।
खलः शठेऽधमे नीचे त्रिषु स्यात्तु खलं भुवि ॥ ११ ॥
खलं स्थानेऽपि कल्केऽपि सस्यस्थानेऽपि न द्वयोः ।
खल्ला चर्म्मणि निम्नेऽपि वस्त्रभेदेऽपि चातके ॥ १२ ॥
खल्ली तु हस्तपादावमर्द्दनाख्यरुजि स्त्रियाम् ।
खिलं भवेदप्रहते सारसङ्क्षिप्तवेधसोः ॥ १३ ॥
गलः कण्ठे सर्ज्जरसे गलः स्कन्धे महीरुहे ।
गोला गोदावरीसख्योर्गोला पत्राञ्जने मता ॥ १४ ॥
कुनट्यामपि गोलं तु मणिके मण्डलेऽपि च ।
चलश्चलाचले कम्पे कमलाविद्युतोश्चला ॥ १५ ॥

---

कूल–तीर–नदीआदिका, सेनाकी पीठ, वडाआदि, तालाव, (न०)
कोल–गोदका सिरा या धाय, गोद, सूकर, नदीतरनेका पूलाआदि, चीता औषधि ॥ १० ॥ लँगडा, (पुं०)
कोल–वेर ( न० )
कोला–पीपल, चव्य, ( स्त्री० )
खल–मूर्ख, अधम, नीच, ( त्रि० )
खल–पृथ्वी, ॥ ११ ॥ स्थान, तिलआदिकी खली, तृणस्थान, (न०)
खल्ला–चर्म, खड्डा, वस्त्रभेद, पपीहा ( स्त्री० ) ॥ १२ ॥
खल्ली–हाथपैरोंमें अवमर्दन नामका रोग, ( स्त्री० )
खिल–नवीन, सारसंक्षिप्त, ( त्रि० ) ब्रह्मा ( पुं० ) ॥ १३ ॥
गल–कंठ, रालवृक्ष, कंधा, वृक्ष, (पुं०)
गोला–गोदावरी–नदी, सखी, तेजपात, मनसिल, ( स्त्री० )
गोल–वडाकुंभ, गोल आकारवाला मंडल, ( न० ) ॥ १४ ॥
चल–चलनेके स्वभाववाला, काँपना, ( त्रि० )
चला–लक्ष्मी, विजली, ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥

चालश्छदिषि पुंस्येव चालः स्यात्कम्पनेऽपि च ।
क्लिन्नाक्षितायिनोश्चिल्लश्चिल्ली स्यात्क्षुद्रवास्तुके ॥ १६ ॥

क्लिन्ननेत्रयुते तु स्याच्चिल्लः खुल्लश्च वाच्यवत् ।
चुल्लः क्लिन्नेऽक्षिण चुल्ली तु चितावुद्धानवाद्ययोः ॥ १७ ॥

चेलं स्यादंशुके नीचे गर्हितेप्यभिधेयवत् ।
छल्ली तु वल्कले पुष्पभेदे सन्ततिवीरुधोः ॥ १८ ॥

छलं तु स्खलितेऽपि स्याद्याजेऽपि छलमद्वयोः ।
जलं शोकरवे नीरे ह्रीवेरेऽपि जडे त्रिपु ॥ १९ ॥

जालस्तु क्षारकानायगवाक्षे दम्भवृक्षयोः ।
जाली पटोलिकायां स्याज्जालो नीपमहीरुहे ॥ २० ॥

झला स्यादातपस्योर्मौ तथा पुत्रीक्षुल्लकयोः ।
झिल्ली त्वातपरुग्वन्ध्या झीरुकोद्वर्त्तनांशयोः ॥ २१ ॥

---

चाल—छप्पर, काँपना ( पु० )
चिल्ल—चिडपडानेत्रवाला, चील्ह—पक्षी ( पु० )
चिल्ली—छोटा वथुवा (स्त्री०) ॥ १६ ॥
चिल्ल—खुल्ल-चिडपडानेत्रवाला(त्रि०)
चुल्ल—चिडपड़ानेत्र ( पुं० )
चुल्ली—चिता, चूल्हा, बाजा ( स्त्री० ) ॥ १७ ॥
चेल—वस्त्र ( न० ) नीच, निंदित, ( त्रि० )
छल्ली—वृक्षका वकला, पुष्पभेद, सतति ( संतान ), वेल, ( स्त्री० ) ॥१८॥
छल—छलना, बहाना, ( न० )
जल—शोक का शब्द, पानी, नेत्रवाला, ( न० ) जड ( त्रि० ) ॥ १९ ॥
जाल—जवाखार, जाल, जाली झरोखा, दम्भ, वृक्ष, ( पुं० )
जाली—परवल—शाक ( स्त्री० )
जाल—कदंब—वृक्ष ॥ २० ॥
झला—धूपकी लहरी, पुत्री, ( स्त्री० )
झिल्ली—आतपकांति, बन्दी, चीरी-कीट, ( स्त्री० )
झीरुका—उवटना, विभाग, ( पुं० ) ॥ २१ ॥

तलस्ताले तलं खड्गमुष्टौ ज्याघातवारणे ।
वने चपेटे न स्त्री तु स्वरूपाऽऽधारयोस्तलम् ॥ २२ ॥
तल्ली तरुण्यां तल्लस्तु विल्ले पुंसि नपुंसके ।
तालो द्रुमान्तरेऽङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च सम्मिते ॥ २३ ॥
गीतकालक्रियाभावे तालः खड्गादिमुष्टिषु ।
तालः स्यात्कांस्यरचितवाद्यभाण्डान्तरे तथा ॥ २४ ॥
करास्फारे करतले तालं तु हरितालके ।
तुला राशौ पलशते तुल्यतामानभेदयोः ॥ २५ ॥
बन्धाय गृहदारूणां पीठिकायां सभाजने ।
तूलः पिचौ पुमांस्तूलमाकाशे ब्रह्मदारुणि ॥ २६ ॥
अपद्रव्ये छदोच्छ्रायखण्डे शस्त्रीछदे दलम् ।
डुलिः पुंसि मुनेर्भेदे कमठ्यां तु स्त्रियां डुलिः ॥ २७ ॥

---

तल—ताड—वृक्ष ( पुं० ) तल—खड्गकी मूठ, धनुषके ज्याघातको रोकनेवाला, वन, थप्पड, ( पुं० न० ) स्वरूप, आधार, ( न० ) ॥ २२ ॥

तल्ली—जवान स्त्री ( स्त्री० ) तल्ल—हींग ( पुं० न० )

ताल—अँगूठा और मध्यमा अँगुलीका प्रमाण, ॥ २३ ॥ गानेकी कालक्रियाका मान, खड्ग आदिकी मूँठ, काँसीका बजानेका पात्र ॥ २४ ॥ दोनों हाथ फैलाकर प्रमाण, ( पुरस ) हथेली, ( पुं० ) हरिताल ( न० )

तुला—तुला—राशि, सौ ( १०० ) तोले, तुल्यता, तोलभेद, ॥ २५ ॥ घरका काठ बाँधनेके लिये पीठिका ( चौकीरूप काष्ट ), सत्कार, ( स्त्री० )

तूल—रूईका गीला फोया, ( पु० ) तूल—आकाश, ब्रह्मदारु, ( न० ) ॥ २६ ॥

दल—अपद्रव्य ( खराब वस्तु ), पत्ता, ऊँचा, टुकडा, छुरीको निवारण करनेवाला द्रव्य, ( न० )

डुलि—मुनिभेद ( पुं० ) डुलि—कछवी ( स्त्री० ) ॥ २७ ॥

दोला यानान्तरे नील्यां धूलिः शङ्ख्यान्तरे रजे।
नलः पोटगले राज्ञि कपीशे पितृदैवते ॥ २८ ॥
नली मनःशिलायां स्यान्नलं तु सरसीरुहे।
पद्मदण्डे न ना नाला नाली शाककदम्बके ॥ २९ ॥
नाला पानकरन्ध्रादिरन्ध्रे नालस्तु पञ्जरे।
नीलस्तु कृष्णवर्णे स्यात्रिषु नीलः कपीश्वरे ॥ ३० ॥
नीलो नगान्तरे कृष्णे नीलं वृक्षाङ्कभेदयोः।
पल्ली तु कुट्यां कुग्रामे पल्लः स्थूलकुसूलयोः ॥ ३१ ॥
पलं मासे तथोन्माने पालिः पङ्क्तिप्रदेशयोः।
प्रस्थे कर्णलताग्रेऽङ्गे यूकासश्मश्रुयोषितोः ॥ ३२ ॥
इन्द्रादेर्देयभागे च विश्राम्य चागतज्वरे।
अश्रौ चिह्ने च पिल्लस्तु क्लिन्नेऽक्ष्णि त्रिषु तद्वति ॥ ३३ ॥

दोला-सवारीभेद ( डोली ), नीली, ( स्त्री० )
धूलि-संख्याभेद, रज (धूल), (स्त्री०)
नल-कास या देवनल, नल-राजा, वानरोंका राजा, पितृदेव, (पु०) २८
नली-मनशिल (स्त्री०) नल-कमल ( न० )
नाला-कमलकी डंडी ( स्त्री० न० )
नाली-शाकका समूह ( स्त्री० ) ॥ २९ ॥
नाला-पीना, छूंआदिका छिद्र, ( स्त्री० )
नाल-पिंजरा ( पुं० )
नील-काला रंग ( त्रि० ) नील-कपीश्वर ( पुं० ) ॥ ३० ॥
नील-पर्वतभेद, काला द्रव्य, ( पुं० )
नील-वृक्ष, अंकभेद, ( न० )
पल्ली-कुटिया, कुग्राम, ( स्त्री० )
पल्ल-बडा, कुठला, ( पुं० ) ॥ ३१ ॥
पल-मास, उन्मान ( तोल ), चार तोला, ( न० )
पालि-पंक्ति, प्रदेश ( स्थल ), ६४ तोला, कर्णलताका अग्रभाग, विभाग, जू, डाटीमूछोंवाली स्त्री ॥ ३२ ॥ इंद्रआदिको देनेयोग्य भाग, विश्राम करके आयाहुवा ज्वर, कोण चिह्न, ( त्रि० )
पिल्ल-चिडपडा नेत्र, चिडपडानेत्र-वाला, ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥

पीलुर्द्रुमे गजे पुष्पे काण्डतालास्थिखण्डयोः ।
अणुमात्रेऽप्यथ पुलः पुलके विपुले त्रिषु ॥ ३४ ॥
फलं तु सस्ये हेतूत्थे फलके व्युष्टिलाभयोः ।
जातीफलेऽपि कङ्कोले मार्गणाग्रेऽपि न द्वयोः ॥ ३५ ॥
स्यात्फलं त्रिफलायां च फलिन्यां तु फली स्त्रियाम् ।
फालं सीरस्य लौहे स्यात्कर्पासादेश्च वाससि ॥ ३६ ॥
बलो हलिनि दैत्येऽङ्गे काके बलिनि वाच्यवत् ।
बलं गन्धरसे सैन्ये स्थामनि स्थौल्यरूपयोः ॥ ३७ ॥
बला वाट्यालके प्रोक्ता बलिः पुंस्यसुरान्तरे ।
बलिश्चामरदण्डेपि करपूजोपहारयोः ॥ ३८ ॥
सैन्धवेपि बलिः स्त्री तु जरसा श्लथचर्म्मणि ।
कुक्षिभागविशेषे च गृहकाष्ठान्तरे द्वयोः ॥ ३९ ॥

---

पीलु–पीलु ( जाल ) वृक्ष, हस्ती, पुष्प, दंड या बाण, ताडकी गुठलीका टुकडा, अणुमात्र, ( पुं० )

पुल–फूलना, विपुल ( बहुत ), ( त्रि० ) ॥ ३४ ॥

फल–वृक्षआदिका फल, किसीकारणसे उत्पन्नहुवा, ढाल, फल या समृद्धि, लाभ, जायफल, ककोल, बाणका अग्रभाग, ( पुं० न० ) ॥ ३५ ॥

फल–त्रिफला, ( न० ) फली–प्रियंगु–वृक्ष, ( स्त्री० )

फाल–हलका लोहा ( कुस ), कपास आदिका वस्त्र, ( न० ) ॥ ३६ ॥

बल–बलदेव, एक दैत्य, अग, काग, ( पुं० ) बलवान ( त्रि० )

बल–गोपरस, सेना, स्थिरभाव, मोटापन, रूप, ( न० ) ॥ ३७ ॥

बला–खरेंहटी ( स्त्री० )

बलि–असुरभेद ( बलि ), चॅवरकी डॉडी, राजाका कर, पूजामे भेट ॥ ३८ ॥ सेंधा–नमक, ( पुं० )

बलि–वृद्धता करके शिथिलहुवा शरीरचर्म ( स्त्री० ) उदरका एक भाग, घरका काष्ठभेद, ( न० ) ॥ ३९ ॥

वल्ली स्यादजमोदायां लतायां कुसुमान्तरे ।
वालः पुंसि शिशौ केशे वाजिवारणवालधौ ॥ ४० ॥
मूर्खेऽपि वालो वालं तु ह्रीवेरे पुंनपुंसकम् ।
विलं गुहायां रन्ध्रे च विलस्त्विन्द्रहये पुमान् ॥ ४१ ॥
वेला कालेऽपि सीमायामीश्वराणां च भोजने ।
दत्तमासेऽधिवेला स्यात्पयोनाशेऽपि नीरधे. ॥ ४२ ॥
तन्नीरेऽक्लिष्टमरणे राशौ वाचि वुधस्त्रियाम् ।
भल्लो वाणेऽपि भल्लूके भल्ली भल्लातवाणयोः ॥ ४३ ॥
भालं तु न द्वयोरेव ललाटमहसोर्मतम् ।
ऋषिभेदे प्लवे भेलो भेलं भीरुहृदि त्रिषु ॥ ४४ ॥
मलस्त्रिष्वेव कृपणे न स्त्री विट्किट्टकिल्विषे ।
मल्लः पात्रे कपाले च मत्स्यभेदे कपालिनि ॥ ४५ ॥

---

वल्ली–अजमोद, वेल, पुष्पभेद (स्त्री०)
वाल–शिशु (छोटा लडका), (त्रि०) केश (वाल), घोडे और हस्तीका केशसमूहयुक्त पूँछ, (पुं०) ॥४०॥ मूर्ख (त्रि०)
वाल–नेत्रवाला (पुं० न०)
विल–गुफा, छिद्र, (न०) विल–इंद्रका अश्व (उच्चैःश्रवा) (पुं०) ॥ ४१ ॥
वेला–काल, सीमा, राजाआदिकोंका भोजन, दत्तमास (दियाहुवा मास),
अधिवेला–समुद्रके जलका नाश, समुद्रका जल, एकांतका मरण, राशि (समूह), वाणी, वुधकी स्त्री, (स्त्री०) ॥ ४२ ॥
भल्ल–वाण (भाला), रीछ, (पु०)
भल्ली–भिलावा, वाण (भाला), (स्त्री०) ॥ ४३ ॥
भाल–मस्तक, (ललाट), तेज, (न०)
भेल–ऋषिभेद, छोटी नौका, (पुं०)
भेल–डरपोकहृदय (त्रि०) ॥ ४४ ॥
मल–कृपण (कंजूस) (त्रि०)
मल–विष्ठा, कानआदिका मल, पाप, (पुं० न०)
मल्ल–पात्र, कपाल, मत्स्यभेद, कपालवाला, (पु०) ॥ ४५ ॥

मल्लो बलाढ्ये सुभगे मल्ली तु कुसुमान्तरे ।
मालुः पत्रलतायां स्याद्वनितायामपि स्त्रियाम् ॥ ४६ ॥
मालं क्षेत्रे जने मालो माला पुष्पादिदामनि ।
मूलमाद्यशिफापार्श्वकुञ्जे मूलेऽपि तारके ॥ ४७ ॥
मसिमेलकयोर्मेला मौलिर्धम्मिल्लचूडयोः ।
किरीटेऽपि द्वयोरेव पुंसि वञ्जुलपादपे ॥ ४८ ॥
लीला हावान्तरे स्त्रीणां केलौ खेलाविलासयोः ।
लोला जिह्वाश्रियोर्लोलः सतृष्णचलयोस्त्रिषु ॥ ४९ ॥
व्यालः शठे भुजङ्गे च श्वापदे दुष्टदन्तिनि ।
शलं तु शल्लकीलोम्नि शलो भृङ्गिगणे विधौ ॥ ५० ॥
शालो मत्स्यान्तरे वृक्षसामान्ये हालभूभुजि ।
शाला वेश्मनि वेश्मैकप्रदेशे स्कन्धशाखयोः ॥ ५१ ॥

---

मल्ल–पहलवान, अच्छे ऐश्वर्यवाला, ( पुं० )
मल्ली–पुष्पभेद, ( मोतिया–भेद ) ( स्त्री० )
मालु–पान–वेल, स्त्री, (स्त्री०) ॥४६॥
माल–क्षेत्र, ( न० )
माल–जन ( पु० )
माला–पुष्पआदिकी लडी, ( स्त्री० )
मूल–आदिमें होनेवाला, वृक्षकी जड, समीप, कुंज ( लताकुटी ), मूल-नक्षत्र ( न० ) ॥ ४७ ॥
मेला–स्याही ( अजन ), मिलना ( स्त्री० )
मौलि–केशवेश, चोटी, मुकुट ( पुं० स्त्री०) अशोक वृक्ष (पुं०) ॥४८॥
लीला–स्त्रियोंका हावभेद, क्रीडा, खेलना कूदना, विलास, ( स्त्री० )
लोला–जीभ, लक्ष्मी, ( स्त्री० )
लोल–तृष्णावाला, चंचल ( त्रि० ) ॥ ४९ ॥
व्याल–शठ ( मूर्ख ), सर्प, वनजीव, खोटाहस्ती ( पुं० )
शल–सेहकी शूल ( न० ) भृंगिनामका गण, चंद्रमा ( पुं० ) ॥ ५० ॥
शाल–मत्स्यभेद, वृक्षमात्र, हाल नामका राजा, ( पुं० )
शाला–मकान, मकानका एक हिस्सा, डाहला, शाखा ( टहनी ) ( स्त्री० ) ॥ ५१ ॥

शालुः कषायद्रव्येपि शालुश्चोराख्यभेषजे ।
मतः शालिः पुमान् गन्धमार्जारे कलमादिषु ॥ ५२ ॥
शिला कुनट्यां द्वाराधोदारुणि ग्रावणि स्त्रियाम् ॥
शिलमुञ्छशिले क्लीबं गण्डूपद्यां शिली मता ॥ ५३ ॥
शीलं स्वभावे सद्वृत्ते शुक्ले धवलयोगयोः ।
शुक्लं तु रूप्यके शुक्लां त्रिषु शुक्लगुणान्विते ॥ ५४ ॥
शूलं मृत्यौ ध्वजे ना तु योगे न स्त्री रुगस्त्रयोः ।
शूला तु पण्ययोषायां दुष्टनाशाय कीलकः ॥ ५५ ॥
शैलः क्ष्माभृति शैलं तु शैलेये तार्क्ष्यशैलके ।
शालः स्याद्वरणे हाले पादपे सर्जपादपे ॥
स्थालं भाजनभेदे स्यात्स्थाली स्यात्पाटलोखयोः ॥ ५६ ॥

---

शालु–कसैला द्रव्य, असवरग या भटेउर औषधि ( पु० )
शालि–गंधमार्जार, ( गंधबिलाव ) कलम ( सॉठी चावल ) ( पु० ) ॥ ५२ ॥
शिला–मनशिल, द्वारके नीचेका काष्ठ, पत्थर ( शिला ) ( स्त्री० )
शिल–उंछ ( दुकानआदिसे पड़ा ) अन्नका इकट्ठाकरना, खेतमें से अन्न लेना, ( न० )
शिली–गिंडोवा, ( स्त्री० ) ॥ ५३ ॥
शील–स्वभाव, श्रेष्ठवृत्तांत, ( न० )
शुक्ल–श्वेत ( सफेद ), योग ( पु० )
शुक्ल–चाँदी ( न० )
शुक्ल–सफेदरंगवाला ( त्रि० ) ॥५४॥
शूल–मृत्यु, ( न० ) ध्वजा, योग ( पु० ) रोग, अस्त्र ( पु० न० )
शूला–वेश्या, दुष्टोंके मारनेकेलिये कीला ( शूली ) ( स्त्री० ) ॥ ५५ ॥
शैल–पर्वत, ( पुं० )
शैल–शिलाजीत, रसोत ( न० )
साल–सगुवा वृक्ष, साल वृक्ष, रालका वृक्ष ( पुं० ) ।
स्थाल–पात्रभेद (थाल), स्थाली–पाठरि, बटलोई ( स्त्री० ) ॥ ५६ ॥

स्थूलस्तु वाच्यवत्पीने कूटनिष्प्रज्ञयोरपि ।
हाला मद्ये नृपे हालो हेलाऽवज्ञाविलासयोः ॥ ५७ ॥

लतृतीयम् ।

स्यादङ्गुली तु मातङ्गकर्णिकाकरशाखयोः
अचलः पर्वते कीले निश्चलेऽप्यचला भुवि ॥ ५८ ॥
अञ्जलिः पुंसि कुडवे करसंपुटकेऽञ्जलिः ।
अनलो वसुभेदेऽग्नावनिलो वसुवातयोः ॥ ५९ ॥
अवेलः पूगरागेऽपि रवतोयचशालयोः ।
अपलापेऽप्यवेलं स्यादवेला पूगचूर्णयोः ॥ ६० ॥
अमला कमलायां स्यादमलं विशदेऽभ्रके ।
स्यादरालः पुमान्सर्जे मत्तेभे कुटिलेऽन्यवत् ॥ ६१ ॥

---

स्थूल–मोटा ( त्रि० ) ढेर, बुद्धिहीन, ( पुं० )
हाला–मदिरा, ( स्त्री० )
हाल–एकराजा ( पुं० )
हेला–तिरस्कार, स्त्रियोंका विलास ( स्त्री० ) ॥ ५७ ॥

लतृतीय ।

अंगुली–हस्तीकी कर्णिका ( सूँड ), हाथकी शाखा ( अंगुली ) (स्त्री०)
अचल–पर्वत, कीला, निश्चल ( नहीं चलनेवाला ) ( पुं० )
अचला–पृथ्वी ( स्त्री० ) ॥ ५८ ॥
अंजलि–कुडव ( १६ तोला ), हाथोंका संपुट ( अंजलि ) ( पु० )
अनल–वसुभेद, अग्नि, ( पुं० )
अनिल–वसु, वायु ( पुं० )॥ ५९ ॥
अवेल–सुपारीका रंग, .. ( पु० )
अवेल–गोप्य ( न० )
अवेला–सुपारी, चूना ( स्त्री० ) ॥ ६० ॥
अमला–लक्ष्मी, ( स्त्री० )
अमल–निर्मल ( त्रि० ) भोडल ( न० )
अराल–राल–वृक्ष, उन्मत्त हस्ती ( पुं० ) कुटिल ( त्रि० ) ॥६१॥

अन्तःकपाटयोर्दण्डे कल्लोलेऽप्यर्गलं त्रिपु ।
आभीलं न द्वयोः कष्टे त्रिष्वाभीलं भयानके ॥ ६२ ॥
मृगशीर्षशिरस्तारास्विल्वलाः स्युरथेल्वलः ।
मीने दैत्यप्रभेदे च शृङ्गार उज्ज्वलः पुमान् ॥ ६३ ॥
उज्ज्वलो वाच्यवद्दीप्ते परिव्यक्तविकाशिपु ।
उत्तालो मर्कटे श्रेष्ठे विकरालोत्कटे त्रिपु ॥ ६४ ॥
उत्पलं कुवले कुष्ठे निर्म्मांसे तु त्रिपूत्पलम् ।
उत्फुल्लः करणे स्त्रीणामुत्ताने विकचेऽन्यवत् ॥ ६५ ॥
उत्ताल उद्गते श्रेष्ठेप्यूर्ध्वनालेऽपि वाच्यवत् ।
उपला शर्करायां स्यादुपलो ग्रावरत्नयोः ॥ ६६ ॥
कदलीभपताकायां पताकायां मृगान्तरे ।
रम्भाया चाथ कदली पृश्न्या डिम्ब्यां च शाल्मलौ ॥ ६७ ॥

---

अर्गल–भीतरका किवाडोंका डंडा ( अरली ), तरग ( त्रि० )
आभील–कष्ट ( न० ) भयानक ( त्रि० ) ॥ ६२ ॥
इल्वला–मृगशिरनक्षत्रके शिरऊपरकी तारा, ( स्त्री० )
इल्वल–मच्छी, दैत्यभेद, ( पुं० )
उज्ज्वल–शृंगार ( पुं० ) ॥ ६३ ॥
उज्ज्वल–दीप्त, प्रकट, प्रकाशवाला ( त्रि० )
उत्ताल–बन्दर, श्रेष्ठ, विकराल ( भयंकर ), उत्कट ( तेज ) ( त्रि० ) ॥ ६४ ॥
उत्पल–कमल या बदरीफल ( बेर ) ( न० ) मासरहित ( त्रि० )
उत्फुल्ल–स्त्रियोंका कारण ( हाव ) भावादि ( पुं० ) सीधा, खिलाहुवा ( त्रि० ) ॥ ६५ ॥
उत्ताल–ऊपरको प्राप्त, श्रेष्ठ, ऊपरकी नालवाला ( त्रि० )
उपला–शर्करा ( शक्कर ) ( स्त्री० )
उपल–पत्थर, रत्न ( पुं० ) ॥६६॥
कदली–हस्तीकी ध्वजा, ध्वजामात्र, मृगभेद, केला, पृश्नि ( एडी ), मारी, साल-वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ ६७ ॥

कन्दलं कलहे युद्धे नवाङ्कुरकपालयोः ।
कलध्वनौ चाथ तरौ मृगभेदेऽपि कन्दली ॥ ६८ ॥
कपिलो मुनिभेदेऽग्नौ शुनि पिङ्गे तु वाच्यवत् ।
कपिला शिंशपागोत्रभिद्वह्निदिग्दन्तयोषिति ॥ ६९ ॥
रेणुकायां च कपिला कपालोऽस्त्री शिरोस्थनि ।
घटादिशकले कुष्ठरोगभेदे व्रजेऽपि च ॥ ७० ॥
कमलं जलजे नीरे क्लोम्नि तोषे च भेषजे ।
कमलो मृगभेदे स्यात्कमला श्रीवरस्त्रियाम् ॥ ७१ ॥
कम्बलो नागराजे ना सास्नायां च कुथे कृमौ ।
अपि स्यादुत्तरासङ्गे क्लीबं पयसि कम्बलम् ॥ ७२ ॥
करालो दन्तुरे तुङ्गे भीषणेऽप्यभिधेयवत् ।
करालो धूनतैले स्यात्करालं तु कुठेरके ॥ ७३ ॥

---

कंदल–कलह, युद्ध, नवीन अंकुर, कपाल, मधुरध्वनि ( न० )

कन्दली–केला, मृगभेद ( स्त्री० ) ॥ ६८ ॥

कपिल–कपिल-मुनि, अग्नि, कुत्ता, ( पुं० ) कपिलवर्णवाला ( त्रि० )

कपिला–सीसम-वृक्ष, पर्वतभेद, अग्निकोणके हाथीकी हथनी (स्त्री०) ॥ ६९ ॥

कपिला–रेणुका, ( स्त्री० )

कपाल–शिरकी खोपरी, घडाआदिका टुकडा, कुष्ठरोग-भेद, समूह ( पुं० न० ) ॥ ७० ॥

कमल–कँवल, जल, फेफडा, संतोष, औषधि ( न० )

कमल–मृगभेद, ( पुं० )

कमला–लक्ष्मी, श्रेष्ठ स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ७१ ॥

कंबल–नागराज, गौके गलकी चर्म, हस्तीकी पीठपर बिछानेका कपडा, कृमि, दुपट्टा, ( पुं० )

कंबल–जल ( न० ) ॥ ७२ ॥

कराल–बडेदाँतोंवाला, ऊँचा, भयंकर ( त्रि० )

कराल–रालका तेल, ( पुं० )

कराल–सफेदवनतुलसी ( न० ) ॥ ७३ ॥

कल्लोलः स्यात् उल्लोलः प्रमोदपरिपन्थिषु ।
काकोलो द्रोणकाके स्याद्विषभेदकुलालयोः ॥ ७४ ॥
अपि काकोलकाकोल्यौ स्यातामोषधिभेदयोः ।
काकीलस्तु कलाजीवे कामकेलिप्रणालयोः ॥ ७५ ॥
अपाश्रयमनोहारितरुच्छायार्थकोऽप्ययम् ।
कामलः कामुके रोगभेदे मरुवसन्तयोः ॥ ७६ ॥
काहली तु तरुण्यां स्यात्काहलं भृशशुष्कयोः ।
काहला वाद्यभाण्डस्य विशेषे काहलः खले ॥ ७७ ॥
किट्टालस्ताम्रकलशे लोहगूथेऽप्ययं पुमान् ।
कीलालं रुधिरेऽपि स्यात्पानीयेऽपि नपुंसकम् ॥ ७८ ॥
कुकूलं शङ्कुसङ्कीर्णश्वभ्रे पुंसि तुषानले ।
कुचेला विद्धकर्ण्यां स्यात्कुचेलो मलिनांशुके ॥ ७९ ॥

---

कल्लोल—भारीतरंग, आनंद, शत्रु, (पुं०)
काकोल—काकभेद, विषभेद कुम्हार (पुं०) ॥ ७४ ॥
काकोल—काकोली—औषधिभेद (क्रमसे पुं० स्त्री०)
काकील—कलासे आजीविका करनेवाला, कामकेलि, प्रणालि (जलनिर्गमस्थान) (पुं०) ॥ ७५ ॥ आश्रयरहित, सुंदर वस्तु, वृक्षछाया (पुं०)
कामल—कामी पुरुष, रोगभेद, मरुस्थल, वसंत-ऋतु (पुं०) ७६ ॥
काहली—जवान स्त्री, (स्त्री०)
काहल—अत्यंत, सूखा (न०)
काहला—वाद्यभांडभेद (स्त्री०)
काहल—खल—पुरुष (पुं०) ॥७७॥
किट्टाल—ताम्रकलश, लोहेका मल, (पुं०)
कीलाल—रुधिर, जल (न०) ॥ ७८ ॥
कुकूल—शंकु (कीलाआदि) से भराहुवा खड्डा, तुषकी अग्नि (पुं०)
कुचेला—सोनापाठा (स्त्री०)
कुचेल—मलिनवस्त्रोंवाला (त्रि०) ॥ ७९ ॥

कुटिलं वाच्यवद्दुर्गे कुटिला निम्नगान्तरे ।
कुण्डलं कर्णभूषायां तथा वलयपाशयोः ॥ ८० ॥
काञ्चनद्रौ गुडूच्यां च कुण्डली वर्तते स्त्रियाम् ।
कुद्दालो युगपत्रे स्यात्कुद्दालो भूमिदारणे ॥ ८१ ॥
कुन्तलाः स्युर्जनपदे देशे केशे च कुन्तलः
कुन्तलो लाङ्गलेऽपि स्याद्यवे मालेऽपि दृश्यते ॥ ८२ ॥
श्लोकच्छायाहरे चौरे श्याले मीने च कुम्भिलः ।
कुरलः पक्षिभेदे स्यात्कुरलश्चूर्णकुन्तले ॥ ८३ ॥
कुलालः कुम्भकारेऽपि कुक्कुभे कौशिकेपि च ।
कुवलं तूत्पले मुक्ताफलेऽपि बदरीफले ॥ ८४ ॥
कुशलं धर्मपर्याप्तिक्षेमेषु त्रिषु शिक्षिते ।
वाच्यवत्केवलस्त्वेककृत्स्नयोः कुहनेऽपि च ॥ ८५ ॥

---

कुटिल–दुर्गमस्थानआदि ( त्रि० )

कुटिला–नदी, ( स्त्री० )

कुंडल–कर्णोंका आभूषण, कंकण, पाश ( फाँशी ) ( न० ) ॥ ८० ॥

कुंडली–सुवर्णवृक्ष ( नागकेसर ), गिलोय, ( स्त्री० )

कुद्दाल–कचनार, खुदाल ( पु० ) ॥ ८१ ॥

कुन्तल–जनपद देशभेद ( पुं० बहुवचनान्त ) कुंतल–केश (वाल), हल, जव, भाला, ( पुं० ) ॥८२॥

कुंभिल–श्लोककी छायाहरनेवाला, चोर, साला, मच्छ, ( पुं० )

कुरल–पक्षिभेद, जुल्फके वाल,(पुं०) ॥ ८३ ॥

कुलाल–कुम्हार, वनमुर्गा, उल्लू-पक्षी ( पुं० )

कुवल–कमल, मोती, बेर ( न० ) ॥ ८४ ॥

कुशल–धर्म, सामर्थ्य, क्षेम, (न०)

कुशल–शिक्षित ( त्रि० )

केवल–एक, संपूर्ण ( त्रि० ) कुहन ( ठगनेकेलिये तपआदि करनेवाला) ( पुं ) ॥ ८५ ॥

निर्णीते केवलं ज्ञानभेदे स्यात्केवली न ना ।
मतः कौ वारिके केशद्रुमजातेऽपि कैशिलः ॥ ८६ ॥
कोमलं मृदुले नीरे मुनौ मद्ये च कोहलः ।
गन्धोली वरटाया स्याद्भद्राशठ्योरपि स्मृता ॥ ८७ ॥
विषे मानेऽपि गरलं गरलं तृणपूलके ।
गोकिलो मुसले सीरे गोपालो गोपभूपयोः ॥ ८८ ॥
गौरिलो लोहचूर्णे स्याद्गौरिलो गौरसर्षपे ।
ग्रन्थिलस्त्रिपु संग्रन्थौ ना करीरे विकङ्कते ॥ ८९ ॥
चञ्चला च तडिल्लक्ष्म्योश्चञ्चलश्चलकामिनोः ।
वाते पुंस्यथ चत्वालः स्याद्गर्भे हेमकुण्डले ॥ ९० ॥
चन्द्रिलश्चन्द्रमौलौ च वास्तूके नापितेऽपि च ।
चपलः क्षणिके शीघ्रे चञ्चलेऽप्यभिधेयवत् ॥ ९१ ॥

---

केवल–निर्णयकियाहुवा, ( न० )
केवली ज्ञानभेद ( स्त्री० )
कैशिल–पृथ्वी, जल, केशसमूह, वृक्षसमूह ( पु० ) ॥ ८६ ॥
कोमल–सुकुमार, जल, ( न० )
कोहल–मुनि, मद्य ( पुं० )
गन्धोली–हंसी, पीपलरायसनआदि, कचूर ( स्त्री० ) ॥ ८७ ॥
गरल–विष, प्रमाण, तृणका पूला ( न० )
गोकिल–मूसल, हल ( पुं० )
गोपाल–गोप, राजा ( पुं० ) ॥ ८८ ॥
गौरिल–लोहचूर्ण, सफेद-सरसो ( पु० )
ग्रंथिल–गाँठोवाला, ( त्रि० ) कैर-वृक्ष, कटाई या विकंकत–वृक्ष ( पुं० ) ॥ ८९ ॥
चंचला–विजली लक्ष्मी ( स्त्री० )
चचल–चलायमान, कामी ( पुं० )
चत्वाल–वायु, गर्भ, सुवर्ण–कुंडल ( पु० ) ॥ ९० ॥
चंद्रिल–महादेव, वथुवा–शाक, नाई ( पुं० )
चपल–अस्थिर बुद्धिवाला, शीघ्रता-वाला, चंचल, ( त्रि० ) ॥ ९१ ॥

चपलः पारदे मीने शिलाभेदेऽपि चोरके ।
चपला कमला विद्युत्पुंश्चलीपिप्पलीष्वपि ॥ ९२ ॥
चूडाला चक्रलायां स्याद्वाच्यवच्चूडयान्विते ।
छगली छागयोषायां छगली वृद्धदारके ॥ ९३ ॥
छगलस्तु मतश्छागे छगलं नीलवाससि ।
जगलो मेदके मद्ये कैतवे मदनद्रुमे ॥ ९४ ॥
जङ्गलस्त्रिषु निर्वारिदेशेऽस्त्री जङ्गलं पले ।
जटिलस्तु जटायुक्ते जटिला मांसिकौषधौ ॥ ९५ ॥
जम्भलः पुंसि जम्बीरे जम्भलो देवतान्तरे ।
जम्बूलो जम्बुविटपे जम्बूलः क्रकचच्छदे ॥ ९६ ॥
जम्बालः शैवले पङ्के जाङ्गलस्तु कपिञ्जले ।
वाच्यवज्जङ्गलोद्भूते शूकशिम्ब्यां तु जाङ्गली ॥ ९७ ॥

---

चपल–पारा, मच्छ, शिलाभेद, चोर, ( पुं० )
चपला–लक्ष्मी, विजली, पुंश्चली स्त्री, पीपल, ( स्त्री० ) ॥ ९२ ॥
चूडाला–निर्विषी-घास, ( स्त्री० ) चोटीवाला ( त्रि० )
छगली–बकरी, भिदारा-औषधि ( स्त्री० ) ॥ ९३ ॥
छगल–बकरा ( पुं० )
छगल–नीला वस्त्र ( न० )
जगल–मेदक ( जगल ), मदिरा, कपट, मौलसिरी या मैनफल-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ९४ ॥
जंगल–जलरहितदेश ( त्रि० )
जंगल–मास ( पुं० न० )
जटिल–जटावाला, ( त्रि० )
जटिला–जटामासी-औषधि ( स्त्री० ) ॥ ९५ ॥
जम्भल–जबीरी-नीबू, देवताभेद ( पु० )
जंबूल–जामन–वृक्ष, शाक–वृक्ष ( पु० ) ॥ ९६ ॥
जम्बाल–सिवाल, कीच, ( पुं० )
जांगल–कपिंजल–पक्षी, ( पुं० ) जंगलमे होनेवाला ( त्रि० )
जांगली–कौंचकी फली ( स्त्री० ) ॥ ९७ ॥

जाङ्गुली विषविद्यायां जाङ्गुलं जालिनीफले ।
स्यात्तण्डुलस्तु धान्यादिनिकरेऽपि विडङ्गके ॥ ९८ ॥
तमालः खङ्गे तापिच्छे तिलके वरुणद्रुमे ।
तरलश्चञ्चले खङ्गे भासुरे त्रिषु पुंसि तु ॥ ९९ ॥
हारमध्यमणौ मद्ययवाग्वोस्तरला स्त्रियाम् ।
ताम्बूली नागवल्ल्यां स्यात्ताम्बूलं क्रमुके मतम् ॥ १०० ॥
तुमुलं रणसङ्घट्टे तुमुलस्तु कलिद्रुमे ।
तैतिलो गण्डके पुसि तैतिलं करणान्तरे ॥ १०१ ॥
दुकूलमद्वयोः क्षौमे दुकूलः सूक्ष्मवाससि ।
धवलः सुन्दरे श्वेते त्रिषु पुंसि महावृषे ॥ १०२ ॥
धवली सौरमेय्यां स्यान्नकुलः पाण्डवान्तरे ।
बभ्रौ च नकुली तु स्यात्कुक्कुट्यां मासिकौषधौ ॥ १०३ ॥

---

जांगुली–विषविद्या ( स्त्री० )
जांगुल–झिमनी तोरईके फल (न०)
तंडुल–धान्यआदिका समूह, बाय-
विडग ( पु० ) ॥ ९८ ॥
तमाल–खड्ग, तमाल–वृक्ष, तिलक–
पुष्पवृक्ष, वरना–वृक्ष ( पुं० )
तरल–चचल, खड्ग, ( पुं० ) तेज-
वाला ( त्रि० ) ॥ ९९ ॥
हारकी मध्यमणि, ( पु० )
तरला–मदिरा, यवागू ( पतला रँधा
हुवा अन्न ( स्त्री० )
तांबूली–नागरवेल, ( स्त्री० )
तांबूल–सुपारी ( न० ) ॥ १०० ॥

तुमुल रणसघट्ट ( रणसमूह, ) (न०)
तुमुल–बहेडा–वृक्ष ( पुं० )
तैतिल–गैंडा ( पु० )
तैतिल–करण ( न० ) ॥ १०१ ॥
दुकूल–रेशमीवस्त्र ( न० )
दुकूल–बारीकवस्त्र ( पुं० )
धवल–सुंदर, श्वेत ( सफेद ) (त्रि०)
बडाबैल ( पुं० ) ॥ १०२ ॥
धवली–गौ, ( स्त्री० )
नकुल–एक पाडव, नौला ( पु० )
नकुली–सेमर–वृक्ष, जटामासी
( औषधि ) ( स्त्री० ) ॥ १०३ ॥

नाकुली कुक्कुटीकन्दे नाकुली चव्यरास्नयोः ।
नाभीलं नाभिगर्भाण्डे वङ्क्षणे चोत्तमस्त्रियः ॥ १०४ ॥
निचुलस्तु निचोले स्यान्निचुलो हिज्जलद्रुमे ।
निर्म्माल्येऽप्यभ्रके क्लीवं विमले त्रिषु निर्मलम् ॥ १०५ ॥
निष्कलस्तु कलाशून्ये नष्टबीजेऽपि वाच्यवत् ।
निष्कला तु मता तस्यां या नारी विगतार्त्तवा ॥ १०६ ॥
वर्तुलेऽपि चलेऽपि स्यान्निस्तलं वाच्यलिङ्गकम् ।
नैपाली नवमाल्यां स्यात्कुनटीशुवहाख्ययोः ॥ १०७ ॥
पञ्चाली पुत्रिकागीत्योः पञ्चालो जनदेशयोः ।
पटलं तु छर्दिर्नेत्ररुक्पिटके परिच्छदे ॥ १०८ ॥
न पुंसि वृन्दे पटलं पटोलं कर्कशच्छदे ।
पटोलं वस्त्रभेदे स्याज्ज्योत्स्निकायां पटोल्यपि ॥ १०९ ॥

---

नाकुली—कुक्कुटीकंद, चव्य, रायसन ( स्त्री० )
नाभील—श्रेष्ठस्त्रीकी नाभि ( टूंडी )के भीतरका अंडा, जघा की संधि ( न० ) ॥ १०४ ॥
निचुल—अंगरखा,हिज्जल (जलवेत)का भेद ( पुं )
निर्मल—निर्माल्य ( भोगीहुईवस्तु ), भोडल, ( न० ) मलरहित (त्रि०) ॥ १०५ ॥
निष्कल—कलारहित, नष्टबीज ( नष्ट-वीर्य ) पुरुषआदि ( त्रि० )
निष्कला—रजस्वलाहोनेसे बंदहुई स्त्री ( स्त्री० ) ॥ १०६ ॥
निस्तल—गोल आकार, चल ( अ-स्थिर ) ( त्रि० )
नैपाली—नेवारी, मनसिल, काले फूलवाली निर्गुंडी ( स्त्री० ) ॥ १०७ ॥
पंचाली—पुतली, गीति, ( स्त्री० )
पंचाल—जन, देश ( पुं० )
पटल—परदा, नेत्ररोग, पिटारी, ढकना, ( न० ) ॥ १०८ ॥
पटल—समूह ( स्त्री० न० )
पटोल—परवल, वस्त्रभेद, ( न० )
पटोली—सफेद फूलकी तोरई या रे-णुका ( स्त्री० ) ॥ १०९ ॥

तिलचूर्णे पले पङ्के पललं राक्षसे पुमान् ।
पाकलं कुष्ठभैषज्ये पाकलः कुञ्जरज्वरे ॥ ११० ॥
कूटपूर्वश्च तत्रैव लवणाङ्के तु पाकली ।
पाचलो गन्धद्रव्ये दहने पवनेऽपि च ॥ १११ ॥
पाटला पाटलितरौ पुष्पे स्यात्पाटला न ना ।
पाटली पाटलायां स्यादाशुव्रीहौ तु पाटलः ॥ ११२ ॥
पाटलः श्वेतरक्तेऽपि वहति त्रिषु पाटलम् ।
मृत्पात्रभेदे वामायां वागुरायां च पातिली ॥ ११३ ॥
पातालं भूतलेऽप्यौर्वे बन्धक्यां भुवि पांशुला ।
पांशुलः पुंश्चले शम्भुखट्वाङ्गे पांशुसंयुते ॥ ११४ ॥
पिङ्गलो मुनिभेदेऽग्नौ चण्डांशोः पारिपार्श्विके ।
निधिभेदे कपौ रुद्रे पिङ्गलः कपिलेऽन्यवत् ॥ ११५ ॥

---

पलल—तिलचूर्ण, पङ्क ( कादा ), मांस ( न० )
पलल—राक्षस, ( पुं० )
पाकल—कुष्ठऔषधि, ( न० )
पाकल—हाथीका ज्वर ( पुं० ) ॥ ११० ॥
कूटपाकल—हाथीका ज्वर ( पुं० )
पाकली—लवण-शाक ( स्त्री० )
पाचल—गन्ध ( [illegible] ) द्रव्य, अग्नि, पवन, ( पुं० ) ॥ १११ ॥
पाटला—पाटल-वृक्ष, पाटलके पुष्प ( स्त्री० न० )
पाटली—मेढा या पाडल, ( स्त्री० )
पाटल—आशुधान ( पुं० ) ॥ ११२ ॥
पाटल—श्वेतमिश्रित रक्तवर्ण, ( पुं० ) श्वेतरक्तवर्णवाला ( त्रि० )
पातिली—मिट्टीके पात्रका भेद, स्त्री-भेद, मृगबंधिनी ( जाल ) ( स्त्री० ) ॥ ११३ ॥
पाताल—पृथ्वीका तलभाग, वडवानल ( पुं० )
पांशुला—व्यभिचारिणी स्त्री, पृथ्वी ( स्त्री० )
पांशुल—व्यभिचारी-पुरुष, शिवका खट्वांग ( पु० ) धूलियुक्त ( त्रि० ) ॥ ११४ ॥
पिंगल—मुनिभेद, अग्नि, सूर्यका समीपवर्ती, निधिभेद, बंदर, रुद्र, ( पुं० ) पिंगलवर्णवाला ( त्रि० ) ॥ ११५ ॥

स्त्रियां करायिकावेश्या कुमुदस्त्रीपु पिङ्गला ।
पिचुलो झवुके पुंसि निचुले वारिवायसे ॥ ११६ ॥
पिच्छिला शाल्मलौ सिन्धुभेदेशिंशपयोः स्त्रियाम् ।
स्त्रियामुपोदिकायां च पिच्छिलो विजिले त्रिषु ॥ ११७ ॥
पिञ्जलं कुशपत्रे स्यात्पीतेऽपि त्रिषु पिञ्जलम् ।
पित्तलं तैजसद्रव्ये पित्तयुक्ते तु वाच्यवत् ॥ ११८ ॥
पिप्पला जलपिप्पल्यां बोधिवृक्षे तु पिप्पलः ।
निरंशुले पक्षिभेदे पिप्पलः पिप्पलं जले ॥ ११९ ॥
वसनच्छेदभेदेऽपि कणायां तु च पिप्पली ।
पुद्गलः सुन्दराकारे देहे चात्मनि पुद्गलः ॥ १२० ॥
पेशलो रुचिरे दक्षे चारुशीलेऽपि वाच्यवत् ।
प्रस्खलो वाजिसन्नाहे त्रिषु ह्यन्तश्चले चले ॥ १२१ ॥

---

पिंगला–पक्षिणीभेद, वेश्याभेद, कुमुदिनी ( स्त्री० )
पिचुल–झाऊ–वृक्ष, जलवेतका भेद, जलकाग ( पुं० ) ॥ ११६ ॥
पिच्छिला–साल–वृक्ष, नदीभेद, सीसम–वृक्ष, शकुन–चिडी (स्त्री०)
पिच्छिल–मंडयुक्त दधिआदि (त्रि०) ॥ ११७ )
पिंजल–कुशाका पत्र ( न० ) पीला रंगवाला ( त्रि० )
पित्तल–पीतल–धातु, ( न० ) पित्तयुक्त ( त्रि० ) ॥ ११८ ॥
पिप्पला–जलपीपल ( स्त्री० )
पिप्पल–पीपल–वृक्ष ( पु० )
पिप्पल–कांतिहीन, पक्षिभेद, (पुं०)
पिप्पल–जल ( न० ) ॥ ११९ ॥
वस्त्र फटनेका भेद, ( पु० )
पिप्पली–पीपल–औषधि ( स्त्री० )
पुद्गल–सुंदर आकारवाला शरीर, आत्मा, ( पु० ) ॥ १२० ॥
पेशल–सुंदर, चतुर, अच्छे स्वभाववाला ( त्रि० )
प्रस्खल–अश्वका कवच, ( पुं० ) अंतःकरणसे चलित, ॥ १२१ ॥

प्रतलः स्यात्संहतयोर्वामदक्षिणहस्तयोः ।
पाताललोके प्रतलस्तताङ्गुलिकरेऽपि च ॥ १२२ ॥

वीणादण्डे प्रवालोऽस्त्री विद्रुमे नवपल्लवे ।
फेनिलोऽरिष्टवृक्षे स्यात्फेनिलं वदरीफले ॥ १२३ ॥

मदनद्रुफले चैव सफेने फेनिलस्त्रिषु ।
वन्धलस्त्वामले पुञ्जे पल्वले मत्तकुञ्जरे ॥ १२४ ॥

वहुलं व्योम्नि वहुला त्वेलानीलिकयोर्भुवि ।
वहुलाः कृत्तिकासु स्युः कृष्णपक्षेऽनले पुमान् ॥ १२५ ॥

वहुलस्तु मतः प्राज्ये कृष्णवर्णेऽपि वाच्यवत् ।
वार्दलो दुर्दिने पुंसि मसीधानेऽपि वार्द्दलः ॥ १२६ ॥

मङ्गला श्वेतदूर्वाया मङ्गलस्तु महीसुते ।
मङ्गलं श्रेयसि क्लीवं तथा लब्धार्थरक्षणे ॥ १२७ ॥

---

प्रतल—वायें दायें दोनों हाथ मिले हुए, पाताललोक, फैलीहुई अगुलियोंवाला हाथ ( पुं० ) ॥१२२॥
प्रवाल—वीणाका दड, मूँगा, नवीन पल्लव ( पुं० )
फेनिल—रीठाका वृक्ष, ( पु० )
फेनिल—वेरीका फल ( वेर )॥१२३॥ मैनफल ( न० )
फेनिल—फेनों ( झागो ) वाला ( त्रि० )
वन्धल—आँवला, समूह, छोटी तालाई, उन्मत्त हस्ती ( पु० ) १२४
वहुल—आकाश, ( न० )
वहुला—इलायची, नीला ( नील ), पृथ्वी ( स्त्री० )
वहुला—छहों कृत्तिका ( स्त्री० )
वहुल—कृष्णपक्ष, अग्नि ( पुं० ) ॥ १२५ ॥ वहुत, काला रंगवाला (त्रि०)
वार्द्दल—मेघोंसे छायादिन, दवात ( पुं० ) ॥ १२६ ॥
मंगला—सफेद दूव, ( स्त्री० )
मंगल—मंगल-ग्रह ( पुं० )
मंगल—कल्याण, लब्धद्रव्यकी रक्षा ( न० ) ॥ १२७ ॥

मञ्जुलो जलरङ्कौ स्यान्मञ्जौ तु त्रिषु पेषलः ।
मलञ्जुं शैवले कुञ्जे विम्बेषु त्रिषु मण्डलम् ॥ १२८ ॥
मण्डलं निकुरुम्बेऽपि देशे द्वादशराजके ।
कुष्ठाहिभेदे परिधौ चक्रवाले च मण्डलम् ॥ १२९ ॥
मण्डलं स्यान्मण्डलके सारमेये तु मण्डलः ।
महिला तु महेलायां महिलाऽभीरुगुन्द्रयोः ॥ १३० ॥
माचलो वन्दिचौरे स्यादामये ग्राहयादसोः ।
धत्तूरे सामके व्रीहौ मदनद्रौ च मातुलः ॥ १३१ ॥
समन्तात्तालमूल्याखुकर्ण्योस्तु मुसली स्त्रियाम् ।
मुसली गृहगोधायामयोग्रे मुसलं मतम् ॥ १३२ ॥
काञ्च्यां शैलनितम्बे च खड्गबन्धे च मेखला ।
मेखला कटिदेशे च रसालः सरसे त्रिषु ॥ १३३ ॥

---

मंजुल—जलमृग, (पुं०) सुंदर, (त्रि०)

चतुर—सुंदर (त्रि०)

मंजुल—सिवाल, कुंज, (न०)

मंडल—विंब (त्रि०) ॥ १२८ ॥

मंडल—समूह (न०) बारह राजाओंके मध्यका देश, कुष्ठभेद, सर्पभेद, कभी दीखनेवाला सूर्यका कुंडल, (गोल घेरा) (पुं०) १२९

मंडल—गोल मंडल, (न०) कुत्ता (पुं०)

महिला—स्त्री, शतावर, फूल प्रियंगू (स्त्री०) ॥ १३० ॥

माचल—वन्दिचोर, रोग, ग्राह, जलजतु (पु०)

मातुल—धतूरा, सामक, व्रीहि, मैनफल—वृक्ष, (पुं०) ॥ १३१ ॥

मुसली—तालमूली, मूसाकनी, छपकली, (स्त्री०)

मुसल—मूसल (न०) ॥ १३२ ॥

मेखला—करधनी, पर्वतका नितंब, खड्गबंध, कटिदेश, (स्त्री०)

रसाल—रसवाला, (त्रि०) ॥ १३३ ॥

रसाल इक्षौ चूते च रसालं वेलिसिह्नयोः ।
रसाला मार्जितायां स्याज्जिह्वादूर्वाविदारिषु ॥ १३४ ॥

रामिलो रमणे कामे लाङ्गूलं पुच्छशेफयोः ।
लाङ्गली जलपिप्पल्यां लाङ्गलं कुसुमान्तरे ॥ १३५ ॥

गृहदारुविशेषे च सीरे ताले च लाङ्गलम् ।
लोहलः शृङ्खलाधार्ये त्रिषु त्वव्यक्तभाषिणि ॥ १३६ ॥

वण्टालः शूरयोर्युद्धे पुंसि नौकाखनित्रके ।
वातुलो वातसंघाते वातले मारुताऽसहे ॥ १३७ ॥

वातलं राजकूष्माण्डबीजकोलास्थिबीजयोः ।
वामिलो दाम्भिकेऽपि स्यात्त्रिषु वामेऽपि वामिलः ॥ १३८ ॥

विडालः पुंसि मार्जारे विडालो विहगान्तरे ।
विपुलः पृथुलेऽगाधे मेरुपश्चिमपर्वते ॥ १३९ ॥

---

रसाल—ऊख, आम, ( पुं० ) बोल, शिलारस ( न० )
रसाला—दही शहद खाड मिरच अदरक आदिसे बनाई हुई चटनी, जीभ, दूब, विदारीकंद ( स्त्री० ) ॥ १३४ ॥
रामिल—रमण ( पति ), कामदेव, ( पु० )
लांगूल—पूँछ, लिंग, ( न० )
लाङ्गली—जलपीपल, ( स्त्री० )
लांगल—पुष्पभेद, ( न० ) ॥१३५॥
गृहकाष्ठविशेष, हल, ताड—वृक्ष; (न०)
लोहल—शृङ्खलाधार्य ( संकलसे रोकनेयोग्य) ( पुं० ) अप्रकट बोलनेवाला ( त्रि० ) ॥ १३६ ॥
वण्टाल—शूरवीरोंका युद्ध, नौका, जमीन खोदनेका औजार ( पु० )
वातूल—वायुका समूह ( पुं० ) वातवाला, वायुको नहीं सहनेवाला ( त्रि० ) ॥ १३७ ॥
वातल—कोहलाके बीज, बेरकी गुँठली, ( न० )
वामिल—दंभी, सुंदर ( त्रि० )१३८
विडाल—बिलाव, पक्षिभेद ( पुं० )
विपुल—बडा, विनाथाहवाला, सुमेरुका पश्चिमपर्वत ( पु० )॥१३९॥

विमला शातलाभूमिभेदयोर्निर्म्मले त्रिषु ।
विशालो वृक्षभेदे स्याद्विशाले विपुलेऽन्यवत् ॥ १४० ॥
विशाला त्विन्द्रवारुण्यामुज्जयिन्यां च दृश्यते ।
वृषलः पुंसि शूद्रे स्याच्चन्द्रगुप्तेऽपि राजनि ॥ १४१ ॥
शकलं वल्कले खण्डे रागवस्तुत्वचोरपि ।
क्लीबं पाथेयकुलयोर्म्मत्सरे त्रिषु शम्बलम् ॥ १४२ ॥
शयालुः शुन्यजगरे निद्राशीले तु वाच्यवत् ।
शरालं नीरसोपाने वास्तुपोतेऽपि पञ्जरे ॥ १४३ ॥
ऋजौ वक्रे च शीले च शार्दूलो राक्षसान्तरे ।
अष्टापदेऽपि व्याघ्रेऽपि श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थितः ॥ १४४ ॥
शाल्मलिस्तु द्वयोर्वृक्षभेदे द्वीपान्तरेऽपि च ।
शीतलं शैलजे पुष्पे काशीशे मलयोद्भवे ॥ १४५ ॥

---

विमला–शातला (थूअर) भेद, पृथ्वीभेद, (स्त्री०) निर्मल, (त्रि०)

विशाल–वृक्षभेद, (पुं०) बडा, बहुत, (त्रि०) ॥ १४० ॥

विशाला–इद्रायण-औषधि, उज्जैन-नगरी (स्त्री०)

वृषल–शूद्र, चंद्रगुप्त राजा (पुं०) ॥ १४१ ॥

शकल–वृक्षका वल्कल, टुकडा, रँगनेकी वस्तु, चर्म (न०)

शम्बल–मार्गकी खरची, कुल, (न०) मत्सरी–पुरुषआदि (त्रि०) ॥ १४२ ॥

शयालु–कुत्ता, अजगर, (पुं०) निद्राशील (त्रि०)

शराल–तालावकी पैडी, गृहनौका, पींजरा, (न०) ॥ १४३ ॥ सरल, वक्र, शील, (त्रि०)

शार्दूल–राक्षसभेद, अष्टापद (धतूरा या सोना) बघेरा, और दूसरे शब्दके आगे जुडा होनेसे श्रेष्ठ, (पु०) ॥ १४४ ॥

शाल्मलि–वृक्षभेद, द्वीपभेद, (पुं० स्त्री०)

शीतल–पत्थरका फूल या भूरिछरीला, कसीस, मलयाचलमें होनेवाला (चंदन) (न०) ॥ १४५ ॥

शीते चासनपर्ण्यां च शीतलः शीतले त्रिपु ।
शेवाले शीतलं क्लीबं शैलेयेऽपि च शीतलम् ॥ १४६ ॥
शृगाली तु शिवाभीत्योः शृगालः फेरुदैत्ययोः ।
शृङ्खला निगडेऽपि स्यात्पुंस्कटीवस्त्रबन्धने ॥ १४७ ॥
शेवाले पद्मकाष्ठेऽपि शैवलं मतमद्वयोः ।
शौष्कलः शुष्कमांसस्य पाणिके पिशिताशिनि ॥ १४८ ॥
श्मामलस्त्वसितेऽस्वच्छे श्यामवर्णे तु वाच्यवत् ।
श्रद्धालुर्दोहदिन्यां स्याद्वाच्यवच्छ्रद्धयान्विते ॥ १४९ ॥
श्रीफली नीलिकाधात्र्योर्म्मोलूरे श्रीफली पुमान् ।
षण्डाली तु सरोजिन्यां कामुकीतैलमानयोः ॥ १५० ॥
सङ्कुलं वाच्यवद्व्यातेऽस्पष्टार्थवचनेऽपि च ।
सन्धिला तु सुरङ्गायां नदीमदिरयोरपि ॥ १५१ ॥

---

शीतल—ठंढ, रसुनिया घास या कोयल, ( पुं० ) ठंढा, ( त्रि० ) शिलाजीत ( न० ) ॥ १४६ ॥
शृगाली—गीदड़ी, भीति, (भय)(स्त्री०)
शृगाल—गीदड़, दैत्य, ( पुं० )
शृंखला—बेड़ी, पुरुषकी कटिवस्त्रका बंधन ( स्त्री० ) ॥ १४७ ॥
शैवल—सिवाल, पद्मकाष्ठ—औषधि ( न० )
शौष्कल—सूखे मासकी दुकानवाला, मासभक्षी ( पुं० ) ॥ १४८ ॥
श्यामल—नीलवर्ण, मलिनवर्ण ( पुं० ) श्यामवर्णवाला ( त्रि० )
श्रद्धालु—दोहद ( इच्छा ) वाली स्त्री, ( स्त्री० ) श्रद्धायुक्त, ( त्रि० ) ॥ १४९ ॥
श्रीफली—नीली, ( नीलका पेड़ ), आँवला, ( स्त्री० )
श्रीफल—बेल-वृक्ष, ( पुं० )
षण्डाली—कमलिनी, सभोगकी इच्छावाली स्त्री, तैलप्रमाण, ( स्त्री० ) ॥ १५० ॥
सङ्कुल—व्याप्त, ( त्रि० ) अस्पष्टअर्थवाला वचन, ( न० )
संधिला—सुरग, नदी, मदिरा, ( स्त्री० ) ॥ १५१ ॥

लचतुर्थम् ।

वलाभेदे त्वातिवला प्रवलेऽतिवलस्त्रिषु ॥
अक्षमाला विजानीयादरुन्धत्यक्षसूत्रयोः ॥ १५२ ॥
उदूखलं गुग्गुलौ स्यादुलूखलमुलूखले ।
एकाष्ठीला स्त्रियां पुंसि पापचेल्यां वुके क्रमात् ॥ १५३ ॥
कचमालो मरुद्वाहे नागभेदे जटान्तरे ।
कन्दरालः पुमान्गर्दभाण्डेऽक्षप्लक्षवृक्षयोः ॥ १५४ ॥
अस्त्री कमण्डलुः कुण्ड्यां पर्कटीपादपे पुमान् ।
क्लीबं कर्म्मफलं कर्म्मरङ्गकर्म्मविपाकयोः ॥ १५५ ॥
पुंसि कोलाहले सर्जरसे कलकलः स्मृतः ।
कुतूहलं कौतुके स्यात्त्रिषु शस्ते कुतूहलम् ॥ १५६ ॥
कृताञ्जलिस्तु भैषज्ये विहितो येन चाञ्जलिः ।
खतमालः पुमान्धूमे खतमालो वलाहके ॥ १५७ ॥

---

लचतुर्थ ।

अतिवला–खरॅहटीभेद (पीलेरंगकी खरॅहटी,) (स्त्री०)
अतिवल–प्रवल-पुरुष आदि (त्रि०)
अक्षमाला–अरुंधती (वसिष्ठकी स्त्री), रुद्राक्षकी माला, (स्त्री०) ॥ १५२ ॥
उदू(लू)खल–गूगल, ऊखल, (न०)
एकाष्ठीला–सोनापाठा, (स्त्री०)
एकाष्ठील–गूमा-औषधि (पुं०) ॥ १५३ ॥
कचमाल–······,नागभेद, जटाभेद (पुं०)
कन्दराल–पारसपीपल, अखरोट या बहेडा, पिलखनवृक्ष, (पुं०) ॥ १५४ ॥
कमंडलु–कूंडी, पिलखन-वृक्ष, (पुं०) (पुं० न०)
कर्मफल–कमरख फल, कर्मोंका फल, (न०) ॥ १५५ ॥
कलकल–कोलाहल, (हल्ला), राल-वृक्ष, (पुं०)
कुतूहल–कौतुक, श्रेष्ठ, (न०) ॥ १५६ ॥
कृतांजलि–औषधि, जिसने अंजलि करी है वह, (पुं०)
खतमाल–धूवाँ, मेघ, (पुं०) १५७

गण्डशैलो गिरिभ्रष्टस्थूलोपलकपोलयोः ।
स्त्रियां गन्धफली फल्यां तथा चम्पककोरके ॥ १५८ ॥

गोलांगूलं तु गोपुच्छे गोलाङ्गूलः कपौ पुमान् ।
चक्रवालो गिरेर्भेदे चक्रवालं तु मण्डले ॥ १५९ ॥

जलाञ्चलं तु शैवाले स्वतः पानीयनिर्गमे ।
दलामलं मरुवके दमनेऽपि दलामलम् ॥ १६० ॥

ध्वनिनाला तु वीणाया वेणुकाहलयोरपि ।
भवेत्परिमलश्चित्तहारिगन्धविमर्दयोः ॥ १६१ ॥

रतामर्दसमुन्मीलदङ्गरागादिसौरभे ।
पीठकेलिः पीठमर्दे करकाकेक्षिरागयोः ॥ १६२ ॥

दौर्गतौ वारिवाहे च पीठकेलिपदाभिधा ।
स्त्रीपुंसयोर्बहुफला मलयूनीपयोः क्रमात् ॥ १६३ ॥

---

गंडशैल—पर्वतसे गिराहुवा वडा पत्थर, कपोल ( गाल ), ( पुं० )
गंधफली—फूलप्रियंगू, चपाकी कली, ( स्त्री० ) ॥ १५८ ॥
गोलांगूल—गौकी पूंछ, (न०) वन्दर, ( पुं० )
चक्रवाल—पर्वतभेद, ( पु० ) मंडल, ( न० ) ॥ १५९ ॥
जलांचल—शिवाल, आपसे पानीका झिरना, ( न० )
दलामल—मरुवा, दौना, ( न० ) ॥ १६० ॥
ध्वनिनाला—वीणा, वेणु ( वंशी ), काहल, ( वडा ) नगारा, (स्त्री०)
परिमल—चित्तको हरनेवाला गंध, ( पुं० ) ॥ १६१ ॥
विशेषमर्दन, सुरतके मर्दनमें उत्पन्न हुवा अंगरागका गध, ( पु० ) ॥ १६२ ॥
पीठकेलि—अतिधृष्ट, ओला, नेत्ररंजन, दुर्गतिवाला, मेघ, (पुं० स्त्री०)
वहुफला—कठूमर, ( स्त्री० )
वहुफल—कदंव-वृक्ष, (पु०) ॥१६३॥

बृहन्नलो गुडाकेशे महापोटगलेऽपि च ।
भद्रकाली तु पार्वत्यां गन्धोल्यामोषधीभिदि ॥ १६४ ॥
भस्मतूलं हिमे पांशुवर्षणग्रामकूटयोः ।
मणिमाला मता योषिद्दशनक्षतहारयोः ॥ १६५ ॥
मदकलः स्यान्मत्तेभे मदेनाऽव्यक्तवाचि च ।
महाकालो महादेवे किम्पाके प्रमथान्तरे ॥ १६६ ॥
महानीलो नागभेदे महानीलश्च मार्कवे ।
महावलं सीसके च वलप्रौढे तु वाच्यवत् ॥ १६७ ॥
गोरक्षतण्डुलायां तु स्त्रियामेव महावला ।
मुक्ताफलं तु मुक्तायां कर्णपूरे वले फले ॥ १६८ ॥
स्यात्कदल्यां मृत्युफली महाकालतरौ पुमान् ।
पुमान्यवफलो वेणौ कुटजे मांसिकौषधौ ॥ १६९ ॥

---

बृहन्नल–अर्जुन, वडा देवनल या काश, ( पुं० )
भद्रकाली–पार्वती, छोटाकचूर, औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ १६४ ॥
भस्मतूल–हिम (ठंढ), गॉवका कुरड, रजका वरसना,
मणिमाला–स्त्रीके दांतोंसे काटनेका चिह्न, हार, ( स्त्री० ) ॥ १६५ ॥
मदकल–उन्मत्त हस्ती, मदसे अव्यक्तवाणीवाला, ( पुं० )
महाकाल–महादेव, महाकाललता, शिवगणभेद, ( पुं० ) ॥ १६६ ॥
महानील–नागभेद, कूकरभंगरा, ( पुं० )
महावल–महावल शीशा, ( न० ) वहुतवलवान, ( त्रि० ) ॥ १६७॥
महावला–गंगेरन ( स्त्री० )
मुक्ताफल–मोती, कर्णआभूषण, वल, फल, ( न० ) ॥ १६८ ॥
मृत्युफली–केला, ( स्त्री० )
कदल–महाकाल-वृक्ष, ( पुं० )
यवफल–वास, इंद्रजव, जटामासी औषधि, ( पुं० ) ॥ १६९ ॥

रजस्वलस्तु महिषे पुष्पवत्यां रजस्वला ।
वातकेलिः कलालापे पिङ्गानां दन्तखण्डने ॥ १७० ॥
क्लीवं वायुफलं शक्रकार्मुके वर्षणोपले ।
पुमान्विचकिलो मल्लीभेदे दमनकेऽपि च ॥ १७१ ॥
उदुम्बरे स्कन्धफले नालिकेरे सदाफलः ।
हरिताली नभोरेखाखड्गदूर्वासु दृश्यते ॥ १७२ ॥
हलाहलो ब्रह्मसर्प्पे ज्येष्ठिकाया विषान्तरे ।
ऐरावते हस्तिमल्लो हस्तिमल्लो विनायके ॥ १७३ ॥

लपंचमम् ।

आसुतोवलशब्दस्तु मतो यज्वनि शौण्डिके ।
भवेदुद्दण्डपालस्तु मत्स्यसर्प्पप्रभेदयोः ॥ १७४ ॥
राजराजेऽपि कालिन्दीभेदनेप्येककुण्डलः ।
गजपित्तज्वरे पाके पवने कूटपाकलः ॥ १७५ ॥

---

रजस्वल—भैंसा, ( पु० )
रजस्वला—ऋतुधर्मवाली स्त्री, (स्त्री०)
वातकेलि—सूक्ष्मशब्दसे आलाप, कामीपुरुषके दांतोंसे काटना, (स्त्री०) ॥ १७० ॥
वायुफल—इंद्रधनुष, वर्षाका पत्थर ( ओला ), ( न० )
विचकिल—मल्लिकाभेद, दौंना, (पुं०) ॥ १७१ ॥
सदाफल—गूलर,.. , नालीर (पुं० )
हरिताली—आकाशरेखा, खड्ग, दूब, ( स्त्री० ) ॥ १७२ ॥
हलाहल—ब्रह्मसर्प ( नागभेद ), जेठीमधु, विषभेद ( पुं० )
हस्तिमल्ल—ऐरावत हस्ती, गणेश ( पुं० ) ॥ १७३ ॥

लपंचम ।

आसुतीवल—यज्ञकरनेवाला, मदिरा बेचनेवाला, ( पुं० )
उद्दंडपाल—मच्छभेद, सर्पभेद,(पुं०) ॥ १७४ ॥
एककुंडल—कुवेर, बलदेव, ( पुं० )
कूटपाकल—हस्तीका पित्तज्वर, पाक, पवित्रकरना, ( पु० ) ॥ १७५ ॥

कूपीटपालः पुंस्येव केनिपातसमुद्रयोः ॥ १७६ ॥ ॥
स्यात्पाण्डुकम्बलः श्वेतकम्बले ग्रावदन्तरे ।
विवाहदिनसम्बन्धशिरोमाल्येऽपि सम्मता ॥ १७७ ॥
मता सुरतताली तु दूतिकामस्तकस्रजोः ।
मन्त्रचूर्णलमिच्छन्ति वशीकरणवेदिनि ॥ १७८ ॥
डाकिनीमोक्षमन्त्रज्ञे कुशाम्बुप्रोक्षणेऽपि च ॥ १७९ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानाया मुक्तावल्या लकारान्तवर्ग ॥

---

## अथ वान्तवर्गः ।

### वैकम् ।

वः कुम्भे वरुणे व स्यादिवार्थे सात्वनेऽव्ययम् ।
वा वाततातयोर्ग्रन्थौ विः खगाकाशयोः पुमान् ॥ १ ॥
स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं तु त्रिष्वात्मीये धनेऽस्त्रियाम् ।

---

कूपीटपाल–पतवार, समुद्र, ( पुं० ) ॥ १७६ ॥

पांडुकंबल–सफेद कंबल, पत्थरभेद, ( पुं० )

सुरतताली–विवाहदिनकी शिरकी माला, ( स्त्री० ) ॥ १७७ ॥

दूती, मस्तककी माला, ( स्त्री० ) ॥ १७८ ॥

मंत्रचूर्णल–वशी करण जाननेवाला, डाकिनी छोडनेका मंत्र जाननेवाला, कुशाके जलसे प्रोक्षण (छींटादेना), ( पुं० ) ॥ १७९ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामे लान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ वान्तवर्गः ।

वैकम् ।

व–कुंभ, वरुण, ( पुं० ) व–इव–अव्ययका अर्थ ( सादृश्यार्थ ), सांत्वना ( अव्यय ),

वा–वायु, तात (पिता पुत्र आदि), ( पुं० )

वि–पक्षी, आकाश ( पुं० ) ॥ १ ॥

स्व–जाति, आत्मा ( पुं० ) स्व–आत्मीय ( अपना ), ( त्रि० ) धन, ( पुं० न० )

वद्वितीयम् ।

कविः शुक्रेऽपि वाल्मीके सूरौ काव्यकरे पुमान् ॥ २ ॥
किण्वं पापे सुरावीजे क्लीवः पण्डेऽप्यविक्रमे ।
खर्वो ह्रस्वे न्यगर्थेपि खर्वः स्यादभिधेयवत् ॥ ३ ॥
ग्रीवा ग्रीवाशिरायां स्याद्ग्रीवा स्यात्कन्धराभिधा ।
छविः स्यादपि शोभायां द्युतावपि मतश्छविः ॥ ४ ॥
ओन्ड्रपुष्पे जवा वेगे जवो वेगिनि वाच्यवत् ।
जीवो वाचस्पतौ वृक्षप्रभेदे प्राणिमात्रयोः ॥ ५ ॥
जीवा जीवन्तिकामौर्वीक्षितिशिञ्जितवृत्तिषु ।
मता जीवा वचायां च जीवा जीवं च जीविते ॥ ६ ॥
तत्त्वं स्वरूपे नृत्यस्य प्रभेदे परमात्मनि ।
दवो दावश्च पुंस्येव वनेऽपि वनपावके ॥ ७ ॥
दिवं स्वर्गेऽन्तरिक्षे च द्यौर्द्यौर्दिवि च खे स्त्रियाम् ।
देवो राज्ञि सुरे मेघे देवं स्यादिन्द्रिये मतम् ॥ ८ ॥

---

वद्वितीय ।

कवि–शुक्र, वाल्मीक, पंडित, काव्यको रचनेवाला, ( पुं० ) ॥ २ ॥
किण्व–पाप, मदिराका वीज, क्लीव (नपुंसक), पराक्रमरहित, (त्रि०)
खर्व–छोटा, ( बौना ), नीच, (त्रि०) ॥ ३ ॥
ग्रीवा–गरदनकी नाडी, गरदन, (स्त्री०)
छवि–शोभा, दीप्ति, (स्त्री०) ॥ ४ ॥
जवा–गुडहरपुष्प, ( स्त्री० )
जव–वेग (शीघ्रता), वेगवाला, (त्रि०)
जीव–बृहस्पति, वृक्षभेद, प्राणीमात्र, ( पुं० ) ॥ ५ ॥
जीव–जीवन्ती, मेंढासींगी, पृथ्वी, भूषणोका शब्द, वृत्ति ( जीविका ), वच, ( स्त्री० ) जीव–जीवित, ( पुं० न० ) ॥ ६ ॥
तत्त्व–स्वरूप, नृत्यभेद, परमात्मा, ( न० )
दव–दाव–वन, वनअग्नि, ( पुं० ) ॥ ७ ॥
दिव–स्वर्ग, अंतरिक्ष, ( पृथ्वी और आकाशका मध्य ), ( न० )
दिव्–स्वर्ग, आकाश, ( स्त्री० )
देव–राजा, देवता, मेघ, ( पुं० )
देव–इन्द्रिय, ( न० ) ॥ ८ ॥

देवी भट्टारिकायां च तेजनीपृक्कयोरपि ।
नाट्योक्त्यां चाभिषिक्तायां देवी देवी नृपस्त्रियाम् ॥ ९ ॥
द्रवः स्यान्नर्मणि रसे प्रद्रावे विद्रवे गतौ ।
द्वन्द्वं तु मिथुने युग्मे द्वन्द्वः कलहगुह्ययोः ॥ १० ॥
धवः पत्यौ पुमान्वृक्षभेदे धूर्ते नरेऽपि च ।
ध्रुवः क्लीबे शिवे शङ्कौ मुनौ योगे वटे वसौ ॥ ११ ॥
ध्रुवं तु निश्चिते तर्के नित्यनिश्चलयोस्त्रिषु ।
ध्रुवा मूर्वाशालिपर्ण्योर्गीतिस्रुग्भेदयोरपि ॥ १२ ॥
नवः काके स्तुतौ पुंसि नवं नव्येऽभिधेयवत् ।
नीवी तु स्त्रीकटीवस्त्रग्रन्थौ मूलधनेऽस्त्रियाम् ॥ १३ ॥
मतं पक्कं परिणते विनाशाभिमुखे त्रिषु ।
पार्श्वं कक्षाऽधरे चक्रोपान्ते पर्शुगणाऽन्तिके ॥ १४ ॥

देवी–भट्टारककी स्त्री,बडी मालकागनी, असवरग, (स्त्री०) नाट्यमें अभिषेककरी हुई रानी, राजाकी रानी (स्त्री०) ॥ ९ ॥

द्रव–ठट्ठा, रस, झिरना, विद्रव (दौड़ना), (पुं०)

द्वंद्व–स्त्रीपुरुषका जोड़ा, दो सख्या, (न०) द्वंद्व–कलह गोप्य, (पुं०) ॥ १० ॥

धव–पति, वृक्षभेद, धूर्त मनुष्य, (पु०)

ध्रुव–नपुंसक, शिव, कीला, मुनि, योगभेद, वड़वृक्ष, वसुभेद, (पुं०) ॥ ११ ॥

ध्रुव–निश्चित, तर्क, (न०) नित्य, निश्चल (त्रि०)

ध्रुवा–चुरनहार या मरोरफली, मापपर्णी या मषवन, गीतिभेद, स्रुक्–भेद, (स्त्री०) ॥ १२ ॥

नव–काग, स्तुति, (पुं०) नव-नवीन, (त्रि०)

नीवी–स्त्रीके कटिवस्त्रकी ग्रंथि (बंधन), मूलधन, (स्त्री०) ॥ १३ ॥

पक्क–परिणामको प्राप्तहुवा, नाशको प्राप्त होनेवाला, (त्रि०)

पार्श्व–बगलके नीचे का भाग, (पसवाड़ा), चक्र का अतभाग, पाँसुवोंका समूह, समीप, (न०) ॥ १४ ॥

पृथ्वी भुवि पृथौ हिङ्गुपत्रिकाकृष्णजीरयोः ।
प्राध्वं तु बन्धने प्रह्वेऽप्यतिदूरपथे तथा ॥ १५ ॥

प्लवः कारण्डवे भेके भेलके वारिवायसे ।
प्लक्षे प्लुतिगतौ शब्दे निषादे कुलके कपौ ॥ १६ ॥

क्रमनिम्नक्षितौ गन्धतृणेऽपि न द्वयोः प्लवम् ।
भवः श्रीकण्ठसंसारश्रेय सत्ताप्तिजन्मसु ॥ १७ ॥

भावः स्वभावचेष्टाऽभिप्रायसत्त्वात्मजन्मनि ।
भावः क्रियायां लीलायां पदार्थेऽभिनयान्तरे ॥ १८ ॥

जन्तौ बुधे विभूतौ च नाट्योक्त्या पण्डितेऽपि च ।
रेवा जंबालिनीभेदे रेवा नीलीस्मरस्त्रियो. ॥ १९ ॥

मता लघ्वी तु ह्रस्वायां प्रकारे स्यन्दनस्य च ।
लट्वा करंजभेदे स्यात्फले वाद्ये खगान्तरे ॥ २० ॥

---

पृथ्वी—भूमि, महती (बड़ी), हींगत्री या वंगपत्री, स्याहजीरा, ( स्त्री० )

प्राध्व—बंधन, प्रह्व ( ...... ), अति दूरमार्ग ( न० ) ॥ १५ ॥

प्लव—करढुवा पक्षी, मेंडक, छोटी नौका, जलकाग, पिलखन वृक्ष, कूदकर चलना, शब्द, निषाद (भील), कुलक ( ...... ), वदर, ( पुं० ) ॥ १६ )

प्लव—क्रमसे नीची पृथ्वी, सुगंधितृण-विशेष ( घास ), ( न० )

भव—महादेव, संसार, कल्याण, सत्ता, प्राप्ति, जन्म, ( पुं० ) ॥ १७ ॥

भाव—स्वभाव, चेष्टा, अभिप्राय, सत्त्व, ( सतोगुण ), जन्म, क्रिया, लीला, पदार्थ, अभिनय, ॥ १८ ॥ जन्तु, पंडित, विभूति, नाट्योक्तिमें पंडित, ( पुं० )

रेवा—नदीभेद, नीली ( नील ), कामदेवकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ १९ ॥

लघ्वी—छोटी, रथका भेद, ( स्त्री० )

लट्वा—करजुवाभेद, फल, वाजा, पक्षिभेद, ( स्त्री० ) ॥ २० ॥

लवो लेशे विलासे च च्छेदने रामनन्दने ।
श्रीफलेऽपि फले बिल्वं विश्वे देवेषु नागरे ॥ २१ ॥
विश्वा विषायां सर्वस्मिन्विश्वं स्यादभिधेयवत् ।
विश्वं तु विष्टपे क्लीवं शिविर्भूर्जे नृपान्तरे ॥ २२ ॥
शिवो हरे योगभेदे वेदे कीलेऽपि वालुके ।
गुग्गुले पुण्डरीकद्रौ शिवं मोक्षे सुखे जले ॥ २३ ॥
कुशलेऽपि शिवा तु स्याद्गौर्यामलकहेतुषु ।
शिवा झाटामलापथ्याक्रोष्ट्रीसक्तुफलासु च ॥ २४ ॥
सत्त्वं जन्तुषु न स्त्री स्यात्सत्त्वं प्राणात्मभावयोः ।
द्रव्ये बले पिशाचादौ सत्तायां गुणवित्तयोः ॥ २५ ॥
स्वभावे व्यवसाये च सत्त्वमित्यभिधीयते ।
सवं जलाढ्ययोः स्नाने सवः सन्धानयज्ञयोः ॥ २६ ॥

---

लव–लेश, ( थोडा ), विलास, छेदन, रामचंद्रका पुत्र, ( पुं० )
बिल्व–बेलका वृक्ष, बेलका फल, ( न० )
विश्व–विश्वेदेव, (पुं०) विश्व–सोंठ, ( न० ) ॥ २१ ॥
विश्वा–अतीस,(स्त्री०) सपूर्ण, (त्रि०)
विश्व–जगत्, ( न० )
शिवि–भोजपत्र, शिवि–राजा, (पुं०) ॥ २२ ॥
शिव–महादेव, ग्रहयोगभेद, वेद, कीला, वालू ( रेती ), गूगल, पुंडरीक-वृक्ष, ( पुं० )
शिव–मोक्ष, सुख, जल, ॥ २३ ॥ कुशल, ( न० )
शिवा–पार्वती, ऑवला, हेतु, (स्त्री०)
शिवा–भुईआवला, हरड, गीदडी, जाट–वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥
सत्त्व–जन्तु, प्राण, आत्मभाव, द्रव्य, बल, पिशाचआदि, सत्ता, गुण, धन. ॥ २५ ॥ स्वभाव, निश्चय, ( पु० न० )
सव–जल, धनी, स्नान, ( न० )
सव–सन्तान, यज्ञ, ( पुं० ) ॥ २६ ॥

सान्त्वं दाक्षिण्यमात्रेऽपि सांत्वं सामनि च स्मृतम् ।
स्नुवा स्रुग्भेदशल्लक्योर्मूर्वायां च मता स्नुवा ॥ २७ ॥
हवः स्यादध्वराह्वाननिदेशेषु मतः पुमान् ।
ह्रस्वः खर्वे न्यगर्थेऽपि राजिकायां क्षुते क्षवः ॥ २८ ॥

वतृतीयम् ।

अभावः स्यादसत्तायामभावो मरणेऽपि च ।
अक्षीवस्त्रिष्वमन्दे स्यादक्षीवोऽवसरे पुमान् ॥ २९ ॥
आर्त्तवं पुष्परजसोः समुद्भूते तु वाच्यवत् ।
आश्रवः स्यात्प्रतिज्ञायां क्लेशेऽपि वचनस्थिते ॥ ३० ॥
आहवस्तु पुमान्यागे सङ्गरेऽप्याहवस्तथा ।
उत्सवो मह उत्सेध इच्छाप्रसरकोपयोः ॥ ३१ ॥
उद्धवस्तूत्सवे कृष्णमातुले यज्ञपावके ।
कारवी दीप्यमधुरात्वक्पत्रीकृष्णजीरके ॥ ३२ ॥

---

सान्त्व–चतुराई, साम (समझाना), ( न० )

स्नुवा–स्रुग्भेद ( यज्ञपात्र ), सेह–प्राणी, चुरनहार-औषधि, (स्त्री०) ॥ २७ ॥

हव–यज्ञ, बुलाना, आज्ञा, ( पुं० )

ह्रस्व–बौना, नीच, ( पुं० )

क्षव–छींक, ( पुं० ) ॥ २८ ॥

वतृतीय ।

च–असत्ता ( नहींहोना ), मरना, ( पुं० ),

अक्षीव–अमद ( तेज ), ( त्रि० ) अवसर, ( पु० ) ॥ २९ ॥

आर्तव–पुष्प, स्त्रीका रजस्, ( न० ) ऋतुमें उत्पन्नहुवा, ( त्रि० )

आश्रव–प्रतिज्ञा, क्लेश, वचनमें स्थित, ( त्रि० ) ॥ ३० ॥

आहव–यज्ञ, युद्ध ( पुं० )

उत्सव–उत्सव, ऊँचाई, इच्छाका फैलना, क्रोध, ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

उद्धव–उत्सव, कृष्णका मामा, ( उद्धव ), यज्ञका अग्नि, ( पुं० )

कारवी–अजवायन, सौंप, हींगपत्री, कालाजीरा, ( स्त्री० ) ॥ ३२ ॥

कितवः पुंसि धुस्तूरे मत्तवञ्चकयोरपि ।
पुन्नागे माधवे पुंसि केशाढ्ये त्रिपु केशवः ॥ ३३ ॥
कैतवं तु छले द्यूते कैरवः शत्रुधूर्त्तयोः ।
कैरवं कुमुदे क्लीबं चन्द्रिकायां तु कैरवी ॥ ३४ ॥
कौट्टवी चण्डिकायां स्यात्तथा नग्नस्त्रियामपि ।
गाण्डीवगाण्डिवौ न स्त्री कार्मुकेऽर्जुनकार्मुके ॥ ३५ ॥
गालवस्तु मुनौ लोध्रे ताण्डवं तृणनृत्ययोः ।
स्वर्गेऽन्तरिक्षे त्रिदिवस्त्रिदिवा सरिदन्तरे ॥ ३६ ॥
दीदिविस्त्रिदशाचार्ये भवेदन्नेऽपि दीदिविः ।
द्विजिह्वः पन्नगे पुंसि सूचके त्वभिधेयवत् ॥ ३७ ॥
निष्पावः शूर्प्पपवने पचने च कडङ्करे ।
निष्पावो निर्विकल्पेऽपि शिम्बिकाराजमाषयोः ॥ ३८ ॥
अपलापेऽपि निकृताववविश्वासेऽपि निह्नवः ।
पञ्चत्वं स्यात्तु पञ्चानां भावेऽपि निधनेऽपि च ॥ ३९ ॥

---

कितव-धतूरा, उन्मत्त, ठग, (पुं०)
केशव-पुन्नाग-वृक्ष, विष्णु, ( पुं० ) वहुतकेशोंवाला, (त्रि०) ॥ ३३ ॥
कैतव-छल, जूवा, ( न० )
कैरव-शत्रु, धूर्त्त, ( पुं० ) कैरव-कमोदनी, ( न० )
कैरवी-चादकी चांदनी, ( स्त्री० ) ॥ ३४ ॥
कौट्टवी-चंडिका, नग्न स्त्री, ( स्त्री० )
गांडीव-गांडिव-धनुष्, अर्जुनका धनुष्, ( पुं० न० ) ॥ ३५ ॥
गालव-मुनि ( गालव ), लोध-वृक्ष, ( पुं० )
तांडव-तृण, नृत्य, ( न० )
त्रिदिव-स्वर्ग, आकाश, ( पुं० )
त्रिदिवा-नदी, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥
दीदिवि-बृहस्पति, अन्न, ( पुं० )
द्विजिह्व-सर्प, ( पुं० ) चुगलखोर, ( त्रि० ) ॥ ३७ ॥
निष्पाव-छाजका वायु, वायु, भूसा, ( पुं० ) निर्विकल्प, ( त्रि० ) फली, उड़द, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥
निह्नव-वचनको गोप्यकरना, शठता, अविश्वास, ( पुं० )
पंचत्व-पाँचोंका भाव, मृत्यु, (पुं०) ॥ ३९ ॥

पल्लवो विस्तरे खड्गे शृङ्गारेऽलक्तरागयो. ।
चलेऽप्यस्त्री तु किसले विटपेऽपि च पल्लवः ॥ ४० ॥

तुगायां पार्थिवी भूपे पुमान्भूविकृतौ त्रिषु ।
पुङ्गवो वृषभे श्रेष्ठ गवोमेषजलान्तरे ॥ ४१ ॥

प्रभवो जन्महेतौ स्यादपामूले पराक्रमे ।
प्रभवः किंवदन्तीनां सञ्चारगतिकारके ॥ ४२ ॥

आद्योपलब्धये स्थाने प्रभावः शक्तितेजसोः ।
प्रसवो गर्भमोक्षे स्याद्वृक्षाणां फलपुष्पयोः ॥ ४३ ॥

परंपराप्रसङ्गे च लोकोत्पादे च पुत्रयोः ।
प्रसेवो वल्लकीवाद्यकाष्ठे स्यूतेऽपि दृश्यते ॥ ४४ ॥

फेरवो राक्षसे फेरौ वल्लवः सूदगोपयोः ।
भीमसेनेऽप्यथ पुमान्बन्धौ सुहृदि बान्धवः ॥ ४५ ॥

---

पल्लव–शब्दविस्तार, खड्ग, शृंगार, महावरका रंग, चल, कोमलपत्ता, वृक्षकी टहनी, ( पुं० ) ॥ ४० ॥
पार्थिवी–वंशलोचन, ( स्त्री० )
पार्थिव–राजा, (पुं०) पृथ्वी–विकार, (त्रि० )
पुंगव–बैल, श्रेष्ठ, (पु०).. ॥ ४१ ॥
प्रभव–जन्म ( उत्पत्ति ), का हेतु, जलोंका मूल, पराक्रम, ( बल ) ( पुं० ) किंवदंती ( चुरघा ), का संचार व गति करनेवाला प्रथमदर्शनके लिये स्थान, ( पुं० ॥ ४२ ॥
प्रभाव–प्रभाव (शक्ति), तेज, (पु०)
प्रसव–गर्भका छूटना, वृक्षोंके फल और पुष्प, ॥ ४३ ॥
परंपराका प्रसंग, मनुष्योंसे उत्पादन कियाहुवा, पुत्री-पुत्र, ( पुं० )
प्रसेव–वीणाके बाजनेके लिये तूंबा या काष्ठ, सीयाहुवा, ( पुं० ) ॥ ४४ ॥
फेरव–राक्षस, गीदड़, ( पुं० )
वल्लव–रसोईकरनेवाला, गोप, भीमसेन, ( पुं० )
बांधव–बंधु, मित्र, ( पुं० ) ॥ ४५॥

भार्गवः शुक्रगजयोः परशुरामे सुधन्वनि ।
भार्गवी पार्वतीलक्ष्मीसितदूर्वासु सम्मता ॥ ४६ ॥
भैरवः पुंसि भर्गे स्याद्भैरवं भीषणे त्रिषु ।
माधवः केशवे राधे वसन्तेऽप्यथ माधवी ॥ ४७ ॥
मधूत्थशर्करामद्यकुट्टनीष्वतिमुक्तके ।
राघवस्तु महामीनप्रभेदे रघुवंशजे ॥ ४८ ॥
राजीवो मत्स्यमृगयोस्त्रिषु राजोपजीविनि ।
क्लीवं पद्मे रौरवस्तु नरके त्रिषु भैरवे ॥ ४९ ॥
वडवाऽश्वाकुम्भदास्योः स्त्रीविशेषे द्विजस्त्रियाम् ।
वाडवा वडवासङ्घे स्त्रीणां च करणान्तरे ॥ ५० ॥
पाताले न स्त्रियामौर्वे विप्रे च नरि वाडवः ।
पद्रवोऽपक्रमे वुद्धौ विभवो निर्वृतौ धने ॥ ५१ ॥

---

भार्गव–शुक्र, हस्ती, परशुराम, श्रेष्ठ, धनुषवाला, ( पुं० )
भार्गवी–पार्वती, लक्ष्मी श्वेतदूर्वा, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥
भैरव–महादेव, ( पुं० ) भयकर, ( त्रि० )
माधव–विष्णु, वैशाख–मास, वसन्त-ऋतु, ( पुं० ) ॥ ४७ ॥
माधवी–मधु ( शहद ) की शक्कर, मदिरा कुट्टनी स्त्री, कस्तूर मोगरा ( स्त्री० )
राघव–वडामच्छभेद, रघु वंशमें होनेवाला, ( पुं० ) ॥ ४८ ॥
राजीव–मच्छ, मृग ( पुं० ) राजासे आजीविकावाला, (त्रि०) राजीव-कमल ( न० )
रौरव–नरक, (पुं०) भयंकर, (त्रि०) ॥ ४९ ॥
वडवा–घोडी, जललानेवाली दासी, स्त्रीभेद, ब्राह्मणकी स्त्री, ( स्त्री० )
वाडव–घोडियोंका समूह, स्त्रियोंका करण (हावादि), ( न० ) ॥५०॥ पाताल, (पुं० न०) वाडव-जलाग्नि ( वाडवानल ), ब्राह्मण, ( पुं० )
पद्रव–उलटा जाना, वुद्धि, ( पु० )
विभव–आनंद, धन, (पुं०) ॥ ५१ ॥

विभावः स्यात्परिचये कामस्योद्दीपनेऽपि च
शत्रूणां भावसंहत्योः शात्रवं शात्रवो द्विषि ॥ ५२ ॥
सुषवी कारवेल्ले स्याज्जीरके कृष्णजीरके ।
पाडवस्तु रसे नागेऽप्याशुव्रीहिप्रसूनयोः ॥ ५३ ॥
नौकायां वासने चाथ सचिवो भृत्यमन्त्रिणोः ।
सम्भवः स्मृत उत्पत्तौ हेतौ सत्त्वे च मेलके ॥ ५४ ॥
आधारानतिरिक्तत्वे आधेयस्य च सम्भवः ।
सुग्रीवो वानरपतौ चारुग्रीवे तु वाच्यवत् ॥ ५५ ॥
सैन्धवो मणिमन्थेऽश्वे सिन्धुदेशभवे त्रिषु ।

वचतुर्थम् ।

अनुभावः प्रभावे स्यान्निश्चये भावसूचके ।
अपह्नवोऽपलापेऽपि पुंसि स्नेहेऽप्यपह्नवः ॥ ५६ ॥

---

विभाव–परिचय (पहचान), कामको उद्दीपन करनेवाला रस, (पुं०)

शात्रव–शत्रुवोंका भाव और संहति (समूह), (न०)

शात्रव–शत्रु, (पुं०) ॥ ५२ ॥

सुषवी–करेला, जीरा, कालाजीरा, (स्त्री०)

पाडव–रस, सीसा, चावल, पुष्प, ॥ ५३ ॥ नौका, वासना, (त्रि०)

सचिव–नौकर, मंत्री, (पुं०)

सम्भव–उत्पत्ति, हेतु (कारण), सत्त्व (सत्व), मिलना, ॥ ५४ ॥ आधेयकी आधारसे एकता, (पुं०)

सुग्रीव–बंदरोंका पति, (पुं०) सुंदरग्रीवावाला, (त्रि०) ॥ ५५ ॥

सैंधव–सैंधानमक, अश्व, (पुं०) सिंधुदेशमें होनेवाला, (त्रि०)

वचतुर्थ ।

अनुभाव–प्रभाव, निश्चय, भावको सूचन करनेवाला, (पुं)

अपह्नव–छिपाहुवा वाक्य, स्नेह, (पुं०) ॥ ५६ ॥

स्नानेऽपि मद्यसन्धाने यज्ञे चाभिषवः पुमान् ।
आदीनवस्तु दोषे स्यात्परिक्लिष्टदुरन्तयोः ॥ ५७ ॥

उत्पाते विप्लवे चैव सैंहिकेयेऽप्युपप्लवः ।
वल्मीकजन्मनि नटे याचके च कुशीलवः ॥ ५८ ॥

एकयोक्त्या मतौ रामपुत्रयोश्च कुशीलवौ ।
जलबिल्वो मतः कूर्मे कर्कटे जलचत्वरे ॥ ५९ ॥

जीवंजीवश्चकोरे स्यात्पक्षिभेदे द्रुमान्तरे ।
दोलाजीवो वार्द्धुषिके मिथ्याज्ञानप्रहर्षिते ॥ ६० ॥

धामार्गवस्त्वपामार्गे देवदाल्यामपि स्मृतः ।
चञ्चले व्याकुलेऽपि स्याद्वाच्यलिङ्गः परिप्लवः ॥ ६१ ॥

पराभवस्तिरस्कारे विनाशे च पराभवः ।
मतः पारशवः पारस्त्रैणे शूद्रासुते द्विजात् ॥ ६२ ॥

---

अभिषव–स्नान, मदिराका निकालना, यज्ञ ( पुं० )

आदीनव–दोष, अति क्लेशित, अपार ( पुं० ) ॥ ५७ ॥

उपप्लव–उत्पात, विप्लव ( मनुष्यों की लूटना आदि पीडा ) राहुग्रह ( पुं० )

कुशीलव–वाल्मीकि–ऋषि, नट, याचक ( पुं० ) ॥ ५८ ॥

कुशीलव–एक वार बोलनेमें रामचंद्रके पुत्र, ( पुं० द्वि० )

जलबिल्व–कछुवा, ककोडा–जतु, जलका हौज, ( पुं० ) ॥ ५९ ॥

जीवंजीव–चकोर, पक्षिभेद, वृक्षभेद ( पु० )

दोलाजीव–व्याजसे जीनेवाला, झूठे ज्ञानसे हर्षित ( पु० ) ॥ ६० ॥

धामार्गव–ऊँगा, देवदाली, ( पुं० )

परिप्लव–चचल, व्याकुल, ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥

पराभव–तिरस्कार, विनाश ( पुं० )

पारशव–परस्त्रीका पुत्र, ब्राह्मणसे, उत्पन्न हुवा शूद्राका पुत्र, ॥ ६२ ॥

शस्त्रेऽप्यथ पुटग्रीवो गर्गरीताम्रकुम्भयोः ।
वार्द्धुषिके बलदेवः स्याद्बलदेवो बलेऽनिले ॥ ६३ ॥
रोहिताश्वो हरिश्चन्द्रतनये जातवेदसि ।
शैलेये सैन्धवे क्लीबं मिश्यां शीतशिवः पुमान् ॥ ६४ ॥
सहदेवा बलादण्डोत्पलयोः शारिवौषधौ ।
सहदेवी भुजङ्गाक्ष्यां सहदेवस्तु पाण्डवे ॥ ६५ ॥

वपंचमग ।

स्यादाशितंभवस्तृप्तावन्नाद्ये त्वाशितंभवम् ॥ ६६ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानाया मुक्तावल्या वकारान्तवर्गः ॥

---

## अथ शान्तवर्गः ।

शैकम् ।

शः शतायुषि हिंसायां शं धर्म्मे शा तु मातरि ।
शी स्त्रीपु स्वपरस्त्रीपु शीः स्यात्सदननिद्रयोः ॥ १ ॥

---

शस्त्र ( पुं० )
पुटग्रीव–गगरी, ताँबाका कलश ( पुं० )
बलदेव–ब्याजको लेनेवाला, बलभद्र, वायु ( पुं० ) ॥ ६३ ॥
रोहिताश्व–हरिश्चंद्रराजाका पुत्र, अग्नि ( पुं० )
शीतशिव–शिलाजीत, सेंधानमक, ( न० ) सौंफ ( पुं० ) ॥ ६४ ॥
सहदेवा–खरैंहटीकी टंडी, कमल, सरिवन, ( स्त्री० )
सहदेवी–खरैंहटी, गडनी ( स्त्री० )
सहदेव–पंडु राजाका एक पुत्र (पुं०) ॥ ६५ ॥

वपंचम ।

आशितंभव–तृप्ति ( पुं० )
आशितंभव–अन्नादि ( न० ) ६६
इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें वान्तवर्ग समाप्तहुवा ॥

---

अथ शान्तवर्ग ।

शैक ।

श–सौवर्षकी आयुवाला, हिंसा, ( पुं० )
श–धर्म ( न० )
शा–माता ( स्त्री० )
शी–अपना, पराया, स्त्री, ( त्रि० )
शी–मकान, निद्रा ( न० ) ॥ १ ॥

शद्वितीयम् ।

आशा तृष्णादिशोराशुर्व्रीहौ क्लीबं तु सत्वरे ।
ईशा लाङ्गलदण्डे स्यादीशः स्यादीश्वरे प्रभौ ॥ २ ॥
अंशुस्त्वपि रवौ लेशे काशस्तु क्षवथौ तृणे ।
वाराणस्यां तु काशी स्यात्कीशो मर्कटनग्नयोः ॥ ३ ॥
कुशो रामसुते द्वीपे योक्त्रे दर्भे तु न स्त्रियाम् ।
कुशो मत्तेऽपि पापिष्ठे त्रिपु क्लीबे तु वारिणि ॥ ४ ॥
मता कुशा तु वल्गायां कुशी फाले प्रकीर्तिता ।
केशो बालेऽपि ह्रीबेरे दैत्यभेदप्रचेतसोः॥ ५ ॥
क्लेशो दुःखेऽपि रोगादौ व्यवसाये च दृश्यते ।
दर्शस्तु दशमे पुंसि दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमे ॥ ६ ॥
पक्षान्तवैदिकविधौ दशा तु वसनांशुके ।
दशा कर्मविपाकेऽपि स्याद्दशा वर्त्यवस्थयोः ॥ ७ ॥

---

शद्वितीयम् ।

आशा–तृष्णा, दिशा ( स्त्री० )
आशु–व्रीहि ( धान ) ( पुं० )
आशु–शीघ्रता ( न० )
ईशा–हलका दंड ( हाल ) ( स्त्री० )
ईश–महादेव, प्रभु, ( पुं० ) ॥ २ ॥
अंशु–किरण, सूर्य, लेश ( पु० )
काश–छींक, तृण ( काँस ) ( पुं० )
काशी–काशी-पुरी ( स्त्री० )
कीश–बंदर, नग्न ( नंगा ) ( पुं० ) ॥ ३ ॥
कुश–रामका पुत्र, कुश द्वीप, जोत ( पुं० )
कुश–दर्भ ( डाभ ) ( पुं०न० )
कुश–उन्मत्त–पापी, ( त्रि० )
कुश–जल ( न० ) ॥ ४ ॥
कुशा–वरॅहटी, ( स्त्री० )
कुशी–फाल ( हलकी कुश ) (स्त्री०)
केश–बाल, नेत्रवाला, दैत्यभेद, वरुण ( पु० ) ॥ ५ ॥
क्लेश–दुःख, रोग आदि, व्यवसाय, ( पु० )
दर्श–दशवां पुरुष, सूर्यचंद्रमाका संगम ( अमावस्या ) ॥ ६ ॥ पक्षके अंतकी वैदिकविधि ( पुं० )
दशा–कर्मफल, वत्ती, अवस्था,(स्त्री०) ॥ ७ ॥

दृग् दर्शने च नेत्रे स्त्री ज्ञातृदर्शकयोस्त्रिषु ।
दंशः सन्नाहवनमक्षिकयोर्भुजगक्षते ॥ ८ ॥
दोषेऽपि खण्डने दंशो दंशो मर्मणि च स्मृतः ।
नाशः पलायनेऽपि स्यान्निधनानुपलम्भयोः ॥ ९ ॥
स्यान्निशा निगडे क्वापि स्त्रियां रात्रिहरिद्रयोः ।
निशा दारुहरिद्रायां महापूर्वा निशार्द्धके ॥ १० ॥
पशुर्मृगादौ च प्रमथे पशुर्मासारिकात्मनि ।
अज्ञाने छागमात्रेऽपि पशु हव्यर्थमव्ययम् ॥ ११ ॥
पाशः पक्षादिवन्धे स्याच्चयार्थन्तु कचात्पर ।
छात्राद्यन्ते च निन्दार्थः कर्णांते शोभनार्थकः ॥ १२ ॥
पांशुर्धूलिषु शस्यार्थचिरसञ्चितगोमये ।
पेशी पललपिण्ड्यां स्यान्मासीखङ्गपिधानयोः ॥ १३ ॥

---

दृक्—दर्शन, नेत्र, ( स्त्री० ) जानने-वाला, देखनेवाला ( त्रि० )

दंश—कवच, वनमक्खी, सर्पका डङ्क ॥ ८ ॥ दोष, खंडन, मर्म, (पु०)

नाश—भागना, मरना, नहीं प्राप्त-होना ( पुं० ) ॥ ९ ॥

निशा—बेडी, रात्रि, हलदी, दारु-हलदी, ( स्त्री० )

महानिशा—अर्धरात्रि ( स्त्री० ) १०

पशु—मृग आदि, शिवगण, मासारि-का स्थला, अज्ञानी, छागमात्र, ( पुं० )

पशु—देवताकी हविका दान, ( अ० ) ॥ ११ ॥

पाश—केशोंका बांधना, केशवाचक शब्दसे परे पाश-शब्द समूह अर्थ-वाला है जैसे 'केशपाश' अर्थात् केशसमूह, छात्रआदिके अंतमें निंदार्थक है जैसे 'छात्रपाश' कर्णके अंतमें सुंदरार्थक है जैसे 'कर्णपाश' ( पु० ) ॥ १२ ॥

पांशु—धूलि, खेतीके लिये बहुतदिन-का इकट्ठाकिया गोबर, ( पुं० )

पेशी—मांसकी पिंडी, जटामांसी, तलवारका म्यान, अच्छा पका-हुवा कणिक, मंडभेद, (स्त्री०) १३

सुपक्ककणिके पेशी पेशी मण्डान्तरेऽपि च ।
राशिस्तु पुञ्जे पुंस्येव तथा मेषवृषादिषु ॥ १४ ॥

वशस्त्रिषु स्याद्विवशे वशं वाञ्छाप्रभुत्वयोः ।
वशा योषासुतावन्ध्यास्त्रीगवीकरिणीष्वपि ॥ १५ ॥

विट् पुंसि वैश्ये मनुजे प्रवेशे तु स्त्रियामियम् ।
वेशः प्रवेशे नेपथ्ये वेशो वेश्यागृहे गृहे ॥ १६ ॥

वंशो वेणौ कुले वर्गे पृष्ठस्यावयवास्थनि ।
नासाविवरदेशेऽपि वाद्यमाण्डान्तरेऽपि च ॥ १७ ॥

शशः पशौ गन्धरसे पुरुषान्तरलोध्रयोः ।
मतः शश इति क्वापि शीतांशोरपि लाञ्छने ॥ १८ ॥

स्पर्शस्तु स्पर्शने दाने रुजायां स्पर्शकेऽपि च ।
स्पर्शः स्यात्पुंसि सङ्ग्रामे प्रणिधौ च मतो ह्ययम् ॥ १९ ॥

---

राशि–समूह, मेष-वृष आदि राशि ( पुं० ) ॥ १४ ॥

वश–वशमें होनेवाला, ( त्रि० )

वश–वाञ्छा, प्रभुत्व, ( न० )

वशा–स्त्री, पुत्री, वन्ध्या, स्त्री, गौ, हथिनी ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥

विश्(द) वैश्य, मनुष्य, ( पुं० )

विश्(स्) प्रवेश, ( स्त्री० )

वेश–प्रवेश, वेशबनाना, वेश्याका घर, घर, ( पुं० ) ॥ १६ ॥

वंश–बाँस, कुल, पीठका अवयवरूप अस्थि ( हाड ), नासिकाका छिद्र-देश, बाजेका पात्र ( वंशी ) (पु०) ॥ १७ ॥

शश–ससा, वणिक्द्रव्यविशेष, मनुष्यभेद, लोध, चंद्रमाका लाञ्छन, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

स्पर्श–स्पर्श करना, दान, रोग, स्पर्श करनेवाला, सग्राम ( युद्ध ) (पुं०)

स्पर्श–गुप्त बातको कहनेवाला हलकारा, ( पुं० ) ॥ १९ ॥

शतृतीयम् ।

आदर्शः पुंसि मुकुरे टीकायां प्रतिपुस्तके ।
उड्डीशः पार्वतीकान्ते ग्रन्थभेदे च स स्मृतः ॥ २० ॥
उपांशुर्जापभेदे स्यादुपांशु विजनेऽव्ययम् ।
माधव्यां कपिशा श्यावे त्रिषु पुंसि च सिह्लके ॥ २१ ॥
कम्पिल्लकासमर्देक्षुकृपाणे पुंसि कर्कशः ।
निर्दये परुषे क्रूरे दृढे साहसिके त्रिषु ॥ २२ ॥
कुलिशो मत्स्यभेदेऽस्थिसंहारे कुलिशं पवौ ।
गिरीशः शङ्करे वाचस्पतावद्रिपतावपि ॥ २३ ॥
तुङ्गीशस्तु हरे चन्द्रे दुःस्पर्शः स्याद्यवासके ।
कण्टकार्यां तु दुःस्पर्शा खरस्पर्शे तु वाच्यवत् ॥ २४ ॥
निदेशः स्यादुपान्तेऽपि शासने भाषणे पुमान् ।
निर्वेशो वेतने भोगे निर्वेशो मूर्छनेऽपि च ॥ २५ ॥

---

शतृतीयम् ।

आदर्श—दर्पण ( शीशा ), टीका, नकलपुस्तक ( पुं० )

उड्डीश—महादेव, ग्रंथभेद ( उड्डीशतंत्र ) ( पुं० ) ॥ २० ॥

उपांशु—जापभेद, ( पु० )

उपांशु—एकांतस्थान ( अ० )

कपिशा—माधवीलता, ( स्त्री० )

कपिश—चंदरकेसे रंगवाला, ( त्रि० ) हींग ( पु० ) ॥ २१ ॥

कर्कश—कमेला, कसौंदी या परवल, ऊस, तलवार, ( पुं० ) दयाहीन, कठोर, क्रूर, दृढ, साहसवाला (त्रि०) ॥ २२ ॥

कुलिश—मत्स्यभेद, अस्थियों ( हड्डियों ) का समूह, ( पु० )

कुलिश— वज्र ( न० )

गिरीश—महादेव, बृहस्पति, पर्वतोंका पति ( पु० ) ॥ २३ ॥

तुंगीश—महादेव, चंद्रमा, ( पु० )

दुःस्पर्श—जवाँसा ( पुं० )

दुःस्पर्शा—कटेहली ( स्त्री० ) तीक्ष्ण स्पर्शवाला ( त्रि० ) ॥ २४ ॥

निदेश—समीप, शिक्षा, भाषण (पुं०)

निर्वेश—नौकरी, भोग, मूर्छा ( पुं० ) ॥ २५ ॥

निवेशः शिबिरे पुंसि तथोद्वाहविनाशयोः ।
निस्त्रिंशो निर्दये खड्गे नीकाशो निश्चये समे ॥ २६ ॥
पलाशः किंशुके शठ्यां पलाशो निकषात्मजे ।
क्लीबं पलाशं छदने पलाशो हरिति त्रिषु ॥ २७ ॥
पक्षीशो गरुडे कृष्णे पिङ्गाशं जात्यकाञ्चने ।
मत्स्ये पल्लीपतौ पुंसि पिङ्गाशी नीलिकौषधौ ॥ २८ ॥
प्रकाशोऽतिप्रसिद्धे च प्रहासे चाऽऽतपे स्फुटे ।
प्रदेशो देशभित्त्योः स्यात्तर्जन्यङ्गुष्ठसम्मिते ॥ २९ ॥
बालिशस्तु शिशौ बाल्यलिङ्गे मूर्खेऽपि बालिशः ।
भूकेश्यवल्गुजेऽपि स्याद्भूकेशः शैवले वटे ॥ ३० ॥
लोमशस्तु पुमान्मेषे वाच्यवल्लोमसंयुते ।
शृगालीमर्कटीमांसीशूकशिम्बिषु लोमशा ॥ ३१ ॥

---

निवेश–सेनास्थान, विवाह, नाश (पुं०)
निस्त्रिंश–निर्दय, खड्ग (पुं०)
नीकाश–निश्चय, तुल्य (पु०) २६
पलाश–ढाक–वृक्ष, कचूर, राक्षस (पु०)
पलाश–पत्र (न०)
पलाश–हरा रंगवाला (त्रि०) २७
पक्षीश–गरुड, कृष्ण, (पुं०)
पिंगाश–सुवर्णभेद, (न०) मत्स्य, छोटा ग्रामका पति, (पु०)
पिंगाशी–नीलिका औषधि (स्त्री०) ॥ २८ ॥
प्रकाश–अतिप्रसिद्ध, ठट्ठा, धूप, प्रकट (पुं०)
प्रदेश–देश, दीवार, तर्जनी और अँगूठेका परिमाण (पुं०) ॥२९॥
बालिश–बालक, बालभावका चिह्न, मूर्ख (पुं०)
भूकेशी–बावची, (स्त्री०)
भूकेश–सिवाल, वट (बड) (पु०) ॥ ३० ॥
लोमश–मेंढा (पु०) लोमोंवाला (त्रि०)
लोमशा–गीदडी, वदरी, जटामांसी-औषधि, कांच (स्त्री०) ॥ ३१ ॥

लोमशा काकजङ्घाया काशीशे शाकिनीभिदि ।
महामेदातिवलयोर्वीकाशस्तु विकाशवत् ॥ ३२ ॥
प्रकाशे स्याद्विकसने विजनेऽपि मतः पुमान् ।
विकोशः पटवर्त्तौ स्याद्विकाशे विकचे त्रिषु ॥ ३३ ॥
विपाशा तु नदीभेदे त्रिषु पाशसमुद्धृते ।
विवशो विह्वलेऽपि स्यादवश्यात्मनि च त्रिषु ॥ ३४ ॥
सङ्काशः सन्निधौ तुल्ये सदृशं तूचिते समे ।
सदेशः सन्निधौ देशे सदेशो देशवत्यपि ॥ ३५ ॥
सुखाशो राजतिनिशे वरुणे सुमनोरथे ।
आसनेऽपि च संवेशः संवेशः शयनेऽपि च ॥ ३६ ॥
हताशो वाच्यवत्क्रूरे निर्दये निर्वाञ्छिते ।

शचतुर्थम् ।

अपदेशः स्मृतो लक्ष्ये निमित्तव्याजयोरपि ॥ ३७ ॥

---

लोमशा—काकजंघा, काशीश, शाकिनीभेद, महामेदा, खरेंहटी-भेद, ( स्त्री० )
वीकाश—विकाश—प्रकाश, पुष्प आदिका खिलना, जनरहित स्थान, ( पुं० ) ॥ ३२ ॥
विकोश—वस्त्रकी वत्ती, विकाश, खिलना ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥
विपाशा—नदीभेद, ( स्त्री० ) पाशसे निकलाहुवा ( त्रि० )
विवश—विह्वल, नहीं वश करनेयोग्य आत्मावाला ( त्रि० ) ॥ ३४ ॥
संकाश—समीप, तुल्य ( पुं० )
सदृश—उचित, तुल्य ( त्रि० )
सदेश—समीप देश, ( पुं० )
सदेश—देशवाला ( त्रि० ) ॥ ३५ ॥
सुखाश—वडा तिरिच्छ-वृक्ष, वरुण, अच्छा मनोरथ ( पुं० )
संवेश—आसन, शय्या ( पुं० ) ३६
हताश—क्रूर, निर्दय, आशारहित ( त्रि० )

शचतुर्थ ।

अपदेश—लक्ष्य ( निशाना ), निमित्त, व्याज ( बहाना ) ॥ ३७ ॥

अपभ्रंशो दुष्पतने भाषाभेदापशब्दयोः ।
आश्रयाशो बृहद्भानौ त्रिष्वेवाश्रयनाशके ॥ ३८ ॥
उपदंशः पुमान्मेढ्रे पीडायां च विदंशने ।
उपस्पर्शस्तु संस्पर्शे स्नानाचमनयोरपि ॥ ३९ ॥
क्रूरदृक् स्यात्खले वक्रे खण्डपर्शुः पिनाकिनि ।
राहौ खण्डामलकयोर्लेपकृत्पर्शुरामयोः ॥ ४० ॥
जीवितेशो यमे कान्ते जीवातौ जीवितेश्वरे ।
नागपाशः स्मृतः स्त्रीणां करणे वरुणायुधे ॥ ४१ ॥
वसेत्पञ्चदशी पौर्णमास्यमावस्ययोर्मता ।
परिवेशः परिवृतौ भानोश्चाभ्यर्णमण्डले ॥ ४२ ॥
पलंकशा तु मुण्डीर्यां लाक्षायां पुंसि गुग्गुले ।
पादपाशी चटुकायां शृङ्खलाकटुकेऽपि च ॥ ४३ ॥

---

अपभ्रंश–पड़ना, भाषाभेद, बुरा शब्द ( पुं० )

आश्रयाश–अग्नि, ( पुं० ) आश्रयका नाश करनेवाला ( त्रि० ) ३८

उपदंश–लिंग–रोगभेद, बिच्छू आदिका डंक ( पुं० )

उपस्पर्श–स्पर्श करना, स्नान, आचमन ( पुं० ) ॥ ३९ ॥

क्रूरदृक् ( श् ) खल, वक्र (त्रि०)

खंडपर्शु–महादेव, राहु, खंडामलक (खाँड और आँवला ), लेप करनेवाला, पर्शुराम ( पुं० ) ॥ ४० ॥

जीवितेश–धर्मराज, पति, जिलानेकी औषध, जीवितका स्वामी ( पुं० )

नागपाश–स्त्रियोंका करण (हावादि), वरुणका अस्त्र ( पुं० ) ॥ ४१ ॥

पंचदशी–पौर्णमासी, अमावास्या ( स्त्री० )

परिवेश–घेरा, सूर्यके चारोंतरफका मंडल (पुं०) ॥ ४२ ॥

पलंकशा–गोरखमुंटी, लाख, (स्त्री०)

पलंक (प)श–गूगल ( पुं० )

पादपाशी–······, सकलका कड़ा ( स्त्री० ) ॥ ४३ ॥

पुरोडाशो हविर्भेदे तथा सोमलतारसे ।
पिष्टकस्य चमस्यां च हुतशेषे च सम्मतः ॥ ४४ ॥
वार्ताहरे पुरोगे च सहाये च प्रतिष्कशः ।
भूमिस्पृक् सम्मतो वैश्ये भूमिस्पृग्मनुजेपि च ॥ ४५ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानाया मुक्तावल्या शान्तवर्ग ॥

---

## अथ षान्तवर्गः ।

### षैकम् ।

ष—कारस्तु मतः श्रेष्ठेऽपि स्याद्गर्भविमोचने ।

### षद्वितीयम् ।

उषा वाणसुतायां स्यात्प्रभातेऽपि विभावरौ ।
उषस्तु कामुके पुंसि गुग्गुलादावुषः पुमान् ॥ १ ॥
ऋषिश्छन्दे वसिष्ठादौ दीधितौ तु ऋषिः स्त्रियाम् ।
कर्षः पलचतुर्थांशे कर्षः स्यात्कर्षणेऽपि च ॥ २ ॥

---

पुरोडाश—हविर्भेद, सोमलताका रस ( पु० ) पीठीकी चमसी, हवनसे शेष रहा, ( पुं० ) ॥ ४४ ॥

प्रतिष्कश—हलकारा, आगे चलनेवाला, सहायता करनेवाला (पु०)

भूमिस्पृ(श्) क्—वैश्यमात्र (पु०) ॥ ४५ ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकोशकी भाषा टीकामें शान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

अथ षान्तवर्ग ।

षैक ।

ष—श्रेष्ठ, गर्भका छुड़ाना, ( त्रि० )

षद्वितीय ।

उषा—वाणासुरकी पुत्री, प्रभात, रात्रि, ( स्त्री० )

उष—कामी पुरुष, गूगल आदि (पु०) ॥ १ ॥

ऋषि—छद, वसिष्ठ आदि, ( पुं० )

ऋषि—किरण ( स्त्री० )

कर्ष—एक तोला प्रमाण, खेंचना ( पु० ) ॥ २ ॥

कर्पूः पुंसि करीषाग्नौ कर्पूः कुल्याभिधायिनी ।
कोषोऽस्त्री कुड्मले दिव्ये पेश्यां शब्दादिसङ्ग्रहे ॥ ३ ॥
अर्थौघे जातिकोशे च पात्रखड्गपिधानयोः ।
पनसादिफलस्यापि कोषः स्यान्मध्यवर्त्तिनि ॥ ४ ॥
घोषा तु शतपुष्पाया घोषः कांस्येम्बुदध्वनौ ।
घोषः स्याद्घोषकाभीरनिस्वनाभीरपल्लिषु ॥ ५ ॥
झषा नागवलायां स्याज्झषो वैसारिणि स्मृतः ।
पिपासालिक्षयोस्तर्षस्तुषो धान्यत्वगक्षयोः ॥ ६ ॥
तृट् तृषा च पिपासायां लिप्सायां च स्त्रियामुभे ।
त्विट् कान्तौ रुचि भारत्यां व्यवसायजिगीषयोः ॥ ७ ॥
दोषस्तु दूषणे पापे दोषा रात्रौ भुजेऽपि च ।
पौषो मासविशेषे स्यात्पौषमुद्धवयुद्धयोः ॥ ८ ॥

---

कर्पू–करिश ( अरना ) की अग्नि,
कर्पू–अस्थि ( स्त्री० )
कोष(श)–फूलकली, दिव्य, थेली, शब्द आदिका सग्रह ( पुं० ) ॥ ३ ॥ द्रव्यका समूह, जातिकोष ( एकजातिका सग्रह ), पात्र, खड्गका कोश ( म्यान ), चमेलीका कोश, पनस आदिके फलका मध्यवर्ती भाग ( पु० ) ॥ ४ ॥
घोषा–सोंफ ( स्त्री० )
घोष–काँसी–धातु, मेघकी ध्वनि ( शब्द ), घोषक ( गोपाल ) अहीरजाति, शब्द, अहीरोंका ग्राम, ( पुं० ) ॥ ५ ॥
झषा–गँगेरन–ओषधि, ( स्त्री० )
झष–मत्स्य आदि ( पुं० )
तर्ष–प्यास, वाछा ( स्त्री० )
तुष–धान्यका तुष, वहेड़ा–औषधि ( पु० ) ॥ ६ ॥
तृट्(ष्)–तृषा–प्यास, वाछा, (स्त्री०)
त्विट्(ष्)–कान्ति, प्रभा, सरस्वती, उद्यम ( वीर्यातिशय ), जीतनेकी इच्छा ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥
दोष–दूषण, पाप, ( पुं० )
दोषा–रात्रि, भुजा ( वाहु ), (स्त्री०)
पौष–पौष–मास, ( पुं० )
पौष–उत्सव, युद्ध, ( न० )॥ ८ ॥

पौषी तु पौषपौर्णम्यां पुष्ययुक्ता भवेद्यदि ।
प्रैषस्तु प्रेषणोन्मानमर्द्दनक्लेशवाचकः ॥ ९ ॥

भाषा गिरि सरस्वत्या विकल्पार्थे विपूर्वके ।
माषो व्रीह्यन्तरे माने मूर्खे त्वग्दूषणान्तरे ॥ १० ॥

मिषस्तु स्पर्द्धने व्याजे निमेषे तु निपूर्वकः ।
मेषः स्यादुरणे राशिभेदभैषज्यभेदयोः ॥ ११ ॥

मेष उत्पूर्वको वेधे वर्षाः स्युः प्रावृषि स्त्रियाम् ।
वर्षमस्त्री वर्षणेऽब्दे जम्बूद्वीपे घने पुमान् ॥ १२ ॥

विषा त्वतिविषाया स्याद्विषं तु गरले जले ।
विड् व्यापने पुरीषे च वृषो मूषकधर्म्मयोः ॥ १३ ॥

वृषभे वासके श्रेष्ठे राशौ शृङ्ग्या च शुक्रले ।
शुक्रे पुरुषभेदेऽपि व्रतिनामासने वृषी ॥ १४ ॥

---

पौषी–जो पुष्यनक्षत्रयुक्त होवे वह पौषमासकी पूर्णिमा, ( स्त्री० )

प्रैष–भेजना, उन्मान, मर्दन, क्लेश ( पुं० ) ॥ ९ ॥

भाषा–वाणी, सरस्वती, ( स्त्री० )

विभाषा–विकल्प ( स्त्री० )

माष–व्रीहि (उड़द), तोल (मासाभर), मूर्ख, त्वचा-दोषभेद (पु०) ॥१०॥

मिष–स्पर्द्धा ( ईर्षा ), बहाना, ( पुं )

निमिष–निमेष ( कालभेद ) ( पु )

मेष–मेंढा, मेष–राशि, औषधिभेद ( पुं० ) ॥ ११ ॥

उन्मेष–बींधना, ( पुं० )

वर्षा–वर्षाऋतु ( स्त्री० व० )

वर्ष–वर्षा, वर्ष ( पु० न० ) जंबूद्वीप, मेघ ( पु० ) ॥ १२ ॥

विषा–अतीस–औषधि ( स्त्री० )

विष–गरल ( जहर ), जल ( न० )

विड्(ष्)–प्रविष्ट होना, विष्ठा, (स्त्री०)

वृष–मूसा, धर्म, ॥ १३ ॥

बैल, बाँसा, श्रेष्ठ, वृष–राशि, काकडासींगी, वीर्यको बढानेवाला द्रव्य, वीर्य, पुरुषभेद ( पुं० )

वृषी–व्रतियोंका आसन, (स्त्री०) १४

वृषा मूषकपर्ण्यां स्यात्कपिकच्छ्वामपि स्मृता ।
शुषिः शोषे विले ख्यातः शेषः सङ्कर्षणे वधे ॥ १५ ॥
अनन्तेऽप्यवशिष्टेऽपि शेषा निर्म्माल्यभिद्यपि ।

षतृतीयम् ।

अभीषुः पुंसि भासि स्यादभीषुः प्रग्रहेऽपि च ॥ १६ ॥
आकर्षस्त्विन्द्रिये ख्यातो द्यूताकर्षणयोरपि ।
पाशके शारिफलके कोदण्डाभ्यासवस्तुनि ॥ १७ ॥
क्लीवमामिषमुत्कोचे मांसे सम्भोगलोभयो. ।
आमिषं सुंदराकाररूपादौ विषयेऽपि च ॥ १८ ॥
उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणान्तरे ।
कल्माषो राक्षसे कृष्णकृष्णपाण्डरयोरपि ॥ १९ ॥
कलुषं किल्विषे क्लीवमाविले कलुषं त्रिषु ।
किल्विषं वृजिने रोगेऽप्यपराधेऽपि किल्बिषम् ॥ २० ॥

---

वृषा-मूसाकन्नी, कौंच ( स्त्री० )
शुषि-शोष, विल ( पुं० )
शेष-वलदेव, वध ॥ १५ ॥ अनंत (शेषनाग), अवशिष्ट (वाकीरहा) ( पुं० )
शेषा-निर्माल्यभेद, ( स्त्री० )

षतृतीय ।

अभीषु-किरण, अश्व आदिकी रस्सी ( पुं० ) ॥ १६ ॥
आकर्ष-इन्द्रिय, जूवा, आकर्षण, पासा, चौपट, धनुषके समीपकी वस्तु, ( पु० ) ॥ १७ ॥
आमिष-खिलना, मास, सभोग, लोभ, सुदर-आकाररूपआदि, विषय ( न० ) ॥ १८ ॥
उष्णीष-शिरपर वॉधनेका वस्त्र, मुकुट, लक्षणभेद ( न० )
कल्माप-राक्षस, काला रग, काला और धौला रग ( पुं० ) ॥ १९ ॥
कलुष-पाप ( न० ) मलिन ( त्रि० ) दु ख रोग, ( न० )
किल्विष-पाप, रोग, अपराध, ( न० ) ॥ २० ॥

कुल्माषो यवके पुंसि चणके यवपष्टके ।
कुल्माषं काञ्जिके क्लीब गण्डूषः प्रसृतोन्मिते ॥ २१ ॥

गण्डूषो मुखपूरेऽपि करिहस्ताङ्गुलावपि ।
जिगीषा जेतुमिच्छायां व्यवसायप्रकर्षयोः ॥ २२ ॥

तरीषः शोभनाकारे भेलेऽब्धिव्यवसाययोः ।
ताविषस्तु सरिन्नाथे कनकस्वर्गयोरपि ॥ २३ ॥

नहुषो राजभेदे स्यान्नहुषो भुजगान्तरे ।
निकषः कषपाषाणे निकषा यातुमातरि ॥ २४ ॥

निमेषनिमिषौ कालभेदे नेत्रनिमीलने ।
परुषं कर्बुरे रूक्षे त्रिषु निष्ठुरवाच्यपि ॥ २५ ॥

पुरुषः पुन्नागमातङ्गे माधवे परमात्मनि ।
पौरुषं तेजसि क्लीवं पुंसो भावेऽपि कर्म्मणि ॥ २६ ॥

---

कुल्माष–जव, चना, आधा सीजाहुवा धान्य ( पुं० )
कुल्माष–काँजी ( न० )
गण्डूष–एक अजलि प्रमाण, ॥ २१ ॥ मुखका जल आदिसे पूरना, हाथी-की सूँड और अगुली ( पुं० )
जिगीषा–जीतनेकी इच्छा, वीर्याति-शय, उद्यम ( स्त्री० ) ॥ २२ ॥
तरीष–सुंदर आकार, छोटी नौका, समुद्र, वीर्यातिशय ( पु० )
ताविष–समुद्र, सुवर्ण, स्वर्ग ( पुं० ) ॥ २३ ॥
नहुष–राजा नहुष, सर्पभेद ( पुं० )
निकष–कसौटीपत्थर ( पु० )
निकषा–राक्षसोंकी माता (स्त्री) २४
निमेष-निमिष–कालभेद, नेत्रोंका मीचना ( पुं० )
परुष–कबरा रंग, रूखा, ( न० ) कठोर बोलनेवाला (त्रि०) ॥ २५ ॥
पुरुष–पुनाग–वृक्ष, हस्ती, विष्णु, पर-मात्मा ( पु० )
पौरुष–तेज, पुरुषका भाव और कर्म ( न० ) ॥ २६ ॥

ऊर्द्धविस्तृतदोःपाणिनृमाने त्रिषु पौरुषम् ।
प्रत्यूषोऽहर्मुखे पुंसि प्रत्यूषो वसुदैवते ॥ २७ ॥
प्रदोषः पुंसि दोषे स्यान्नाट्योक्त्यार्ये च मारिषः ।
रौहिषं कत्तृणे पुंसि मृगभेदे तु रौहिषः ॥ २८ ॥
विशेषो भेदमात्रेऽपि विशेषस्तिलकेऽपि च ।
विश्लेषः स्याद्विघटने विश्लेषो विधुरे तथा ॥ २९ ॥
व्याकर्षः शारिफलके द्यूताक्षाकर्षणेषु च ।
शुश्रूषा श्रोतुमिच्छायां परिचर्याकथानयोः ॥ ३० ॥
कुशीलवेषे शैलूषः शैलूषो बिल्वपादपे ।
सङ्घर्षः स्पर्द्धने घर्षे प्रमोदेऽपि प्रभञ्जने ॥ ३१ ॥

पचतुर्थम् ।

अनुकर्षो रथस्याधोदारुण्यप्यनुकर्षणे ।
अनुतर्षः सुरापानपात्रे तृष्णाभिलाषयोः ॥ ३२ ॥

---

पौरुष–लंबी दोनों भुजाओंसे प्रमाण ( न० )

प्रत्यूष–दिनका मुख ( प्रात काल ), वसुदेवतावाला ( पुं० ) ॥ २७ ॥

प्रदोष–दोष ( पुं० )

मारिष–नाट्यकी उक्तिमे आर्य (पु०)

रौहिष–रोहिष तृण, ( न० )

रौहिष–मृगभेद ( पुं० ) ॥ २८ ॥

विशेष–भेदमात्र, तिलक ( पुं० )

विश्लेष–वियोग, अत्यत वियोग ( पुं० ) ॥ २९ ॥

व्याकर्ष–चौपड, जूवा, पाशा, आकर्षण ( पुं० )

शुश्रूषा–सुननेकी इच्छा, परिचर्या ( टहल ), कथन ( पु० ) ॥३०॥

शैलूष–नट, बिल्वका वृक्ष ( पुं० )

संघर्ष–ईर्षा, घिसना, आनंद, वायु ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

पचतुर्थं ।

अनुकर्ष–रथके नीचेके भागका काष्ठ, अनुकर्षण ( पुं० )

अनुतर्ष–मदिरापीनेका पात्र, तृषा, अभिलाषा ( पुं० ) ॥ ३२ ॥

सुरे मत्स्येऽप्यनिमिषः सुरे मत्स्येऽनिमेषवत् ।
अम्बरीषो रणे भ्राष्ट्रेऽम्बरीषो भूभृदन्तरे ॥ ३३ ॥
मार्त्तण्डे खण्डपरशौ कपीतनकिशोरयोः ।
अलम्बुषः पुमानेव मतश्छर्दनपादपे ॥ ३४ ॥
अलम्बुषा तु मुण्डीरीस्वर्गवेश्याप्रभेदयोः ।
तुरङ्गवदने लोकभेदे किंपुरुषः पुमान् ॥ ३५ ॥
नन्दिघोषः पार्थरथे स्तुतिपाठकघोषणे ।
परिघोषस्त्ववाच्ये स्यान्निनादे वारिदध्वनौ ॥ ३६ ॥
पलङ्कषा गोक्षुरके लाक्षागुग्गुलकिंशुके ।
मुण्डीरीरास्नयोश्चैव राक्षसे तु पलङ्कषः ॥ ३७ ॥
शृङ्गीभेदे महाघोषा पुंसि हट्टेऽतिघोषयोः ।
वातरूपस्तु वातूलेऽप्युत्कोचे शक्रकार्मुके ॥ ३८ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां पान्तवर्गः ॥

---

अनिमिष—अनिमेष—मच्छ, देवता ( पुं० )
अम्बरीष—रण, भाड़, एक राजा ३३ सूर्य, महादेव, अवाडा—वृक्ष, किशोर ( जवान ) ( पुं० )
अलंबुष—छर्दन ( वमन ) करनेका वृक्ष ( पुं० ) ॥ ३४ ॥
अलंबुषा— गोरखमुंडी, स्वर्गवेश्याभेद, ( स्त्री० )
किंपुरुष—देवयोनिभेद ( किन्नर ), लोकभेद ( पुं० ) ॥ ३५ ॥
नंदिघोष—अर्जुनका रथ, स्तुतिकरनेवालाका शब्द ( पुं० )
परिघोष—नहींकहनेयोग्य शब्द, शब्दमात्र, मेघका गर्जना ( पुं० ) ३६
पलंकषा—गोखरू, लाख, गूगल, केसू, गोरखमुंडी, रायसन ( स्त्री० )
पलंकष—राक्षस ( पुं० ) ॥ ३७ ॥
महाघोषा—काकडासींगी, ( स्त्री० )
महाघोष—हाट, अतिशब्द ( पुं० )
वातरूप—वायुको नहीं सहनेवाला, रिश्वत, इन्द्रका धनुष ( पुं० ) ३८

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें पान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ सान्तवर्गः ।

### सैकम् ।

सा पुंस्यन्धौ रमायां स्याद्रत्यां से श्रीश्रुतेऽपि सः ।
सोरच्युते तु पार्वत्यामंसस्कन्धविभूषयोः ॥ १ ॥

### सद्वितीयम् ।

कासूर्विकलवाचि स्यात्कासूः शक्त्यायुधे स्त्रियाम् ।
कंसो दैत्यान्तरे कांस्ये कांस्यभाजनमानयोः ॥ २ ॥
स्याद्गुत्सः स्तबके स्तम्बे हारभिद्ग्रन्थिपर्णयोः ।
गोसः प्रभाते पुंस्येव गोसो गन्धरसेऽपि च ॥ ३ ॥
चासः सुवर्णचूडे स्यात्प्रभेद इक्षुपर्वणः ।
मणिदोषे भये त्रासो दासो भृत्येऽपि धीवरे ॥ ४ ॥
शूद्रेऽपि दानपात्रेऽपि चेटीसिंनकयोः स्त्रियाम् ।
नासा तु नासिकायां स्यान्नासा द्वारोर्द्ध्वदारुणि ॥ ५ ॥

---

अथ सान्तवर्ग ।

सैक ।

स–कुँवा (पुं०) लक्ष्मी, रति (स्त्री० )
श्रीश्रुत (......) (पुं० )
सो–विष्णु ( पु० ) पार्वती ( स्त्री० )
कंधा, कंधोंके भूषण ( पुं० ) ॥१॥

सद्वितीय ।

कासू–विकलवाणी, शक्ति आयुध ( स्त्री० )
कंस–कंस–दैत्य, कासी–धातु, कॉंसीका पात्र, प्रमाण ( पुं० ) ॥२॥
गुत्स–गुच्छा, तृणआदिका समूह, हारभेद, ग्रंथिपर्णी (गठिवन) (पुं०)
गोस–प्रभात, बोल, ( पुं० ) ॥ ३ ॥
चास–पक्षिभेद, ऊखभेद, ( पुं० )
त्रास–मणिदोष, भय ( पुं० )
दास–भृत्य, धीवर ( धीमर ) ॥ ४ ॥
शूद्र, दानपात्र, ( पुं० )
दासी–टहलनी ( स्त्री० )
नासा–नासिका ( नाक ), द्वारके ऊपरका काठ ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥

प्रसूर्मातरि कन्दल्यामश्वायां पुंसि वीरुधि ।
वसुर्ना देवभेदे च योक्त्रे वह्नौ शुचे त्रिषु ॥
वसु वृद्ध्यौषधे रत्नेऽपि श्यामे हट्टके धने ॥ ६ ॥
वाच्यवन्मधुरेऽपि स्याद्भाः प्रभावे रुचि स्त्रियाम् ।
भासस्तु भासि गृध्रे च गोष्ठकुक्कुटकेऽपि च ॥ ७ ॥
मांसं स्यादामिषे मांसी कक्कोलीजटयोः स्त्रियाम् ।
मा: सुधीदीधितौ मासे चन्द्रे चन्द्रात्परोऽपि सः ॥ ८ ॥
मिसिः स्त्री मधुरीमांस्योः शतपुष्पाजमोदयोः ।
म्रसस्तु मुहिमूहे स्यान्मूसो मास्यामपि स्मृतः ॥ ९ ॥
रसः स्वादेऽपि तिक्तादौ शृङ्गारादौ द्रवे विषे ।
पारदे धातुवीर्याम्बुरागे गन्धरसे तनौ ॥ १० ॥
रसो घृतादावाहारपरिणामोद्भवेऽपि च ।
रसा जिह्वास्रुवापाठाशल्लकीकङ्गुषु स्त्रियाम् ॥ ११ ॥

---

प्रसू–माता, केला या कमलगट्टा, अ-श्वा ( घोडी ) ( स्त्री० )

प्रसू–वेल ( पु० )

वसु–देवभेद, जोता, अग्नि, शुद्ध ( त्रि० )

वसु–वृद्धि औषधि, रत्न, श्यामरंग, हाट, धन ( न० ) ॥ ६ ॥

वसु–मधुर ( त्रि० )

भास्–प्रभाव, प्रभा ( स्त्री० )

भास–प्रभा, गृध्रपक्षी, गौवोंके ठानका मुर्गा ( पु० ) ॥ ७ ॥

मांस–मास ( न० )

मांसी–कंकोल, जटामासी ( स्त्री० )

मास्–पंडित, किरण, मास, चंद्रमा, चद्रमासे परेका लोक ( पु० )॥८॥

मिसि–सोआ, जटामासी, सौंफ, अ-जमोद ( स्त्री० )

म्रस–..... ( पुं० )

मूस–जटामासी ( पुं० ) ॥ ९ ॥

रस–स्वाद, तिक्त आदि रस, शृंगार आदि रस, द्रव, विष, पारा, धातु, वीर्य, जल, राग (अनुराग), बोल, शरीर ॥ १० ॥ घृत-आदि, भोज-नका परिपाकद्रव, ( पुं० )

रसा–जिह्वा, स्रुवा, सोना-पाठा, सा-ल-वृक्ष, मालकागनी ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

रासस्तु गोपक्रीडायां भाषाशृङ्खलके ध्वनौ ।
पुत्रादौ तर्णके वर्षे वत्सो वत्सं तु वक्षसि ॥ १२ ॥
वासो गृहेऽप्यवस्थाने वासा स्यादाटरूपके ।
मुनिविस्तारयोर्व्यासः शंसा वचनवाञ्छयोः ॥ १३ ॥
हिंसा चौर्यादिवधयोः हंसः सूर्यमरालयोः ।
कृष्णेङ्गवाते निर्लोभनृपतौ परमात्मनि ॥ १४ ॥
योगिमन्त्रादिभेदे च मत्सरे तुरगान्तरे ।

सतृतीयम् ।

अलसा हंसपद्यां स्यादागः पापापराधयोः ॥ १५ ॥
आशीः स्त्री सर्प्पदंष्ट्रायां तथा स्त्री शुभशंसने ।
आख्यायिकापरिच्छेदेऽप्याश्वासो निर्वृतावपि ॥ १६ ॥
इष्वासः स्याद्धनुर्म्मात्रे स्यादिष्वासो धनुर्धरे ।
उच्छ्वासः शासनाश्वासगद्यबन्धगुणान्तरे ॥ १७ ॥

---

रास–गोपक्रीडा, भाषाकी शृंखला, ध्वनि, ( पुं० )
वत्स–पुत्रआदि, बछड़ा, वर्ष ( पुं० )
वत्स–छाती ( न० ) ॥ १२ ॥
वास–घर, स्थिति ( पुं० )
वासा–अडूसा ( स्त्री० )
व्यास–मुनि, विस्तार, ( पुं० )
शंसा–वचन, वांछा ( स्त्री० )॥१३॥
हिंसा–चोरीआदि, प्राणीका मारना ( स्त्री० )
हंस–सूर्य, हंस-पक्षी, श्रीकृष्ण, शरीरका वायु, लोभरहित राजा, परमात्मा, ॥ १४ ॥ योगिभेद, मन्त्र आदि भेद, मत्सरी, अश्वभेद (पु०)

सतृतीय ।

अलसा–लालरंगका लजालु, (स्त्री०)
आगस्–पाप, अपराध ( न० ) १५
आशिस्–सर्पकी डाढ, शुभका कथन ( स्त्री० )
आश्वास–वार्ताका विश्राम, आनन्द ( पुं० ) ॥ १६ ॥
इष्वास–धनुष,धनुष धारण करनेवाला ( पुं० )
उच्छ्वास–शिक्षा, आश्वासना, गद्यबन्धका विश्राम ( पुं० ) ॥ १७ ॥

उत्तंसश्चावतंसश्च वतंसश्चेत्यमी त्रयः ।
अस्त्रियामेव वर्त्तन्ते कर्णपूरेऽपि शेखरे ॥ १८ ॥
उरस्तु वक्षोवरयोरुषः सन्ध्याप्रभातयोः ।
एनोऽपराधे कलुषेऽप्योकस्त्वाश्रयसद्मनोः ॥ १९ ॥
ओजो दीप्तौ च सामर्थ्येऽप्यवष्टम्भप्रकाशयोः ।
ओजस्तेजसि धातूनामिति पञ्चसु दृश्यते ॥ २० ॥
कीकसः क्रिमिजातौ स्यात्कीकसं क्लीवमस्थनि ।
चमसः पिष्टभेदे स्यात्पर्प्पटे चूर्णसंवले ॥ २१ ॥
छन्दः श्रुतीच्छयोः पद्ये स्याच्छन्द्ये ना तु वर्त्तते ।
ज्यायांस्त्रिष्विति वृद्धे स्यादपि श्रेष्ठातिशस्तयोः ॥ २२ ॥
गुणे कोपेऽप्यभिमतं तरः स्याद्बलवेगयोः ।
तामसी चण्डिकायां स्यात्तामसः खलसर्प्पयोः ॥ २३ ॥
तेजः पराक्रमे दीप्तौ प्रभावे बलशुक्रयोः ।
धनुः शरासने राशौ धनुर्द्धन्विपियालयोः ॥ २४ ॥

---

उत्तंस, अवतंस, वतंस–मुकुट आदि, कर्णभूषण ( पु०न० ) १८
उरस्–छाती, श्रेष्ठ, ( न० )
उषस्–सध्या, प्रभात ( न० )
एनस्–अपराध, पाप ( न० )
ओकस्–आश्रय, स्थान ( न० ) १९
ओजस्–दीप्ति, सामर्थ्य, रोकनेवाला, प्रकाश, धातुओंका तेज, (न०)२०
कीकस–क्रिमिजाति, ( पु० )
कीकस–अस्थि ( हड्डी ) ( न० )
चमस–पिष्टभेद, पापड, चूर्णलिपटाहुवा ( पुं० ) ॥ २१ ॥

छन्दस्–वेद, इच्छा, पद्य, स्वच्छंदता ( पु० )
ज्यायस्–अतिवृद्ध, श्रेष्ठ, अतिप्रशंसनीय ( त्रि० ) ॥ २२ ॥
तरस्–गुण, कोप, बल, वेग ( न० )
तामसी–चंडिका, ( स्त्री० )
तामस–खल ( खोटा ), सर्प ( पुं० ) ॥ २३ ॥
तेजस्–पराक्रम, दीप्ति, प्रभाव, बल, वीर्य, ( न० )
धनुस्–धनुष, धन–राशि, (पु०न०)
धनुस्–चिरोजी, ( पुं० ) ॥ २४ ॥

धनुर्धनुर्धरेऽपि स्याद्धनुरर्जुनभूरुहे ।
नभो व्योम्नि नभो मेघे बिससूत्रे पतद्ग्रहे ॥ २५ ॥

वर्षासु श्रावणे घ्राणे नभाः पलितमस्तके ।
पनसः कण्टकिफले कण्टके कपिरुग्भिदोः ॥ २६ ॥

दुग्धे नीरे वटादीनां क्षीरेऽपि क्षीरवत्पयः ।
श्रीवासे पायसः पुंसि परमान्ने तु पायसम् ॥ २७ ॥

पुष्कसी कालिकानील्योः पुष्कसः श्वपचेऽधमे ।
प्रहासः स्यान्नटवटौ हास्यतीर्थविशेषयोः ॥ २८ ॥

पुनरर्थेऽव्ययं भूयो भूयांस्तु बहुषु त्रिषु ।
मनश्चित्ते मनीषाया महस्तूत्सवतेजसोः ॥ २९ ॥

मानसं स्वान्तसरसो रजः स्यादार्त्तवे गुणे ।
रजः परागे रेणौ तु रजवद्दृश्यते रजः ॥ ३० ॥

---

धनुषको धारण करनेवाला (त्रि०)
अर्जुन ( कोह ) वृक्ष ( पुं० )
नभस्-आकाश, मेघ, कमलभँसौडा-
का तंतु, पीकदान ( न० ) ॥२५॥
वर्षा-ऋतु, श्रावण-मास, नासिका,
बुढापेसे सफेद मस्तकवाला (पुं०)
पनस्-फनस-वृक्ष, काँटा, वानरभेद,
रोगभेद, ( पुं० ) ॥ २६ ॥
पयस्( पय )-दूध, जल, वडआदि
वृक्षोंका दूध, ( न० )
पायस-देवदारुकी धूप, ( पुं० )क्षी-
रान ( खीर ) ( न० ) ॥ २७ ॥

पुष्कसी-कालिका, नील-वृक्ष(स्त्री०)
पुष्कस-चाण्डाल, नीच ( पु० )
प्रहास-नटका लड़का, ठट्ठासे हँसना,
तीर्थविशेष ( पुं० ) ॥ २८ ॥
भूयस्-पुनः ( दूसरीवार ) ( अ० )
भूयस्-बहुत ( त्रि० )
मनस्-चित्त, बुद्धि, ( न० )
महस्-उत्सव, तेज ( न० ) ॥२९॥
मानस-मन, एक सरोवर, ( न० )
रजस्-स्त्रीका आर्तव, गुण, पुष्पधूलि
( न० )
रजस्(रज)-धूलिमात्र ( न० ) ३०

हर्षे वेगे च रभसस्तत्त्वे गुह्ये रते रहः ।
दंष्ट्रायां राक्षसी ख्याता राक्षसी राक्षसस्त्रियाम् ॥ ३१ ॥
रेतः शुक्रे रसे रेफाः क्रूरेऽपि कृपणेऽधमे ।
रोदश्च रोदसी चैव दिवि भूमौ द्वयोरपि ॥ ३२ ॥
लालसस्तु द्वयोस्तृष्णाविष्टे चौत्सुक्ययाच्ञयोः ।
वपुर्नपुंसकं देहे वपुर्भव्याकृतावपि ॥ ३३ ॥
वयस्तु यौवने बाल्यप्रभृतौ विहगे वयाः ।
वर्हिस्तु पुंसि दहने वर्हिः पुंसि कुशेऽपि च ॥ ३४ ॥
वरासिः स्याद्वसिश्रेष्ठे वरासिः स्थूलशाटके ।
वर्चो दीप्तौ पुरीषे च वर्चो रूपेऽपि न द्वयोः ॥ ३५ ॥
श्रीवासे वायसः पुंसि वलिपुष्टेऽपि वायसः ।
काकोदुम्बरिकायां च काकमाच्यां च वायसी ॥ ३६ ॥

---

रभस–हर्ष ( आनंद ), वेग ( पुं० )
रहस्–तत्त्व, गुह्य ( गोप्य ), मैथुन ( न० )
राक्षसी–डाढ, राक्षसकी स्त्री ( राक्षसी ) ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥
रेतस्–वीर्य, रस ( न० )
रेफस्–क्रूर, कृपण, नीच ( त्रि० )
रोदस्–रोदसी–आकाश, पृथ्वी, ये दोनों एकवार ( आकाशभूमि ) ( स्त्री० ) ॥ ३२ ॥
लालस–लालसा–तृष्णाव्याप्त, उत्सुकता, याचा ( पुं० स्त्री० )
वपुस्–शरीर, सुंदर आकृति (न० ) ॥ ३३ ॥
वयस्–यौवन, बालपनआदि अवस्था ( न० )
वयस्–पक्षी ( पुं० )
वर्हिस्–अग्नि, कुशा, ( पुं० ) ॥३४॥
वरासि–श्रेष्ठखड्ग, मोटी साडी या धोती ( पुं० )
वर्चस्–दीप्ति, विष्ठा, रूप, ( न० ) ॥ ३५ ॥
वायस–श्रीवास–धूप, ( सरलवृक्षका गोंद ), कोयल–पक्षी ( पुं० )
वायसी–कठूमर, मकोय, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥

वासस्तु वसने ख्यातमोष्ठे दशनपूर्वकम् ।
वाहसोऽजगरे वारिनिर्माणे सुनिषण्णके ॥ ३७ ॥
विद्वान्धीरात्मवित्प्राज्ञे विलासो हावलीलयोः ।
वीतंसो बन्धनोपाये मृगाणां पक्षिणामपि ॥ ३८ ॥
तद्विश्वासाय वस्त्रे च वीतंसमपि न द्वयोः ।
वीभत्सो नाऽर्जुने हिंस्रे विकृते सघृणे त्रिपु ॥ ३९ ॥
पितामहे बुधे वेधा वेधा दामोदरेऽपि च ।
शिरस्तु मस्तके सेनाग्रभागेऽग्र्यप्रधानयोः ॥ ४० ॥
श्रेयस्तु मङ्गले धर्म्मे श्रेयाञ्शस्तेऽभिधेयवत् ।
श्रेयसी करिपिप्पल्यामभयारास्नयोरपि ॥ ४१ ॥
श्रीवासो वृकधूपेऽपि श्रीवासो विष्णुपद्मयोः ।
स्रोतोऽम्बुवेगे कर्णे च स्रोतो देहशिरास्वपि ॥ ४२ ॥

---

वासस्–वस्त्र, ( न० )
दशनवासस्–होंठ ( न० )
वाहस–अजगर–सर्प, जलका निकसना, अच्छीतरह स्थित हुवा ( पुं० ) ॥ ३७ ॥
विद्वस्–धैर्यवान, आत्मवेत्ता, पंडित, ( पुं० )
विलास–हाव, लीला ( पुं० )
वीतंस–मृग और पक्षियोंका बंधनका उपाय, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥
वीतंस–मृग और पक्षियोंके विश्वासकेलिये वस्त्र ( डरावा ) ( न० )
वीभत्स–अर्जुन ( पुं० ) हिंसाकरनेवाला, विकारको प्राप्त हुवा, ग्लानि करनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ३९ ॥
वेधस्–ब्रह्मा, पंडित, श्रीकृष्ण (पुं०)
शिरस्–मस्तक, सेनाका अग्रभाग ( न० ) आगे होनेवाला, प्रधान ( त्रि० ) ॥ ४० ॥
श्रेयस्–मंगल, धर्म ( न० )
श्रेयस्–श्रेष्ठ ( त्रि० )
श्रेयसी–गजपीपल, हरड, रायसन ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥
श्रीवास–सरल वृक्षका गोंद, विष्णु, कमल ( पु० )
स्रोतस्–जलका वेग ( थोडा जल ), कान, शरीरकी नाडी ( न० ) ४२

सङ्क्षेपेऽपि समासः स्यात्समासः स्यात्समर्थने ।
द्वन्द्वादौ च समासाख्या सरस्तोयतडागयोः ॥ ४३ ॥
सहो ज्योतिष्मति वले सहा हेमन्तमार्गयोः ।
सारसं पङ्कजे क्लीवं सारसः पक्षिचन्द्रयोः ॥ ४४ ॥
साहसं तु बलात्कारकरणे साहसं मदे ।
सुरसौषधिभेदेऽपि हविस्तु घृतहव्ययोः ॥ ४५ ॥

सचतुर्थम् ।

अगौकाश्च नगौकाश्च शरभे सिंहपक्षिणोः ।
अधिवासस्तु वसतौ संस्कारे धूपनादिभिः ॥ ४६ ॥
अवध्वंसस्तु निंदायां परित्यागावचूर्णयोः ।
उदर्चिः पुंसि दहने उदर्चिस्तूत्प्रभे त्रिपु ॥ ४७ ॥
कनीयाननुजेऽत्यल्पे त्रिषु स्यादतियूनि वा ।
कलहंसस्तु कादम्बे राजहंसे नृपोत्तमे ॥ ४८ ॥

---

समास—सक्षेप, समर्थन करना, द्वन्द्व आदि—समास ( पुं० )

सरस्—जल, तालाव ( न० ) ॥४३॥

सहस्—ज्योति, अतिवल, ( न० )

सहस्—हेमन्त—ऋतु, मार्गशिर—मास ( पुं० )

सारस—कमल ( न० )

सारस—सारस—पक्षी, चंद्रमा ( पुं० ) ॥ ४४ ॥

साहस—जवरदस्ती करनी, मद(न०)

सुरसा—औषधिभेद ( तुलसी ), ( स्त्री० )

हविस्—घृत, देवान्न ( न० ) ॥४५॥

सचतुर्थ ।

अगौकस् नगौकस—सावर, सिंह, पक्षी ( पुं० )

अधिवास्—वसना, धूप देना आदिसे सस्कार ( पुं० ) ॥ ४६ ॥

अवध्वंस—निंदा, परित्याग, चूर्ण करना ( पुं० )

उदर्चिस्—अग्नि ( पु० )

उदर्चिस्—तीव्र प्रभावाला ( त्रि० ) ॥ ४७ ॥

कनीयस्—छोटा भ्राता, वहुत थोडा, अतियुवा ( जवान ) ( त्रि० )

कलहंस—वत्तक, राजहंस ( जिसकी चोंच और चरण रक्तहों ) राजाओंमें श्रेष्ठ राजा ( पुं० ) ॥ ४८ ॥

कुम्भीनसो विषज्वालाकुलदृष्टिभुजङ्गमे ।
भुजङ्गमेऽप्यथो कुम्भीनसी लवणमातरि ॥ ४९ ॥

भवेद्घनरसो नीरे दक्षिणावर्त्तपारदे ।
सान्द्रनिर्यासकर्पूरपीलुपर्णीषु मोरटे ॥ ५० ॥

चन्द्रहासो दशग्रीवखड्गे खड्गे च दृश्यते ।
क्लीबं तामरसं ताम्रे काञ्चने जलजेऽपि च ॥ ५१ ॥

त्रिस्रोता जाह्नवीनद्योर्दिवौकाश्चातके सुरे ।
दीर्घायुः पुंसि मार्त्तण्डकाकशाल्मलिजीवके ॥ ५२ ॥

निःश्रेयसं शुभे शुक्ले पुंसि निःश्रेयसो हरे ।
नीलाञ्जसाऽप्सरोभेदे नदीभेदे तडित्यपि ॥ ५३ ॥

पुनर्वसुःस्त्रियामृक्षे कृष्णे कात्यायने पुमान् ।
पौर्णमासी तु पौर्णम्या पौर्णमासः क्रतौ नरि ॥ ५४ ॥

---

कुंभीनस–विषज्वालासे आकुल दृष्टिवाला सर्प, सर्प, ( पुं० )
कुंभीनसी–लवणासुरकी माता(स्त्री०) ॥ ४९ ॥
घनरस–जल, दक्षिणावर्त पारा, सघन, गौंद, कपूर, चुरनहार, क्षीरमोरट, ( पुं० ) ॥ ५० ॥
चंद्रहास–रावणका खड्ग, खड्गमात्र, ( पुं० )
तामरस–ताँबा, सुवर्ण, कमल,(न०) ॥ ५१ ॥
त्रिस्रोता–गंगा, नदी, ( स्त्री० )
दिवौकस्–पपीहा-पक्षी, देवता(पुं०)
दीर्घायुस्–सूर्य, काग-पक्षी, शाल्मलि ( साल ) वृक्ष, जीवक औषधि ( त्रि० ) ॥ ५२ ॥
निःश्रेयस–शुभ ( न० ) शुक्ल (स्वच्छ ), महादेव ( पु० )
नीलाञ्जसा–अप्सराभेद, नदीभेद, बिजली ( स्त्री० ) ॥ ५३ ॥
पुनर्वसु–पुनर्वसु-नक्षत्र ( स्त्री० ) कृष्ण, कात्यायन- मुनि ( पुं० )
पौर्णमासी–पूर्णिमा तिथि, ( स्त्री० )
पौर्णमास–यज्ञ ( पुं० ) ॥ ५४ ॥

प्रचेताः पुंसि वरुणे मुनौ हृष्टे तु वाच्यवत् ।
योगे वरीयान् श्रेष्ठे च वरिष्ठे युवते त्रिषु ॥ ५५ ॥
मता मधुरसा मूर्वा द्राक्षादुग्धिकयोरपि ।
म्लाने मलीमसो लोहपुष्पकाशीशयोः पुमान् ॥ ५६ ॥
महारसस्तु खर्जूरे कोशकारे कसेरुणि ।
राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे ॥ ५७ ॥
रासेरसस्तु रासे स्याद्रससिद्धिवलावपि ।
विभावसुर्बृहद्भानौ भानौ हारान्तरेऽपि च ॥ ५८ ॥
विभावसुः स्याद्गन्धर्वभेदे पुंसि निशि स्त्रियाम् ।
विहायाः पुंसि विहगे विहायः सुरवर्त्मनि ॥ ५९ ॥
श्वःश्रेयसं तु कल्याणे परानन्दे च शर्म्मणि ।
सप्तार्चिर्दहनेऽपि स्यात्सप्तार्चिः क्रूरलोचने ॥ ६० ॥

---

प्रचेतस्—वरुण, मुनि, ( पुं० ) प्रसन्न ( त्रि० )

वरीयस्—वरीयान्—योग, श्रेष्ठ,अतिश्रेष्ठ, जवान ( त्रि० ) ॥ ५५ ॥

मधुरसा—मरोरफली, दाख, दूधी ( स्त्री० )

मलीमस—मलिन, लोहा, पुष्पकसीस ( पुं० ) ॥ ५६ ॥

महारस—खजूर, कस ( ईख ), कसेरु ( पु० )

राजहंस—बतक, कलहंस, राजाओंमें श्रेष्ठ ( पुं० ) ॥ ५७ ॥

रासेरस—रास ( बहुतोंका नृत्य ), रससिद्धिकेलिये बलि ( पुं० )

विभावसु—अग्नि, सूर्य, हारभेद, ॥ ५८ ॥

गंधर्वभेद ( पुं० ) रात्रि ( स्त्री० )

विहायस्—पक्षी ( पुं० )

विहायस्—आकाश, ( न० )॥५९॥

श्वःश्रेयस—कल्याण, परम आनन्द, सुख ( न० )

सप्तार्चिस्—अग्नि, ( पुं० ) क्रूर नेत्रवाला, ( त्रि० ) ॥ ६० ॥

समञ्जसः स्यादुचितेऽप्यभ्यस्तेऽपि समञ्जसः ।
मतः सर्वरसो वीणाप्रभेदे धूनके पुमान् ॥ ६१ ॥
साधीयानतिसाधौ स्यादतिवादेऽपि वाच्यवत् ।
भवेत्सिद्धरसो व्याडिप्रभृतौ च रसेऽपि च ॥ ६२ ॥
सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्रियां धीरे सुरे पुमान् ।
सुमेधास्तु स्त्रियां ज्योतिष्मत्यां दिव्यमतौ त्रिषु ॥ ६३ ॥

सपञ्चमम् ।

दिव्यचक्षुः पुमानन्धे सुगन्धेऽपि सुलोचने ।
स्यान्नभश्चमसश्चित्रापूपे चन्द्रेन्द्रजालयोः ॥ ६४ ॥
हिङ्गुनिर्यासशब्दोऽयं निम्बे हिङ्गुरसे पुमान् ।

सपष्ठम् ।

हिरण्यरेताः सप्तार्चिःसप्तपर्ण्योः पुमानयम् ॥ ६५ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां सान्तवर्गः ॥

---

समंजस–उचित, अभ्यास किया हुवा ( त्रि० )
सर्वरस–वीणाभेद, धुननेवाला, (पुं०) ॥ ६१ ॥
साधीयस्–अत्यंत साधु, अतिवाद ( त्रि० )
सिद्धरस–व्याडि आदि, रस, (पु०) ॥ ६२ ॥
सुमनस्–पुष्प, मालती, ( स्त्री० ) धीर, देवता ( पुं० )
सुमेधस्–मालकाँगनी, (स्त्री०) श्रेष्ठ बुद्धिवाला ( त्रि० ) ॥ ६३ ॥

सपंचम ।

दिव्यचक्षुस्–अन्धा, सुगंध, सुंदर नेत्रोंवाला ( पुं० )
नभश्चमस–.. ...चंद्रमा, इंद्रजाल ( पुं० ) ६४ ॥
हिंगुनिर्यास–नींच, हींगका रस(पुं०)

सपष्ठ ।

हिरण्यरेतस्–अग्नि, लज्जावती औषधि ( पुं० ) ॥ ६५ ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषा टीकामें सान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ हान्तवर्गः ।

हैकम् ।

सरोपवारणे हीरे हः स्याद्दीपालने तु हिः ।

हद्वितीयम् ।

अहिर्वृत्राऽसुरे सर्पे स्यादीहा तूद्यमेच्छयोः ॥ १ ॥
नष्टेन्दुकलादर्शेऽपि पिकालापे स्त्रियां कुहूः ।
गह्वरे सिंहपुष्प्यां च गुहा स्कन्दे गुहः पुमान् ॥ २ ॥
गृहाः पुंसि गृहे पत्न्यां ग्राहो जलचरे पुमान् ।
ग्रहः सूर्यादिनिर्बन्धोपरागेषु रणोद्यमे ॥ ३ ॥
ग्रहणे पूतनादौ च सैंहिकेयेऽप्यनुग्रहे ।
नाहस्तु बन्धने कूटेऽप्युपाहो वैरानुबन्धने ॥ ४ ॥
ग्राहो निपुणतर्केऽपि प्रौहो हस्त्यंघ्रिपर्वणोः ।
बहुः स्यात्त्र्यादिसंख्यासु बहुः स्याद्विपुलेऽन्यवत् ॥ ५ ॥

---

अथ हान्तवर्ग ।

हैक ।

ह—क्रोधवालेका निवारण करना, हीरा ( पुं० )

हि—दिनपुत्र ( पुं० )

हद्वितीय ।

अहि—वृत्रासुर, सर्प, ( पुं० )

ईहा—उद्यम, वांछा ( स्त्री० ) ॥ १ ॥

कुहू—नष्ट इंदुकलावाली अमावास्या, कोयलका शब्द ( स्त्री० )

गुहा—पर्वतकी गुफा, पिठवन या नपवन औषधि, ( स्त्री० )

गुह—स्वामिकार्त्तिक ( पुं० ) ॥ २ ॥

गृह—घर, स्त्री ( पुं० बहु० )

ग्राह—ग्रहण करना, जलचर (ग्राहना-दि ) ( पुं० )

ग्रह—सूर्यादि ग्रह, हठ, सूर्यचंद्रका ग्रहण, रणका उद्यम ॥ ३ ॥ ग्रहण करना, पूतना आदि बालग्रह, राहु, अनुग्रह ( पुं० )

नाह—बंधन, लोहा कूटनेका घन(पुं०)

उपनाह—वैर, अनुबंधन, ( वीणाके तार बांधनेकी खूंटी ) ( पुं० ) ४

प्रौह—निपुन, तर्क, हस्तीका चरण, पर्व ( पोरी ) ( पु० )

बहु—तीन आदि संख्या, बहुत (त्रि०) ॥ ५ ॥

वाहावाहौ हये वाहौ वाहः स्याद्वृषमानयोः ।
मही क्षितौ च नद्यां च मह उत्सवतेजसोः ॥ ६ ॥
मोहो मूढत्वमात्रेऽपि स्यादहम्मतिमूर्च्छयोः ।
लोहस्तु शस्त्रे लोहं तु जोङ्गके सर्वतैजसे ॥ ७ ॥
वर्हं मयूरपिच्छेऽपि दलेऽपि स्यान्नपुंसकम् ।
वहो गन्धवहे स्कन्धदेशे स्याद्वृषभस्य च ॥ ८ ॥
व्यूहस्तु बलविन्यासे वृन्दे निर्माणतर्कयोः ।
सहो बले च भूम्यां तु मुद्गपर्ण्यां नखौषधे ॥ ९ ॥
सहदेवाकुमार्योश्च सहः क्षान्तियुते त्रिषु ।
सिंहः कण्ठीरवे राशिभेदे श्रेष्ठे परस्थितः ॥ १० ॥
सिंही बृहत्यां वार्त्ताकौ राहुमातरि वासके ।

हतृतीयम् ।

आरोहस्तु नितम्बे स्याद्दीर्घत्वे च समुच्छ्रये ॥ ११ ॥

---

वाहा, वाह–अश्व, भुजा, (स्त्री०पु०)
वाह–बैल, प्रमाणभेद ( १२८ सेर ) ( पु० )
मही–पृथ्वी, नदी ( स्त्री० )
मह–उत्साह, तेज ( पुं० ) ॥ ६ ॥
मोह–मूढतामात्र, अभिमान, मूर्छा ( पुं० )
लोह–शस्त्र ( पुं० )
लोह–अगर, संपूर्ण धातु ( न० ) ॥ ७ ॥
वर्ह–मोरपंख, दल ( पत्ता ) ( न० )
वह–वायु, बैलका कंधा ( पुं० ) ॥ ८ ॥
व्यूह–सेनारचना, समूह, रचना, तर्क ( पुं० )
सह–बल ( पुं न० )
सहा–पृथ्वी, मुगवन, नख ॥ ९ ॥ सहदेई, गुवारपाठा, ( स्त्री० )
सह–क्षमावान् ( त्रि० )
सिंह–शेर, राशिभेद, शब्दके आगे जुड़ा–श्रेष्ठ, (जैसे पुरुषसिंह ) (पुं०) ॥ १० ॥
सिंही–कटेहली, बैंगन, राहुकी माता, बाँसा ( स्त्री० )

हतृतीय ।

आरोह–नितम्ब ( चूँतड़ ), लंबाई, ऊँचाई, ॥ ११ ॥

अवरोहे हस्तिपके मानारोहणयोरपि ।
उत्साहस्तूद्यमे सूत्रतन्तावपि पुमानयम् ॥ १२ ॥
कटाहो घृततैलादिपाकामत्रेऽपि कर्परे ।
दीपेऽपि कूर्म्मपृष्ठेऽपि कटाहो महिषीशिशौ ॥ १३ ॥
कलहो भण्डने युद्धे खड्गकोषे वराटके ।
दात्यूहः कालकण्ठेऽपि तथा वन्दिविहङ्गमे ॥ १४ ॥
नवाहो नूतनदिने नवाहः प्रतिपत्तिथौ ।
निग्रहो भर्त्सने बन्धे मर्यादायां च निग्रहः ॥ १५ ॥
निर्यूहो द्वारि निर्यासे शिखरे नागदन्तके ।
निरूहो वस्तिभेदे स्यात्तर्कनिश्चितयोरपि ॥ १६ ॥
पटहस्तु समारम्भे न स्त्री पटहमानके ।
प्रग्रहस्तु तुलासूत्रे बन्धे च नियमे भुजे ॥ १७ ॥

---

उतारना, फीलवान, प्रमाण-भेद, चढना ( पु० )

उत्साह—उद्यम, सूत्रतन्तु, ( पु० ) ॥ १२ ॥

कटाह—घृत तेल आदिमें पाक करनेका पात्र, घटआदिका खप्पर, दीप, कछुवाकी पीठ, भैंसका छोटा बच्चा ( पु० ) ॥ १३ ॥

कलह—बहुत बोलना, युद्ध, खड्गकोश, कौडी, ( पुं० )

दात्यूह—जलकाक, पपीहा ( पुं० ) ॥ १४ ॥

नवाह—नवीन दिन, प्रतिपदा तिथि ( पुं० )

निग्रह—झिडकना, बंधन, मर्यादा ( सीमा ) ( पुं० ) ॥ १५ ॥

निर्यूह—दरवाजा, वृक्षका गोंद आदि, शिखर, हाथीदात ( पु० )

निरूह—वस्तिभेद, तर्क, निश्चित (पुं०) ॥ १६ ॥

पटह—समारंभ ( आरभ ) ( पुं० ) ( पुं० न० )

प्रग्रह—तराजूका सूत्र, ( चोटिया ) बधन, नियम, भुजा ॥ १७ ॥

रश्मौ हयादिरश्मौ च वन्ध्यां स्वर्णालुनीपयोः ।
प्रग्राहस्तु तुलासूत्रे वर्षादिप्रग्रहेऽपि च ॥ १८ ॥
प्रवाहो जलवेगे स्यात्पारंपर्यानुवर्त्तने ।
वराहः किरिमुस्ताद्रिविष्णुमेघेषु मानके ॥ १९ ॥
वाराही मातृकावुद्धदेव्योर्गृष्टयाख्यभेषजे ।
कायसङ्ग्रामविस्तारप्रविभागेषु विग्रहः ॥ २० ॥
विग्रहः स्यात्समासेऽपि विदेहो मिथिले पुमान् ।
विदेहा मिथिलायां स्याद्देहशून्येऽपि वाच्यवत् ॥ २१ ॥
वैदेही रोचनासीतावणिग्योपित्सु पिप्पलौ ।
सङ्ग्रहो वृहद्युत्तुङ्गे मुष्टौ सङ्ग्रहणेऽपि च ॥ २२ ॥
सुवहस्तु सुवाते स्यात्पुंसि सम्यग्वहे त्रिषु ।
एलापर्ण्यां तु सुवहा सल्लकीरास्नयोरपि ॥ २३ ॥

---

किरण, अश्वआदिकी रस्सी, धदी, अमलतास–वृक्ष, कदंब–वृक्ष (पुं०)
प्रग्राह–तराजूका सूत्र (चोटिया), वर्षा आदिका रुकना (पुं०) १८
प्रवाह–जलवेग, परंपरतासे अनुवर्तन (पुं०)
वराह–सूकर, नागरमोथा, पर्वत, विष्णु, मेघ, मान (प्रमाण) भेद (पुं०) ॥ १९ ॥
वाराही–मातृका, (देवी), वुद्ध भगवानकी देवी, वाराही कंद–औषधि (स्त्री०)
विग्रह–शरीर, संग्राम, (युद्ध), विस्तार, विभाग, ॥ २० ॥ पदोंका समास (पुं०)
विदेह–मिथिल–देश, (पुं०)
विदेहा–मिथिलापुरी, (स्त्री०)
विदेह–शरीररहित (त्रि०) ॥२१॥
वैदेही–गोरोचन, सीता, वनियाकी स्त्री, पीपल (स्त्री०)
संग्रह–बडा, ऊंचा, [illegible] मूँठि, पकडना (पुं०) ॥ २२ ॥
सुवह–श्रेष्ठ वायु, (पुं०) अच्छी तरह चलनेवाला, (त्रि०)
सुवहा–रायसन ॥ २३ ॥

सुवहा वल्लकीहंसपदीशेफालिकासु च ।

हचतुर्थम् ।

अभिग्रहोऽभिग्रहणेऽप्यभियोगेऽपि गौरवे ॥ २४ ॥
अवरोहोऽवतरणे मतो मूलाल्लतोद्गमे ।
शाखाशिफायां त्रिदिवेऽवग्रहस्तु गजालिके ॥ २५ ॥
वृष्टिरोधे प्रतिबन्धेऽप्यस्वातन्त्र्येऽप्यवग्रहः ।
अवग्राहो भवेद्वृष्टिरोधहस्तिललाटयोः ॥ २६ ॥
अश्वारोहाऽश्वगन्धायामश्वारोहोऽश्ववारके ।
पुमानुपग्रहो बन्द्यामुपयोगेऽनुकूलने ॥ २७ ॥
उपनाहस्तु वीणायां बन्धने व्रणलेपने ।
नासिकायां गन्धवहा वाते गन्धवहः पुमान् ॥ २८ ॥
तनूरुहं तु गरुति स्याल्लोम्नि च तनूरुहम् ।
तमोपहो जिने सूर्ये दहने मृगलक्ष्मणि ॥ २९ ॥

---

साल वृक्ष, नागदमनी,......लाल रगका लजालू, निर्गुंडी ( स्त्री० )

हचतुर्थ ।

अभिग्रह–चोरीकरना, लडाईमें पुकारना आदि, गौरव ( बडप्पन ) ( पु० ) ॥ २४ ॥

अवरोह–उतरना, वृक्षकी जडसे वेलका ऊपरको चढना, शाखाकी जड़, स्वर्ग ( पुं० )

अवग्रह–हस्तीका ललाट ॥ २५ ॥ वर्षाका रुकना, प्रतिबंध, पराधीनता ( पुं० )

अवग्राह–वृष्टिका रुकना, हस्तीका ललाट ( पुं० ) ॥ २६ ॥

अश्वारोहा–आसगध-औषधि(स्त्री०)

अश्वारोह–घोड़ेका सवार ( पुं० )

उपग्रह–बन्दी ( कैदखाना ), उपयोग, अनुकूलता ( पु० ) ॥२७॥

उपनाह–वीणाका बधन ( जहाँ तार बाधेजांय ), व्रणलेप ( पुं० )

गंधवहा–नासिका, (स्त्री०) गंधवह वायु ( पुं० ) ॥ २८ ॥

तनूरुह–पक्षीका पंख, लोम ( रोम ) ( न० )

तमोपह–जिनदेव, सूर्य, अग्नि, चंद्रमा ( पुं० ) ॥ २९ ॥

सूतो देवसहो देवसहा दण्डोत्पलौषधौ ।
परिग्रहः परिजने पत्न्यां स्वीकारशापयोः ॥ ३० ॥
मूलेऽपि परिबर्हस्तु राजयोग्ये परिच्छदे ।
परीवाहो जलोच्छ्वासे भूपालोचितवस्तुनि ॥ ३१ ॥
पितामहः पितुस्ताते ब्रह्मण्यपि पितामहः ।
प्रतिग्रहः स्वीकरणे सैन्यपृष्ठे ग्रहान्तरे ॥ ३२ ॥
महर्घ्यो विधिवद्देये तद्ग्रहे च पतद्ग्रहे ।
वरारोहा कटौ नार्यां पुंसि साद्यवरोहयोः ॥ ३३ ॥
महासहा माषपर्ण्यामम्लानेऽपि महासहाः ।

हपञ्चमम् ।

पितामहेऽपि तातस्य विधौ च प्रपितामहः ॥ ३४ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानाया मुक्तावल्यां हान्तवर्गः ॥

---

देवसह-सूत (सारथि), देवसहा-वृक्षविशेष डानिकुनिशाक ( वंगभाषा ) ( स्त्री० )

परिग्रह-परिजन ( परिवार ), पत्नी, अंगीकार, शाप ॥ ३० ॥ मूल, ( जड़ ) ( पुं० )

परिबर्ह-राजाके योग्य द्रव्य, उपस्कर, ( पुं० )

परीवाह-जलनिकसनेका मार्ग, राजाके योग्य वस्तु, (पुं०) ॥३१॥

पितामह-पिताका पिता ( दादा ), ब्रह्मा, ( पुं० )

प्रतिग्रह-अंगीकार करना, सेनाकी पीठ, ग्रहभेद ॥ ३२ ॥ बड़ोंको विधिपूर्वक देनेयोग्य द्रव्य, उसी द्रव्यका विधिपूर्वक ग्रहणकरना, पीकदान, ( पुं० )

वरारोहा-कटि (कमर) स्त्री, (स्त्री०)

वरारोह-घोड़ेका सवार, चढना, ( पुं० )॥ ३३ ॥

महासहा-माषपर्णी, कटैया, (स्त्री०)

हपंचम ।

प्रपितामह-पिताका पितामह ( परदादा ), ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥ ३४ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनमें हान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

क्षैकम् ।

राक्षसे क्षेत्रमात्रेऽपि क्षकारः परिकीर्तितः ।

क्षद्वितीयम् ।

अक्षस्तु पाशके चक्रे शकटे च विभीतके ॥ १ ॥
आचारे व्यवहारे च चुल्लावात्मज्ञकर्षयोः ।
अक्षं स्यादिन्द्रिये क्लीब तुत्थे सौवर्चलेऽपि च ॥ २ ॥
ऋक्षस्तु पुंसि भल्लूके शोणके कृतवेधने ।
ऋषिभेदेऽद्रिभेदे च तारायामृक्षमस्त्रियाम् ॥ ३ ॥
कक्षः सैरिभदोर्मूलकच्छे शुष्कवने तृणे ।
गुल्मिन्यागपि कक्षा तु गृहे काञ्चीप्रकोष्ठयोः ॥ ४ ॥
परिधाने परीधाने पश्चादञ्चलपल्लवे ।
स्पर्द्धोद्वारवरत्रासु गजरज्जौ रथांशके ॥ ५ ॥
रौक्षं गीते त्वन्यवत् स्यात्तीक्ष्णे शुचिमनोज्ञयोः ।
दक्षो मुनौ हरवृषे कुक्कुटेऽग्नौ च धातरि ॥ ६ ॥
दक्षः स्याद्दक्षिणभुजे प्रगल्भेऽनलसे त्रिपु ।

---

क्षैक ।

क्ष–राक्षस, क्षेत्रमात्र, ( पुं० )

क्षद्वितोय ।

अक्ष–पासा, चक्र, गाडी, बहेडा, ॥ १ ॥ आचार, व्यवहार, चूल्हा, आत्मज्ञानी, २ तोले परिमाण, (पु०)
अक्ष–इन्द्रिय, नीलाथोथा, काला नमक, ( न० ) ॥ २ ॥
ऋक्ष–रीछ, सोनापाठा-औषधि, तोरई या कराँहद छिद्र जिसमें वह, ऋषि-भेद, पर्वतभेद, ( पुं० ) तारा ( न० ) ॥ ३ ॥
कक्ष–भैंसा, भुजाका मूल ( कांख ), तृन–वृक्ष, सूखा वन, तृण, (पु०)
कक्षा–ओढी, घर, करधनी, ओटा या चौराट, ॥ ४ ॥ उपट्ठा, उपट्टेका पिछला भाग, स्पर्द्धा (ईर्षा), डकारलेना, चर्मरज्जु, हस्तीकी रज्जु, रथका भाग ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥
रौक्ष–गाना, तीक्ष्ण, पवित्र, सुंदर ( त्रि० )
दक्ष–मुनि, शिवका वृषभ, मुर्गा, अग्नि, ब्रह्मा, ॥ ६ ॥ दहिनी भुजा, (पुं०) प्रगल्भ (चतुर), सावधान (त्रि०)

दक्षा पृथिव्यामाख्याता ध्वाङ्क्षी कक्कोलिकौषधौ ॥ ७ ॥
ध्वाङ्क्षस्तु वायसे कङ्के गृहे तक्षकभिक्षुके ।
न्यक्षः परशुरामे स्यान्न्युक्षः कार्त्स्न्यनिकृष्टयोः ॥ ८ ॥
पक्षः केशात्परो वृन्दे पक्षो मासार्द्धपार्श्वयोः ।
गृहभित्तौ ग्रहे भृत्ये सख्यौ राजगजे बले ॥ ९ ॥
साध्ये गरुति देहाङ्गे चुल्लिरन्ध्रविरोधयोः ।
न्यायानुसारके प्रेक्षः प्रेक्षा नृत्येक्षणे गतौ ॥ १० ॥
प्लक्षस्तु पिप्पले जङ्घाद्वारपार्श्वे गृहस्य च ।
द्वीपभेदे गर्दभाण्डे भिक्षुकीर्तिविशेषयोः ॥ ११ ॥
भिक्षा भृत्यर्थनासेवास्वपि भिक्षितवस्तुनि ।
मोक्षोऽपवर्गे मृतौ च मोक्षो मुष्ककपादपे ॥ १२ ॥

---

दक्षा-पृथ्वी, ( स्त्री० )
ध्वांक्षी-ककोल औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥
ध्वांक्ष-काग, कंकपक्षी, घर, तक्षक सर्प, भिक्षुक ( पुं० )
न्यक्ष-परशुराम ( पु० ) न्युक्ष-संपूर्ण, निकृष्ट ( खराब ) ( त्रि० ) ॥ ८ ॥
केशपक्ष केशसमूह, पक्ष-महीनाका अर्धभाग, शरीरका एक तरफका भाग, घरकी भीत, ग्रह, भृत्य (नौकर), मित्र, राजाका हस्ती, ॥९॥ सेना, साध्य (न्याय-पक्ष), पक्षीकी पंख, शरीरका अंग, चूल्हेका छिद्र, विरोध, (पु०)
प्रेक्ष-न्यायके अनुसार चलनेवाला ( पु० )
प्रेक्षा-नृत्य देखना, गमन ( स्त्री० ) ॥ १० ॥
प्लक्ष-पीपल-वृक्ष, जंघाका और घरका द्वार तथा पसवाडा, द्वीपभेद, पाखरपीपल, भिक्षुकीभेद, कीर्तिभेद, ( पु० ) ॥ ११ ॥
भिक्षा-नौकरी, मांगना, सेवा, मांगी हुई वस्तु, ( स्त्री० )
मोक्ष-मोक्ष, मृत्यु, मोखा-वृक्ष, (पुं०) ॥ १२ ॥

कुबेरे गुह्यके यक्षो रक्षा रक्षणलाक्षयोः ।
रूक्षो वृक्षान्तरे प्रेमशून्यकर्कशयोस्त्रिषु ॥ १३ ॥
लक्षं न पुंसि सङ्ख्यायां क्लीबं छद्मशरव्ययोः ।
लक्षं वितस्तौ च क्लीबं वीक्ष्यं दृश्येऽभिधेयवत् ॥ १४ ॥

क्षतृतीयम् ।

अध्यक्षः स्यादधिकृते प्रत्यक्षेऽप्यभिधेयवत् ।
आरक्षं रक्षणीयेऽपि शिरोकर्म्मणि दन्तिनाम् ॥ १५ ॥
उत्प्रेक्षा तु मता काव्याऽलङ्काराऽनवधानयोः ।
गवाक्षी त्विन्द्रवारुण्या पुंसि जालककीशयोः ॥ १६ ॥
गोरक्षो नागरङ्गे स्याद्गवां च परिरक्षके ।
मृगाक्षी मृगनेत्रायामिन्द्रवारुणिकामिनोः[१] ॥ १७ ॥
रक्ताक्षः सैरिभे क्रूरे पारावतचकोरयोः ।
समीक्षा तत्त्वे बुद्धौ स्याद्ग्रन्थभेदे निभालने ॥ १८ ॥

---

यक्ष—कुवेर, गुह्यकमात्र, ( पु० )
रक्षा—रक्षा करना, लाख, ( स्त्री० )
रूक्ष—वृक्षभेद ( पु ) प्रेमशून्य, कठोर, ( त्रि० ) ॥ १३ ॥
लक्ष—लाख—संख्या, ( न० स्त्री० )
लक्ष—कपट ( बहाना ), बाणका निशाना, बालिस्त, ( न० )
वीक्ष्य—देखनेयोग्य, ( त्रि० ) ॥ १४ ॥

क्षतृतीय ।

अध्यक्ष—अधिकार कियाहुवा, प्रत्यक्ष, ( त्रि० )
आरक्ष—रक्षा करनेके योग्य, हस्तियोंका कुंभस्थल, ( त्रि० ) ॥ १५ ॥
उत्प्रेक्षा—काव्यका अलंकारभेद, विस्मरण, ( स्त्री० )
गवाक्षी—गड्रुभेकी बेल, ( स्त्री० )
गवाक्ष—झरोखा, बंदर, ( पुं ) ॥ १६ ॥
गोरक्ष—नारंगी, गौवोंकी रक्षा करनेवाला, ( पुं० )
मृगाक्षी—मृग सदृशनेत्रोंवाली, स्त्री, गड्रुभेकी बेल, संधिनी, ( स्त्री० ) ॥ १७
रक्ताक्ष—भैंसा, क्रूर—मनुष्य, कबूतर, चकोर, ( पुं० )
समीक्षा—तत्त्व, बुद्धि, ग्रंथभेद, दर्शन ( देखना ), ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥

क्षचतुर्थम् ।

देववृक्षः सप्तपर्णे मन्दारादिषु गुग्गुले ।
वीरवृक्षस्तु भल्लातपादपे ककुभद्रुमे ॥ १९ ॥
भूतवृक्षस्तु शाखोटयक्षश्योनाकपादपे ।
विख्यातो राजवृक्षस्तु सुवर्णालुपियालयोः ॥ २० ॥
विशालाक्षो हरे तार्क्ष्ये विशालाक्षी वरस्त्रियाम् ।
सकटाक्षो धवद्रौ स्यात्कटाक्षसहिते त्रिषु ॥ २१ ॥
अणादितव्यादिगुणादियोगात्पदं बहुव्रीहिमतं च वीक्ष्य ।
अनुक्तलिङ्गं च समूहनीयं कृतं यदि क्वापि बहुत्वभीतेः ॥२२॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानाया मुक्तावल्या क्षकारान्तवर्ग ॥

---

क्षचतुर्थ ।

देववृक्ष–सातवण–वृक्ष, मन्दार आदि देववृक्ष, गूगल, ( पुं० )

वीरवृक्ष–भिलावा–वृक्ष, कोह–वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १९ ॥

भूतवृक्ष–सहोरा–वृक्ष, वट–वृक्ष, सोनापाठा वृक्ष, ( पुं० )

राजवृक्ष–सुवर्णालु–वृक्ष, चिरौंजी–वृक्ष ( पुं० ) ॥ २० ॥

विशालाक्ष–महादेव, गरुड, (पुं०)

विशालाक्षी–सुंदरनेत्रोंवाली स्त्री, ( स्त्री० ) ( त्रि० )

सकटाक्ष–धव–वृक्ष, ( पुं० ) कटाक्षसहित, ( त्रि० ) ॥ २१ ॥

श्रीधरसेनजी कहते हैं–

अणादि–तव्यादि–प्रत्यय और गुणादिके योगसे बहुव्रीहिके मतको देखकर जहाँ मैंने लिंग नहीं कहा है वह जानलेना क्यों कि ग्रंथ बहुत बढ़जाता ॥ २२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचन अपराभिधाना मुक्तावलीमें क्षकारान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथाव्ययानि ।

अकारादिक्रमप्येवमिदानीं समनुक्रमात् ।
मया नानार्थकाण्डेऽस्मिन्विधीयन्तेऽव्ययानि च ॥ १ ॥
अः श्रीकण्ठेऽव्ययं तुल्याभावयोराः पितामहे ।
आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽत्यल्पेऽव्ययमथाऽव्ययम् ॥ २ ॥
आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमायां धातुयोगजे ।
सन्तापे च प्रकोपे च भवेदाः स्मृतमव्ययम् ॥ ३ ॥
इस्तु कामे पुमान्खेदे रुषोक्तौ चाव्ययं भवेत् ।
ई लक्ष्म्यामव्ययं स्त्री स्याद्दु खभावनकोपयोः ॥ ४ ॥
उः शिवे नाऽव्ययं तु स्यात्सम्बुद्धौ रोषभाषणे ।
ऊः स्यादनव्ययं रक्षारक्षत्रू त्रिषु रक्षके ॥ ५ ॥
सूतिक्रियायां सूतौ च वाक्यारम्भे त्वसङ्कुचक्रम् ।
ऋर्देवमातरि स्त्री स्यादव्ययं वाक्यकुत्सयोः ॥ ६ ॥

---

**श्री श्रीधरसेनजी कहते हैं—**
अब इस नानार्थकाण्डमें अनुक्रमसे अकारादिक अव्यय विधान करताहूं ॥ १ ॥

**अथाऽव्ययानि ।**

अ—वासुदेव या शिव, ( पुं० ) तुल्य, अभाव ( अ० ) ।
आ—ब्रह्मा, (पु०) आ—स्मृति, वाक्य, अतिअल्प ( अ० ) ॥ २ ॥
आ( ङ )—ईषत् ( थोडा ) अर्थ, अभिव्याप्ति, सीमा, धातुयोगसे उत्पन्न अर्थ, ( अ० )
आः—संताप ( पीडा ), क्रोध, (कोप) ( अ० ) ॥ ३ ॥
इ—कामदेव, (पु०) इ—खेद, क्रोधसे बोलना, ( अ० )
ई—लक्ष्मी, ( स्त्री० ) ई—दु खहोना, कोप ( क्रोध ), ( अव्यय ) ॥ ४ ॥
उ—महादेव, ( पुं० ) उ—संबोधन, क्रोधसे भाषण, ( अ० )
ऊ—रक्षा...... . ( त्रि० ) ॥ ५ ॥
ऋ—देवमाता, ( स्त्री० ) ऋ—वाक्य, निंदा, ( अ० ) ॥ ६ ॥

ऋश्च स्त्री देवताम्बायां स्यादेः पुंसि चतुर्भुजे ।
स्मृतिसम्बोधनाह्वानेऽव्ययमैस्तु शिवे पुमान् ॥ ७ ॥
अव्ययं त्वै समाख्यातं स्मृत्यामन्त्रणहूतिषु ।
ओः पुमान्ब्रह्मणि ख्यातेऽव्ययमामन्त्रणाह्वयोः ॥ ८ ॥
औनिभस्यव्ययं तु स्यात्सम्बुध्याह्वानयोर्मतम् ।
परब्रह्मण्यनुमतावः स्यादश्च तथाऽव्ययम् ॥ ९ ॥
अः पुंसि शङ्करे ख्यातः कादिख्यातमतोऽव्ययम् ।

क०

कु निन्दायामीषदर्थे किल्बिषे वारणेऽपि च ॥ १० ॥

ग०

निर्भर्त्सनेऽपि निन्दाया धिग् मनागल्पमन्दयोः ।
अङ्ग सम्बोधने हर्षे पुनरर्थेऽपि दृश्यते ॥ ११ ॥

च०

चः पादपूरणे पक्षान्तरे चापि समुच्चये ।
अन्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थेऽवधारणे ॥ १२ ॥

---

ऋ–देवमाता, ( स्त्री० )
ए–विष्णु, ( पु० ) ए–स्मृति, संबोधन, बुलाना, ( अ० )
ऐ–महादेव, ( पुं० ) ॥ ७ ॥ ऐ–स्मृति, सबोधन, बुलाना, ( अ० )
ओ–ब्रह्मा, ( पुं० ) ओ–सबोधन, बुलाना ( अ० ) ॥ ८ ॥
औ–भावण–नाम, ( पुं० ) सबोधन, बुलाना ( अ० )
अ–परब्रह्म, अनुमति, (पु०अ०) ॥९॥
अ–महादेव, ( पुं० ) इसके आगे कादि अव्यय कहते हैं ।

क०

कु–निंदा, ईषत् ( थोडा ) अर्थ, पाप, निवारणकरना, ( अ० ) ॥ १० ॥

ग०

धिक्–झिडकना, निन्दा ( अ० )
मनाक्–अल्प, मंद, ( अ० )
अंग–सबोधन, हर्ष, पुनः वा (बारबार) अर्थ, ( अ० ) ॥ ११ ॥

च०

च–पादपूरण, पक्षांतर, समुच्चय, ॥१२॥ अन्वाचय, समाहार, अन्योन्य अर्थ, निश्चय, ( अ० )

किञ्चारम्भेऽपिसाकल्ये वस्तुहेतौ विनिश्चये ।
तिर्यक्तिरोर्थे च कुले विहगादिष्वनव्ययम् ॥ १३ ॥
ननुच प्रश्नदुष्टोक्त्योः प्राक् स्यादिग्देशकालतः ।
प्रागग्रातीतपूर्वेषु प्रभाते चाप्यनन्तरे ॥ १४ ॥
सम्यग् वाढे प्रशंसायां हिरुग् मध्यविनार्थयोः ।

ञ०

नञभावे निषेधे च तद्विरुद्धतदन्ययोः ॥ १५ ॥
सादृश्ये चेषदर्थे च स्वरूपार्थेऽप्यतिक्रमे ।

ठ०

सुष्ठु प्रशंसनेऽत्यर्थेऽपष्ठु शोभानवद्ययोः ॥ १६ ॥

ण०

अन्तरेण विनामध्यार्थयोः ख्यातं त्वति स्तुतौ ।

त०

नितान्ताऽसंप्रतिक्षेपप्रकर्षे लङ्घनेप्यति ॥ १७ ॥

---

किंच—आरम, सपूर्णता, वस्तुहेतु, निश्चय, ( अ० )
तिर्यक्—तिरछापना ( अ० ) कुल, पक्षी आदि, ( त्रि० ) ॥ १३ ॥
ननुच—प्रश्न, दुष्ट उक्ति, ( अ० )
प्राक् दिक्—देश—कालसे पूर्व, (त्रि०)
प्राक्—अगाडी, बदीत हुवा, पूर्व, प्रभात, अनन्तर ( अतररहित ), ( अ० ) ॥ १४ ॥
सम्यक्—दृढ, प्रशंसा, ( अ० )
हिरुक्—मध्य, विनार्थ, ( अ० ) ।

ञ०

नञ्—अभाव, निषेध, उससे विरुद्ध, उससे अन्य ॥ १५ ॥ सादृश्य, ईषत् ( थोडा ) अर्थ, स्वरूपार्थ, अतिक्रम ( उल्लंघन ), ( अ० )

ठ०

सुष्ठु—प्रशसा, अत्यर्थ (वहुत), (अ०)
अपष्ठु—शोभा, दोषरहित, ( अ० ) ॥ १६ ॥

ण०

अन्तरेण—विनाअर्थ,मध्यअर्थ, (अ०)

त०

अति—स्तुति, निरतर, अन्यकाल, फेंकना, प्रकर्ष, लंघन, ( अ० ) ॥ १७ ॥

अतोऽपदेशे निर्देशे पञ्चम्यन्ते च कारणे ।
अन्ततः शासने पंचम्यर्थे सम्भावनाङ्गयोः ॥ १८ ॥
अस्तु स्यादभ्यनुज्ञानेऽप्यसूयामात्रयोरपि ।
अहोवत मतं खेदे सम्बुद्धौ चानुकम्पने ॥ १९ ॥
अहोवताद्भुतेऽपि स्यादाराद्दूरसमीपयोः ।
इतस्तु पञ्चम्यर्थे स्यादिते नियमभागयोः ॥ २० ॥
इति हेतौ प्रकारे च प्रकाशाद्यनुकर्षयोः ।
इति प्रकरणेऽपि स्यात्समाप्तौ च निदर्शने ॥ २१ ॥
उत प्रश्ने वितर्केर्थेऽप्युतात्यर्थविकल्पयोः ।
किन्तु स्यात्प्रश्नमात्रेऽपि किन्तु कामवितर्कयोः ॥ २२ ॥
किमुताऽतिशये प्रश्ने विकल्पार्थेऽपि कीर्त्तितः ।
कुतः स्यान्निहुते प्रश्ने पञ्चम्यर्थे कुतः स्मृतम् ॥ २३ ॥

---

अतः—बहाना, निर्देश ( दिखाना ), पंचमी विभक्तिवाला कारण, (अ०)

अन्ततः—पंचमी विभक्तिवाली शिक्षा, संभावना, अंग, ( अ० ) ॥ १८ ॥

अस्तु—अभ्यनुज्ञान ( ... ), ईर्षा-मात्र, ( अ० )

अहोवत—खेद, संबोधन, दया, ॥१९ अद्भुत, ( अ० )

आरात्(द्)—दूर, समीप, ( अ० )

इतः—पंचम्यर्थ, इते—नियम, विभाग, ( अ० ) ॥ २० ॥

इति—हेतु, प्रकार, प्रकाश, अनुकर्ष, प्रकरण, समाप्ति, निदर्शन (दिखाना) ( अ० ) ॥ २१ ॥

उत—प्रश्न, वितर्क, अतिअर्थ, विकल्प, ( अ० )

किन्तु—प्रश्नमात्र, काम इच्छा, (न०) वितर्क, ( अ० ) ॥ २२ ॥

किमुत—अतिशय, प्रश्न, विकल्प, ( अ० )

कुतः—गोप्य करना, प्रश्न, पंचमी-अर्थ, ( अ० ) ॥ २३ ॥

ते तवार्थे त्वयार्थे च मे च ममभयार्थयोः ।
तु पादपूरणे भेदाऽवधारणसमुच्चये ॥ २४ ॥
पक्षान्तरे नियोगे च प्रशंसाया विनिग्रहे ।
तत आदौ परिप्रश्ने पञ्चम्यर्थे कथान्तरे ॥ २५ ॥
आनन्तर्येऽपि तावत्तु कार्त्स्न्ये मानावधारणे ।
परिच्छदे तु पश्चात्तु प्रतीच्या चरमेऽपि च ॥ २६ ॥
पुरस्तात्प्रथमे प्राच्यामग्रतोऽर्थपुरार्थयोः ।
प्रति स्यात्प्रतिदाने च प्रति प्रतिनिधावपि ।
प्रधाने सम्भवे वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः ॥ २७ ॥
मात्रार्थे चाभिमुख्ये च प्रकाशे च स्मृतं प्रति ।
वत खेदे कृपानिन्दासन्तोषाऽऽमन्त्रणाद्भुते ॥ २८ ॥
यतःशब्दस्तु नियमे पञ्चम्यर्थविभागयोः ।

---

ते–'तव'का अर्थ, और 'मया'का अर्थ, मे–'मम'का अर्थ, और 'मया'का अर्थ, ( अ० )

तु–पादपूरण, भेद, निश्चय, समुच्चय ( इकट्टा करना ), ॥ २४ ॥ पक्षांतर (अन्यपक्ष), नियोग (जोडना), प्रशंसा, पकडना, ( अ० )

ततः–आदि, वारवार पूछना, पंचमीका अर्थ, अन्यकथा, ॥ २५ ॥ आनंतर्य ( अनतरभाव ), ( अ० )

तावत्–सपूर्णभाव, मान (परिमाण)का निश्चय, परिच्छद ( सामग्री ),

पश्चात्–पश्चिमदिशा, अन्तिमसमय, ( अ० ) ॥ २६ ॥

पुरस्तात्–प्रथम, पूर्वदिशा, अग्रतस्का अर्थ ( आगाडी ), पुराका अर्थ ( पहले ), ( अ० )

प्रति–प्रतिदान ( वापिसदेना ), प्रतिनिधि ( बदला ), प्रधान, सभव, वीप्सा, व्याप्त होनेकी इच्छा, लक्षणा आदि, ( अ० ) ॥ २७ ॥ मात्रा-अर्थ, आभिमुख्य (संमुख करना), प्रकाश, ( अ० )

वत–खेद, कृपा, निंदा, सन्तोष, आमंत्रण ( संबोधन ), अद्भुत, ( अ० ) ॥ २८ ॥

यत–नियम, पंचमीका अर्थ, विभाग, ( अ० )

यद्वत्प्रश्ने वितर्के च यावन्मानेऽवधारणे ॥ २९ ॥
सीम्नि कार्त्स्न्ये परिच्छेदे शश्वत्पुनःसहार्थयोः ।
स्वित्प्रश्ने च वितर्के च सकृत्सहैकवारयोः ॥ ३० ॥
युक्तार्थे बहुमात्रार्थेप्यधुनार्थेऽपि सम्प्रति ।
प्रत्यक्षवाचकः साक्षात्साक्षात्तुल्यार्थवाचकः ॥ ३१ ॥
स्वस्त्याशीःक्षेमपुण्येषु मतं स्वस्ति सुखादिषु ।
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः ॥ ३२ ॥
विवादे शोभनार्थे च हन्तशब्दः प्रयुज्यते ।

थ०

अथाऽथो च शुभे प्रश्ने साकल्यारम्भसंशये ॥ ३३ ॥
अनन्तरेऽप्यन्यथात्वपरार्थवितथार्थयोः ।
तथा सादृश्यनिर्देशनिश्चयेषु समुच्चये ॥ ३४ ॥

---

यद्वत्–प्रश्न, वितर्क, ( अ० )

यावत्–मान(प्रमाण), निश्चय, ॥२९॥ सीमा, संपूर्णता, परिच्छेद (इयत्ता), ( अ० )

शश्वत्–पुनः अर्थ, सह अर्थ, (अ०)

स्वित्–प्रश्न, वितर्क, ( अ० )

सकृत्–सहअर्थ, एकवारअर्थ (अ०) ॥ ३० ॥

सम्प्रति–युक्तअर्थ,... .अधुनाअर्थ, ( अ० )

साक्षात्–प्रत्यक्ष, तुल्य, ( अ० ) ॥ ३१ ॥

स्वस्ति–आशीर्वाद, क्षेम ( कुशल ), पुण्य, सुखआदि, ( अ० )

हन्त–हर्ष, दया, वाक्यका आरंभ, विषाद ( दुःख ),॥ ३२ ॥ विवाद, शोभाअर्थ, ( अव्य० )

थ०

अथ–अथो–शुभ, प्रश्न, संपूर्णता, आरंभ, सन्देह ॥ ३३ ॥ अनंतर, ( अ० )

अन्यथा–अपर अर्थ, वितथ (असत्य-अर्थ ) ( अ० ),

तथा–सदृशभाव, दिखाना, निश्चय, समुच्चय, (अ०) ॥ ३४ ॥

कारणस्योपपत्तावप्युद्वेगप्रतिवाक्ययोः ।
यथाऽनुमाने सादृश्ये निर्देशोद्देशयोरपि ॥ ३५ ॥
कारणस्योपपत्तौ च वृथा तु विधिवर्जिते ।
वृथा निष्कारणे वन्ध्ये सर्वथा हेतु वादयोः ॥ ३६ ॥
उत्प्राधान्ये प्रकाशे च मोक्षबन्धोर्द्धकर्म्मसु ।
प्राबल्यलाभभावेषु विभागाऽस्वास्थ्यशक्तिषु ॥ ३७ ॥
तत्कारणे तदार्थे च हेतुयद्यर्थयोस्तु यत् ।

न०

अनु त्वनुक्रमे हीने पश्चादर्थसहार्थयोः ।
आयामेऽपि समीपार्थे सादृश्ये लक्षणादिषु ॥ ३८ ॥
किन्नु प्रश्ने वितर्के च ननु प्रश्नावधारणे ।
नन्वनुज्ञावितर्कायमन्त्रेष्वनुनये ननु ॥ ३९ ॥
नाना विनार्थेऽपि मतं नानाऽनेकोभयार्थयोः ।

---

कारणकी उपपत्ति ( सिद्धि), उद्वेग, उत्तर, ( अ० )
यथा—अनुमान, सादृश्य, निर्देश, उद्देश, ॥ ३५ ॥ कारणकी सिद्धि, ( अ० )
वृथा—विधिसे वर्जित, निष्कारण, निष्फल, ( अ० )
सर्वथा—कारण, वाद, (अ०) ॥३६॥
उत्—प्राधान्य, प्रकाश, मोक्ष, बन्ध, ऊर्ध्वकर्म, प्रबलता, लाभ, भाव, अस्वस्थता, शक्ति ( अ० ) ॥३७॥
तत्—कारण, तदाका अर्थ, ( अ० )
यत्—हेतु ( कारण ), यदिका अर्थ, ( अ० ) न०
अनु—अनुक्रम, हीन, पश्चात्का अर्थ ( पीछे ), सहका अर्थ, ( सहित ), विस्तार, समीप, सदृशता, लक्षणादि, ( अ० ) ॥ ३८ ॥
किन्नु—प्रश्न, तर्कना, ( अ० )
ननु—प्रश्न, निश्चय, आज्ञा, प्रश्न, लाभ मंत्र ( सलाह ), नम्रता, ( अ० ) ॥ ३९ ॥
नाना—विनाका अर्थ, अनेक, दोनोंका अर्थ, ( अ० )

निः स्यान्नित्यभृशाश्चर्यविन्यासक्षेपराशिषु ॥ ४० ॥
अन्तर्भावेऽप्यधोभावे दर्शने दानकर्म्मणि
बन्धोपरमसामीप्यमोक्षकौशलसंयमे ॥ ४१ ॥
निवेशेऽप्यथ नु प्रश्नेऽतीतेऽनुनयवार्थयोः ।
स्थाने तु युक्तसादृश्यकारणार्थेषु दृश्यते ॥ ४२ ॥

प०

अप स्यादपकृष्टार्थे वर्जनार्थे विपर्यये ।
वियोगे विकृतौ चौर्ये हर्षनिर्देशयोरपि ॥ ४३ ॥
अपि सम्भावनाशङ्काप्रश्नगर्हासमुच्चये ।
अपि युक्तपदार्थेषु कामकारक्रियास्वपि ॥ ४४ ॥
उप हीनेऽधिके व्याप्तौ शक्तौ चारम्भपूजयोः ।
आचार्यकरणे दाने दाक्षिण्ये व्यत्ययेऽपि च ॥ ४५ ॥
तद्योगे दोषकथने मरणार्थोद्यमार्थयोः ।
समासन्नेऽपि लिप्सायामुपशब्द. प्रकीर्त्तितः ॥ ४६ ॥

---

नि–नित्य, अत्यंत आश्चर्य, विन्यास, क्षेप, राशि ॥ ४० ॥ अतर्भाव, अधोभाव, दर्शन, दानकर्म, बंधन, उपराम, समीपता, मोक्ष, कौशल, सयम, ( अ० ) ॥ ४१ ॥
नु–निवेश, प्रश्न, अतीत ( बदीत ), नम्रता, 'वा'का अर्थ
स्थाने–युक्त, सादृश्य, कारण अर्थ, ( अ० ) ॥ ४२ ॥

प०

अप–अपकृष्ट, वजन, विपर्यय, वियोग, विकार, चोरी, हर्ष, निर्देश, (अ०) ॥ ४३ ॥
अपि–युक्तपदार्थ, कामकार, क्रिया, ( अ० ) ॥ ४४ ॥
उप–हीन, अधिक, व्याप्ति, शक्ति, आरम, पूजा, आचार्यकरण, दान, चतुराई, व्यत्यय (उलटा), ( अ० ) ॥ ४५ ॥
तिसका योग, दोषोंका कहना, मरना, उद्यम, सनीपता, लब्ध होनेकी इच्छा, ( अ० ) ॥ ४६ ॥

व०

वशब्द उपमायां स्याद्वरुणे वः पुमानयम् ।
वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चये ॥ ४७ ॥
वै पादपूरणे सम्बोधनेऽप्यनुनये ध्रुवे ॥

भ०

अभीत्थंभूतकथनेऽप्यतिवीप्साऽभिमुख्ययोः ॥ ४८ ॥
अभीक्ष्णं तु मुहुःशीघ्रप्रकर्षेऽप्यतिसन्तते ।
स्यादभीक्ष्णं तथा पौनःपुन्यसन्ततयोर्मतम् ॥ ४९ ॥

म०

अमा सहार्थोऽन्तिकयोरमावास्याममा स्त्रियाम् ।
अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणनिष्फले ॥ ५० ॥
यत्ने नित्येऽप्यवश्यं स्यादास्मृताववधारणे ।
इदानीं वाक्यभूषायां सम्प्रत्यर्थे च सम्मतम् ॥ ५१ ॥
इं दुःखभावने क्रोधे प्रत्यक्षे सन्निधावपि ।

---

व०

व—उपमा, ( अ० ) व—वरुण, (पुं०)
वा—विकल्प, उपमा, एवका अर्थ, समुच्चय, ( अ० ) ॥ ४७ ॥
वै—पादपूरण, संबोधन, नम्रता, ध्रुव, ( अ० )

भ०

अभि—इत्थंभूत कथन, अतिवीप्सा ( व्याप्तहोनेकी इच्छा ), आभिमुख्य, ( अ० ) ॥ ४८ ॥
अभीक्ष्णम्—मुहुस् ( बारबार ) अर्थ, शीघ्र, प्रकर्ष, अतिनिरंतर, बारबार निरंतर, ( अ० ) ॥ ४९ ॥

म०

अमा—सह अर्थ, समीप अर्थ, अमा-अमावास्या तिथि, ( स्त्री० )
अलम्—आभूषण, पर्याप्ति (सामर्थ्य), शक्तिनिवारण, निष्फल, ( अ० ) ॥ ५० ॥
अवश्यम्—सबप्रकारसे स्मृति, निश्चय, ( अ० )
इदानीम्—वाक्यभूषण, संप्रति (अब) का अर्थ, ( अ० ) ॥ ५१ ॥
इम्—खोटा स्वभाव, क्रोध, प्रत्यक्ष, सन्निधि ( समीपता ), ( अ० )

उं प्रश्नेङ्गीकृतौ रोषे ऊं प्रश्ने रोषभाषणे ॥ ५२ ॥

एवं प्रकारोपमयोरङ्गीकारेऽवधारणे ।
ओं स्यादनुमतौ प्रोक्तं प्रणवे चाप्युपक्रमे ॥ ५३ ॥

कं शिरःसुखनीरेषु कथं प्रश्नप्रकारयोः ।
सम्भ्रमे सम्भवे चाथ कामं त्वनुमतौ मतम् ॥ ५४ ॥

प्रकामानुगमाऽसूयास्वथ किं प्रश्नकुत्सयोः ।
जोषं तु तूष्णींसुखयोः प्रशंसायां च लङ्घने ॥ ५५ ॥

तद्दिनं दिनमध्ये स्यात्तद्दिनं प्रतिवासरे ।
तूष्णीकां मौनमात्रे स्यात्तूष्णीकं त्रिषु मौनिनि ॥ ५६ ॥

नाम प्राकाश्यसम्भाव्यकुत्साऽभ्युपगमे क्रुधि ।
नूनं तर्के तु विख्यातं नूनं स्यादर्थनिश्चये ॥ ५७ ॥

---

उम्–प्रश्न, अंगीकार, क्रोध, ( अ० )
ऊम्–प्रश्न, क्रोधसे भाषण, ( अ० ) ॥ ५२ ॥
एवम्–प्रकार, उपमा, अंगीकार, निश्चय, ( अ० )
ओम्–अनुमति, ॐकार, प्रथम, प्रारंभ, ( अ० ) ॥ ५३ ॥
कम्–शिर, सुख, जल, ( अ० न० )
कथम्–प्रश्न, प्रकाश, संभ्रम, संभव ( सम्यक् प्रकारसे होना ), ( अ० )
कामम्–अनुमति, ॥ ५४ ॥ प्रकाम, अनुगम, निंदा, ( अ० )
किम्–प्रश्न, निंदा, ( अ० )
जोषम्–तूष्णी ( मौन ) अर्थ, सुख, प्रशंसा, लंघन, ( अ० ) ॥ ५५ ॥
तद्दिनम्–दिनमध्य, प्रतिदिन, (अ०)
तूष्णीकाम्–मौन–मात्र, ( अ० )
तूष्णीक–मौनधारण करनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ५६ ॥
नाम–प्राकाश्य, संभावना, निंदा, अंगीकार, क्रोध, ( अ० )
नूनम्–तर्क, अर्थका निश्चय, ( अ० ) ॥ ५७ ॥

प्राध्वं नर्मेऽनुकूलेऽपि प्रकर्षात्यर्थयोर्भृशम् ।
शं कल्याणे सुखे चाथ स्मऽतीते पादपूरणे ॥ ५८ ॥
सं सङ्गार्थे शोभनार्थे प्रहृष्टार्थसमार्थयोः ।
सामि निन्दार्द्धयोर्युक्तेऽप्यधुनार्थेऽपि साम्प्रतम् ॥ ५९ ॥
हं रुषोक्तावनुनये हुं स्यात्प्रश्नवितर्कयोः ।
हूं विक्रमे चानुमतौ तज्जनेऽपि क्वचिन्मतम् ॥ ६० ॥

य०

अये स्मृतौ विषादे स्यादये सम्भ्रमकोपयोः ।
अयि काकुकुलालापसम्बोधप्रेमभाषिते ॥ ६१ ॥
अयि प्रश्नानुनययोः समयाऽन्तिकमध्ययोः ।

र०

अन्तरा तु विनार्थे स्यान्मध्यार्थनिकटार्थयोः ॥ ६२ ॥

---

प्राध्वम्–नर्म ( ठट्ठा ), अनुकूल, ( अ० )
भृशम्–प्रकर्ष ( उत्कृष्टता ), अत्यत, ( अ० )
शम्–कल्याण, सुख, ( अ० )
स्म–व्यतीत होना, श्लोकके चरणकी पूर्त्ति, ( अ० ) ॥ ५८ ॥
सम्–संग अर्थ, शोभन ( सुंदर )अर्थ, प्रहृष्ट अर्थ, सम अर्थ, ( अ० )
सामि–निंदा, अर्द्ध, ( अ० )
साम्प्रतम्–युक्तअर्थ, अधुना (अव) अर्थ, ( अ० ) ॥ ५९ ॥
हम्–क्रोधसे बोलना, नम्रता, (अ०)
हुम्–प्रश्न, वितर्क, ( अ० )
हूम्–पराक्रम, अनुमति ( अ० ) कहीं पराक्रम और अनुमतिवाला मनुष्य, ( त्रि० ) ॥ ६० ॥

य०

अये–स्मृति, विषाद, सभ्रम, कोप, ( अ० )
अयि–काकु ( भाषणभेद ), आलाप (रागका स्वर), संबोधन, प्रेमसे भाषण, ॥६१॥ प्रश्न, नम्रता, (अ०)
समया–समीप, मध्य, ( अ० )

र०

अन्तरा–विना अर्थ, मध्य अर्थ, समीप अर्थ, ( अ० ) ॥ ६२ ॥

अन्तः प्रान्तार्थमध्यार्थस्वीकारार्थे तु वर्जने ।
उरर्युररीवदूरी विस्तारेऽङ्गीकृतौ त्रयम् ॥ ६३ ॥
दुर्निषेधेऽपि कष्टेऽपि गताद्यर्थाऽप्रकर्षयोः ।
निर्निःशेषे निषेधे च क्रान्ताद्यर्थे च निश्चये ॥ ६४ ॥
परा गतौ वधे प्रातिलोम्यप्राधान्यधर्षणे ।
आभिमुख्ये विमोक्षे च भृशार्थे विक्रमेऽपि च ॥ ६५ ॥
परि स्यात्सर्वतोभावे वीप्सायां लक्षणादिषु ।
आलिङ्गने निरसने व्यापने व्याधिशोकयोः ॥ ६६ ॥
पूजोपरमभूषासु दोषाख्यानेऽपि वर्जने ।
पुनर्भिदाऽप्रथमयोः पुरा भाविपुराणयोः ॥ ६७ ॥
प्रबन्धे निकटेऽतीते स्वः स्वर्गपरलोकयोः ।

ल०

किल त्वरुचौ वार्त्तायां सम्भाव्यानुनयार्थयोः ॥ ६८ ॥

---

अन्तर्–समीप अर्थ, मध्य अर्थ, अ-
गीकार अर्थ, वर्जन अर्थ ( अ० )
उररी १, उररी २, ऊरी ३, वि-
स्तार, अंगीकार, ( अ० ) ॥ ६३ ॥
दुर्–निषेध, कष्ट, गतआदि अर्थ,
अप्रकर्ष( अ० )
निर्–निःशेष, निषेध, क्रान्तआदि
(उलंघनआदि) अर्थ, निश्चय (अ०)
॥ ६४ ॥
परा–गमन, वध, प्रातिलोम्य (उलटा
पन), प्राधान्य, धर्षण (तिरस्कार),
संमुख करना, छुटना, अति अर्थ,
पराक्रम ( अ० ) ॥ ६५ ॥

परि–चारों तरफ, दो वार, लक्षण
आदि, मिलना, दूर करना, व्याधि,
शोक, ॥ ६६ ॥ पूजा, उपशम
( शांति ), आभूषण, दोषकथन,
वर्जना ( अ० )
पुनर्–भेद, दूसरी वार ( अ० )
पुरा–भावि (होनेवाला), पुराना,
॥ ६७ ॥ प्रबंध, समीप, वदीत-
हुवा ( अ० )
स्वर्–स्वर्ग, परलोक ( अ० )

ल०

किल–अरुचि, वार्ता, संभावना अर्थ,
नम्रता अर्थ ( अ० ) ॥ ६८ ॥

खलु स्याद्वाक्यभूषायां खलु वीप्सानिषेधयोः ।
निश्चिते सान्त्वने मौने जिज्ञासादौ खलु स्मृतम् ॥ ६९ ॥

व०

अव व्याप्तौ परिभवे वियोगालम्बशुद्धिषु ।
ईषदर्थेऽपि विज्ञानेष्वेवौपम्येऽवधारणे ॥ ७० ॥
वस्तु युष्माकमित्यर्थे वर्त्तते भेदने तु वि ।
वि स्यादतीते नानार्थे श्रेष्ठे विस्तु खगे पुमान् ॥ ७१ ॥

ष०

उषाऽसङ्ख्यं ससङ्ख्यं च निशान्तनिशयोर्म्मतम् ।
दोषा रात्रिमुखे रात्रावत्रानव्ययमप्यसौ ॥ ७२ ॥
निकषा त्वन्तिके मध्ये रक्षोमातर्यनव्ययम् ।
विभाषा तु स्त्रियां क्वापि विकल्पार्थे समुच्चये ॥ ७३ ॥

स०

अग्रतः प्रथमेऽग्रे स्यादञ्जसा तत्त्वतूर्णयोः ।

---

खलु—वाक्यभूषण, वीप्सा, (दो या तीन बार कहना), निषेध, निश्चित, सान्त्वन, मौन, जाननेकी इच्छा आदि (अ० ) ॥ ६९ ॥

व०

अव—व्याप्ति, तिरस्कार, वियोग, आलम्बन, शुद्धि, ईषत् (थोडा) अर्थ, जानना (अ० )
एव—सदृशता, निश्चय ( अ० )॥७०॥
वस्—'तुम्हारा' यह अर्थ, (अ० )
वि—भेदन, बदीतहुआ, नाना अर्थ, श्रेष्ठ (अ०) वि—पक्षी (पुं०)॥७१॥

ष०

उषा—प्रात काल, रात्रि ( अ० स्त्री० )
दोषा—साय(संध्या)काल, रात्रि (अ० स्त्री०) ॥ ७२ ॥
निकषा—समीप, मध्य ( अ० )
निकषा—राक्षसोंकी माता ( स्त्री० )
विभाषा—विकल्प अर्थ, समुच्चय (इकट्ठा) करना ( अ० स्त्री० ) ॥७३॥

स०

अग्रतस्—प्रथम, अग्र ( अ० )
अञ्जसा—तत्त्व, शीघ्रता ( अ० )

अभितोऽन्तिकसाकल्यसम्मुखोभयतो द्रुते ॥ ७४ ॥
तिरोऽन्तर्द्धौ तिर्यगर्थे निस् निश्चयनिषेधयोः ।
साकल्यातीतयोश्चाथ नीचैः स्वैराल्पयोर्म्मतम् ॥ ७५ ॥
पुरोऽग्रे प्रथमे च स्यात्पुरतः प्रथमाग्रयोः ।
प्रातर्द्दिनेऽपि पूर्वेद्युः पूर्वेद्युर्द्धर्म्मवासरे ॥ ७६ ॥
पूर्वत्रार्थेऽपि पूर्वेद्युर्भूयस्तु स्यात्पुनःपुनः ।
अनव्ययं प्रभूतार्थे मिथोन्योन्य मिथो रहः ॥ ७७ ॥
प्रादुः स्यात्प्रकटीभावे प्रादुः सम्भाव्यमात्रके ।
शनैः शनैश्चरे ख्यातं स्वैरेऽपि च शनैरिति ॥ ७८ ॥
सु पूजायां भृशार्थोऽनुमतिकृच्छ्रसमृद्धिषु ।
तत्कालमात्रे सहसा सहसाऽऽकस्मिकेऽपि च ॥ ७९ ॥

हृ०

अहा शोके धिगर्थे च विषादकरुणार्थयोः ।

---

अभितस्–समीप, संपूर्णता, संमुख, उभयतस् (दोनों तर्फ), शीघ्र (अ०) ॥ ७४ ॥
तिरस्–ढकना, तिरछा (अ०)
निस्–निश्चय, निषेध, साकल्य (संपूर्णता), वदीतहुवा (अ०)
नीचैस्–यथेच्छता, अल्प (अ०) ॥ ७५ ॥
पुरस्–अग्र (आगे), प्रथम, (अ०)
पुरतस्–प्रथम, अग्र (अ०)
पूर्वेद्युस्–प्रातःकाल, धर्मदिन ॥७६॥ पूर्वअर्थ (अ०)
भूयस्–वारवार (अ०) भूयस् वहुत (त्रि०)
मिथस्–परस्पर, एकात (अ०)॥७७॥
प्रादुस्–प्रकटीभाव, सभावनामात्र (अ०)
शनैस्–शनैश्चर, यथेच्छा (पुं०अ०) ॥ ७८ ॥
सु–पूजा, अत्यंत, अनुमति, कृच्छ्र (कष्ट), समृद्धि (अ०)
सहसा–तत्कालमात्र, अकस्मात् होना (अ०) ॥ ७९ ॥

हृ०

अहा–शोक, धिक्अर्थ, विषाद, दया (अ०)

अहो प्रश्ने विचारे स्यादहहाद्भुतखेदयोः ॥ ८० ॥
अहह स्यादनुशये. परिक्लेशप्रकर्षयोः ।
आह क्षेपनियोगार्थेऽप्युताहो प्रश्नतर्कयोः ॥ ८१ ॥
सहशब्दस्तु साकल्ययौगपद्यसमृद्धिषु ।
सादृश्ये विद्यमानेऽपि सम्बन्धेऽपि सह स्मृतम् ॥ ८२ ॥
ह पादपूरणे सम्बोधने हीरे त्वनव्ययम् ।
हा विषादेऽपि दुःखेऽपि शोके हाहा तु खेदने ॥ ८३ ॥
गन्धर्वेऽनव्ययं हाहा हि विशेषेऽवधारणे ।
हि पादपूरणे हेतौ ही विस्मयविषादयोः ॥ ८४ ॥
ही हर्षे दुःखहेतौ च हीही विस्मयहास्ययोः ।
हूहू हर्षेऽपि गन्धर्वे गन्धर्वे किन्त्वनव्ययम् ॥ ८५ ॥
हेहे व्यस्तौ समस्तौ च संस्मृत्यामान्त्रहूतिषु ।
हो च हौ च समस्तौ च सम्बुद्ध्याध्यानयोर्मतौ ॥ ८६ ॥

---

अहो—प्रश्न, विचार ( अ० )
अहह—अद्भुत, खेद, ॥ ८० ॥ बहुत दिनका वैर या पिछताना, क्लेश, प्रकर्ष ( अ० )
आह—आक्षेप, नियोग (...) (अ०)
उताहो—प्रश्न, विचार (अ०) ॥८१॥
सह—सकलभाव, एक बार, समृद्धि, सदृशता, विद्यमान, सम्बन्ध, ॥ ८२ ॥
ह—पादपूरण, सम्बोधन ( अ० ) ह—हीरा ( न० )
हा—विषाद, दुःख, शोक ( अ० )
हाहा—खेद (अ० ) ॥८३॥ हाहा—एक गन्धर्व ( पुं० )
हि—विशेष, निश्चय, पादपूरण, हेतु ( अ० )
ही—आश्चर्य, विषाद ॥ ८४ ॥ हर्ष, दुःखकारण, ( अ० )
हीही—आश्चर्य, हँसना ( अ० )
हूहू—हर्ष ( अ० ) गन्धर्व (पुं) ॥८५॥
हे,हे,—हेहे—संस्मृति, आमन्त्रण, निमंत्रण, बुलाना ( अ० )
हो—हौ—होहौ—संबोधन,स्मृति (अ०) ॥ ८६ ॥

क्ष०

मङ्क्षु शीघ्रे भृशार्थेऽपि मङ्क्षु तत्त्वेऽपि कुत्रचित् ॥ ८७ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानाया मुक्तावल्यामव्ययानेकार्थवर्गः ॥

इति श्रीपण्डितश्रीश्रीधरसेनविरचिते विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां नानार्थकाण्डः समाप्तः ॥ श्री ॥ श्री ॥ विक्रम संवत् १९६९ ॥

---

क्ष०

मङ्क्षु–शीघ्र, अत्यर्थ, तत्त्व ( अ० ) ॥ ८७ ॥

इस प्रकार विश्वलोचन अपराभिधान-मुक्तावलीमें अव्ययअनेकार्थवर्ग समाप्त हुवा ॥

---

इति श्री पण्डित श्री श्रीधरसेन विरचित विश्वलोचनकोश अपर नाम मुक्तावलीमें नानार्थकाण्ड समाप्त ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

